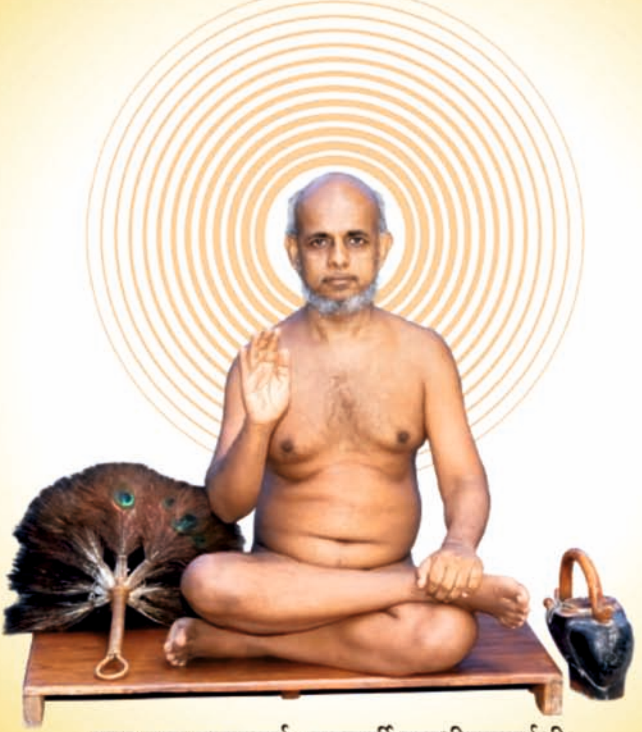

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

प्रद्युम्न चरित्र

ग्रन्थकर्त्ता

परम पूज्य आचार्यश्री सो कीर्त्ति जी महाराज

अनुवादक

श्री बाबू बुद्धमल जी पाटनी

पण्डित नाथूराम जी प्रेमी

प्रकाशक

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

श्री सोमकीर्ति सूरि विरचित

प्रद्युम्नचरित्र

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

ज्ञानदिवाकर, मर्यादा शिष्योत्तम, प्रशांतमूर्ति
आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज की स्वर्णजयंती वर्ष के उपलक्ष्य में :

श्री सोमकीर्ति सूरि विरचित

प्रद्युम्नचरित्र

अनुवादक

श्री बाबू बुद्धमलजी पाटनी
पण्डित नाथूराम जी प्रेमी

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् पुष्प संख्या –११५
आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज की स्वर्णजयंती पुष्प संख्या –४१

आशीर्वाद	:	आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज
स्वर्ण जयंती वर्ष निर्देशन	:	आर्यिका स्याद्वादमती माता जी
ग्रन्थ	:	**प्रद्युम्नचरित्र**
प्रणेता	:	**आचार्य सोमकीर्ति**
अनुवाद एवं सम्पादक	:	**बाबू बुद्धमल जी पाटनी**
	:	**पण्डित नाथूराम जी प्रेमी**
सर्वाधिकार सुरक्षित	:	भा० अ० वि० परि०
संस्करण	:	प्रथम वीर नि० सं० २५२४ सन् १९९८
पुस्तक प्राप्ति–स्थान	:	आचार्य श्री भरतसागर जी महाराज संघ

I.S.B.N. 81-8583-04-3

मूल्य	:	६०-०० रुपये
मुद्रक	:	वर्द्धमान मुद्रणालय जवाहरनगर, वाराणसी-१०

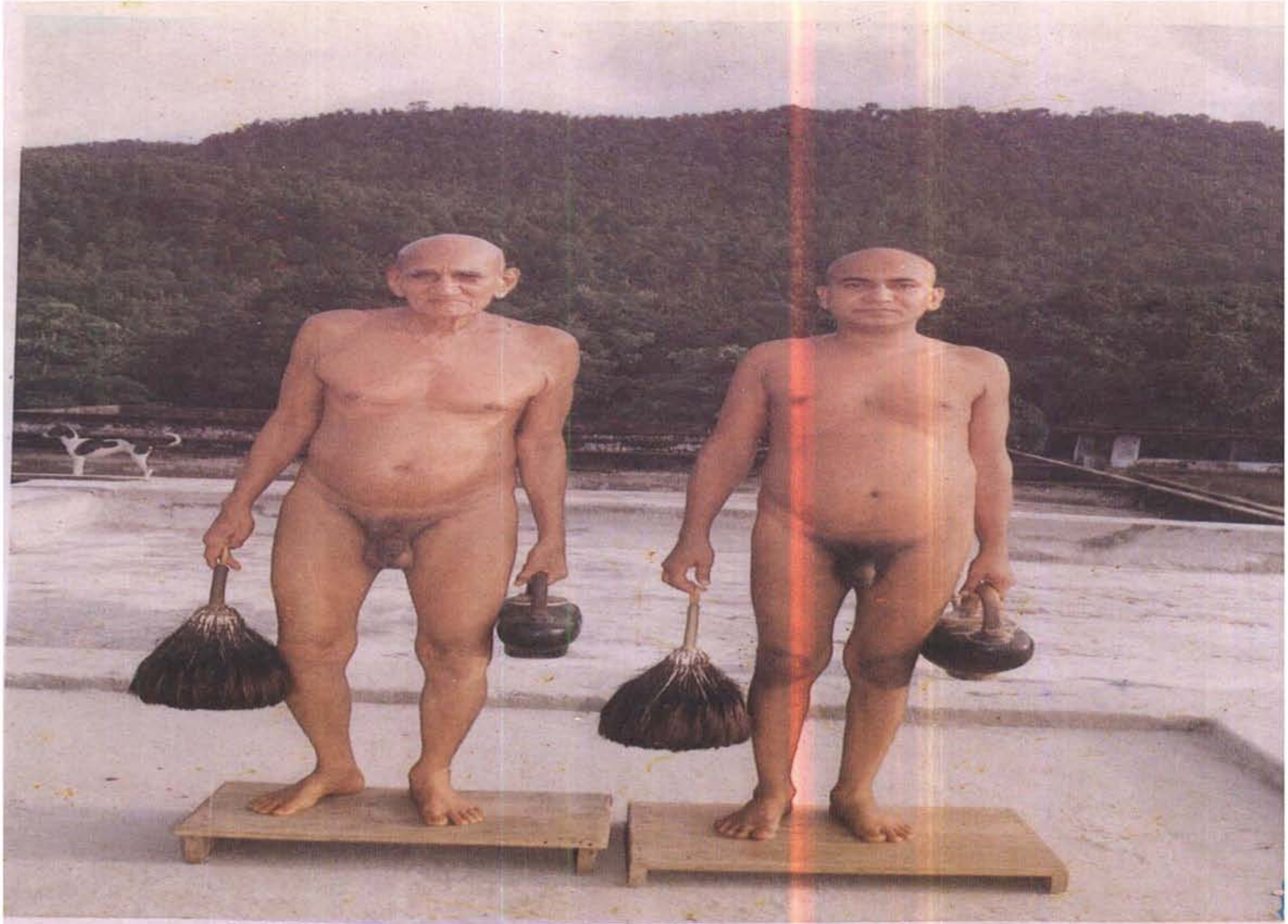

आचार्य श्री विमल सागर जी

तुभ्यं नमः परम धर्म प्रभावकाय,
तुभ्यं नमः परम तीर्थ सुवन्दकाय।
'स्याद्वाद' सूक्ति सरणि प्रतिबोधकाय,
तुभ्यं नमः विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥

आचार्य श्री भरत सागर जी

आचार्यश्री भरतसिन्धु नमोस्तु तुभ्यं,
हे भक्तिप्राप्त गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं।
हे कीर्तिप्राप्त जगदीश नमोस्तु तुभ्यं,
भव्याब्ज सूर्य गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं ॥

समर्पण

प. पू. वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री
१०८ विमलसागर जी महाराज के
पट्ट शिष्य
मर्यादा-शिष्योत्तम
ज्ञान-दिवाकर
प्रशान्त-मूर्ति
वाणीभूषण
भुवनभास्कर
गुरुदेव आचार्य श्री १०८ भरतसागर जी महाराज
की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष में
आपके श्री कर–कमलों में ग्रन्थराज
सादर–समर्पित

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः ।।१।।
अविरलशब्दघनौघाः प्रक्षालितसकलभूतलमलकलंकाः ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ।।२।।

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
श्रीपरमगुरवे नमः परम्पराचार्य्य श्रीगुरवे नमः ।

सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्म्मसंबन्धकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रंश्रीप्रद्युम्नचरित्रनामधेयम् , एतन्मूलग्रन्थकर्त्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रंथकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य श्री सोमकीर्ति सूरिणा विरचितम् ।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी । मंगलं कुन्दकुन्दाद्यौ जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ।।
सर्वे श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।।

श्रीसकलपरमात्मने नमः।

प्रद्युम्नचरित्र

(अनुवादकका मंगलाचरण)

श्री अरहन्त जिनिंदको, वन्दों मन वच काय। छयालिस गुन जिनमें लसैं, प्रातिहार्य सुखदाय ॥ १ ॥
अष्टकर्मको नष्ट करि, सिद्ध अष्ट गुणसंग। अष्टमधरा विराजते, नमो नाय अष्टांग ॥ २ ॥
पंचाचार प्रचारते, मुनिजनशासक सूरि। राजत गुण छत्तीसयुत, नमों अवर गुणभूरि ॥ ३ ॥
द्वादशाङ्ग वाणी विमल, पारंगत उवझाय। गुण पचीसयुत राजते, वन्दों शीस नवाय ॥ ४ ॥
अट्ठाइस गुण धारि जो, सर्वसाधु कहलाहिं। धरैं दृष्टि सम सबनिपर, जयवन्तो जगमाहिं ॥ ५ ॥
हे जिनवाणी भगवती, निवसो मम उर आय। जातैं बुद्धि विकास हो, मोह तिमिर मिट जाय ॥ ६ ॥
सोमकीर्तिआचार्यकृत श्रीप्रद्युम्नचरित्र। मन्दमती भाषा करन, उमगानों मैं चित्त ॥ ७ ॥

अथ प्रथमः सर्गः ।

* मूल ग्रंथका मंगलाचरण *

श्रीमतं सन्मतिं नत्वा नेमिनाथं जिनेश्वरम् । मदनो विश्वजेतापि बाधितुं नो शशांक यम् ॥ १ ॥
वर्द्धमानं जिनं नत्वा वर्द्धमानं सतामिह । यद्रूपदर्शनाज्जातः सहस्रनयनो हरिः ॥ २ ॥
प्रणम्य भारतीं देवीं जिनेन्द्रवचनोद्गताम् । चरितं कृष्णपुत्रस्य वक्ष्ये सूत्रानुसारतः ॥ ३ ॥

अर्थात्-अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरङ्गलक्ष्मी तथा समवशरणादिरूप बाह्यलक्ष्मीसंयुक्त श्रीमहावीरस्वामी और श्री नेमिनाथस्वामीको जिन्हें कि त्रिलोकविजयी कामदेव भी कुछ बाधा न कर सका, नमस्कार करके, तथा सत्पुरुषों की पुण्यराशिको बढानेवाले, जिनके दर्शनमात्रसे सौधर्म इन्द्रके हजार नेत्र हो गये ऐसे श्रीवर्द्धमान स्वामीको नमस्कार करके, तथा श्रीजिनेन्द्र मुखसे प्रगट हुई श्री सरस्वती देवीको नमस्कार करके, मैं पूर्व आचार्यों के कहे अनुसार श्रीकृष्णनारायणके पुत्र प्रद्युम्न-कुमारका चरित्र कहता हूँ ॥ १–३ ॥

यह चरित्र श्रीमहासेनादि आचार्योंने जिसप्रकार कहा है, उसप्रकारसे मैं अल्पमति कैसे कह सकता हूँ ? तथापि उनके चरणकमलोंको प्रणाम करनेसे मुझे जो पुण्यकी प्राप्ति हुई है, उसके द्वारा श्रीप्रद्युम्नचरित्र ग्रन्थके रचने में मुझे अवश्य ही कुछ परिश्रम न होगा ॥ ४–५ ॥

सदाकाल निर्मल चितके धारक, परनिन्दा करनेमें मूक (गूंगे) और सर्व प्राणियोंके उप-कार करनेवाले सज्जनोंको मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥ ६ ॥ साथ ही दूसरोंके दूषण निकालनेमें तत्पर रहनेवाले दुर्जनोंको आशीर्वाद भी है कि, वे चिरकालतक आनन्दित रहें क्योंकि उनके प्रसादसे लोग चतुर हो जाते हैं ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न कामदेव का चरित्र तो कहाँ और अल्प विषयको समझनेवाली मेरी बुद्धि कहाँ ? भला दोनों भुजाओंसे, विस्तीर्ण और गम्भीर समुद्रको तिरके कोई पार पहुँच सकता है ?

॥ ८ ॥ विद्वानोंके सामने मैं मन्दबुद्धि कविता करनेकी इच्छासे उसी तरह उपहासका पात्र बनूंगा, जैसे ऊँचे वृक्षके फलोंको तोड़नेकी इच्छा करनेवाला कुबड़ा (कुब्ज) मनुष्य हास्यपात्र बनता है ॥ ९ ॥ मैं व्याकरण, छन्द, अलंकार, नाटकादि कुछ नहीं जानता हूँ केवल पुण्यके उदय से मनमें जो उत्साह उत्पन्न हुआ है, उसीसे पापका नाश करनेवाला चरित्र कहता हूँ ॥ १० ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवकी जो पूजा इन्द्रगण उत्तमोत्तम कल्पवृक्षोंके फूलोंसे करते हैं, उसे क्या मनुष्य कल्हार (संध्याको खिलनेवाले श्वेत कमल) पत्रोंसे नहीं करते हैं ? करते ही हैं ॥ ११ ॥ श्रीजिनसेनादि पूज्य आचार्योंने जिस तरह निरूपण किया है, उसीके अनुसार मैं शक्तिहीन भी उनके चरणारविंदोंकी सेवाके प्रसादसे वर्णन करता हूँ ॥१२॥ जिस चरित्रके बाँचने तथा सुननेसे पापका नाश होता है, उसे सत्पुरुषोंको और विशेषकर भव्य जीवोंको अवश्य ही सुनना चाहिये ॥ १३ ॥ मैं मन्दमति यह शुभ चरित्र केवल पाप शत्रुके विनाशार्थ और पुण्यकी प्राप्तिके लिये लिखता हूँ ॥१४॥ इस चरित्रको मैं भव्य जीवोंके ज्ञानकी वृद्धि के लिये, पुण्यफलका दृष्टांत देनेके लिये, तथा बालकोंकी बुद्धिकी बढ़वारीके लिये बहुत ही सुगम रचता हूँ ॥ १५ ॥

इति प्रस्तावना ।

इस पृथ्वीतलपर जम्बूवृक्षोंके आकारसे चिह्नित एक जम्बूद्वीप नामका द्वीप है, जिसकी सुवृत्त (उत्तम वृत्तोंके धारण करनेवाले) राजाके समान वाहिनीनाथ सेवा करते हैं । जिस तरह राजाकी वाहिनीनाथ अर्थात् सेनापति अथवा मांडलिक राजा सेवा करते हैं, उसी तरह जम्बूद्वीपकी वाहिनी-नाथ अर्थात् लवणसमुद्र सेवा करता है । जिस तरह राजा सुवृत्त अर्थात् सदाचारी है, उसी तरह जम्बूद्वीप सुवृत्त अर्थात् गोलाकार है ॥ १६ ॥ उसमें भरतक्षेत्र नामका एक क्षेत्र है, जो विख्यात है तथा तीर्थंकरोंके पंचकल्याणकके स्थानों द्वारा पवित्र और पापका नाश करने वाला एक तीर्थ ही है

॥ १७ ॥ उसमें जगतविख्यात मगध नामका एक देश है, जो अनेक तरहकी वापिका (बावड़ी) कुए और सरोवरोंसे शोभायमान है ॥१८॥ उस मगधदेशमें एक राजगृह नामका नगर है, जो धरातलपर विख्यात है और जिनमन्दिरोंके द्वारा स्वर्गपुरीके समान सुन्दर है ॥१६॥ उस नगरमें श्रेणिक नामका राजा राज्य करता था जो जगद्विख्यात, शत्रुओंका जीतनेवाला, निर्मल चित्तका धारक, विवेकी, दुष्टोंका निग्रह करनेवाला, सत्पुरुषोंकी रक्षामें दत्तचित्त, श्रावकोंके आचारका पालनेवाला और सम्यक्त्वसे शोभायमान था ॥२०-२१॥ उस राजाकी चेलना नामकी एक रानी थी, जो सरल स्वभावको धारक अपने रूपकी सम्पत्तिसे देवांगनाओंके भी रूपको जीतनेवाली, पापसे भयभीत, अपने गुणोंसे संसारमें विख्यात, गुणोंकी खानि, सम्यक्त्ववान्, श्रावकाचारके धारणसे अतिशय निर्मल, दोनों कुलोंको विशुद्ध बनानेवाली पतिके अत्यन्त स्नेहके भारसे मन्द गमन करनेवाली, जिनमार्गमें निपुण, और पतिव्रता स्त्रियोंके गुणोंको धारण करनेवाली थी ॥२२-२४॥ उसके साथ राजा श्रेणिकने रात्रिदिवस अनेक प्रकारके सुख भोगते और आनन्द सागरमें मग्न रहते हुए समय व्यतीत कर दिया, कुछ जान न पड़ा ॥ २५ ॥

एक दिन अनेक उद्यानोंवाले विपुलाचल पर्वतपर श्रीमहावीरस्वामीका समवशरण आया, जिनके चरणारविंद गणधरादि मुनीन्द्रोंसे पूजित थे, और जिनकी परमौदारिक शरीरकी शोभा अद्वितीय थी ॥ २६-२७ ॥ उस समय श्रीजिनेन्द्रके प्रभावसे वह बन फल फूलोंसे परिपूर्ण हो गया और मृगव्याघ्रादिकका स्वाभाविक वैर भी दूर हो गया। तब उपवनको विशेष विभवसहित देखकर बनका रक्षक माली चकित हो गया, और उसके कारणका विचार करता हुआ, चारों ओर भ्रमण करने लगा ॥ २८-२६ ॥ घूमते २ उसे समवशरण दिखाई दिया, जिसके दर्शनमात्रसे उसका चित्त प्रफुल्लित हो गया ॥ ३० ॥

तब मालीने बगीचेके फलपुष्प तोड़े और उन्हें लेकर वह द्वारपालकी आज्ञासे राजा श्रेणिककी सभामें गया ॥३१॥ जाते ही उसने राजाको नमस्कार किया, विनयसहित फलपुष्प भेंट किये, और हाथ जोड़कर वह इस प्रकार मनोहर वचन बोला—हे महाभाग्यशाली महाराज ! आपके उपवनमें केवल ज्ञान विभूषित श्रीवर्द्धमान् भगवानका शुभागमन हुआ है । उनके प्रसादसे आप चिरकाल जीओ ! सर्वगुण सम्पन्न बनो ! और धन धान्य से मंडित होओ ! ॥३२-३४॥ राजा श्रेणिक वीरभगवानका समवशरण आया जानकर तत्काल अपने सिंहासनसे उठा और जिस दिशामें श्रीभगवान् विराजमान थे, उस ओर सात पैंड आगे चलकर उसने भगवानको प्रणाम किया । सो ठीक ही है:—"परोक्षमें विनय करना यह सज्जनोंका लक्षण है" ॥३५-३६॥ पश्चात् अपने सुन्दर सिंहासन पर बैठकर राजा श्रेणिकने वनपालको अपने सोलहों प्रकारके वस्त्राभूषण उतार कर दे दिये ॥३७॥ और आनन्द भेरी बजवाकर तथा बहुतसे मनुष्योंको इकट्ठे करके वह अपने परिवारसहित जिनदेवकी वन्दनाके लिये चला ॥ ३८ ॥ समवसरणको दूरसे देखते ही उसने तत्काल हाथीसे उतरकर सम्पूर्ण राजसी ठाठको छोड़ दिया ॥ ३९ ॥ समवसरणमें जाते ही मानस्तंभके प्रभावसे उसका सर्व गर्व गलित हो गया और परम भक्तिभावसे उसके परिणाम भींज गये । उसने हाथ जोड़कर महावीर स्वामीको तीन प्रदक्षिणा दीं, तथा अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर इस प्रकार स्तवन किया—॥ ४०–४१ ॥

"हे प्रभो ! आप तीन जगतके स्वामी हो, सत्पुरुषों करके वंदित हो, संसाररूपी घोर समुद्रमें नावके समान हो, कामशत्रुके जीतनेवाले हो, मोह सुभटको विनाश करनेवाले हो, चिंतामणिके समान चिंतित पदार्थके दाता हो, केवलज्ञानकी मूर्ति हो, आदिपुरुष हो, परमोत्तम तेजमूर्ति हो, स्वयंभव (अर्थात्–स्वयं ही इस स्वरूपको प्राप्त होनेवाले) हो, स्वयंबुद्ध हो, स्वाभाविक आनन्दसे भरपूर हो, दुःखशोकादिके नाश करनेवाले हो, जरामरणादिसे रहित हो, सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूपी

रत्नत्रयसे मण्डित हो, मान और मायासे वर्जित हो, प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोग-रूपी चार वेदोंमें आपकी ही महिमा वर्णित है, ध्यानमें वा गानमें आपका ही ध्यान वा गुणानुवाद किया जाता है, कोटि सूर्यके प्रकाशके समान आपका तेज है, और कोटि चन्द्रमाके उजालेके समान आपकी कान्ति है, निश्चयसे आपके दर्शनमात्रसे मनुष्योंके पाप नाशको प्राप्त होते हैं, आपही लोकमें शंकर अर्थात् शान्तिके कर्ता हो, तीन लोकमें आपका ज्ञान व्याप्त है अतएव आपही विष्णु हो, परम ब्रह्मस्वरूप आत्मस्वरूप होने से ब्रह्मा हो, पापरूपी शत्रुको नाश करनेवाले हर अर्थात् महादेव हो, संसारबन्धनसे मुक्त हो, शरणागत भव्य जीवोंके तारनेवाले हो, अनन्त चतुष्टय तथा समवसरणआदि-लक्ष्मीके ईश्वर हो, तीन भुवनके स्वामी हो, धर्मचक्रके चलानेवाले हो, संसारसमुद्रमें डूबते हुये भव्य जीवोंकी रक्षा करते हो, अतएव दयासिंधु हो, भव्य जीवोंकी सुखपरंपराको बढ़ानेवाले हो अतएव वर्द्धमान हो और जिन अर्थात् गणधरादिके ईश्वर हो, अतएव जिनेश्वर हो ॥४२–४६॥" इसप्रकार जगद्गुरु श्रीमहावीर स्वामीकी स्तुति करके राजा श्रेणिकने भक्तिभावसे अष्टांग नमस्कार किया, जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फलरूप अष्टद्रव्यसे विधिपूर्वक जिनेन्द्रकी पूजा की और बारह सभाओंमें जो मनुष्योंका कोठा था, उसमें जाकर बैठ गया।

पश्चात् जिनेश्वरका धर्मोपदेश प्रारम्भ हुआ—धर्म दो प्रकारका है, एक सागारधर्म और दूसरा अनागारधर्म। गृहस्थियोंके धर्मको सागारधर्म कहते हैं और यतियोंके धर्म को अनागारधर्म कहते हैं, यतिधर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होती है, और गृहस्थधर्मसे स्वर्गादिककी प्राप्ति होती है। अनागार अर्थात् यतियोंके चारित्रके तेरह भेद हैं—पंचमहाव्रत अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह; पंचसमिति अर्थात् ईर्या, भाषा, एषणा, आदान, निक्षेपण और तीन गुप्ति अर्थात् मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। इसके पीछे यतियोंके विख्यात अट्ठाईस मूलगुण और असंख्यात उत्तरगुण भी कहे जो

मोक्ष के साधक हैं। पश्चात् गृहस्थोंके बारहव्रत कहे जो इसप्रकार हैं:—पंचअणुव्रत तीनगुणव्रत (दिग्व्रत, भोगोपभोगपरिमाण, अनर्थदण्डत्याग) और चार शिक्षाव्रत (देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास, वैयावृत्य) और फिर श्रावकोंके अष्टमूलगुणोंका अर्थात् ऊंबर, कठूम्बर (अंजीर) बड़ पीपर, पाकर इन * पंचोदुम्बरोंका तथा मद्य मांस और मधु इन तीन मकारोंके त्याग करनेका वर्णन किया। इस प्रकार गृहस्थधर्मको कहा। यह गृहस्थधर्म स्वर्गादि सुखका दाता है (और परम्परासे मोक्षका साधक है) इसलिये भव्यजीवोंको अपने हिताहितका विचारकरके पहले इसीका पालन करना चाहिये। श्रेणिक राजाको धर्म का स्वरूप सुननेसे अपार आनन्द हुआ। क्योंकि "भव्यात्माओं को धर्मकथासे ही सन्तोष होता है" ॥ ५८–५९ ॥

उसी समय प्रस्तावना करनेका प्रसंग पाकर राजा श्रेणिकने अपने हाथ जोड़कर इसतरह निवेदन किया कि, हे भगवन्! कृष्ण नारायण के पुत्र प्रद्युम्नका चरित्र सुननेकी मेरी अभिलाषा है। वह कहाँ उत्पन्न हुआ, उसे शत्रु कैसे हर ले गया, उसने कैसे २ धर्मकृत्य किये, उसकी किस २ प्रकारकी श्रेष्ठ विभूति हुई, तथा वह किस प्रकार युक्ति, शक्ति, पराक्रम, धैर्यका धारक हुआ, आपके प्रसादसे मैं ये सब बातें सुनना चाहता हूँ। आप संदेहरूपी अंधकारको दूर करनेमें सूर्यके समान हो, इसलिये मेरे सन्देहको दूर कीजिये।

तब वीरनाथ भगवानने कहा—हे राजन्! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। प्रद्युम्नका चरित्र पापका नाश करनेवाला है। पृथ्वीतलपर विना पुण्योदयके प्राणियोंको ऐसे चरित्रके सुननेका अवसर नहीं मिलता है। इसीसे भव्य और अभव्य जीवोंकी वास्तविक पहिचान होती है (अर्थात्–जो भव्यजीव होते हैं, उन्हींको यह चरित्र सुननेका अवसर प्राप्त होता है, अभव्योंको नहीं। जिसने

*अनेक आचार्यों ने पंचोदुम्बरके स्थानमें पचअणुव्रतको भी ग्रहण किया है।

इस चारित्रको सुना हो, समझ लो कि, वह भव्य है) अतएव हे मतिमान् ! सावधान होकर और स्थिर चित्त करके श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नका चरित्र सुनो—श्रीवर्द्धमानस्वामीकी दिव्यध्वनिसे ऐसे वचन श्रवण-करके बारहसभाके समस्त प्राणी स्थिरचित्त और दृढासन होकर बैठ गये। क्योंकि "सत्पुरुष उत्तम मनुष्यके चरित्र सुननेकी उत्कण्ठा रखते हैं।

इसप्रकार जब श्रेणिकराजाने उस निर्मल अलौकिक और सर्वोत्तम चरित्रके सुननेकी अभि-लाषा प्रकट की तब श्रीवीरनाथ भगवान्ने कृष्ण पुत्रका चरित्र वर्णन करना प्रारम्भ किया। इसके सुननेसे प्राणी उत्तम पदको प्राप्त होते हैं, ऐसा जानकर भव्यजीवोंको जिनधर्ममें रुचिपूर्वक अपनी बुद्धि लगाकर इस चरित्रको सुनना चाहिये ॥ ६९ ॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें राजा श्रेणिकके प्रश्नके कथनका प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

❀ अथ द्वितीय सर्ग ❀

स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्त असंख्यात द्वीप समुद्रोंके बीचमें जम्बूवृक्षोंसे चिह्नित और पृथ्वी-तलपर सुप्रसिद्ध जम्बूद्वीप नामका एक द्वीप है। उसकी दक्षिण दिशामें भरतक्षेत्र शोभायमान है। उसका हम विशेष क्या वर्णन करें। तीर्थंकरोंके पंचकल्याणक स्थानोंसे वह एक तीर्थस्वरूप है, और पापकानाश करनेवाला है वहाँ जिनकल्याणककी रचना करनेवाले देवोंका आगमन हुआ करता है॥ १-३॥

उस भरतक्षेत्रमें एक जगत विख्यात सौराष्ट्र नामका देश है जो पुण्यात्माओंके लिये स्वर्गके समान है ॥४॥ वहाँकी वाटिकाओंमें लगे हुए सरस गन्ने (इक्षु) पवन द्वारा चहुं ओरसे कम्पायमान होनेपर भी भूमिपर गिरजानेसे नीच पुरुषोंके द्वारा बांधे जाँयगे, ऐसे भयसे पृथ्वी पर नहीं गिरते॥५॥ सरोवरोंमें कमल खिले हुए हैं और राजहंस शब्द कर रहे हैं ॥ ६ ॥ नदियें सदाकाल जलसे भरपूर रहती हैं और उनके दोनों किनारे पुष्पोंके समूह से सुगंधित रहते हैं ॥ ७ ॥ वहांकी बावड़ी अथाह

जलसे भरी हुई हैं, और कोक (चक्रवाक) के शब्दोंसे मानों प्रवासियोंका स्वागत ही कर रही हैं ॥८॥ जगह २ मनोहर जलपानके स्थान (प्याऊ) बने हुए हैं और पैंड पैंड पर दानशाला खुली हुई हैं। सुन्दर ग्राम इतने निकट २ हैं कि–मुर्गा एक ग्राम से उड़कर दूसरे ग्राममें जा सकता है ॥९॥ अनेक बगीचे लगे हुए हैं जो (नंदनवनके समान) बड़े सुन्दर मालूम होते हैं, मानों पुण्यात्मा जीवोंके लिये ब्रह्माने मध्यलोकमें भी स्वर्गकी रचना की है ॥१०॥ पद पदपर धान्यके खेत पककर पीले हो रहे हैं। खेतों में भारके कारण झुके हुए धान्यके वृक्ष ऐसे शोभित होते हैं, मानों पानी पीनेके लिये नीचे मस्तक कर रहे हैं ॥११॥ जहां तहां धान्यके ढेरके ढेर लगे हुए हैं, इसलिये वहां कभी दुर्भिक्ष (काल) पड़नेकी बात तक सुनाई नहीं पड़ती ॥१२॥ वहां की बाहिरी जमीन हरित वा सरस घाससे हरी हो रही है और चारों ओर (श्वेत) गायोंके चरनेसे मानों सफेद कर दी गई हो ऐसी दिखाई देती है ॥१३॥ वहां बन २ में नाग बेल सुपारीके वृक्षोंसे लिपटी हुई है इस कारण ताम्बूल (पान) के लिये वहांके मनुष्य केवल चूना (चूर्ण) ही लेकर जाते हैं ॥ १४ ॥ वहां केलों तथा ताड़फलोंसे लदे हुए कदली तथा ताड़ आदिके वृक्ष और द्राक्ष (अंगूर) वृक्षोंके मंडप जगह २ शोभा दे रहे हैं जिससे वहां के यात्री लोग बिना कलेवाके ही बाहर निकलते हैं ॥१५॥ इस तरहके सौराष्ट्र देशमें स्वर्गपुरीसे सुन्दर एक द्वारिका नामकी प्रसिद्ध नगरी है। जिसमें वापिका कूप सरोवर, बन, वाटिका आदि शोभायमान हैं मानों अमरावती (इन्द्रपुरी) ही लोगोंके पुण्यसे यहां आगई है ॥ १६–१७ ॥ उसमें सात सात, आठ आठ खण्डके महल हैं जिनकी सुवर्ण की भीतें रत्नोंकी मालाओंसे शोभित हो रही हैं ॥१८॥ वे महल चूनेसे पुते हुए सफेद हो रहे हैं और उनके झरोखोंमें बैठीहुई स्त्रियोंके मुखको देखनेसे मनुष्योंको शुक्ल पक्षकी आशंका होती है ॥१९॥ उस नगरीमें स्थान २ पर प्याऊ खुली हुई हैं और डग डग पर जिन मंदिर बने हुए हैं जिनमें भव्यजीव उत्सव कर रहे हैं। २०॥ नगरीकेचारोंओर ऊंचे कोट और समुद्रकी

खातिका (खाई) परम रमणीक मालुम पड़ती है । देश देशान्तरके मनुष्योंसे वहांकी शोभा अनोखी बन रही है ॥२१॥ यह नगरी उत्तमोत्तम रत्नोंके संग्रहको लेकर कहीं चली न जाय इसी विचारसे मानों समुद्रने खाईके छलसे उसे घेर रक्खा है ॥२२॥ वह द्वारावती रत्नजटित सुवर्णके महलोंसे बहुत ही सुन्दर दीखती है ॥२३॥ वहांकी दुकानोंमें रत्नोंके ढेरके ढेर लग रहे हैं जो प्रतिदिन आकाशमें इन्द्र धनुषकी सी आशंका उत्पन्न करते हैं ॥२४॥ वहांके राजमार्ग (आम सड़कें) मदोन्मत्त हाथियोंके आने जाने और उनके मदजलके झरनेसे कीचड़युक्त हो रहे हैं ॥२५॥ वहां राजा सदाकाल निवास करता था इस कारण वह पृथ्वीतल पर अद्वितीय राजधानी बन रही थी और द्रव्यादिकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको चिन्तामणिके तुल्य प्रिय जान पड़ती थी ॥२६॥ वहाँकी स्त्रियोंके रूपको देखकर देवाङ्गनाओं ने भी अपने रूपलावण्यका घमण्ड छोड़ दिया था ॥२७॥ विशेष कहां तक कहा जाय, द्वारिकापुरी ऐसी मनभावनी मालुम पड़ती थी मानों तीनलोकके सारभूत पदार्थों को संग्रह करके ही सृष्टिकर्ताने उसे रचा था ॥२८॥ इस द्वारिका नगरीमें जगत्प्रसिद्ध कृष्णनारायण नामका राजा राज्य करता था, जिसके समान कोई भी दाता, भोक्ता, विवेकी और ज्ञानविज्ञानभूषित न था वह वास्तवमें अपनी प्रजाकी पिताके समान रक्षा करता था ॥२९-३०॥ जिसने बाल्यावस्थामें ही कंस आदि अनेक शत्रुओंका विनाश किया था, गोवर्द्धन नामका पर्वत उठाकर उसके नीचे गायके बछड़ोंकी रक्षा की थी, यमुना नदीके भीतर काले नागको नाथा था, नागशय्या धनुष्य और शंख शत्रुके घरसे प्राप्त किये थे और जरासंधके भाई अपराजितको संग्राममें नष्ट किया था, उस कृष्णकी शूरवीरताको हम कहां तक वर्णन करें ? ॥३१-३३॥ जिसको समुद्राक्ष नामके देवने समुद्रको पीछे हटाकर बारह योजनकी मनोहर भूमि प्रदान की थी और जिसके बलको देखकर कुबेरने इन्द्रकी आज्ञासे द्वारिकापुरीकी रचना की थी । ३४-३५॥ जो लोकका सेवकके समान बंधु था, सेवकोंका मित्र था और शरणागतोंका रक्षक था ॥३६॥ जो याचकोंके

लिये कल्पवृक्षके समान, शत्रुओंकी वनिताओंके मुखचन्द्रको मलीन करनेके लिये राहुके समान और यादवोंके कुलरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिये सदाकाल स्थिर रहनेवाले चन्द्रमाके समान था पृथ्वीपर उस समय ऐसा कोई भी राजा न था जो उसके शुभ लक्षण और गुणोंकी समानता कर सके ॥३७–३८॥ कोटि शिलाके उठानेमें उसके पराक्रमको देखकर अन्य राजाओंने अपनी शूरताका घमण्ड छोड़दिया था ॥३९॥ उसे मनोरथसे भी अधिक दान करते हुए देखकर ही मानों गये हुए कल्पवृक्ष फिर लौटकर आजतक नहीं आये ॥४०॥ 'हे स्वामिन्! आप गुणोंहीका आदर क्यों करते हो' ऐसा कहकर और क्रोधित होकर ही मानों अवगुण उससे दूर भाग गये थे ॥४१॥ निर्मलता, सुवृत्तता (गुलाई) और प्रसन्नता (कान्ति) जो मुझमें है, वही चित्तकी वा बुद्धिकी निर्मलता सुवृत्तता (अर्थात् उत्तमोत्तम व्रतोंका पालन) और प्रसन्नता राजाने भी धारण कर ली है ऐसा जानकर ही मानों (ईर्षा भावसे) चन्द्रमा काला पड़ गया है ॥४२॥ दिग्विजयको सैन्यसहित जाते समय आकाशमें धूल उड़कर मँड रहती है वह ऐसी जान पड़ती है मानों विश्रामके लिये दूसरी भूमि बन गई हो ॥४३॥ जिसके निर्दोष महत्वको देखकर इन्द्रने भी अपने ऐश्वर्यादिकी प्रभुताका गर्व छोड़ दिया ॥४४॥ जो सज्जनोंके पालने में तत्पर, दुष्टोंके निग्रह करनेमें समर्थ, समुद्रके समान गंभीर और सुमेरुके समान स्थिर था ।४५। जिसने परस्त्रियोंको अपना वक्षस्थल, शत्रुओंको युद्धके समय पीठ और याचकोंको नकार (देनेको नहीं है ऐसा वचन) कभी नहीं दिया ॥४६॥ ऐसे अनेक गुणोंका धारक, चन्द्रके तुल्य मनोहर वह श्रीकृष्ण नारायण हरिवंशके राजाओंका शृङ्गार बनकर राज्य करता था ॥४७। उस राजाकी सत्यभामा नामकी पट्टरानी थी जो निर्मल चित्तकी धारण करनेवाली शीलवती स्त्रियोंमें शिरोमणि पुण्यवती लावण्यके सर्व लक्षणोंसे मण्डित हाव भाव संयुक्त और अपने रूपकी सम्पदासे देवांगनाओं के भी रूपको तिरस्कार करनेवाली थी ॥४८–४९॥ वह अपने पतिसे कभी निवेदन करती थी कि हे स्वामिन्! आप मुझे

लक्ष्मीकी उपमा क्यों देते हैं ? कारण लक्ष्मी तो चपला होती है परन्तु मैं चपला कदापि नहीं हूँ ॥५०॥ सत्यभामा विनयादि गुणोंकी धारण करनेवाली अपने भर्तारकी आज्ञानुसार चलनेवाली और दोनों कुलोंको विशुद्ध करनेवाली विद्याधरकी पुत्री थी ॥५१॥ चन्द्रमा कलंकसहित है और पखवाड़ेके पीछे क्षीण होता जाता है परन्तु रानी निष्कलंक और उदयरूप है अतएव उसके मुखको चन्द्रमाकी उपमा किस प्रकार दी जाय ? ॥५२॥ उसने अपनी वेणीसे मोरको, ललाट (मस्तक) द्वारा अष्टमीके चन्द्रमाको, नासिका द्वारा तोते की चोंचको और नेत्रद्वारा हिरणियोंको भी पराजित किया था। इसी कारण मैं समझता हूँ कि लज्जित होकर हिरणियोंने वनका शरण लिया था ॥५३–५४॥ उसने अपने दाँतोंसे कुन्दपुष्पकी कलियोंको, ओठोंसे बिंबाफलको (कुन्दरूके पके फलको) कण्ठसे शंखको और दोनों स्तनोंसे नारियलोंको जीत लिया था ॥५५॥ वह मालतीकी मालाके समान कोमल भुजाओंसे और शुभलक्षणोंवाली रेखाओंसे युक्त करकमलोंसे बहुत सुन्दर जान पड़ती थी ॥ ॥५६॥ उसने अपनी कटिद्वारा सिंहसमूहको, नितम्बोंसे पर्वतकी सघनताको और जंघाओंसे कदली वृक्ष (केले) के स्तम्भको जीत लिया था ऐसा मैं समझता हूँ ॥५७॥ उसके दोनों चरणकमल लाल मनोहर और सुकोमल तथा शुभलक्षणोंकी रेखाओं मे मण्डित थे ॥५८॥ उसका शरीर शिरीषके फूल के समान सुकुमार और चाल मदोन्मत्त हाथीके समान थी। वह शास्त्रार्थ करनेमें सरस्वतीके समान निपुण और चतुर थी ॥५९॥ उस सत्यभामा पट्टरानीके साथ श्रीकृष्ण महाराजने सब कंटकों से (द्वेषी राजाओंकी बाधासे) रहित और राज्य सम्पदासहित चिरकाल राज्य किया ॥६०॥ जिस प्रकार काले मेघको बिजली, मयूरको शिखा और समुद्रको उसकी बेला (ज्वार) शोभायमान करती है, उसी प्रकार राजाको रानीने शोभायमान किया ॥६१॥ जिसप्रकार महादेवको पार्वती और इन्द्रको इन्द्राणी प्रिय थी, उसी प्रकार श्रीकृष्णको सत्यभामा प्रिय हुई ॥ ६२ ॥

श्रीकृष्ण महाराज जिनधर्ममें सदा लवलीन थे, इन्द्रके समान जिनेन्द्रकी पूजा करते थे, सुपात्रोंको भली भांति दान देते थे और कुटुम्बी जनोंके सहित भोग भोगते थे ॥६३॥ इस तरह श्री-कृष्ण महाराज प्रजाका पालन करते हुए, जिनेन्द्रकथित शास्त्रों का श्रवण करते हुए, गुरुजनोंको नमन करते हुए, अपनी स्त्रियों के साथ प्रीतिपूर्वक क्रीड़ा करते हुए, बन्धुओंका सम्मान करते हुए, सम्यक्त्वको दृढ़तासे पालते हुए और अपने मनमें संसारको केलेके स्तम्भके समान निःसार समझते हुए सुखसागर में मग्न रहकर अपना समय व्यतीत करते थे। उनका एक बलभद्र नामका भाई पृथ्वीमें अतिशय विख्यात था, जिसकी आज्ञा हजारों यादव मानते थे। श्रीकृष्णनारायण सत्यभामाके साथ अनेक बगीचोंमें क्रीड़ा किया करते थे ॥६४-६७॥ उनके यहाँ मदोन्मत्त हाथियों, शीघ्रगामी घोड़ों तथा सेवकोंकी गणनाका कुछ पार न था ॥६८॥ सात तरहकी राज्य विभूतिसहित राज्य करते हुए सुख सागरमें मग्न होकर उन्होंने कितना समय व्यतीत कर दिया, यह न जाना गया ॥६६॥ उनके राज्यमें प्रजाको ईति, भीति आदिका भय था। वे प्रजाके हितके लिये राज्य करते थे ॥७०॥ इस-तरह श्रीकृष्णमहाराजने अपनी कुलकी भूमिको छोड़कर विदेशमें पूर्ण विनोदसे राजलक्ष्मी भोगी और अपने धन धान्यको इस तरह बढ़ाया जैसे चन्द्रमा समुद्रको बढ़ाता है। सो ठीक ही है "जिन्होंने पूर्व-भवमें पुण्यका संचय किया है, उन्हें कौनसी वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती ? ॥७१॥

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्य विरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें श्रीकृष्णकी राज्यविभूतिके वर्णनका द्वितीयसर्ग समाप्त हुआ

अथ तृतीयः सर्गः

एक समय राज्यविभूतिसे मंडित होकर कृष्ण महाराज अपने बन्धुवर्गोंकी एक बड़ी सभामें बिराजे थे, राज्य तथा देशसम्बन्धी वार्ता कर रहे थे और समस्त मंडलीको आनन्दित कर रहे थे। उस समयकी एक घटना सुननेके योग्य है ॥ १-२ ॥

आकाश मार्गसे एक तेजःपुंजको आते देखकर उस सभामें बैठे हुए समस्त मनुष्योंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥३॥ यह सूर्यमयी तेज है अथवा अग्निसंबंधी तेज है ? सूर्यका गमन तो तिरछा होता है और अग्निकी ज्वाला ऊपरको जाती है परन्तु यह तो नीचे उतरता चला आता है । तब यह क्या पदार्थ है ? इस तरह दर्शकोंके चित्तमें कौतूहल उपजा ॥४–५॥ जब वह आकाशसे कुछ नीचे उतरा, तब मालुम हुआ कि यह कोई मनुष्य सा है, जब कुछ निकट आया, तब निश्चय हुआ कि यथार्थमें मनुष्य है और जब बिलकुल पास आ गया तब सबको ज्ञान हुआ कि ये नारद हैं ? इस तरह क्रमसे मनुष्योंने नारद मुनिका निर्णय किया ॥६–७॥ ये नारद कोपीन पहने, जटा रखाये हुए हाथमें कुशाका आसन लिये हुए थे। ये कौतूहलके अभिलाषी, कलहप्रिय (लड़ाई झगड़े खड़े करनेके प्रेमी) जिनमार्गमें सदा लवलीन, अभिमानरूपी धनके धारक, पापवर्जित हास्य करनेमें आसक्त और जिनवंदना में सदा तत्पर थे ॥८–९॥

नारदमुनिको समीप आया जानकर सर्व सभाके सज्जन और श्रीकृष्ण महाराज प्रसन्न चित्तसे खड़े हो गये ॥१०॥ कृष्णजीने तत्काल सन्मुख जाकर उन्हें नमस्कार किया, चरण प्रक्षालन करके अर्घ चढ़ाया, अपने सिंहासनपर विराजमान किया और भक्ति भावसे इस तरह स्तवन किया, जैसा कि घरमें आने वाले अतिथिका करना चाहिये ॥ ११–१२ ॥

हे महाभाग्यवान मुनि ! आप तपके द्वारा पवित्र हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मेरा बड़ा सौभाग्य है जो आपके तुल्य महानुभावका आज मेरे घर शुभागमन हुआ है । आज मेरा घर आपके चरण-कमलके स्पर्शसे पवित्र हुआ है । जो भाग्यहीन होते हैं, उनके गृह पर सत्पुरुषोंका शुभागमन नहीं होता है ॥१३–१४॥ इससे जाना जाता है कि मैंने पूर्वभवमें महत् पुण्य संचय किया है, जिससे इष्ट पदार्थकी प्राप्ति हुई है । अब मुझे विश्वास होगया है कि पुण्योदयसे मेरे पाप भी विनाशको प्राप्त हो

जावेंगे ॥१५॥ हे नाथ ! वास्तवमें आपने मुझे भूत–भविष्यत्–वर्तमान कालमें योग्यता का पात्र बनाया है। यदि ऐसा न होता तो भला आपका मेरे घर पर पधारना कैसे होता ? ॥ १६ ॥ वे ही पृथ्वीतलपर विवेकी, प्रशंसापात्र और धन्यवाद देनेके योग्य हैं, जिनके गृहपर आपके समान महापुरुषोंका शुभागमन हो।१७। इसतरह कृष्णजीने नारदजीकी प्रशंसा और अपना सौभाग्य दर्शाया। फिर मुनिको आज्ञा पाकर वे नियमपूर्वक दूसरे सिंहासनपर बैठ गये ॥१८॥ नारदजी बोले, राजन् ! मेरी बात सुनो, निःसंदेह मैं यहाँ तुमसे मिलनेके वास्ते ही आया हूँ ॥१९॥ जो मैं आपके समान सत्पुरुषों के घर जानेसे ही वंचित रहूँ तो मेरे अवतारसे क्या प्रयोजन है ! ॥२०॥ जिनेन्द्र, बलदेव, नारायण आदि पुरुषोत्तम दर्शन करनेके योग्य होते हैं। यदि उनसे न मिलूं, तो मेरा जन्म ही निष्फल है ॥२१॥ थोड़ी देर इस तरह परस्पर प्रेमसंवाद होता रहा, तदनंतर नारदजीने कृष्णजीको देशदेशांतर के ताजे समाचार सुनाए और अनेक तीर्थोंसे लाई हुई आशिषें दी ॥२२॥

जिस समय नारद मुनि और महाराज कृष्णका इस तरह वार्तालाप हो रहा था, उसी समय श्रीनेमिनाथ स्वामी भी वहाँ पधारे। जिनेश्वरको आया जान कर समस्त सभाके मनुष्य और कृष्ण व नारद खड़े हो गये ॥२३–२४॥ नारदजीने भगवानको दूसरे सिंहासन पर बिठाया और उनकी भक्ति पूर्वक इसतरह स्तुति की ॥२५॥ "हे जिनेश्वर ! आप जयवत रहो ! हे पापके नाश करनेवाले आपकी सदा जय हो ! आप जरामरणके दुःखोंको नाश करते हो, आप तीन भुवनके नेत्र हो, आप भव्य कमलोंको सूर्य के समान प्रफुल्लित करनेवाले हो। आप कलावान और सदाकाल उदयस्वरूप अद्वितीय चंद्रमा हो ॥२६–२७॥ चारों प्रकारके देवोंसे सेवित हे जिनधीश ! आपको नमस्कार हो। हे कल्याणके कर्त्ता और गणधरादिके स्वामी ! आपको नमस्कार हो। हे नेमिनाथस्वामी ! आप काम-रूपी गजको सिंह समान हो, मोहरूपी सर्पको गरुड़ समान हो और जन्ममरणके नाश करनेवाले हो

अतएव आपको मेरा नमस्कार हो" ॥२८-२६॥ इस तरह स्तुति करके नेमिनाथस्वामीकी आज्ञासे नारद विनयपूर्वक कृष्णके एक सिंहासन पर बैठ गये पश्चात् सबने परस्पर कुशलप्रश्न किये और उनसे नेमिनाथ कृष्ण बलभद्रादि सबको प्रसन्नता हुई ॥३०-३१॥ पश्चात् और सब लोगोंने भी नारदको देखा। उनके दर्शनोंसे सर्व सामान्यको अथाह आनंद हुआ ॥ ३२ ॥

तत्पश्चात् नारदजी बोले, श्रीकृष्ण! मेरी बात ध्यानसे सुनो। मैं अनेक देशोंमेंपरिभ्रमण करता हुआ जिनवंदना किया करता हूँ। मुझे तुम्हारा सदाकाल स्मरण रहता है और मैं सदा यही चाहता रहता हूँ कि तुम सुखसे तिष्ठो। तुम्हारे सुखसे मुझे सुख होता है और तुम्हारे दुःखसे मुझे दुःख होता है। ३३-३५ इसलिये आज मैं तुम्हारे रनवासमें (अंतःपुरमें) जाकर तुम्हारी रानियोंको देखना चाहता हूँ। * कारण मुझे यह देखना है कि तुम्हारी रानियोंके समान अन्य स्त्रियें संसारमें हैं या नहीं? [तथा तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारे समान विनयवान और उदारचित्त हैं अथवा नहीं] ॥३६॥ नारदजी श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर आश्चर्यसहित अंतःपुर देखनेके मनोरथसे भीतर गये ॥३७॥ पहले श्रीकृष्णकी पट्ट-रानी सत्यभामाको ही देखना चाहिये, ऐसा विचारकर वे उसीके महल को गये ॥३८॥ जिस समय नारदजीने दूरसे उस सुनेत्रा सत्यभामाको देखा उस समय वह मज्जन करके कृष्णजीके सिंहासन पर बैठी हुई थी और सामने दर्पण रक्खे हुए अपनी मनोहर रूप सम्पदाको निरखती हुई वस्त्र आभूषण पहन रही थी और फिर फिरकर अपने विभूषित रूपको देखकर अपने भर्तारके सन्मानका स्मरण करती हुई अर्थात् इस शोभाको देखकर महाराज मेरा बहुत सन्मान करेंगे इस विचारमें मन ही मन हर्षित हो रही थी ॥३६-४१॥ उसका चित्त दर्पणमें ऐसा लग रहा था कि उसे भान भी नहीं हुआ कि नारद जी आये हैं। जब नारदजी धीरेसे उसकी पीठके पीछे जाकर खड़े हो गये और भस्मसे

---

* नारद सच्चे ब्रह्मचारी थे। उन पर इस विषय में सबका विश्वास था। इसलिये उन्हें रनवासादि में जानेकी मनाई नहीं थी।

और जटासे भयंकर दीखनेवाले उनके मुखका प्रतिविम्ब सत्यभामाने अपने मुखके समीप देखा, तब उसने अपना मुख तिरस्कारकी दृष्टि से बिगाड़ा और घमंडमें आकर यह विचारा कि मेरे चद्रमाके समान सुन्दर मुखके पास यह किस दुष्टकी विकराल छाया पड़ी है ? ४२–४५ ॥ पीठ पीछे खड़े हुए नारद मुनिने ज्यों ही सत्यभामाकी उक्त तिरस्कारको दृष्टि देखी त्यों ही उनका जी जल गया और चेहरा क्रोधसे लाल पड़ गया। सारा जगत जिसका सम्मान करता है उस नारदका आज सत्यभामाने इस तरह अपमान किया ? इससे दुःखी होकर वे पुनः विचारने लगे कि मुझ मन्दभाग्यमें ऐसी बुद्धि कहाँ से उपजी, जो मैं सत्यभामाके गृहपर आया। मैंने उचित नहीं किया। कारण "विचारवानोंको जिसका कुलशील (स्वभाव) नहीं मालूम हो उसके घर नहीं जाना चाहिये" ॥४६–४९॥ पश्चात् चित्तमें तरह २ के संकल्प विकल्प करते हुए और कारणका विचार करते हुए वे अंतःपुरसे बाहर निकल कर कैलाशगिरी पहुँचे ॥ ५० ॥

वहाँपर चिन्ताग्रसित नारदमुनि बैठ गये और विचारने लगे अब मैं क्या करूं ? कहाँ जाऊं ? मेरे दुःखकी उपशांति किस प्रकार हो ॥५१॥ मैं तो बिना बाजेके नाचनेवाला हूँ, फिर आज इस बाजेके शब्दोंके सुननेपर तो कहना ही क्या है ॥५२॥ जो कोई मुझे भक्तिसे मानता है, उसे मैं भी मानता हूँ और जो मुझपर क्रोध करता है, उसपर मैं भी कुपित होता हूँ। जो मूढ़बुद्धि मुझसे द्वेषता रखता है, उसका कभी भला नहीं हो सकता ।५३। मैं अढ़ाई द्वीपकी समस्त भूमिमें विचरता हूँ और सब मनुष्य मुझे नमस्कार करते हैं। परन्तु पापचित्तकी धारण करनेवाली सत्यभामाने मेरा तिरस्कार किया ॥५४॥ मैं अब इसका क्या करूं ? इसको किस प्रकार दुःसह दुःख हो ? किस प्रकार इसका मान गलित हो ? कब मैं इसे दुःखित देखूं ।५५॥ और किसके सन्मुख इसकी सुन्दरताका वर्णन करके उसके द्वारा इस पापिनीका हरण कराऊं ? ऐसा होगा तभी इसके अंतरंगमें दुःख व्यापेगा ॥५६॥ जब नारदने

इस उपाय पर गहरा विचार किया, तो उनके चित्तमें यह बात झलकी कि सत्यभामाके वियोगसे श्रीकृष्णको अत्यन्त दुःख होगा और यदि श्रीकृष्ण दुःखित होंगे तो मुझे भी दुःख होगा। क्योंकि श्रीकृष्ण नारायण मेरे परममित्र हैं। अतएव ऐसा करना ठीक नहीं है। कोई दूसरी ही तदबीर सोचनी चाहिये।५७–५८। हाँ! सत्यभामाको मायाविशेषसे किसी पुरुषमें आसक्त दिखादेना ही ठीक होगा। क्योंकि लोग प्राणोंसे भी प्यारी स्त्रीको यदि वह परपुरुषासक्त हो तो क्षणभरमें छोड़ देते हैं। सो संसार में इसके समान कोई अच्छा उपाय नहीं है। परन्तु उन्होंने इस उपायपर ज्यों २ विचार किया त्यों २ उनके हृदयमें अनेक विस्मित करनेवाले कारण उठे। ५९–६०। उन्होंने सोचा, सत्यभामा शीलवती स्त्रियोंमें अग्रेसर है, उज्ज्वल गुणोंकी धारण करनेवाली है और कृष्णकी प्राणवल्लभा है। श्रीकृष्ण जानते हैं कि वह विशुद्धचित्तकी धारक है, इस कारण वे मेरे कहनेपर प्रतीति नहीं करेंगे। उसकी सत्यभामापर वैसी ही कृपादृष्टि बनी रहेगी और मुझसे विरक्ती हो जावेगी।६१-६३। फिर कभी श्रीकृष्ण मेरी बातका विश्वास नहीं करेंगे, क्योंकि "चतुरपुरुष झूठ बोलनेवालोंको दूर ही छोड़ देते हैं"।६४। मेरी सत्यता उठ जायेगी और इस बातकी शल्य सदाकाल मेरे हृदयमें बैठी रहेगी। इसलिये मैं इसप्रकार दोनों तरफसे भ्रष्ट होना नहीं चाहता हूँ।६५। ऐसा दृढ़विचारकर नारदजी इस युक्तिको छोड़ कोई दूसरा ही उपाय चिन्तवन करने लगे।६६। बहुत देरतक विचारते २ उनके चित्तमें एक उत्तम उपाय उपजा। सो ठीक ही है "जब एकाग्रचित्तसे विचार किया जाता है, तब चित्तके दुःखको दूर करनेके लिये अंतःकरणमें ज्ञानकी ज्योति प्रकाशमान होती है"।६७। वह उपाय यह है कि स्त्रियोंको पृथ्वीतलपर सौतके जैसा दुःख न हुआ, न होगा, और न है। स्त्रियोंको जैसा सौतका दुःख होता है, विधवा अवस्थासे, दरिद्रतासे तथा अपुत्रदशासे भी नहीं होता।६८-६९। बारम्बार विचारनेपर भी उनकी दृष्टिमें सर्वोत्तम एक यही उपाय दीख पड़ा।७०। इसीका उन्होंने दृढ संकल्प कर लिया और अढाईद्वीपकी

सुन्दरभूमिमें कर्तव्यको चित्तमें धारणकर वे किसी सुन्दर कन्याकी खोजमें वहाँसे बाहिर निकले ।७१-७२।

प्रथम ही नारदजी विजयार्धपर गये। वहाँ उन्होंने विद्याधरोंकी राजधानी देखी। विद्याधरोंके राजाओंसे आदरपूर्वक मिले और उनकी आज्ञा लेकर रणवासमें गये। परन्तु वहाँ कोई भी ऐसी विवाहिता अविवाहिता स्त्री न देखी जो सुन्दरतामें सत्यभामाके पदके अँगूठेकी भी समानता कर सके। इसप्रकार विद्याधरोंकी दोनों श्रेणियोंको देखकर नारदजी बहुत ही खेद खिन्न हुए और विचारने लगे कि मैं क्या करूं ? कहाँ जाऊं और कहाँ मैं ऐसी सुन्दरकन्याको देखूं जो सत्यभामाके घमंडको चकचूर करनेमें समर्थ हो। जब ऐसी सुंदरी विद्याधरोंके महलोंमें ही नहीं है, तो भूतलपर कहाँ मिल सकती है। ७३-७७। इसप्रकार नारदजी चित्तमें बहुत ही व्याकुल हुये। पश्चात् भूतलके देशोंमें भी शोधकर चिन्ताको निवारण करना उन्होंने उचित समझा ।७८। सो उसीप्रकार वे भूलोकमें प्राप्त हुये और भूमिगोचरी राजाओंकी राजधानी भी उन्होंने देखडाली। परन्तु कहीं भी ऐसी कन्या देखनेमें नहीं आई, जो सत्यभामाकी समानता कर सके। इस कारण नारदमुनि अत्यन्त खेदखिन्न तथा उदास हुये और पृथ्वीतलपर परिभ्रमण करने लगे। ७९–८०।

एक दिन नारदजी चहुँओर देखते हुए आकाशमार्गसे जा रहे थे। दैववशात् वे कुण्डनपुर नामके एक रमणीक नगरमें प्राप्त हुए, जो लक्ष्मीका निवास तथा विद्यावती रूपवती गुणवती स्त्रियोंका स्थान था। इसनगरमें भीष्म नामका राजा राज्य करता था, जो राज्यसंबधी मुकुट आदि आभूषणोंसे शोभायमान था। यह राजा सर्वमान्य, सुप्रसिद्ध, शत्रुओंका जीतनेवाला, शरणागत प्राणियोंका रक्षक, रूप सौन्दर्यसे मंडित और शारीरिक शुभ लक्षणोंसे सुशोभित था ।८१–८४। इस राजाकी श्रीमती नामकी रानी थी, जो गुणवती, मायाचारवर्जित सुन्दरताकी खानि और जगद्विख्यात थी ।८५। नारदको सभाके भीतर आया जानकर राजा भीष्म सिंहासनसे उठा और विनयसहित उनके सन्मुख गया ।८६। उसने

चरणोंका प्रक्षालनकरके उन्हें सिंहासनपर तिष्ठाया और आप विनयसे प्रणामकरके दूसरे सिंहासनपर बैठ गया ।८७। नारदजीने स्नेहदृष्टिसे कुशल प्रश्न किये, फिर परस्पर वार्तालाप करतेसमय नारदजीने अपने सन्मुख बैठे हुए राजकुमारको देखा और विचार किया कि यदि इसकी बहिन होगी तो वह भी इसके समान सुन्दर होगी। यदि ऐसा हुआ, तो मेरेसब मनोरथ सफल होंगे । ऐसा विचारकर नारद-जीने भीष्मराजसे पूछा ।८८–९१। राजन् ! यह पुत्र जो साम्हने बैठा हुआ है, किसका है ? तब राजा ने अपनामुख नीचे झुकाकर कहा हे मुने ! आपके चरणकमलके प्रसादसे ये मेरा ही पुत्र है । नारद-जी बोले, बहुत ठीक ।९२-९३। परन्तु इसकी माताके और कितनी संतानें हैं ? तब राजाने उत्तर दिया, मेरी दो संतान हैं, एक तो यह पुत्र और दूसरी पुत्री । नारदजी बोले, राजन् ! तुम बड़े भाग्य शाली हो ।९४-९५। पर यह तो कहो कि उक्त पुत्री विवाहिता है या अविवाहिता (कुँवारी) ? राजा भीष्मने उत्तर दिया भगवन् ! वहकन्या शिशुपाल राजाको देनी कह दी है । यहसुनकर नारदको जैसा आनंद हुआ, वह कहा नहीं जाता ।९६-९७। कुछसमय तक दोनोंका प्रेमसंलाप होता रहा । पश्चात् नारदजी आस से उठे ।९८। और उन्होंने आदरपूर्वक राजासे कहा, मैं तुम्हारा रणवास (अंतःपुर) देखना चाहता हूँ । तब राजाने प्रसन्नतासे प्रत्युत्तर दिया, हे नाथ ! बहुत अच्छा, आप मेरे महलको पवित्र कीजिए । ९९-१००। तब नारदजी उसके सुन्दर रणवासमें गये । वहां भीष्मराजकी एक बाल-विधवा बहिन थी । उसने मुनिको आता देख बाह्यलक्षणोंसे जान लिया कि ये नारद हैं ।१०१-१०२। तब वह खड़ी होगई । उसने मुनिका यथोचित सत्कार करके सिंहासन सन्मुख रखके नम्रताके साथ कहा, महाराज आप इसदिव्य सिंहासनपर विराजें । जबनारदजी सिंहासनपर बैठ गये ।१०३-१०४। तब वह बोली–भो ! आपनेबड़ी कृपाकी जो यहाँ पधारे और अपने चरणाविंदसे इस स्थानको पवित्र किया । पुण्यहीन पुरुषोंको आपके समान नरोत्तमोंका समागम होना कठिन है ।१०५–१०६ । इस

प्रकार कहके उसने राजा भीष्मकी रानियोंको मुनिके चरणोंमें प्रणाम कराया। नारदजीने रानियोंको आशीर्वाद देकर प्रसन्न किया। कुछ देर तक पुण्यमयी वार्तालाप होता रहा। इतनेमें ही नारदजी ने अपने संमुख खड़ी हुई रुक्मिणीको देखकर भीष्मराजकी बहिनसे पूछा, यह सुंदर बालिका कौन है।१०७-१०६। "हे नाथ ! यह राजा भीष्मकी पुत्री है" ।११०। ऐसा कहकर उसने अपनी भतीजी (रुक्मिणी) से मुनिको प्रणाम कराया। तब नारदजीने उसे ऐसा आशीर्वाद दिया कि "पुत्री तू श्रीकृष्ण महाराजकी पट्टरानी हो" मुनिके वचनोंको सुनकर रुक्मिणी चकित हो रही।१११-११२। और आश्चर्यसे अपनी भुआकी (फूफीकी) तरफ झांकने लगी। भुआने मुनिके वचनोंकी समस्यामात्र सुनी थी, इस कारण उसने पूछा मुनिमहाराज ! (आपने यह क्या आशीर्वाद दिया ?) जिसका आपने अभी नाम लिया वे श्रीकृष्ण कौन हैं।११३-११४। उनका निवास कहाँ है कुल कैसा है उमर कितनी है ? रूप कैसा है ? ऋद्धि कैसी है और कुटुम्ब परिवार कैसा है ? सो आप कहो ।११५। तब नारदजीने जवाब दिया, हे बेटी ! मैं श्रीकृष्णका परिचय कराये देता हूँ, सुन ।११६।

सौराष्ट्र नामक देशमें एक द्वारिका नामकीनगरी है। उसमें श्रीकृष्ण महाराज राज्य करते हैं। वे हरिवंशके शृङ्गार, यादवोंके कुटुम्बके भूषण हैं, नव यौवनके धारक हैं, कामदेवके समान सुन्दर हैं, ऋद्धिवृद्धिकर सम्पन्न हैं, धनधान्यकर सहित हैं, सहस्रों यादववंशी उनके कुटुम्बी (स्वजन) हैं, शत्रुओं के वंशका उन्होंने विनाश किया है और अनेक राजा उनकी आज्ञाको पालन करते हैं। ११७-११६। जिन्होंने बाल्यावस्थामेंही गोवर्द्धन पर्वतको अपने हाथकी अंगुलीपर उठा लिया। दुष्टचित्ता पूतनाका तत्काल नाश किया, यमुना नदीके अगाध जलमें काले नागका मर्दन किया, संग्राममें कंसको तथा चाणूर मल्लको नष्ट किया, समुद्रके तीर पर पहुंचते ही समुद्ररक्षक देवोंको वशीभूत किया और अपने भुजबलसे द्वारिका पुरीको बसाया। तथा जिनके नेमिनाथ जिनेश्वर सरीखेभाई हैं उनकी अतिशययुक्त

धीरवीरताको हम और कहांतक वर्णन करें ? जिनकी धीरवीरता और ऐश्वर्यको बृहस्पति भी वर्णन नहीं कर सकता, उसे हे पुत्री ! मैं एक जिह्वासे कैसे वर्णन कर सकता हूँ ।१२०-१२४। नारदजीके वचन सुनकर भीष्मकी बहिन बोली रुक्मिणी तूने जगतके हिताकांची नारदजीके वचन सुने कि नहीं? तू यही सत्य समझ ।१२५-। तब रुक्मिणी बोली, भुवाजी ! मुनिके वाक्योंको तुमने किसप्रकार सत्य बताये, मुझे तो किसी दूसरेको ही देनी कर दी है। नारदजी योंहीकिसीका नाम ले रहे हैं। भुवाजी! आपने जानबूझकर मुनिके कहनेमें हांमें हाँ कैसे मिला दी, तब भुवाने उत्तर दिया, पुत्री ! मैं तुझे बताती हूँ, सुन ।१२६–२७।

पहले दिन अपने यहाँ एक अतिमुक्तक नामके बड़े ज्ञानवान और शास्त्रोंके पारगामी मुनि आहार लेनेके लिए आए थे। सो तेरे पिताने (भीष्मराजने) नवधाभक्तिसे मुनिको आहारदान दिया था। भोजन करनेके पीछे जब मुनिराज आसनपर विराजे और राजा भक्ति करनेके लिए उद्यत हुआ, उस समय तू भी सामने खड़ी हुई थी। तेरी अनुपम सुन्दरताको देखकर मुनिराजने तेरे पितासे पूछा, राजन् ! यह श्रेष्ठ पुत्री किसकी है। तबराजाने जबाब दिया, महाराज यह मेरी पुत्री है। पीछे तेरे पिताने विनयसहित प्रश्न किया ।१२८-१३२। स्वामिन् ! यह पुत्री किसकी प्राणवल्लभा होगी, जिस को देखकर मैं सुखी और कृतकृत्य बनूंगा। राजाके वचनोंको सुनकर योगीश्वरने उत्तर दिया, भाग्यवान् राजन्, जो तुम्हारी पुत्रीका पति होनहार है, उसका वृत्तांत सुनो ॥ जो यदुवंशियोंके कुलरूपी आकाश को प्रकाशमान करनेमें सूर्यके समान है, जो धरातल उपेन्द्र या नारायणके नामसेविख्यात है, जिसकी गुण सम्पदा सुप्रसिद्ध है। और जो दैत्योंके समूहका नष्ट करनेवाला है, वह तेरी लड़कीका पति होगा। मैंने जो कुछ कहा है वास्तवमें सत्य समझना। इसप्रकार कहकर अतिमुक्तक मुनिराज वनमें तपश्चरण करने योग्य स्थान को चले गये। उनके उपर्युक्त वाक्य मैंने निकट होकर सने थे। १३३–१३७।

मुनियोंके वाक्य सत्य हैं, उनका कथन कभी असत्य नहीं हो सकता, लोकमें भी प्रसिद्ध है कि मुनियों का कहा हुआ अन्यथा नहीं होता। तब रुक्मिणी बोली, ये बात कैसे बन सकती है? कारण मुझे तो शिशुपालको देनी कर दी है। तब भुआने उत्तर दिया, बेटी तू चित्तमें वृथा ही क्यों खेदखिन्न हो रही है, मेरा कहा सुन! तेरे माता पिताने तुझे शिशुपालको देनी नहीं की है, किन्तु यह तेरे रूप्यकुमार भाईकी करतूत है, जो कारणवशात् वह गया था और सन्मानको पाकर संतुष्ट हो देनी कर आया है।३८–४१।

इसतरह वृत्तांतसुनकर राजाश्रेणिकने गणधरस्वामीसे प्रश्न किया कि शिशुपालके पास रूप्यकुमार किस कारणसे गया था? तब गौतमस्वामी बोले, श्रेणिक! मैं इसका वृत्तांत सुनाता हूँ, ध्यान से सुनो। एक दिन जब शिशुपाल शत्रुओंपर चढ़ाई करनेको तैयार हुआ, तब उसने राजा भीष्मके पास एक दूत भेजा और उससे यह संदेशा कहलाया कि आपको अपनी सेनासहित मेरे पास बहुत शीघ्र आना चाहिये। दूतकेवचन सुनकर राजा भीष्म बहुत शीघ्र कवच (जिरहबख्तर) पहनी हुई और शस्त्र धारण की हुई अपनी सेनाको इकट्ठी करके रवाना होनेको उद्यत हुआ। ४२–४५। चलते समय वह अपने रूप्यकुमार पुत्रको राज्यसत्ता सौंपने लगा, कारण यह बुद्धिवानोंकी नीति है।४६। तब अपने पिताको इस कार्यमें उद्यत हुआ देख रूप्यकुमार बोला, पिताजी! ये आप क्या करते हो? इतना कहतेही वह यौवनशाली कुमार स्वयं सेनासहित शिशुपालके पास जानेको तैयार होगया। तब राजाभीष्मने कहा, बेटा! तुम्हें कुलपरम्परासे प्राप्त होने और शत्रुओंकी बाधासे रहित ऐसे इस राज्य की रक्षा करनी उचित है। मुझे सेनासहित जानेदो। तब कुमारने अपना सिर झुका लिया और कहा पिताजी! मुझपुत्रके विद्यमान होनेपर भी आप किस तरह जा सकते हैं? कारण पुत्रका यही धर्म है कि अपने मातापिताको सुखी रक्खे। अन्यथा शोक संतापके करनेवाले बहुतसे पुत्रोंकी उत्पत्तिसे क्या

लाभ है । पिताका एकभी भक्त सुपुत्र हो, तो वही बस है । ४६-५१। तबभीष्मराजने कहा बेटा ! तू अभी सुकुमार है, तुझे युद्धकर्मका अभी अभ्यास नहीं है, इसकारण तुझे शत्रु के सम्मुखजाना उचित नहीं है । तबकुमारने प्रत्युत्तर दिया, पिताजी ! पृथ्वीतलपर पुरुषके शक्तिशालीपने की ही प्रशंसाकी जाती । देखिये–गजराज कितना स्थूल होता है और सिंह कितना पतला होता है, परन्तु सिंह की गर्जनामात्रसे सैंकड़ों हस्ती क्षणमात्रमें भाग जाते हैं, ।५२-५४। अतएव यही कहना चाहिये कि "शूरवीरतासे सर्व कार्य सिद्धहोते हैं, इसमें अवस्थाकी कोई अपेक्षा नहीं है ।" आपके पुण्यके प्रभावसे मैं क्षणमात्रमें शत्रु का पराजय करूंगा ।५५। पुत्रके वचनोंको सुनकर पिताको सन्तोष हुआ और उसने अनेक शकुनोंकी प्रेरणासे अपने पुत्रको सेनाके मध्यमें भेजकर उसके चित्तको प्रफुल्लित किया ।५६। जबरूप्यकुमार सेनासहित जाकर चन्देरीकेराजा शिशुपालसे मिला, तबउसने कुमारका बहुतही सम्मान किया । पश्चात् रूप्यकुमार वा उसकी सेनासहित राजा शिशुपाल युद्धको रवाना हुआ, संग्राममें उसने शत्रु का पराजय किया । और विजयसामग्रीको साथमें लेकर चेदिपति अपने घर लौट आया ।५७-५८। रूप्यकुमारकी सेनाके बलसेही शिशुपालने संग्राममें जयप्राप्त किया इसकारण रूप्यकुमार उसका प्रेमपात्र बन गया ।५९। चेदिपतिने (चंदेरीके राजा शिशुपालने) उसका अत्यन्तआदर सन्मानकिया, जिससे कुमारने बहुत ही सन्तुष्ट होकर अपनी रुक्मिणी बहिन उसे देनी कह दी । यह सुनते ही चेदिपतिको अपार आनन्द हुआ और संतुष्ट होकर उनने रूप्यकुमारको वस्त्रआभूषण असवारीसहित विदा कर दिया । कुमारने अपने घर आकर मातापितादिसे सब वृत्तान्त निवेदन किया, जिससे सबको संतोष हुआ । इस तरह रूप्यकुमारका राजा शिशुपालके पास जाने आदिका वृत्तांत है ।६०–६३।

तदनन्तर भुआने रुक्मिणीसे कहा, बेटी ! अबतुझे मालुमहुआ कि मातापिताने नहीं, किंतु तेरे भाईने तुझे चेदिराजको देनीकी है ।६४। संसारमें मातापिताकी दी हुई कन्या दूसरेकी कही जाती है।

इसलिए तू चिंता मतकर, भवितव्य अच्छा ही होगा ।६५। मैं ऐसा उपाय रचूंगी, जिससे श्रीकृष्णजी निःसन्देह तेरे भरतार होंगे ।६६। भुआके वचनोंको सुनकर रुक्मिणी दिलमें फूली नहीं समाई । कृष्णजीके होनहार समागमको सुनकर उसको बड़ा संतोष हुआ ।६७। तदनन्तर बारम्बार अनेक प्रकार से कृष्णनारायणकी प्रशंसा करके और उसे रुक्मिणीके दिलमें ठँसाके नारदजी वहाँ से दूसरी जगह रवाना हो गये ।६८।

कुण्डनपुरसे चलकर नारदजी कैलाशशिखर पर पहुँचे । वहाँ बैठकर उन्होंने रुक्मिणीके रूपका एक चित्रपट बनाया । वह जब बिलकुल ठीक बनगया, तब नारदजी बड़ी प्रसन्नतासे उसे साथमें लेकर शीघ्रतासे द्वारिकाको चले ।६९-७१। श्रीकृष्णजी सभामें विराजे हुए थे, वहींसे उन्होंने आकाश मार्ग से आते हुए नारदजीको देखा । जब मुनिको निकट आते देखा, तब कृष्णजीने खड़े होकर तथा आगे बढ़कर उनका सत्कार किया और अपना आसन दिया । नारदजी आशीर्वादसे राजाको सन्तोषित करके सिंहासन पर बैठ गये कृष्णजी भी दूसरे आसन पर बैठ गये, धर्म कथा होने लगी । पश्चात् कृष्णजी और नारदजीने जिनका कि चित्त प्रेमसे भरा हुआ था, परस्पर कुशल प्रश्नादि वार्तालाप किया ।७२-७५। अवसर देखकर श्रीकृष्ण बोले महाराज मैं आपसे एक दिलकी बात पूछता हूँ । आप अढ़ाई द्वीपमें सर्वत्र परिभ्रमण करते हैं, इसलिये यदि आपने कहीं कोई विनोदकी बात सुनी हो अथवा कोई चमत्कार देखा हो, तो मुझे सुनाइये । और यदि मेरे लायक कोई नवीन वस्तु लाये हो, तो वह भी दिखाओ । क्योंकि आप मेरे परम मित्र हैं । आपके समान मेरा और कोई मित्र नहीं है ।७६-७८। कृष्णके वाक्योंको सुनकर नारदजी प्रसन्न हुए, मुखसे कुछ न बोले केवल अपने हाथको पसारकर उन्होंने कृष्णके सामने रुक्मिणीके स्वरूपका चित्रपट रख दिया ।७९। कृष्णजीने ज्योंही चित्रपट पर अपनी दृष्टि डाली, त्यों ही वे चकित हो गये और विचारने लगे कि सचमुचमें इस सुन्दरीने जिसकी छवि चित्रपट

पर खिंची हुई है, मेरे चित्तको चुरा लिया है। वे बड़ी देरतक टकटकी लगाकर उस मनोहर रूपको देखते रहे और विचारने लगे कि नारदको ऐसी सुन्दरी कहाँ देखनेको मिली, जिसका यह चित्राम खींच कर उतावलीसे लेआये। ८०-८२। ब्रह्माने ऐसी रूपवतीको कैसे बनाया? जगतमें कहीं भी अभी ऐसी सुन्दरी नहीं है—न पहले कभी हुई है और न आगे होवेगी। ८३। जिसने अपनी चोटीसे (वेणीसे) काले नागोंकी कृष्णता वा नरमाईको, बोलीसे अमृतको, ललाटसे अष्टमीके चन्द्रमाको मुखसे चन्द्रमाको, नासिकासे सूवेकी चोंचको, नेत्रोंसे मृगीको, भौहोंसे कामदेवके धनुषको, कंठसे शंखको, स्वर से कोकिलाको, स्तनोंसे नारियलको, भुजासे पुष्पोंकी मालाको और मनोहर उदर सहित कमरसे इन्द्र धनुषको जीता है और जिसकी गंभीर नाभि लावण्यजलकी वापिकासी जान पड़ती है। ८४–८७। जिसकी जांघ और पुष्ट नितम्ब कदलीस्तंभके समान हैं और जिसके चरण गुलाईदार जांघोंसे बड़े मनोहर दीख पड़ते हैं।८८। जिसने अपनी हथेली और चरणके तलुओंसे कमलोंको परास्तकिया है, जिसके शरीरका रंग ताये हुये सुवर्णके समान है, जिसने अपनी कांतिसे चन्द्रमाका, तेजसे सूर्यका और गंभीरता से समुद्रका पराजय किया, जो शुभ लक्षणोंकी धारण करने वाली और सर्वांग सुन्दर है। ।८९–९०। यह कौन है कहाँसे आई है किसप्रकार और किस हेतुसे इसकी यह छवि खींची गई है। नारदने इसे कैसे देखा और किस तरह उसकी मनोहर आकृतिको पटपर उतारा।९१। यह इन्द्रानी है कि कामदेवकी पत्नी रति है। चन्द्रमाकी प्राण प्यारी है कि सूर्यकी कान्ता है। कीर्तिकी मूर्ति है कि साक्षात् सरस्वतीका ही रूप है। यक्षिणी है कि कोई किन्नरी है। यथार्थमें यह रूप किसका है। ।९२-९३। इसतरह अचम्भेमें पड़कर श्रीकृष्णने अनेक संकल्प विकल्प किये और चिरकालतक वह उस चित्रपटको एक ध्यानसे देखते रहे। पश्चात् विचार किया कि मैं इतनी उलझनमें क्यों पड़ा हुआ हूँ, नारदजीसे ही चित्रपटपर खिंची हुई सुन्दरीका वृत्तान्त क्यों न पूछ लूं। हाथमें पहने हुए कंकण

को देखनेके लिए दर्पणकी क्या आवश्यकता है। "करकंघनको आरसी क्या ?" इसप्रकार श्रीकृष्णने बड़ी देर तक विचारसागरमें गोते लगाए। पीछे जिन २ बातोंका दिलमें सन्देह पैठ रहा था, वे सब विनयपूर्वक नारदजीसे पूछीं कि हे स्वामिन् ! ये किसका रूप है ? आपने इस मोहनी सूरतको कहाँ देख कर खींची। इसका पूरा २ परिचय मुझे कृपा करके कराइये।६४-६७। कारण चित्राममें खिंची हुई सुन्दरीको देखकर मेरा मनमानों कीलित होगया है, वशीभूत व मोहित करलिया गया है। इसको देखते ही एकदम मेरा चित्त चलायमान हो गया है।६८। कृष्णजीकी बातको सुनकर नारदजी बड़े प्रसन्न हुये और बोले राजन् ! अपने दिलको दुःखी मत करो। यह किसी देवांगना, गांधर्वी वा विद्याधरीका रूप नहीं है, किंतु एक भूमिगोचरी मनुष्यनीका ही रूप है। मैं इसका वृत्तान्त कहता हूं, सुनो।१९९।

एक कुंडनपुर नामका नगर है, जिसमें भीष्म नामका राजा राज्य करता है। उसकी जगद्विख्यात सर्व रानियोंमें श्रेष्ठ श्रीमती नामकी प्रिया है और श्रीमती रानीकी एक रुक्मिणी नामक पुत्री है उसीका स्वरूप इस चित्रपटपर खिंचा हुआ है। रुक्मिणी पृथ्वीपर शोभायमान शुभलक्षणोंवा गुणोंकी निधि ही है। २००–२०१। मैंने लवणसमुद्र तककी भूमि देख डाली। विद्याधरों वा भूमिगोचरी राजाओंकी राजधानी वा महलोंमें भी मैं घूम आया, परन्तु मेरी दृष्टिमें कोई भी ऐसीस्त्री न आई जो सुन्दरतामें रुक्मिणीके अंगूठेकी भी समानता कर सके। पृथ्वीतलपर ऐसी मनोहर सुन्दरी कोई भी नहीं है।२०२-२०३। रुक्मिणी जगत्प्रसिद्ध है। नवयौवन सम्पन्न है और सुंदरतारूपी जलकी बावड़ी है। आपने उसका नाम सुना ही होगा।४। उसे बनाकर ही ब्रह्माने अपनेको कृत्यकृत्य समझा है। इसके पहले स्त्रियोंकी रचनासे उसका दिल नहीं भरा था।५। परन्तु जब तक वह गुणवती युवती तुम्हारे घर विवाहित होकर न आ जावे तब तक यह बात तुम गुप्त ही रखना।३। संसारमें तुम्हारा अवतार लेना तभी सार्थक होगा, जब जगद्विख्यात रुक्मिणी तुम्हारे साथ रमण करेगी। ७। इस

प्रकार अनेकवाक्योंसे नारदजीने कृष्णके चित्तको मोहितकिया तब। कृष्णजीने जी खोलकर पूछा यह बाला विवाहिता है या कुँवारी? सब बातका खुलासा हाल आप सुनाओ। तब नारदजीने जवाब दिया यह श्रेष्ठ सुन्दरी कुँवारी ही है।८-९। परन्तु बन्धुजनादिके बिना पूछे इसे उसके भाईने राजा शिशुपालको देनी कर दी है। कारण जब कुमार उसके घर गया था, तब वह उसके आदर सन्मानसे संतुष्ट हो गया था।१०-११। इसलिये जबतक तुम संग्राममें चंदेरीके राजा शिशुपालको नष्ट न करोगे, तब तक रुक्मिणी न मिल सकेगी। कारण शिशुपाल बलवान है, उसके जीतेजी आपका सामर्थ्य नहीं है कि रुक्मिणी को पा सको।१२। ऐसा सुनतेही कृष्णजीका मुख कुछ कृष्ण (उदास) पड़ गया। तब नारदजी बोले, कृष्णजी तुम अपने चित्तको कातर (भयभीत) मत करो। रुक्मिणी तुम्हें बिना कठिनाईके मिल सकेगी।१३। कारण "शूरवीर पुरुषोंको सब कुछ मिल सकता है, डरपोकोंको कुछ नहीं मिलता"। इसलिए कायरताको छोड़ दो और धीरज धारण करो।१४। हे कृष्ण! जिस सुंदरीकी छवि पर तुम मोहित हो गये हो, उसे मैंने उसीके पिताके घर (माता पिताके पास) देखा है। वह अभीसे तुम्हारे घर आ गई, ऐसा तुम दिलमें निश्चय कर लो।१५। तुम वृथा ही चित्त दुःखी न करो। कारण कार्य अकार्यका विचार करनेवाले "उद्योगी पुरुषोंकोही सुख मिलता है, आलसी पुरुषों को कभी सुख प्राप्त नहीं होता"।१६। यदि तुम्हारी अभिलाषा स्त्रियोंमें रमण करनेकी हो तो जगत्-प्रसिद्ध सुन्दरी रुक्मिणीको प्राप्तकरो।१७। जिस प्रकार द्विजपति, औषधिपति तथा कलावंत चन्द्रमा को पूर्णमासीके सिवाय दूसरीरात्रि शोभाके लिये नहीं होती, उसीतरह जब तक तुम्हारे घर वह सुन्दरी न आ जाय, तब तक तुम्हारी सैकड़ों हजारों वा लाखों रानियें सब व्यर्थ हैं।१८-१९। ऐसे तरह२ के वाक्योंसे श्रीकृष्णको मोहित करके नारदजी प्रसन्नचित्तसे अपने यथायोग्य स्थानको चलेगये। इनके जाते ही कृष्णजीको मूर्छा आ गई, परन्तु बन्धुजनोंने शीतोपचार किया जिससे वे सचेत हो गये।

परंतु चिन्तातुर होने लगे कि किस तरहसे वह सुन्दरी मुझे प्राप्त हो। मैं यह वार्ता किससे कहूँ ? इस प्रकार सचिन्त दशाका अवलंबन करके कृष्णजी अपने घर ही रहने लगे। उन्हें दिनको न भूख लगे और न रात्रिको नींद आवे। जिस समय कृष्णनारायण रुक्मिणिके लिये ऐसे चिताग्रसित हो रहे थे, उसी समय रुक्मिणीके यहाँ एक दूसरी घटना हुई, वह सुननेके योग्य है। २०–२४।

बुद्धिवान् राजा शिशुपालने मुझे (रुक्मिणिको) विवाहनेके लिये लग्नपत्र शुधवाया है ऐसा सुनते ही रुक्मिणिको बड़ी चिंता व्यापी। उसने अपना दुःख अपनी भुआसे निवेदन किया कि यदि श्री कृष्णका मुझसे वियोग हुआ अर्थात् यदि मेरा उनसे संबंध न हुआ, तो समझ रखना, मैं जीवित नहीं रहूंगी। तब भुआ बोली बेटी ! तू वृथा ही दुःखी क्यों हो रही है ? जैसी तेरी इच्छा होगी, मैं उसे सफल करनेका उपाय करूँगी। तब भुआ भतीजीने अपने "कुशल" नामक दूतको बुलाया, जो सर्व कलामें कुशल (निपुण) था और यौवन अवस्था सम्पन्न था उससे सब रहस्य की बात कहकर तथा एक उत्तमतासे लिखा हुआ प्रेमसूचक वाक्योंसे भरा हुआ पत्र देकर श्रीकृष्णके पास जाने के लिये रवाना कर दिया। ज्यों ही दूत कुंडनपुरसे द्वारिकाको रवाना हुआ, त्यों ही उसे अनेक शुभ शकुन हुये, जिनसे उसका चित्त रंजायमान हुआ। २५–३०।

"कुशल" दूत रमणीक द्वारिका पहुँचा। वह उसे देखते ही चकित हो गया। विचारने लगा कि, यह इन्द्रकी पुरी अमरावती पृथ्वीपर कैसे आ गई ? ।२३१। फिर बड़े आश्चर्यसे चहुँ ओर निरखता हुआ दूत प्रसन्न चित्तसे राजमार्गसे आगे बढ़ा।२३२। राजद्वारपर पहुँचकर उसने द्वारपालसे कहा कि, श्रीकृष्ण महाराजसे मेरे आनेका समाचार कहो ।२३३। द्वारपालने पूछा, तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो और किसने तुम्हें भेजा है तब दूतने सरसतासे उत्तर दिया-मैं विदेशसे आया हूँ और विदेशी राजाने मुझे भेजा है। तुम अपने स्वामी श्रीकृष्णके पास जाओ और उनसे ऐसा कहो कि "मैं आपके

चित्तको प्रसन्न करनेवाले एक प्रेमसंबंधी कार्यके लिये आया हूँ" दूतके वचन सुनकर द्वारपाल राजाके पास गया ।२३४-२३६। उसने नमस्कार किया और दूतसम्बन्धी वार्ता कह सुनाई । कृष्णजीने आज्ञा दी कि उसे सन्मानपूर्वक बहुत जल्दी मेरे पास ले आओ ।२३७-२३८। आज्ञानुसार द्वारपाल दूतको सभाके भीतर ले आया । श्रीकृष्णकी सभाके दर्शन करके दूतका हृदय आनंदसे भर गया । श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके वह बतलाये हुए स्थान गया व श्रीकृष्णजीको कुछ संकेत किया । जिसे समझकर उन्होंने प्रतिहारीको इशारेसे आज्ञा दी और उसने सभाको विसर्जन कर दी ।२३९-२४१। पश्चात् श्रीकृष्णने दूतसे आनेका कारण पूछा, तब वह विनयपूर्वक बोला, स्वामिन् ! आपसे कुछ निवेदन करना है, जिसके श्रवणमात्रसे आपके हृदयमें प्रमोद उत्पन्न होगा । कृष्णजीको दूतके वचनोंसे संतोष हुआ । इस कारण वे अपने भ्राता बलदेवसहित दूतको लेकर महलमें गये और एकान्त स्थानमें जा विराजे । दूतभी यथोचित स्थानपर बैठ गया ।२४२-२४५। श्रीकृष्णजीने दूतसे पुनः वृत्तान्त पूछा, तब बोला "नाथ ! मेरे वाक्य प्रेमके कारणभूत और सत्पुरुषोंके माननीय हैं । उन्हें सारभूत और यथार्थ समझकर ध्यानसे सुनें । ४६-४७ ।

रमणीक कुण्डनपुर नगरमें सुप्रसिद्ध भीष्म नामका राजा राज्य करता है, जो अनेक राजाओं द्वारा सेवित और शत्रुसमूहको जीतनेवाला है ।२४८। उसकी श्रीमती नामकी प्राणप्रिया है, जो जगद्विख्यात और मनोहर स्वरूपकी धारण करनेवाली है । जिसका महाशीलवान व गुणवान रूप्यकुमार नामका पुत्र है । जिसप्रकार इन्द्रका पुत्र जयन्त और महादेवका पुत्र षडानन शूरवीर, धीर और मानी है, उसीप्रकार भीष्मराजका रूप्यकुमार भी है ।४९-५०। इस कुमारकी जो छोटी बहिन है, वह रूपवती गुणवती और नवयौवनसम्पन्न है । उसका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर है ।५१। जिसप्रकार समुद्रसे लक्ष्मी, पर्वतसे पार्वती, ब्रह्माजीसे सरस्वती उत्पन्न हुई और जगतमें विख्यात हुई हैं, उसीप्रकार श्री

भीष्मकी पुत्री रुक्मिणी जगतमें प्रसिद्ध है ।५२-५३। उसे रूप्यकुमारने संग्रामसे लौटकर सन्मानसे सन्तुष्ट होकर शिशुपाल राजाको देनी करदी है ।५४। प्रथम ही गुरुजनों व बन्धुओंसे बिना पूछे रूप्यकुमारने चेदिराजको रुक्मिणी देनेका बचन दे दिया था पश्चात् जब वह घर आया और उसने अपने कुटुम्बियोंसे कहा, तब उन सबने भी उसने जो कुछ किया स्वीकार कर लिया। कारण शिशुपाल योग्य है और योग्य पुरुष किसको प्यारा नहीं है ।५५-५६। आंगनमें इकट्ठे होकर समस्त स्वजन बन्धुओंने रुमक्णी और शिशुपालकी लग्नतिथि निश्चय की है । और माघशुक्ला अष्टमीके दोषवर्जित शुभलग्नमें उनका विवाह होना नियत हो गया है ।५७-५८। रात्रि व्यतीत होनेपर दूसरे ही दिन प्रातःकाल नारदजी वहां पधारे । व प्रथम ही राजा भीष्मसे मिले । पश्चात् रणवासमें गये, जहाँ उन्हें पहले ही राजाकी विधवा बहिन मिली, जो बड़ी चतुर और रणवासमें सन्मान पानेवाली है तथा जिसका भीष्मराजभी सत्कार करता है । विधवाने राज्यमान नारदजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके आसन दिया। पश्चात् उसीने राजाकी रानियोंसे नारदजीके पांव पड़वाये ।५९-६१। जब नारदजी आसन पर विराजमान हुए और उन्होंने कुशल क्षेम पूछा, तब रुक्मिणि साम्हने खड़ी हुई थी । उसे देखकर मुनिने भीष्मराजकी बहिनसे पूछा, यह सन्मुख खड़ी हुई बाला कौन है और किसकी पुत्री है।६२-६३। तब उसने उत्तर दिया, नाथ ! यह राजा भीष्मकी पुत्री है और रूप्यकुमारकी छोटी बहिन है ।६४। ऐसा कहकर विधवाने रुक्मिणीको मुनिके चरणोंमें नमाया, तब मुनिने उसे इसप्रकार उत्तम आशीर्वाद दिया कि "जो मुरारी (श्रीकृष्णनारायण) शत्रुसमूहको जीतनेवाला, द्वारिका नगरीका स्वामी और हरिवंशका शृंगार है, पुण्यके उदयसे पुत्री ! तू उसीकी पट्टरानी हो ।" नारदके वचनोंको सुनकर रुक्मिणीको बड़ा आश्चर्य हुआ ।६५-६७। नारदजी तो वहाँसे दूसरी जगह रवाना हो गये, परन्तु आपके स्नेह-वश रुक्मिणीकी कैसी दशा हो रही है सो आप सुनिये ।६८। उसको न कुछ अन्न रुचता है, न वह

पानी पीना चाहती है और न रात्रिको (चिंतातुर होनेके कारणसे) उसे नींद आती है।६९। चन्द्रमा की चांदनी उसे विषके समान लगती है और शरीरमें लेपन किया हुआ चन्दन अग्निके समान दाह करता है। उसका मन आपमें ही आसक्त हो रहा है। इस कारण बारम्बार वह ठन्डी श्वास लेती है।७०। आपके ही नामकी गणनासे अर्थात् आपके ही नामकी माला फेरते रहनेसे वह जी रही है, इसमें कुछ संदेह नहीं है। ऐसा जानकर हे नाथ ! आप यथोचित प्रयत्न कीजिये, जो परम सुखका कर्ता हो। आप मेरे वचन यथार्थ और सारगर्भित समझें और कर्तव्यको चित्तमें ठानकर यथोचित उपाय करें। यही मेरी प्रार्थना है। ७१–७२।

श्रीकृष्ण और बलदेवजीने कुशल दूतके वचन ध्यानपूर्वक सुने। पश्चात् प्रेमके अत्यन्त वशीभूत होकर कृष्णजीने दूतसे पूछा।७३। वहाँ जाकर कहाँ तो ठहरना होगा ? मेरा उसके पास कैसे जाना होगा ? वह मुझे कैसे मिलेगी ? ये सब वृत्तान्त तुम मुझसे कहो।७४। तब दूतने विनयपूर्वक निवेदन किया, महाराज ! आप शीघ्र ही कुंड़नपुरको पधारें। वहाँ एक "प्रमद" नामका बगीचा है, जो अनेक प्रकारके वृक्ष लतादिकोंसे भरपूर है। उसमें एक अशोक नामका वृक्ष है, जिसके तले एक कामदेवकी मूर्ति है। वह रुक्मिणीने आपको प्राप्त करनेकी अभिलाषासे स्थापित की है। उस अशोक वृक्षपर मनोहर पताका लग रही हैं सो उसी वृक्षके पास हे नाथ ! आप पधारें और पासके वृक्षसमूहकी ओटमें छुपकर बैठ जावें। कारण निःसन्देह रुक्मिणी वहाँ कामदेवकी पूजनको आवेगी। वह कुमारी पूजाके छलसे अपनी सखियोंको दूरही छोड़कर अकेली वहाँ आवेगी और आपसे मिलेगी। इसलिये अपना हित जानकर आपको वहाँ अवश्य पधारना चाहिये। यह आप निश्चय समझिये कि आपको छोड़कर वह बाला दूसरा पति न करेगी। क्या सिंहनी कभी श्यालके (सोमायुके) बच्चेसे रमण करती है ? कभी नहीं। उसीप्रकार क्या वह आपके सिवाय किसी दूसरेको अंगीकार कर सकती है ?

कदापि नहीं, इसी बात का उसने व्रत धारण कर लिया है। वह सुंदरी आपके ही लिए उस बगीचेमें आवेगी व आपको चहुँओर देखेगी। कदाचित् उस बालाको आपके दर्शन नहीं होंगे, तो वहीं अपने प्राण त्याग देगी।७५–८३। जिससे आपको स्त्रीहत्या का पाप लगेगा। इस कार्यमें आप ढील न करें, शीघ्र ही प्रमदवनमें पधारें, यही प्रार्थना है। ८४। इसप्रकार कहके, श्रीकृष्णको प्रणाम करके दूत वहां से रवाना होनेको तैय्यार हुआ। श्रीकृष्णने उसे वस्त्राभूषण देकर विदा किया। ८५।

दूत के चले जाने पर श्रीकृष्ण (जिनका चित्त रुक्मिणीमें ही लगा हुआ था) और बलदेवजी युक्ति सोचने लगे। ८६। उन्होंने विचारा कि कोई ऐसी युक्ति करनी चाहिये, जो सत्यभामाको मालुम न होने पावे। कारण वह विद्याधरकी पुत्री है। कहीं विद्याके बलसे अपने कार्य में कोई विघ्न न कर बैठे। ८७। पश्चात् उन्होंने कुंडनपुर जानेका दृढ़ विचार कर लिया और इसी अभिप्रायसे वे दोनों भाई रात्रिके पिछले प्रहरके समय कवच पहनकर अपने स्वरूपको छुपाकर और अनेक शस्त्र धारण करके रथमें बैठकर कुण्डनपुरको रवाना हो गये। सिवाय चित्तके धैर्यके जिनका कोई दूसरा साथी न था, रुक्मिणी में ही जिनका मन लग रहा था, जो सब कलाओंमें कुशल थे और जो बड़े गुणवान थे, ऐसे कृष्ण बलभद्र दिलकी दौड़के समान शीघ्रगामी रथपर बैठकर कुण्डनपुरके प्रमद उद्यानके पास पहुँचे।८८–९१। जब दूरसे ही श्रीकृष्णने रमणीक कुण्डनपुर को देखा, तब वे कहने लगे, दैव जाने क्या होता है?।९२। पश्चात् कर्तव्यको चित्तमें ठानकर वे धर्मरूपी धनके धारण करने वाले सुंदरमुखवाले निःसहाय श्रीकृष्ण बलभद्र कुण्डनपुरके प्रमदउद्यानमें बहुत शीघ्र पहुँच गये।२९३।

इति श्रीसोमकीर्ति आचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र ग्रन्थके हिंदी भाषानुवादमें श्रीकृष्ण बलदेवका प्रमदोद्यानगमनवृत्तान्तवाला तीसरा सर्ग समाप्त

अथ चतुर्थः सर्गः।

वह प्रमद उद्यान ऐसा शोभायमान हुआ, मानों नानाप्रकारके वृक्षोंसहित और पुष्पोंके समूहसे

शोभित इन्द्रका बगीचा [नन्दनवन] ही कुण्डनपुरको देखनेकी अभिलाषासे पृथ्वीपर आया है।१। इस उपवनमें इन्द्र और उपेन्द्रके समान दोनों यादवोंने अर्थात् श्रीकृष्ण और बलदेवने प्रवेश किया और आगे बढ़कर शोकका नाश करनेवाला अशोक वृक्ष देखा, जिसके ऊपर मनोहर पताका फहरा रही थी और नीचे कामकी मूर्ति स्थापित हो रही थी।२–३। उस मूर्ति को देखकर श्रीकृष्णको सन्तोष हुआ। तब रथके घोड़े खोल दिये गये। ४। तथा कृष्ण और बलदेव जिनके चित्तमें रुक्मिणी बसी हुई थी, निकटवर्ती वृक्षोंके सघन स्थानमें छुपकर बैठ गये। ५। उसी समय मनुष्योंको आनन्दित करनेवाला एक दूसरा वृत्तांत हुआ:—

द्वारिकासे चलकर नारदजी चन्देरीके राजा शिशुपालके पास पहुँचे।६। राजाने उनका सन्मान किया। नारदजीने पूछा—सच सच तो कहो, क्या कार्यवाही चल रही है? तब राजा शिशुपाल मुस्कराये और बोले, भगवन्! आपके प्रसादसे जो कार्य चल रहा है, वह शुभरूप और सत्यार्थ ही है। तब नारदजीने बनावटी स्नेहसे कहा, तुम मुझे अपनी लग्नपत्रिका तो दिखाओ, मैं भी जरा देखूं। तब राजाने मुनिके हाथमें अपनी लग्न पत्रिका दी। ६। कलहप्रिय नारद लग्न देखकर और बहुत देर तक चिन्ता चक्रमें पड़कर अपना मस्तक धुनने लगे। १०। उनकी ऐसी चेष्टा देखकर शिशुपालने पूछा, स्वामिन्! आपने शिर क्यों धुना?। ११। तब नारदजी बोले, राजन्! मुझे लग्नके समय आपके शरीरमें कष्ट होनेके कारण दीख पड़ते हैं। इसलिये आपको कुण्डनपुर बहुत साधनसहित सावधान होकर जाना चाहिये। १२-१३। ऐसा कहके और एक नई कलह तथा शल्य खड़ी करके नारदजी वहाँसे चम्पत हुये।

नारद मुनिके चले जानेपर राजा शिशुपालको बड़ी चिंता उपजी। १४। शंकित होकर उसने बड़ी सेना इकट्ठी की और अनेक प्रकारके साधनों सहित वह कुण्डनपुर रवाने हुआ। १५। पहुँचते ही

उसने कुण्डनपुरको अपनी समस्त सेनासे घेर लिया, जिसप्रकार गिरिराज सुमेरुपर्वतको तारागणोंने घेर रखा है । १६ । जिस समय शिशुपाल राजाने नगरको इस प्रकार बेढ़ रखा था, उसी समय प्रमद उद्यान में कृष्ण और बलदेवजी आये थे । १७ ।

जब रुक्मिणीने सुना कि कुण्डनपुर घिरा हुआ है, तब वह बड़ी दु:खिता हुई और विचारने लगी कि कृष्णसे विभूषित वनमें अब मैं कैसे जा सकती हूँ । १८ । भुआने उसे चिंताग्रसित देखकर कहा, बेटी ! तेरे मुखपर उदासी कैसे छा रही है ? । १६ । रुक्मिणीने उत्तर दिया, भुआजी ! शिशुपाल ने नगरको घेर रखा है । अब मेरा उपवनमें जाना कैसे होगा । तब भुआ बोली, बेटी ! तू दु:खी मत हो, इनके देखते २ ही तेरा उपवनमें बेखटके जाना हो सकेगा। भुआने रुक्मिणीको ऐसे मीठे २ वाक्यों से धीरज बँधाया । उसी समय उसके (भुआके) हृदयमें एक उपाय दृष्टि पड़ा । सो ठीक ही है, स्त्रियों में मौका पड़नेपर तत्कालबुद्धि स्फुरायमान होती है । उसने दासीसहित रुक्मिणीको अपने साथ कर लिया और गीत गाती हुई धीरे २ नगरके बाहर निकली । शिशुपालके सिपाहियोंने उस कन्याको स्त्रीसमूहमें जाती देखकर वहीं रोक दी और उनमेंसे कुछ सिपाहियोंने शिशुपालसे जाकर कहा, महाराज ! रुक्मिणी नगरके बाहर निकली है और स्त्रियों सहित सघन वनमें जारही है। यह सुनकर शिशुपाल ने राजनीतिसे भरे हुए वचन कहे कि "फौरन जाओ और रुक्मिणीको वनमें जानेसे रोक दो" । तब सिपाहियोंने जाकर रुक्मिणीको रोक दिया और कहा भयंकर वनमें तुम्हें नहीं जाना चाहिये, ऐसी हमारे स्वामीकी आज्ञा है । २०-२७ । तब भुआने कहा, मेरी बात सुनो ! रुक्मिणीने वनमें कामदेवकी यात्रा मनाई है क्योंकि वह एक दिन सखी सहेलियों सहित वनमें क्रीड़ा करनेको गई थी और वहां उसने एक मनोहर कामदेवकी मूर्ति देखी थी। उससमय मूर्तिको प्रणाम करके रुक्मिणीने प्रतिज्ञा की थी कि यदि शिशुपाल राजा मेरा पति होगा, तो मैं लग्नके दिन तेरी यात्राको आऊंगी । इसप्रकार यथेष्ट वर

की इच्छासे रुक्मिणीने यह यात्रा बनमें मनाई है। और सौभाग्यसे राजा शिशुपाल ही उसके होनहार पति दीखते हैं, तो भला कामदेवकी यात्राको रुक्मिणी क्यों न जाय ?। २८-३२। उस मूर्तिके सन्मुख शिशुपाल राजाकी कुशलादि प्रार्थना की जावेगी, सो देखा ही जाता है कि स्त्रियें अपने पति पुत्रादिकी कुशलता हरएक प्रकारसे चाहती हैं। ३३। ये वचन सुनकर सिपाहीने राजा शिशुपाल के पास जाकर सब वृत्तांत कह सुनाया। ३४। सुनते ही राजाका जी पानी पानी हो गया। वह हर्ष वा प्रेमसे रुक्मिणीकी वांछा करने लगा। उसने अपने सिपाहियोंको हुक्म देदिया कि, बिलकुल रोक टोक मत करो। रुक्मिणीको बनमें जाने दो। सिपाही तत्काल पहुंचे और उन्होंने उस स्त्रीसमूहको बन की तरफ जाने दिया। जब वे सबकी सब प्रमद बनके पास पहुंचीं, तब भुआने सबको रोककर रुक्मिणी से कहा, बेटी ! यह है, जिसमें तेरा देवता स्थापित है। और जिसकी यात्राको तू आई है। अब तू ही अकेली बनमें जा और अपने देवकी भक्तिपूर्वक उपासना कर। ३५-३६।

तब रुक्मिणी मंद २ गतिसे पूजनकी सामग्री लेकर बनमें गई और वहां चारों तरफ इसप्रकार देखने लगी, जैसे झुंडसे बिछड़ी हुई मृगी चहुंओर झांकने लग जाती है। ४०। कृष्णराजने वृक्षों के कुंजमेंसे छुपे हुए उस मनोहर अंगकी धारण करनेवाली, शुभलक्षणा, घूंघरवाले केशवाली, कामबाण के समान नेत्रोंवाली, चन्द्रके समान सुंदर मुखवाली और कंबुके समान सुंदर कण्ठवाली रुक्मिणीको देखा जिसका शरीर पतला था, जिसके कुच पुष्ट और ऊंचे थे, जिसकी आवाज सारंगीके समान सुरीली थी, जिसकी भुजा मालती पुष्पके समान कोमल थी, जिसका वर्ण ताये हुए सुवर्णके समान था, जिसकी कमर नाजुक थी और जिसके स्थूल नितम्ब मण्डल दिशाओंके हाथियोंके समान थे, मेखलासहित जिस के पाँव कामदेवके निवासस्थान थे, जिसकी सघन उन्नत जाँघ कदली वृक्षके स्तम्भके समान थी, जिसके चरण कमलके समान सुन्दर थे, जिसके नूपुर बज रहे थे और जिसकी चाल हंसनीके समान थी, उस

रुक्मिणीने वहाँ पुकारकर कहा, यदि मेरे पुण्योदयसे द्वारिकानाथ यहाँ आये हों, तो मेरी पुकार सुन कर मुझे शीघ्र दर्शन देवें।४१-४७। उस कुमारीने ज्यों ही ऐसे शब्द कहे, त्यों ही वृक्षोंके कुंजमेंसे निकलकर रूपवान कृष्ण बलदेव उसके सन्मुख खड़े होगये।४८। अपने स्वामीको सन्मुख खड़ा देख कर वह अपना मस्तक नीचे झुकाकर अँगूठेसे जमीन खुरचने लगी।४९। श्रीकृष्णने रुक्मिणीसे कहा सुंदरी! तेरे वचनानुसार द्वारिकाका स्वामी उपस्थित हुआ है।५०। अतएव तू प्रसन्न होकर उसकी ओर देख! कृष्णजीके वाक्योंको सुनकर रुक्मिणीने लज्जावश अपना मुख नम्रीभूत ही रखा। उसका कंधा कम्पित होने लगा। मानो शिशुपालके भयसे ही उसका शरीर कम्पायमान हो रहा था। ।५१-५२। इतनेमें रथ को सजाकर तथा घोड़ोंको जोतकर बलदेवजी बोले "स्त्रियोंको स्वभावसे ही लज्जा होती है। फिर कन्याओंको तो होनी ही चाहिए।५३। इसलिए कृष्ण! तू क्या देख रहा है दोनों हाथ पकड़के इसे शीघ्र रथमें बैठा ले। स्त्री चरित्रको तू नहीं जानता। सचमुचमें तू पूरा गोपाल अर्थात् गाय भैंस चरानेवाला ही है"।५४। तब प्रेमपूरित कृष्णजीने रथमें बैठा लेनेके छलसे रुक्मिणीका आलिंगन किया।५५।

रुक्मिणीको बिठाकर बलदेवजी और कृष्ण जी रथमें आरूढ़ हो गये। तब बलदेवजीने सपाटेसे रथको चलाया और रथमें श्रीकृष्णने अपना शंख बजाकर बड़ी वीरताके शब्द कहे, तथा जोरसे सबको अपना वृत्तांत कह सुनाया कि-।५६-५७। जो कोई शिशुपालके दलके वा कुण्डनपुरके रहनेवाले हों, वे मेरे पराक्रमके वचन सुनें, मैंने अर्थात् कृष्ण नामके शूरवीरने रुक्मिणी को हठसे हरण की है, सो जिस किसीकी शक्ति हो, वह मुझसे रुक्मिणीको छुड़ा लेवे।५८-५९। यदि तुम सबके देखते २ रुक्मिणी हरी जाय, तो राजा लोगोंकी तुम जैसे सेवकोंसे क्या कार्य सिद्धि हो सकती है?।६०।हे शिशुपाल राजाधिराज! मेरी बात सुनो, भला जब रुक्मिणीको मैं हर ले जाऊं, तब तुम्हारे जीवनसे

क्या है ? ।६१। हे भीष्मराज ! तुम्हारी पुत्रीको द्वारिका का राजा और उनके भाई बलदेवने हरी है।६२। हे रूप्यकुमार ! सुनो, मैंने तुम्हारी बहिनको हरी है। तुम्हारी शूरता, तुम्हारा अभिमान और तुम्हारा धैर्य किस कामका ? । ६३ । यदि तुममें सामर्थ्य हो, तो मेरे रथके पीछे आओ और अपनी बहनको छुड़ाओ। यदि तुममें कुछ साहस नहीं है, तो तुम्हारे जीवनको धिक्कार है । ६४ । यदि तुम सबके सामने मैं रुक्मिणीको हरके लेजाऊं तो तुम्हारी शूरवीरता, और सामर्थ्य सचमुच ही व्यर्थ है ।६५। हे राजाओ ! मेरे साथ संग्राममें युद्ध किये बिना तुम सबके सब किसप्रकार कृतार्थ हो सकते हो ।६६। ऐसा कहके कृष्णजी अपने उत्तम रथको युद्ध करनेके लिए वनके बाहिर लंबे चौड़े मैदानमें झपाटेसे ले गये । ६७ । उसी समय शिशुपालादिक सबके सब कृष्णके वचन और रुक्मिणीका हरण सुनकर घबराये । ६८ । पश्चात् भीष्मराज और रूप्यकुमारकी सब सेना कुंडनपुरके बाहर निकली । ६९ । शिशुपालकी सागरके समान सेनामें हलचल मच गई और उसकी शस्त्र कवच आदिसे सजी हुई सेना "उस दुष्ट, चोर, डाकूको पकड़ो ! पकड़ो !" ऐसी चिल्लाहट मचाती हुई शहरसे बाहर निकली जिसमें हाथी घोड़े रथ प्यादे और नौकर चाकरोंकी टोलीकी टोली थी ।७०-७१। बाजोंकी आवाजसे हाथियोंके चीत्कारसे, घोड़ोंके हिनहिनानेसे,भाट लोगोंके जयकारेके शब्दोंसे,रथोंके चक्कोंके चीत्कारसे,धनुषोंकी भन्नाहटसे और सुभटोंकी खिलखिलाहटकी हँसीके मारे कानोंसे सुनाई ही नहीं पड़ता था ।७२-७३। चारों तरफ फैली हुई, पीठ पीछे भागती हुई और जोरसे आती हुई सब सेनाको बलदेव और कृष्णने रोक लिया । ७४ । जिसप्रकार जोरशोरसे ऊंची उठी हुई नदियोंके वेगको समुद्र रोक लेता है, उसी प्रकार उन दोनों भाइयोंने क्षणमात्रमें सब सेनाको रोक लिया ।७५। जब रुक्मिणीने एक तरफ तो सैकड़ों सुभटवाली सम्पूर्ण सेनाको और दूसरी ओर अकेले कृष्ण बलदेव दो ही पुरुषोंको देखा, तब उसने विचारा कि न मालुम क्या होनहार है ? अभाग्यके वशसे इन दोनोंकी आयुका नाश होता

दीखता है। ७६–७७। इतनी बड़ी सेना तो कहाँ और ये दोनों रूपवान और गुणवान कहाँ? मेरे कारणसे इन दोनोंका मरण होगा, हाय यह मैंने अच्छा नहीं किया। ७८। रुक्मिणी निराश और चिंतातुर हुई और दुःखित होकर अपनी आँखोंसे आँसूकी धारा बहाने लगी।७६। बलदेवजीने उस की ऐसी दशा देखकर कृष्णसे कहा, जरा इस सुन्दरीकी ओर तो झांको! अपने सामने इतनी जंगी सेनाको देखकर यह कैसी चिंतातुर हो रही है। कोई ऐसी तजबीज करो,जिससे इसे अपना विश्वास हो जाय और धीरज बँध जाय। श्रीकृष्णका हृदय रुक्मिणीको विलाप करते देखकर करुणारससे भर आया। उन्होंने कहा,प्रिये! मेरी बात सुन,शत्रुकी बड़ी सेनाको देखकर तू चिन्ता मत कर।८०-८२। देख तो सही, मैं क्षणमात्रमें इस सेनाके सुभटों तथा उनके स्वामी राजादिकोंको यमराजके घर भेज देता हूँ।८३। इस प्रकार कहनेसे रुक्मिणीके चित्तको विश्वास न हुआ,इसलिए वह फिर चिन्ता करने लगी। जब श्रीकृष्णने रुक्मिणीको पुनः चिंताग्रसित म्लानमुख देखा, तब कहा हे सौभाग्यशालिनी! जरा मेरी असामान्य शक्तिको तो देख। मैं अभी तुझे अपनी शक्तिका परिचय दिये देता हूँ जिससे निःसंदेश तुझे विश्वास हो जायगा।८४–८५। यह कहकर कृष्णजीने अपनी अँगूठीका हीरा निकाल कर चुटकीसे चूर्णकर डाला और उसके चूर्णसे रुक्मिणीके हाथमें एक मंगलीक साँथिया बना दिया। पश्चात् उन्होंने एक वाण चलाया और क्षणमात्रमें सामनेके सात ताड़के वृक्ष छेद दिये।८६–८७। ऐसी अलौकिक अचंभेकारक शक्तिको देखकर भी रुक्मिणी पुनः विलाप करने लगी। तब कृष्णने पूछा, हे चन्द्रानने! कह तो सही अब भी तू किस कारण दुःखित हो रही है?।८८-८९।तब रुक्मणीने लज्जाको संकोचकर अपने हाथ जोड़कर विनयसे मस्तक झुकाकर निवेदन किया, हे प्राणनाथ! इसमें संदेह नहीं कि आपका पराक्रम अद्भुत है, परन्तु मेरी एक प्रार्थना है, उसपर आप ध्यान दीजिये। वह यह है कि संग्रामभूमिमें आप कृपाकर मेरे पिता और भ्राताको जीवित बचा देवें, नहीं तो संसारमें मुझे

लोकनिन्दा का दुःख सहना पड़ेगा।९०-९२। इसलिये दयादृष्टिसे मेरे पिता और भ्राताको छोड़ देना। रुक्मिणीके वचन सुनकर कृष्णजी मुस्कराये और बोले हे देवी अपने हृदयमेंसे इस दुःखदायिनी चिंता को दूर करदे मैं सच कहता हूँ कि तेरे पिता और भ्राताको संग्राममें जीवित छोड़ दूँगा। ९३-९४। कृष्ण के वचनोंको सुनकर रुक्मिणी प्रसन्न हुई और बोली, हे नाथ! शत्रुराशिसे भरी इस संग्राम भूमिमें आपकी जय हो। ९५।

तब बलदेवजी लक्ष्मीपति श्रीकृष्णसे बोले,–शिशुपाल बड़ा बलवान योद्धा है। मेरा सामर्थ्य नहीं कि उसके साथ युद्ध ठानूं।९६। शिशुपालको छोड़कर, सुभटोंसे भरीहुई सर्व सेनाको मैं क्षणमात्रमें जीत लूंगा और दशोंदिशाओंमें भगा दूँगा।९७। तुम शिशुपाल महा शूरवीरका संग्राममें पराजय करो, बलदेवजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्ण बोले, शिशुपालकी आप क्या बात करते हैं? ।९८। उसे तो मैं क्षणमात्रमें जीतलूंगा और यमराजके घर भेज दूँगा। ऐसा कहके और रुक्मिणीको रथमें छोड़कर शत्रुको जीतनेमें लगा है चित्त जिनका, धीरवीर, साहसी, विद्याविशारद वे दोनों योद्धा वहां से आगे बढ़े और समुद्रके समान शिशुपाल की सेनाका उन्होंने सामना किया।९९-१००। जिस तरह निडर होकर सिंह मदोन्मत्त गजराज पर टूट पड़ता है, उसी तरह श्रीकृष्णने, जिनका मुख क्रोधसे झलझलाहट कर रहा था, शिशुपाल पर आक्रमण किया।१०१। शिशुपाल भी कुपित होकर कृष्णसे भिड़ पड़ा। तब उन दोनों शूरवीर योद्धाओंमें मनुष्योंको बड़े आश्चर्य का करनेवाला घोर युद्ध हुआ।१०२। दूसरी तरफ बलदेवजीने शेष समस्त सेनाके साथ तेज बाणोंकी वर्षासे बड़ा भयंकर युद्ध किया।१०३। पहाड़के समान मदोन्मत्त हाथियोंको धरातल पर बिछा दिया और बड़े२ शीघ्रगामी घोड़ोंको गिरादिया।१०४। हाथी और घोड़ोंपर बैठे हुए बड़े२ अधिकारियोंको चूर कर दिया और कुलीन शक्तिवान शूरवीरोंको नष्ट कर दिया।१०५। इसतरह एकतरफकी सब सेनासे बलदेवने और दूसरी तरफकी सब सेनासे श्रीकृष्ण

ने बड़ा भयंकर युद्ध किया ।१०६। देवताओंको भी आश्चर्य का करने वाला और शत्रुसमूहके अनेक सुभटोंका नाश करनेवाला वह युद्ध चिरकाल तक हुआ । किसी की सामर्थ्य नहीं हुई कि, बलदेवके सामने आकर (जीता) खड़ा हो ।१०७। जब मार पड़ने पर सब फौज दशोंदिशाओंमें रफूचक्कर हुई, तब रूप्यकुमारने भी बलदेवका सामना किया ।१०८। उस सुभट शिरोमणिने सेनाके तितरवितर हो जाने से कुपित होकर और क्रोधसे अपने मुखकमलको लाल करके बलदेवके ऊपर एक तीक्ष्ण वाण चलाया ।१०९। परन्तु बलदेवजी वज्रका कवच पहने हुए थे, इस कारण उस तेज वाणने उन्हें रंचमात्र बाधा न की ।११०। परन्तु जिसप्रकार लोहे की संगतिसे (टक्कर खानेसे) पाषाणमें अग्नि उत्पन्न हो जाती है, उसीप्रकार बलदेवजीकी क्रोधरूपी अग्नि भड़क उठी । तब बलदेव और रूप्यकुमारमें, जो संग्राम भूमि में अनेक युद्ध करनेपर भी खेदखिन्न न हुए थे, बड़ी देर तक लड़ाई होती रही ।१११-११२। थोड़ीही देरमें बलदेवने भीष्मराजके पुत्र रूप्यकुमारको ढीला करके उस पर नागपाश बाण छोड़ा ।११३। सो नागपाश बाणने रूप्यकुमारको नखसे शिखतक रस्सीके समान जकड़के बांध दिया । इसप्रकार बँधे हुये रूप्यकुमारको बलदेवजीने उठाया, तथा उसे रुक्मिणीको लाकर सौंप दिया और कहा, "लो ! इसकी मक्खियाँ उड़ावो" ।११४-११५। दूसरी तरफ कृष्णजीने शिशुपालके साथ नानाप्रकारके हथियारोंसे भयंकर युद्ध किया ।११६। पहले उन्होंने बड़ी देरतक लोहेके शस्त्रोंसे युद्ध किया । पश्चात् वे देवोपनीत शस्त्रोंको लेकर परस्पर भिड़ पड़े ।११७। जिस समय यहाँ यह घोर युद्ध मच रहा था, उस समय कलह-प्रेमी नारदजी आकाशमें तिष्ठे थे और संतुष्ट होकर बारंबार नृत्य करते थे ।११८। इसप्रकार श्रीकृष्ण नारायणने शिशुपालके साथ भाँति २ का युद्ध करके अंतमें उस दानी, गुणी, वीर, मानी, भयंकर, कुलीन,रौद्रपरिणामी और क्रोधी शत्रु को संग्राममें तेज और शूरतासे रहित करके इसप्रकार कतल कर दिया-जिसप्रकार सिंह गजराजको नष्ट कर देता है। सो ठीक ही है, पुण्यके क्षय होने पर सर्वप्राणियों

का विनाश होजाता है। ११९-१२०। वह संग्राम भूमि घोड़ोंके कटे हुए पांवोंसे घृणाकारक और कबंधों अर्थात् बिना धड़के मनुष्योंके नृत्यसे बड़ी भयंकर मालुम पड़ती थी। वहाँ हाथियोंके कुम्भ-स्थलसे नीचे गिरती हुई लोहूकी धारासे कीचड़ मच रहा था और उसमें डूबे हुये अनेक रथोंसे दिशाओंका मार्ग रुक रहा था। १२१-१२३।

इस प्रकार युद्ध करके और महान् मदोन्मत्त शत्रुका नाश करके श्रीकृष्ण और बलदेवजी प्रसन्नता पूर्वक रुक्मिणीके पास आये ।१२४। रुक्मिणी, जिसका मस्तक नम्रीभूत हो रहा था और जिसके चित्तमें बड़ी लज्जा व्याप रही थी, अपनी कर अँजुली जोड़कर और नमस्कार करके श्रीकृष्णसे बोली ।१२५। भुजपराक्रमके धारक स्वामिन्! मेरी यह प्रार्थना है कि, आप कृपाकरके मेरे भाईको नागपाशसे छोड़ दें–जिसमें कि बलदेवजी उसे बाँध लाये हैं ।१२६। तब कृष्णजीने मुसकराके रूप्य-कुमारको छोड़ दिया और उससे कहा, हमने निश्चय किया है कि आप हमारे परम बन्धु स्वजन हो ।१२७। इसलिये स्नेहदृष्टि रखके आप हमारे पास आते जाते रहिये और याद रखिये कि रुक्मिणी आपकी बहिन है ।१२८। मेरे ग्राम, देश, गृहादिकमें आप सच्चे प्रेमसे आया जाया करें और रुक्मिणीसे मिला करें। इस प्रकार अनेक वार समझानेपर भी कुमारने लज्जासे कुछ भी उत्तर नहीं दिया और वहाँ से चल दिया। ।१२९-१३१।

अथानन्तर–कृष्ण बलदेव रुक्मिणीको अच्छी तरह रथमें बैठाकर द्वारिका नगरीको रवाना हुए ।१३२। प्रसन्न चित्तसे बलदेवजीने रथको बेगसे चलाया। कृष्णनारायण रुक्मिणीको पाकर अपनेको कृतकृत्य समझने लगे ।१३३। सुंदर रूपके धारक, अपने वांछित पदार्थको प्राप्त करनेवाले और अपने को कृतार्थ समझनेवाले वे सब परस्पर प्रेमसे वार्तालाप करने लगे।३४। (आचार्य कहते हैं) जिस कृष्ण-राजने शत्रुओंका पराजय किया और राजा भीष्मकी पुत्री रुक्मिणीको प्राप्त की, उसके महात्म्यको कौन

वर्णन कर सकता है ? ।१३५। वन उपवनोंकी शोभाको देखते हुये और तरह तरहके विनोद करते हुए वे रैवतक पर्वतपर पहुँचे। उस पर्वतको देखकर रुक्मिणीके चित्तमें बड़ी प्रसन्नता हुई ।१३६। नन्दनवनके समान वृक्ष और लताओंसे भरे हुए उस बनमें बलदेवजीने कृष्ण और रुक्मिणीका पाणिग्रहण(विवाह) कराया ।३७। सो उसी समयसे वह स्थान पृथ्वीतलपर रुक्मिणीवनके नामसे प्रसिद्ध होगया । ठीक है, बड़े पुरुषोंकी संगतिसे किसमें बड़प्पन नहीं आ जाता है ? ।३८। महत्पुरुष किसी भी ग्राममें वा बनमें क्यों न जावें, वहाँ भी पुण्योदयसे सब बातका ठाठ रहता है ।३९। उस नन्दनवनके समान वनमें श्री कृष्ण नवोढ़ा रुक्मिणीके साथ क्रीड़ा करने लगे ।४०। तथा वे रुक्मिणी और बलदेवके समीप रहनेसे उस बनको स्वजनसमूहसे भरे हुए नगरके समान ही मानकर वहाँ ठहर गये ।४१।

इतनेमें द्वारिकानगरीमें खबर फैल गई कि श्रीकृष्ण शत्रु को जीतकर और रुक्मिणीको साथमें लेकर बलदेवसहित रैवतकगिरिपर पधारे हैं, इससे उन्हें अथाह आनन्द हुआ ।४२-४३। उन्होंने तोरणों तथा पताकाओंसे नगरीको शृंगारित किया, मार्गमें पुष्प बिछा दिये और चन्दनके जलका छिड़काव करा दिया ।४४। जब नगरी इस प्रकार सजा दी गई तब कृष्णराजके कुटुम्बी तथा प्रजाके लोग भांति २ के आभूषण पहनकर और हजारों प्रकारके बाजे तथा अनेक स्तुतिपाठकोंको (भाटोंको) साथमें लेकर सन्मुख (पेशवाईमें) गये और बड़े उत्साहसे श्रीकृष्णनारायण तथा बलदेवजीसे मिले ।४५-४६। कृष्णजी ने आदर सन्मान करके अपने समस्त मित्र व बन्धुगणों को प्रसन्न किया और श्रीकृष्ण, रुक्मिणी तथा बलदेवजीने रथमें बैठकर द्वारिका नगरी में प्रवेश किया ।४७।

जब श्रीकृष्णने द्वारिकापुरीमें प्रवेश किया, तब नगरनिवासी लोग बड़ी उत्कंठासे मार्गमें वर और वधूको देखनेके लिये आये ।४८। नगरनिवासिनी कौतुकअभिलाषिनी स्त्रियोंके तरह २ के विनोद हुए । अर्थात् वरवधूको देखनेकी उमंगसे स्त्रियें अपने शरीरकी सुध भी भूल गईं, जैसा कि यहाँ संक्षेप

में वर्णन किया जाता है ।१४६।

एक उत्सुक स्त्री चूड़ाबंधनको कमरमें और मेखलाको (करदौड़ाको) सिरपर बाँधकर देखनेको आई ।१५०। दूसरी स्त्री नेत्रोंमें कुंकुम आंजकर और गालोंपर कज्जल लगाकर विचित्र रूप बनकर देखने को चली आई ।१५१। कोई स्त्री अपना मस्तक और कुच उघाड़ करके आई ।१५२। कोई स्त्री घरमें बालकको दूध पिला रही थी, सो उसीप्रकार दूध पीते हुए बालकको लेकर चली आई ।१५३। कोई स्त्री जिसके केश मुखपर बिखर रहे थे, ज्योंकी त्यों देखनेको चली आई ।१५४। कोई स्त्री जो अपने भर्तारको करछुईसे भोजन परोस रही थी,परोसना छोड़कर करछुई लिये हुए जल्दीसे देखनेको चली आई ।१५५। दो स्त्रियें मनुष्योंके झुंडमें वरवधूको देखनेके लिये धँसती जाती थी जिनमेंसे एक का तो हार टूट गया था और दूसरीका संघर्षणसे कपड़ा फट गया था ।१५६। किसी स्त्रीने जल लानेके मार्गमें खड़ी होकर अच्छी तरहसे वरवधूको देखा और उनपर मुक्ताफल सहित लाई (सिके हुए धान्य जो मंगलीक होते हैं) क्षेपण की ।१५७। स्त्रियोंके ऐसे तमाशेको देखकर लोग दोनों हाथोंसे ताली पीटने लगे और खिलखिलाकर हँसने लगे ।१५८। किसीने आवाज लगाई कि वाह ! वाह ! क्या ही अद्भुत दृश्य है ! उसी समय गर्गजातिवालोंने जोरसे कहा, देखो ! श्रीकृष्णनारायण नवीन स्त्री को ले आये हैं । पुण्यके प्रभावसे देखो तो सही, क्या ही बढिया संयोग हुआ है ।५९-६०।कोईदूसरी नारी बोली,यह कुलीन सुंदरी धन्य है, जिसने कामदेवके रूपको जीतनेवाले श्रीकृष्ण जैसे वरको पाया है ।१६१। इतनेमें ही दूसरी युवती बोली, कैसा उत्तम जोड़ तोड़ मिला है । सच पूछो, तो ये दोनों वरवधू कामदेव और रतिको भी लज्जित करते हैं ।१६२।पश्चात् दूसरी कामिनी बोली,इस सुंदरीने सचमुचमें परभवमें दान, व्रत,ध्यान तीर्थयात्रा, जप तप किया है । इसीके पुण्योदयसे इस भवमें इसने ऐसा सुयोग्य भर्तार पाया है । इतनेमें ही कोई ज्ञानवान स्त्री बोल उठी ठीक ऐसा ही है,यथार्थमें इसने

दान पुण्यव्रतादिका आचरण किया है, जिससे कृष्ण जैसे तीनखण्ड पृथ्वीके राजाको प्राप्त किया है। यह बड़ी पुण्यवती है। कारण "पुण्यहीन पुरुषके मनोरथ कदापि सफल नहीं होते" ।१६३-१६५। राजमार्गसे जाते हुए श्रीकृष्ण और रुक्मिणीने स्त्रियोंके मुखसे ऐसे नाना भांतिके वाक्य सुने ।१६६। रुक्मिणीको द्वारिकानगरीके देखनेसे जिसमें कि जिनेन्द्रभगवानके अनेक मन्दिर शोभायमान थे अत्यन्त प्रसन्नता हुई ।१६७। वह अपने मनमें विचारने लगी कि, मैं आनन्दसे प्रत्येक दिन जिनमन्दिरोंकी वन्दना करूंगी और इस मनुष्य पर्यायको सफल करूंगी ।१६८।

ज्योंही रुक्मिणी सहित श्रीकृष्ण नारायण अपने महलमें पहुँचे, सौभाग्यवती स्त्रियोंने आरती उतारी और मंगलीक गीत गाये। जब कृष्णराज अपने महलमें पधारे तब बलदेवजी भी अपनी प्राणवल्लभा रेवतीके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे अपने स्थान पर पधारे और वहाँ जाकर सुखसे तिष्ठे। सो ठीक ही है संसारमें कर्तव्यकर्म कर चुकनेपर ऐसा कौन मनुष्य है, जो सुखको नहीं प्राप्त होता ।६९-७०। कृष्णजीने रुक्मिणीके अधिकारमें अपना नौखण्डका महल सौंप दिया, जो धनधान्यसे भरपूर था, जहाँ दासी दास टहल चाकरीमें हाजिर थे, और जो रथ, पालकी, हाथी, घोड़े, अनेक प्रकारके लड़ाईके शस्त्र और कृष्णके आभूषणोंसे सजा हुआ था ।७१-७२। श्रीकृष्णजीने उसी समयसे दूसरी जगह जाना बन्द कर दिया और भोजन, स्नान, आसन शयनादि समस्त नित्य क्रिया उसी रुक्मिणीके महलमें करने लगे ।७३। सच पूछो, तो श्रीकृष्णके मन,वचन, कार्यमें सर्वत्र वही गुणवती बुद्धिमति रुक्मिणी बस गई।७४। सत्यभामा विद्याधरी कृष्णजीके वियोगकी पीड़ासे दुबली पड़ गई। परन्तु अभिमानके मारे उसने इसकी बिलकुल परवाह न की ।१७५। जब श्रीकृष्ण इस प्रकार रुक्मिणीके मुखकमलके भौंरे बन गये और दिलभर सुखसागरमें मग्न हो गये ।१७६। तब नारदजी सत्यभामाको कृष्णजीकी वियोग-अग्निसे दग्ध दुःखी देखकर और अपने मनोरथको सफल जानकर बड़े सुखी हुए। ७७। वे बारम्बार प्रतिदिन

सत्यभामाके पास जाया करते और उसे चिड़ाया करते कि "क्यों तुझे याद है न ? जो तूने मेरी तरफ उस समय अपने रूपके घमंडमें आकर टेढ़ा मुख किया था ?" ठीक ही है अपने शत्रुको दुःखी देख कर किसको सुख नहीं होता ? ।१७८। रातमें दिनमें स्वप्नमें तथा जाग्रत अवस्थामें श्रीकृष्णके चित्तमें रुक्मिणी सुन्दरीकी ही छवि बस गई । यहाँ तक कि कृष्णजीने दूसरी रानियोंका स्मरण करना भी छोड़ दिया । सो ठीक ही है, गुणोंका आदर सब कोई करते हैं । केवल विद्या और उत्तम कुलसे ही कार्य नहीं सिद्ध होता । देखो ! विद्याधर की पुत्री सत्यभामा जो विद्यावान और उत्तम कुलवाली थी उसकी भी सुध विसार दी गई ।१७६। एकदिन जब श्रीकृष्ण कामक्रीड़ाके सुखोंका अनुभव कर रहे थे, तब एक परम आनन्दकारी सुनने लायक वार्ता हुई, जो यहां वर्णन की जाती है ।१८०।

रमण करनेके पश्चात् रुक्मिणीने अपने स्वामीसे कहा, प्राणनाथ आपसे मैं एक बात पूछती हूँ । मैंने पहले सुना था कि सत्यभामा नामकी रानी आपको प्राणसे प्यारी है । परन्तु अब तो आप उसके महलमें बिलकुल नहीं जाते हो, इसका क्या कारण है ? ।८१-८२। तब श्रीकृष्णजीने उत्तर दिया प्रिये ! सुनो, इसका कारण यह है कि, सत्यभामाको अभिमान बहुत रहता है और वह मुझे पसन्द नहीं है । भला ऐसे सुवर्णके गहनोंसे क्या लाभ जिनसे कान खण्डित हो जाँय, भावार्थ—"उस सोने को जारिये जासों टूटैं कान" ।८३-८४। तब रुक्मिणीने बड़े विनयके साथ कहा, नाथ भला जो वस्तु जिसके हाथ लगी है, वह उसको कैसे छोड़ सकता है, सुवर्ण कानका खण्डन करै, तो क्या कोई उसे त्याग देता है ।८५-८६। रुक्मिणीके नीतियुक्त उदार वचन सुनकर कृष्णजी बहुत संतुष्ट हुए और बोले प्रिये मैं तेरे कहनेसे उसके पास जाऊँगा ।८७। उससमय रुक्मिणीने खैर, चूना, सुपारी आदिका एक पानका बीड़ा चबाया था, सो उसको जब उसने जमीन पर थूक दिया, तब कृष्णजीने (दृष्टि छुपा कर) उस उच्छिष्ट पानके उगालको उठाके अपने दुपट्टेके छोरसे बांध लिया और थोड़ी देरके बाद वे

बिचारी सत्यभामाको, जिसके चित्त में तरह तरहके विचार उठ रहे थे, ठगनेके लिये उसके महल को गये ।१८८-१६०।

जब सत्यभामाने देखा कि, नवीन सौतके पति श्रीकृष्ण आये हैं, तब उसने उत्कट द्वेषभावसे ऐसे वचन कहे—नाथ ! क्या आप आज रास्ता भूल गये हैं ? यह तुम्हारा किंवा तुम्हारी प्राणप्यारी का गृह नहीं है। श्रीकृष्णने उत्तर दिया, प्रिये ! मैं तो तेरे पास आनेकी इच्छासे ही आया हूँ। परन्तु यदि तेरे कहे अनुसार मैं भूलकर ही यहाँ आया हूँ, तो अब दूसरी जगह जाने में क्या शोभा है ? ऐसी अनेक प्रकारकी चुभती हुई बातोंसे कृष्णने अप्रसन्न सत्यभामाको राजी किया और बड़ो नरमाईसे मर्म के भेदनेवाले वचन कहे कि हे देवी ! निद्राने मुझे वशमें कर रखा है। यदि तेरी आज्ञा हो तो, मैं यहीं नींद ले लूँ। मुझे बहुत जल्दी नींद आ जायगी ।६१-९५। तब सत्यभामा बोली, ठीक है, आपको वड़ी निद्रा आरही है। क्योंकि वह नवोढ़ा (नूतन विवाहिता सौत) आपको नींद नहीं लेने देती होगी। उसे तो आपको प्रसन्न करना ही चाहिये। मैं आपसे कुछ नहीं कह सकती हूँ. क्योंकि चिरकाल आपने मेरे साथ भोगविलास किया है ।९६-९७। रसकेलि से थकित होकर ही आप प्रतिदिन मेरे घर आकर सोया करो। सच समझो मैं आपका हित चाहनेवाली हूँ ।१९८। तब कृष्णजी बोले, भला तू मेरा हित क्यों न चाहेगी ? नवीन स्त्रियें तो होती ही रहती हैं (अर्थात् नवीन नवीन ही है) परंतु तू मेरी सब रानियोंमें अग्रसर प्राणवल्लभा है ।१९९। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण बिछौने पर लेट गये, और अपना मुख वस्त्रसे ढांककर कपटभावसे (झूठमूठ) निद्रा लेने लगे ।२००। श्रीकृष्णके दुपट्टे में जो रुक्मिणीके पान का उगाल बँधा हुआ था, उसकी सुगन्धि चहुँओर फैल गई ! जिससे उसपर भौंरे आकर मँडराने लगे। यह देख सत्यभामाने चकित होकर धीरेसे अंचलकी गांठ खोली और विचार किया, कि जो वस्तु रुक्मिणीके लिये बँध रही है, उसको श्रीकृष्णने मुझे दिखाया भी नहीं ! देखो मोहकी लीला ! मुझे तो

धोखा दिया जाता है और मेरी सौत रुक्मिणीको सौभाग्यके बढ़ानेवाली ऐसी २ सुगन्धित चीजें दी जाती हैं। ऐसा रोष करके और कृष्णको निद्रावश जानकर उसने धीरेसे वह पानका उगाल निकाल लिया और चन्दनके चकलेपर रखके उसे मूठियेसे घिस लिया व सौभाग्यवर्धक चूर्ण जानकर सत्यभामा ने उसका अपने मुख और शरीर पर लेप कर लिया ।२०१-२०६। और विचारा कि, अब निःसन्देह कृष्णजी मेरे वशमें हो जांयगे । २०७ ।

जब चिंताग्रसिता मूढ़मती सत्यभामाका चित्त चूर्ण संलेपनके कारण हर्षसे फूल रहा था, तब कृष्णजीने धीरेसे अपना मुख उघाड़ा और खिलखिलाकर कहा, मूर्खे ! तूने यह क्या लोकनिंदित काम करना प्रारंभ किया है ? तू तो बड़ी पवित्र दीख पड़ती थी। भला रुक्मिणीके मुखका झूठा ताम्बूल तूने अपने मुखमें कैसे लपेट लिया ? रुक्मिणीने सुपारी–कपूर आदि डालकर एक पानका बीड़ा चबाया था, जिसमें उसके मुखकी लार लग रही थी। उसे उसने हँसीके लिये मेरे अंचलमें बाँध दिया था। सत्पुरुष तो ऐसी झूठी चीजको छूने तक नहीं हैं। भला तूने इसे अपने मुखपर कैसे चुपड़ लिया ? ऐसा कहकर श्रीकृष्णनारायण जोरसे ताली पीट पीट कर बारम्बार हँसने लगे ।२०८-२११। फिर बोले, हे विशालनेत्रे ! प्रथम तो तू मेरी प्राणसे प्यारी रानी है, दूसरे तेरा पिता विद्याधरोंका नायक है, तीसरे तू मेरी सब राणियोंमें अग्रसर पटरानी है, इतने पर भी तूने ऐसा लोकनिंद्य कर्म कैसे किया ? ।२१२-२१३। यह नीतिकी बात है कि नदी और स्त्री इनकी स्वाभाविक गति नीचेकी तरफ ही होती है, अतएव स्त्रियें नीच कर्म करने वाली होती हैं, ऐसा जो मनुष्योंका कथन है, वह सत्य जान पड़ता है ।२१४। इस तरह श्रीकृष्णजीने गहरे गहरे ताने मारे और खूब ठट्ठा मस्खरी उड़ाई, जिससे सत्यभामा अतिशय लज्जित हुई। अपने अपमानके दुःखको जीमें दबाकर वह बाह्यमें (अपनी भूलको छुपाने के लिये) चतुराईसे बोली—मूर्ख स्वामिन् ! आप वृथा ही क्यों मुँह फाड़ फाड़ कर हँसते हैं ? रुक्मिणी

तो मेरी छोटी बहिन है, जिसे आप राजा शिशुपालको मारके हर लाये हैं ! वह मेरे सामने छोटीसे बड़ी हुई है, इसलिये मैंने तो जान बूझकर उसके झूठे तांबूलका अपने मुखपर लेपन किया है। कारण कि, छोटी बहिनके मुखके भोगका जो ताम्बूल प्राप्त हुआ है, उसका स्पर्श मुझे सुखदाई होगा। जिस रुक्मिणीका मैंने मल मूत्र धोया है, और जिसे मैंने बाल्यावस्थासे बड़ी की है, उसके अङ्ग की भोगी हुई चीजसे मुझे कभी ग्लानि नहीं हो सकती। आप बिना कारण क्यों हँसी उड़ा रहे हैं ?।२१५-२१९। तब श्रीकृष्ण बोले, देवी ! अच्छा है। रुक्मिणी का उच्छिष्ट तांबूल तुझे प्रिय लगता हो, तो मैं निरन्तर ला दिया करूंगा, सो उसका प्रतिदिन इसी तरह लेप किया करना।२२०।

सत्यभामा बोली, बहुत अच्छा ! आप ऐसा प्रिय तांबूल मेरे वास्ते प्रतिदिन ले आया कीजिये।२२१। भला जिस तांबूलकी रुक्मिणीके मुखसे उत्पत्ति हो और जो प्राणनाथके अंचलसे बँधा हो, वह मुझे प्यारा क्यों न होगा ? इसमें क्या हँसनेकी बात है।२२२। तब कृष्णमहाराज बोले, खैर ! ऐसा ही सही, मैं अब न हँसूंगा, यह तुम निश्चय समझो। ऐसा कहके और मौन धारणकर कृष्ण महाराज वहीं विराजे।२२३। कुछ समयके पीछे सत्यभामाने श्रीकृष्णसे कहा, मेरे मनमें रुक्मिणीसे मिलनेकी अभिलाषा लग रही है।२२४। तब कृष्णजीने उत्तर दिया, देवी ! सत्य समझो, मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा। जब रुक्मिणी तुझे ऐसी प्यारी लगती है, तो हे विचक्षणे ! उसका मिलना कोई कठिन कार्य नहीं है।२५। ऐसा कहकर थोड़ी देर वहाँ और बैठकर कृष्णजी धीरेसे सत्यभामाके महलसे बाहर निकल आये और प्रेमके भारसे झूमते हुए वे रुक्मिणीके महल को चले गये।२२६।

कृष्णजीको आया हुआ जान रुक्मिणी एकदम उठी और विनयसहित प्राणनाथके चरणोंमें झुक गई। सो ठीक है "कुलीन स्त्रियोंकी ऐसी मर्यादा होती है"।२७। कृष्णजी बोले, प्रिये जरा मेरे कहे अनुसार सज धजके तैयार तो हो जाओ। सफेद वस्त्र व लाल कंचुकी (कांचली) पहन लो। तथा

सर्व प्रकारके भूषण शरीरमें धारण कर लो। सारांश यह है कि देवांगनाके समान अपना सुन्दर रूप बनालो और सत्यभामाके उपवनमें (बगीचेमें) जैसे मैं बताऊँ, उस तरह जाकर बैठ जाओ ।२८-२९। रुक्मिणी बोली, जो स्वामीकी आज्ञा हो मुझे प्रमाण है। ऐसा कहकर जब उसने उसी प्रकारका शृंगार कर लिया, तब श्रीकृष्णजी अपनी विभूषिता प्राणप्रियाको उपवनमें ले गये ।३०। वह नाना प्रकारके वृक्षोंसे भरा हुआ था। स्थान २ में फूलोंकी रजके ढेरके ढेर लग रहे थे। उनकी सुगंधसे भौरोंकी पंक्ति उड़ रही थी। वह ऐसी मालूम होती थी मानों रुक्मिणीके आगमनको जानकर तोरण ही बाँधा गया हो ।३१। अनेक वृक्ष जिनकी शाखाओंके अग्रभाग पवनके चलनेसे कम्पायमान हो रहे थे, ऐसे दीख पड़ते थे, मानों (खुशीमें आकर) ताण्डव नृत्य ही करते हैं। बोलते हुए पक्षी ऐसे मालूम पड़ते थे मानों बन्दीजन जयकारमिश्रित स्तोत्र ही पढ़ रहे हैं ।३२। और कोयलके कूकनेको सुनकर मोर नाच रहे थे, इस प्रकारके मनोहर वनमें रुक्मिणी कृष्णजीके साथ गई ।२३३। और ऐसी शोभायमान हुई, जैसे नंदनवनमें इन्द्रके साथ इन्द्राणी जाती है और शोभायमान होती है। उस वनमें एक मनोहर बावड़ी थी, जिसकी सीढ़ियाँ सुवर्णकी बनी हुई थीं, जिसमें अथाह जल भरा हुआ था, राजहंस बैठे हुए थे, कमलसमूह खिल रहे थे, और श्वेत चकवा चकवीका जोड़ा भी बैठा हुआ था ।३४-३५। उस बावड़ीके किनारे रत्नोंके बने हुए थे और उसमें जलचर जीव भरे हुए थे। उसीके पास एक अशोक नामका वृक्ष था ।३६। जिसके नीचे एक उत्तम स्फटिककी शिला पड़ी हुई थी उसके ऊपर श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणीको पर्यंकासनसे बैठा दी। उसके बायें हाथमें करवीरके (कनेरके) वृक्षकी एक शाखा भ्रमरादि उड़ानेके लिये दे दी और दाहिने हाथको मुखपर रख दिया। इस तरह श्रीकृष्णने रुक्मिणी को साक्षात् वनदेवीके रूपमें स्थापित करदिया और कह दिया कि जब तक मैं फिरकर न आऊं प्रिये! तुम मौन सहित इसी भाँति बैठी रहना अपने आसनको कम्पायमान न करना। ऐसा कहकर

श्रीकृष्ण सत्यभामाके पास फिर गये ।३७-३९।

कृष्णजीने सत्यभामाके महलमें जाकर कहा, देवी ! क्या तेरी रुक्मिणीसे मिलनेकी उत्कण्ठा है ।४०। सत्यभामाने उत्तर दिया, प्राणनाथ ! आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि रुक्मिणी बहनसे मुझे मिला दोगे ।४१। तब कृष्णजीने जबाब दिया, प्रिये ऐसा कर, तू बहुत जल्दी उपवनमें पहुँच जा, पीछे रुक्मिणी भी वहीं आ जायगी ।४२। मैं उसके महलमें जाता हूँ और उसे भेज देता हूँ। ऐसा कह कर श्रीकृष्ण शीघ्र ही उसी बनमें चले आये और सत्यभामा तथा रुक्मिणीके रूपयौवन सम्बन्धी अभिमानको देखने के लिये कौतुकसहित अशोक वृक्षके पास वृक्षोंके कुंजमें छुपकर बैठ गये ।२४३ २४४।

श्रीकृष्णके चले जानेके पश्चात् रूपयौवनसम्पन्न सत्यभामा वस्त्राभूषणोंसे शृंगारित होकर उसी वनमें पहुँची ।४५। उस वनके मध्य भागमें प्रवेश करते ही अशोक वृक्षके नीचे शिलापर किसीको बैठा देखा, जिससे उसके मनमें तरह २ की लहरें उछलने लगीं कि यह कोई वन देवी है, अथवा किसी सिद्ध पुरुषकी कन्या है। किन्नरी है कि देवांगना ही स्वर्गसे उतर आई है। कोई नागकुमारकी स्त्री है कि चन्द्रमाकी भार्या रोहिणी है। कामदेवकी स्त्री रति है कि, सरस्वती है, अथवा लक्ष्मी ही है। सचमुच में यह कुमारी कौन है ।४६-४८। मुझे तो यह मालूम होता है कि वास्तवमें मेरे पुण्यके उदयसे यह मनोहर वनदेवी ही प्रगट हुई है ।४९। (सुना भी है कि) पुण्यके उदयसे देव प्रगट होते हैं। जो पुण्यहीन पुरुष होते हैं, उन्हें देवताके दर्शन कभी नहीं मिलते ।५०। इस लोकमें देवताका आराधन सचमुच में इष्ट वर पानेका कारण है, इसलिये अर्थात् कृष्णजीको अपने वशमें करनेके लिये मैं यदि भक्ति भाव से इस वन देवताकी उपासना (पूजा) करूं तो अच्छा हो ।५१। इसप्रकार वस्त्र-आभूषणोंसे सुशोभित सत्यभामाने बड़ी देरतक अपने दिलमें इसी बातका विचार किया, पश्चात् उसने स्नान करनेके लिये बावड़ीमें गोता लगाया। सो देखा ही जाता है कि, जिसे जो कार्य सिद्ध करना होता है, वह उसके

लिये कौन २ से उपाय नहीं रचता ।५२। जल स्नान करके और बहुतसे कमल लेकर सत्यभामा जल्दीसे बावड़ीके बाहर निकल आई । इस शंकासे कि कहीं रुक्मिणी न आ जाय ।५३। और उसी प्रकार (पूजकाके भेषमें) अशोक वृक्षके नीचे जहाँ कि कृष्णकी वल्लभा (देवीके रूपमें) बैठी हुई थी, आकर खड़ी होगई ।५४। उसने देवीकी भक्तिपूर्वक अनेक तरहके पुष्पोंसे पूजा की और जल्दीसे पाँव पड़ी(चरणों में मस्तक लगाया) और ऐसे मनोहर वचन कहे कि ।५५। हे वनदेवते ! तू मेरे पुण्यके प्रभावसे प्रगट हुई है, तो मुझे उत्तम वरदान दे । कारण "देवताओंका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता" ।५६। हे देवी मैं केवल यही वरदान माँगती हूं कि, कृष्ण मेरे बहुत जल्दी किंकर और भक्त बन जावें तथा मुझमें आसक्त हो जावें । उनका चित्त रुक्मिणीमेंसे विरक्त हो जाय । बस तेरे प्रसादसे कृष्णका चित्त रुक्मिणी-मेंसे उखड़ जाय, यही मेरी मनोकामना है ।५७-५८। हे भगवती ! वरदान देनेमें विलम्ब होगा तो श्रीकृष्ण रुक्मिणी सहित यहाँ आ जावेंगे, इसलिये कृपाकरके शीघ्र इच्छा पूरी कर ।२५९। मैं यही चाहती हूँ कि कृष्ण मेरे पास ऐसे खिंचे चले आवें जैसे बैल उस रस्सीके खींचनेसे खिंचा चला आता है, जिससे कि उसकी नाक नथी रहती है ।२६०। हे माता ! रुक्मिणीको कृष्णके हृदयमेंसे अलग कर दे, बस इसी वरदानकी मैं याचना करती हूं । शीघ्रतासे मुझ पर कृपा कर ।२६१। इस प्रकार भक्ति-पूर्वक प्रलाप करती हुई सत्यभामाने अपना मस्तक उस वनदेवताके चरणोंमें धर दिया ।२६२।

सत्यभामाकी यह लीला श्रीकृष्णनारायणने वृक्षोंके कुंजमेंसे देखी । वे वहाँ से निकल आये । और सत्यभामाकी तरफ देखते हुए खिलखिलाकर हँसने लगे, बारम्बार हाथसे ताली पीटने लगे और सत्यभामाको चुभनेवाले ऐसे वचन बोले ।२६३-२६४। प्रिये ! जरा मेरा कहा सुन, सचमुचमें रुक्मिणी के चरणोंकी पूजा करनेसे ही सौभाग्यकी प्राप्ति होगी । जब रुक्मिणीको पूजाके प्रभावसे मनोवान्छित पदार्थ मिलता है, तो हे मानिनी ! उसकी ओर तू इतना घमण्ड क्यों रखती है ? यदि रुक्मिणीकी

उपासनासे वरदान प्राप्त हो सकता है, तो तुझे अष्टद्रव्यसे नित्य ही उसकी पूजा करनी चाहिये। रुक्मिणीके चरणोंकी पूजा करनेसे मैं तेरा किंकर बन जाऊंगा। ऐसा कहके श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसे, उनके पेटमें हँसी न समाई।२६५-२६८।

जब सत्यभामाने श्रीकृष्णके वचनोंसे जान लिया कि, यह रुक्मिणी ही है, कोई वनदेवी नहीं है। तब वह अत्यन्त लज्जित हुई। उसके परिणाम बहुत संक्लेशित हुए।२६९। वह क्रोधको दबाकर बाह्य रूपसे अपनी चतुराई बघारने लगी, और प्रसन्नता दिखाती हुई बोली, हे मूर्खशिरोमणि! सुनो २७०। जिस तरह बालगोपाल तुम्हें गोपाल गोपाल कहते हैं, सचमुचमें तुम ऐसे ही हो। इसमें रंचमात्र संदेह करनेकी बात नहीं है। गोपाल अर्थात् गाय बैल चरानेवालेके शरीरकी चेष्टा (चाल ढाल) ऐसी ही होती है। गोपालको छोड़कर कौन विवेकी ऐसा निंदनीय और मूर्खताका काम करेगा? ।७१-७२। मैं विधाताकी इससे बड़ी क्या भूल बताऊं, कि उसने ऐसे मूर्खशिरोमणि को तीन खंडका राज्य दे रखा है।७३। मूढ़नाथ! हँसी उड़ानेका तुम्हें क्या अधिकार है? मैंने यदि रुक्मिणीको अपनी बहन जान नमस्कार किया, तो कौनसा अपराध किया? जो तुम निर्बुद्धि बनकर हँसी उड़ा रहे हो।७४-७५। भला यदि कहीं किसी कारणसे स्त्रियें इकट्ठी हुई हों, तो क्या वहाँ विवेकी पुरुषको जाना उचित है? कदापि नहीं।२७६। जो आपके समान अविवेकी होते हैं, वे इस बातका विचार नहीं करते। उस समय श्रीकृष्णने सत्यभामाका मिजाज बहुत बिगड़ा देखा, इस कारण वे चुपचाप वहाँ से निकल कर अपने गृह चले आये।७७।

रुक्मिणी भी श्रीकृष्णकी बातचीतसे यह जानकर कि यह सत्यभामा ही है, अपना वनदेवीका रूप छोड़ लज्जित होकर खड़ी हो गई। और फिर उसने सत्यभामाके चरणोंमें विनयपूर्वक नमस्कार किया। सो ठीक ही है, "जो सज्जन उत्तम कुलमें जन्म लेते हैं, वे स्वभावसे ही बड़े विनयवन्त होते

हैं" ।७८-७९। रुक्मिणी और सत्यभामाने अपनी भुजाओंसे एक दूसरेका आलिंगन किया। पश्चात् सत्यभामाने पूछा, हे कल्याणि ! तेरे शरीरमें साता तो है ? तब रुक्मिणीने जवाब दिया हे सखी ! आपकी कृपासे मैं कुशलतासे हूँ। दोनोंने एक दूसरेकी उमर रूप और सौन्दर्य निहारकर परस्पर प्रेमका करनेवाला वार्तालाप किया। पश्चात् वे दोनों गुणवती रानियें वनमेंसे लौट आईं और अपने २ महलों में चली गईं ।८०-८२। बेचारी सत्यभामा पहले ही दुःखी हो रही थी। उसके संक्लेशका पार ही क्या था ? न्यायकी बात है। ऐसी कौनसी स्त्री है, जिसको अपने भर्तारके अपमानसे दुःख न होता हो ? अर्थात् सबको ही दुःख होता है। इस प्रकार जब वे दोनों चतुर रानियें अपने अपने स्थान में तिष्ठीं, उसी समय एक दूसरी सुप्रसिद्ध कथाका सिलसिला प्रारम्भ हुआ। ८३-८४।

एकदिन कृष्णमहाराज सभामें बिराजे हुए थे। उसी समय--वहाँ कुरुदेशके राजा दुर्योधनका एक दूत आया। उसने आते ही कृष्णजीको विनयपूर्वक नमस्कार किया। फिर उनके सन्मुख एक मनोहर लेख रखकर वह उचित स्थानपर बैठ गया ।८५-८६। कृष्णजीने अपने हाथसे लेखको उठाया। और उसे ऊपरी दृष्टिसे अवलोकन करके अपने मंत्रीको देदिया। तब मंत्रीने उस पत्रको जिसका अर्थ साफ २ झलकता था, तथा जो कृष्णको अत्यन्त आनन्दका करनेवाला था-सभामें बैठे हुए श्रोतागणोंके सामने पढ़कर सुनाया:-।८७-८८।

"स्वस्ति श्रीजिनायनमः। श्री द्वारिकानगरीके महाराजा श्रीकृष्णनारायणको, जिनके चरणारविंद अनेक राजाओंकर सेवित हैं, हस्तिनापुरके राजा दुर्योधनका विनयसहित भक्तिपूर्वक प्रणाम स्वीकृत हो। अपरंच आदरपूर्वक निवेदन है कि, श्रीमान्की कृपासे यहाँ सर्व कुशल हैं। आपकी प्रसन्नता और कुशलता सदा चाहिये। महाराज ! यद्यपि हम सब आपके परोक्ष हैं, दूर रहते हैं, तथापि आप हमारे परम बन्धु हैं, इसमें सन्देह नहीं। आप पूर्ण हितैषी हैं, अतएव आपसे कुछ प्रार्थना है। आशा है कि

आप उसे अंगीकार करेंगे। वह यह है कि–आपकी वा मेरी जो आगामी संतान हो, उसका परस्पर विवाह विधिके अनुसार मित्रताका सम्बन्ध होना चाहिये, जिसकी सब सराहना करेंगे। राजन्! कदाचित् आप की पटरानीके पुत्ररत्नकी उत्पत्ति हो, और मेरे यहाँ पुत्री हो, तो इन वर कन्याओंका विवाह अवश्य होना चाहिये। यदि पुण्योदयसे मेरे यहाँ पुत्रने अवतार लिया और आपकी महारानीसे पुत्रीका जन्म हुआ, तो भी नियमानुसार विधिसहित विवाह किया जाय। संसारमें समस्त प्राणियोंका यथायोग्य सम्बन्ध होता है। सो यदि आपके जीमें इसप्रकार सम्बन्ध करनेकी उत्कण्ठा हो, तो इस बातका निश्चय हो जाना इष्ट है। इति शम्।" २८६-६७।

पत्रको सुनके ही श्रीकृष्णमहाराजका हृदय आनंदसे भर गया। उन्होंने प्रसन्नतासे सभाके बीच में कहा, ठीक है, मैं राजा दुर्योधनसे इसी प्रकारका विवाह सम्बध करूंगा। सत्यपुरुषोंको तो योग्य सम्बन्ध करना ही चाहिये, इसमें कोई दोष नहीं है।६८-९९। ऐसा कहकर कृष्णजीने उस दूतको पान सुपारी वस्त्राभूषण प्रदान किये और सन्तुष्ट चित्तसे उस दूतके साथ अपने दूतोंको भी भूषित कर विदा किया।३००-३०१। श्रीकृष्णजीके दूत भी राजा दुर्योधनके पास पहुँचे। इन्होंने राजाको विनय सहित नमन किया, वार्तालापसे सन्तोषित किया और उपयुक्त संबन्धका निश्चय कर लिया। पश्चात् दुर्योधन राजाने भी कृष्णजीके दूतोंको वस्त्रालंकारादि दे प्रसन्न कर विदा कर दिया। जब दूत लौटकर आ गये, उन्होंने सब समाचार सुनाये, तब राजा कृष्णनारायणको बड़ी प्रसन्नता हुई। ।३०२-३०३। रुक्मिणीको दूतके आने जानेके ये समाचार प्रगट नहीं हुए। केवल सत्यभामाको ही यह चरचा मालूम हुई। अन्य किसी भी स्त्रीने यह बात न जानी। ३०४।

इस प्रकार यादववंशियोंके सहित श्रीलक्ष्मीपति कृष्णनारायणने जिनकी आज्ञाको अनेक राजा अपने मस्तक पर धारण करते थे, रुक्मिणी प्राणवल्लभाके साथ बहुत सुख भोगे। अपने मनोरथकी

सिद्धिसे किसे आनन्द नहीं होता है ? पुण्यके उदयसे प्राणीमात्रको सुखकी प्राप्ति होती है ।२०५-२०६। पुण्यसे ही श्रीकृष्णने रुक्मिणी प्राप्त की, शिशुपालादिक शत्रु समूहका–पराजय किया और द्वारिकाके राज्यको प्राप्त किया । इससे कहना चाहिये कि "भव्य जीवोंको पुण्यके प्रभावसे ही सब वस्तुयें प्राप्त होती हैं" ।२०७। इसलिये भव्य प्राणियोंको श्रीजिनेन्द्रप्रणीत धर्मानुसार पुण्य उपार्जन करना चाहिये । पुण्यसे ही पुण्यसमूहकी बढ़वारी होती है और पुण्यसे ही चन्द्रमाके समान मनोहर उज्ज्वल परिणाम होते हैं । जो नरगति और देवगतिके सुख तीन भुवनमें मिलने कठिन हैं, वे सब पुण्यके प्रभावसे सहजमें प्राप्त होते हैं, ऐसा जानकर भव्यजीवोंको सदाकाल पुण्य संचय करना चाहिये ।२०८।

इति श्रीसोमकीर्ति आचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृत ग्रन्थके नवीन हिंदीभाषानुवादमें राजा शिशुपालका वध, श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका विवाह सत्यभामा की विडम्बना, और गर्भस्थ सन्तानके सम्बन्धका वर्णनवाला चौथा सर्ग समाप्त हुआ ।

अथ पंचमः सर्गः ।

जब सत्यभामाका रुक्मिणीद्वारा मान गलित हो गया, तब उसका चित्त अतिशय दुःखित हुआ । वह ठण्डी सांस खींचने लगी और मूर्खतासे विचारने लगी कि मैं ऐसा कौनसा उपाय करूं, जिससे रुक्मिणीको ऐसा दुःख उपजै, जो उससे सहा न जाय ।१-२। रात दिन सत्यभामा इसी चिंतामें पड़ी रहती थी कि, एक दिन उसे अचानक उस दुर्योधनके दूतकी याद आई, जो विवाह सम्बन्धी बात करने के लिये आया था । वह अपने जीमें फूली नहीं समाई और विचारने लगी, क्या ही बढ़िया उपाय सूझा है जिससे मेरा तो दुःखसे छुटकारा हो जायगा और रुक्मिणीको असह्य दुःख होगा । बात यह है कि, वास्तवमें पहले मेरे ही पुत्र उत्पन्न होगा, पीछे रुक्मिणीके पुत्र होगा अथवा नहीं भी होगा । क्योंकि मैं रुक्मिणीसे उमरमें, तथा शरीरके आकारमें सर्वथा बड़ी हूँ । अनुमानसे सम्भव है कि मेरे पुत्रकी ही उत्पत्ति होगी । इस वास्ते अब मुझे दुःखका छुटकारा पानेका उपाय अवश्य कर डालना चाहिये ।

इससे कृष्णजी वा बलदेवजी की भी साक्षी ले लेना चाहिये। इस बातका दृढ़ संकल्प करके अपने विचारको काम में लानेके लिये सत्यभामाने अपनी दूतीको बुलाया, दूतीसे अपना विचार प्रगट किया और रुक्मिणीके महलको भेज दिया। ३-९।

सत्यभामाकी दूती रुक्मिणीके पास मंदमंद गतिसे डरती हुई पहुँची और रुक्मिणीसे विनयपूर्वक बोली हे माता! मेरे वचन सुनो, सत्यभामाने मुझे किसी कारणसे भेजा है इस वास्ते मैं आपके पास आई हूँ। परंतु वे असुहावने वचन मुझसे कहे नहीं जाते।१०-११। तब भीष्मराजकी पुत्री रुक्मिणी ने जवाब दिया हे दूतिके! तुझसे वह सन्देशा क्यों नहीं कहा जाता? तेरे समान चाकरोंका तो यही काम है कि, जो कुछ मालिकने कहा हो, वह निर्भय होकर सुना दें। मैं तुझे अभयदान देती हूँ! मेरा कहना तू अन्यथा मत समझ।१२-१३। तब दूती बोली, माता! मैं निवेदन करती हूँ, आप सुनो–सुकेतु विद्याधरकी पुत्री सत्यभामाने आपको यह कहला भेजा है कि "रुक्मिणी! यदि पुण्यके उदयसे पहले तेरे पुत्र होगा, तो प्रथम धूमधामसे उसीका विवाह होगा, उसमें संदेह नहीं है।१४-१५। और मैं उसकी लग्नके समय उसके पांवके नीचे अपने सिरके केश रक्खूंगी पश्चात् बरात चढ़ेगी यह मेरा दृढ़ संकल्प है। और कदाचित् पुण्योदयसे पहले मेरे ही पुत्रकी उत्पत्ति हुई, तो तुझे भी मेरे कहे अनुसार अपने मस्तकके बाल मेरे पुत्रके चरणोंके नीचे लग्न समय रखने होंगे"।१६-१७। तब रुक्मिणीने मुसकराके कहा, दूतिके! मेरी बहन (सौत) सत्यभामाने जो कुछ कहा है, वह मुझे स्वीकार है।१८। इस प्रकार अभिमानमें आकर सत्यभामा और रुक्मिणीने अपनी ओरकी दो दासियोंको सभामें भेजा सो ठीक हैं "मान सर्वस्वका नाश कर डालता है"।१९। सभामें जाते ही दोनों दूतियोंने रानियोंका प्रण प्रगट किया और इसमें कृष्ण, बलदेव तथा सर्व यादवोंकी साक्षी ले ली।२०। दूतियें सभासे लौट आईं। पश्चात् मानिनीं सत्यभामा और रुक्मिणी अपने महलोंमें सुखसे तिष्ठीं।२१।

एक दिन रुक्मिणी आनन्दसे एक कोमल मनोहर फूलोंकी सेजपर पौढ़ी हुई थी, तब उसने रात्रिके पिछले पहरमें जगन्मान्य और परम आनन्दके कर्त्ता कामदेवकी उत्पत्तिके सूचक छह स्वप्न देखे। २२-२३।

प्रथम स्वप्नमें—रुक्मिणीने अपनेको विमानमें बैठे हुए और राज्यवैभवसहित आकाशमार्गमें क्रीड़ा करते हुए देखा

दूसरे स्वप्नमें—इन्द्रके ऐरावत समान हस्तीको अपने सन्मुख बैठे हुए और गर्जना करते हुए देखा।

तीसरे स्वप्नमें—उदयाचल पर्वतपर उदय होतेहुए और कमलोंको विकसित करतेहुए सूर्यको देखा।

चौथे स्वप्नमें—बिना धुएँके जलती हुई अग्नि देखी।

पाँचवें स्वप्नमें—कुमुदको प्रफुल्लित करनेवाला चन्द्रमा देखा।

छट्ठे स्वप्नमें—अपने सन्मुख गर्जते हुए समुद्रको देखा।२४-२७।

ऐसे स्वप्न देखनेके पश्चात् प्रातःकाल तुरहीकी आवाज और भाटोंकी विरदावलीसे रुक्मिणी की निद्रा उड़ गई। वह सचेत होकर सेज परसे उठी और विधिपूर्वक स्नान करके वस्त्राभूषण पहनकर अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णजीके पास गई।२८-२९। जाते ही भर्तारको उसने नमस्कार किया और आज्ञानुसार वह उनकी बाईं ओर सिंहासन पर बैठ गई। जब स्वामीने आनेका कारण पूछा, तब रुक्मिणी बोली, हे नाथ! मैंने पिछली रातमें सूर्यके उदय होनेके पहले कई स्वप्न देखे हैं। उन्हींके फल सुननेके अभिप्रायसे आई हूँ। ऐसा कहके उसने श्रीकृष्णको छहों स्वप्न कह सुनाये।३०-३२।

श्रीकृष्णनारायण स्वप्नावली सुनकर परम प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी प्राणवल्लभाको उनका फल सुना दिया। जिसका सारांश यह है कि, तेरे निश्चयसे आकाशगामी और मोक्षगामी पुत्र होगा

।३३। निपुणा रुक्मिणी भर्तारके वचनोंको सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुई और आज्ञा लेकर अपने महल को वापिस चली आई । स्वामीके वचनोंसे रुक्मिणीको ऐसा विश्वास हो गया, मानों पुत्र उसकी गोदमें ही आगया हो ।३४। राजा मधुका जीव अनेक प्रकारके तपश्चरण करके सोलहवें स्वर्गको प्राप्त हुआ था, वहांसे चयकर रुक्मिणीके गर्भमें प्राप्त हुआ ।३५। उसे पुण्यका प्रभाव ही कहना चाहिये जो चिरकाल तक स्वर्गका सुख भोगकर वह रुक्मिणीके उदरका भूषण बना ।३६। सत्यभामाने भी इसी प्रकार स्वप्न देखे और कृष्णजीने उसे इसी प्रकार उनका फल कह सुनाया । कोई कल्पवासी जीव स्वर्गसे चयकर सत्यभामाके गर्भमें भी आया ।३७-३८।

श्रीकृष्णजीकी सत्यभामा और रुक्मिणी दोनों रानियोंके गर्भके बढ़ते समय जो अङ्गकी चेष्टा हुई, वह प्रसन्नताकारक है । संक्षेपमें उसका वर्णन किया जाता है ।३९। दोनों गर्भवती रानियोंके नेत्र निर्मल होगये, शरीर पीला पड़ गया । स्तनोंके अग्रभाग बहुत काले पड़ गये चलने फिरनेमें आलस्य आने लगा, उदर स्थूल होने लगा । त्रिवलीका भंग होगया, और मुखकी सुन्दरता बढ़ने लगी ।४०-४१। इसप्रकार शारीरिक अनेक विकार हुए और श्रीकृष्णको आनन्ददायक अनेक दोहले हुए, जिन्हें राजाने हर्षसे पूर्ण किये ।४२। गर्भकालके पूरे नवमास व्यतीत होने पर रुक्मिणीके उत्तम तिथि, शुभ-नक्षत्र, शुभकरण योग, और पचांगशुद्धिमें पुत्ररत्नका जन्म हुआ । पुत्रकी उत्पत्तिको देखकर रुक्मिणी को अप्रमाण आनन्द हुआ । पुत्रको सूर्यके समान प्रतापवान और शुभलक्षणका धारक जानकर रुक्मिणी और उसके कुटुम्बियोंको बड़ी प्रसन्नता तथा तुष्टि हुई बन्धुजनोंने मंगलसे शोभायमान नौकरोंको श्रीकृष्णके पास बधाई देनेके लिये भेजे ।४३-४४।

जिस समय रुक्मिणीके नौकर श्रीकृष्णके पास गये, उस समय वे सोरहे थे । महाराजको नींद आरही है, ऐसा जानकर वे कृष्णके चरणोंके पास विनयसे मस्तक नमाकर खड़े हो रहे । यह

समझकर कि महाराज उठेंगे, तो पहले उनकी दृष्टि सामनेकी ओर इसी तरफ पड़ेगी।४६-४८। सो ठीक ही है, लोकमें जैसे मालिक वैसे ही नौकर देखनेमें आते हैं। इतनेमें सत्यभामाके नौकर भी बधाई देनेको वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने घमंडमें आकर विचार किया कि, हमारी महारानी तो पटरानी है, हम नीचे की तरफ क्यों खड़े रहें? इसलिये वे कृष्णजीके मस्तकके पास (सिराने) खड़े हो गये।४९-५०। जब कृष्णजी निद्रासे जागे, और सेजपर उठकर बैठे, तो प्रथम ही सामने खड़े हुए रुक्मिणीके नौकरोंने बड़ी प्रसन्नतासे बधाई दी।५१। हे नराधीश! आप चिरंजीव रहो! चिरकाल जयवंत रहो! रुक्मिणी रानीके पुत्ररत्नकी उत्पत्ति हुई है, उसके साथ आप चिरकाल पर्यंत राज्यसुखका अनुभव करो।५२। नौकरोंके मुखसे पुत्रजन्मके सुहावने शब्द सुनकर कृष्णनारायणको सन्तोष और हर्ष हुआ।५३। उन्होंने तत्काल गुणनिधान पुत्र जन्मकी बधाई देनेवालोंको राजचिह्न छोड़कर समस्त वस्त्र आभूषण इनाममें दे दिये।५४। और उसी समय आज्ञा दी कि, जाओ और मंत्रियोंको मेरे पास बहुत शीघ्र बुला लाओ।५५। आज्ञानुसार नौकर मंत्रियोंको बुला लाये। मंत्रीगण कृष्णजीके पास आये और प्रणाम करके सामने बैठ गये।५६। तब नारायणने मंत्रियोंसे आदरपूर्वक कहा कि, मेरे घर पुत्रका जन्म हुआ है। इसकी खुशीमें याचकोंको जो वे मांगें, सो दान दो, शत्रुओंको जेलखानेमेंसे छोड़ दो, श्रीजिनेन्द्रके मंदिरोंमें भक्तिभावसे पूजाविधान कराओ, द्वारिकापुरीमें उत्सव करो और नगरीको सिंगारो इसप्रकार मंत्रियोंको आज्ञा देकर जब श्रीकृष्णजीने अपने कंधेको मुरकाके सिरानेकी तरफ देखा, तब विद्याधरी सत्यभामाके नौकरोंने बधाई दी कि—हे देव! विद्याधरी सत्यभामा महारानीके पुत्रकी उत्पत्ति हुई है ऐसे वचनोंको सुनकर श्रीकृष्णजी और भी प्रसन्न हुए और उन्होंने हुक्म दिया कि इन्हें भी इनाममें धन तथा वस्त्राभूषण प्रदान करो।५७-६१। "सर्व प्राणियोंकी बुद्धि कर्मके क्षयोपशमके अनुसार हीनाधिक होती है और जो अतिशय अभिमान करता है, उसका विनाश होता है। देखो! तीन खण्डका

स्वामी रावण मान करनेसे नष्ट हो गया" ।६२।

श्रीकृष्णनारायणके यहां दो पुत्ररत्नोंका जन्म हुआ । द्वारिकापुरीमें बड़े २ उत्सव हुए। याचकों को इच्छानुसार दान दिया गया । मित्रवर्ग वा बन्धुजनोंका बहुत आदर सन्मान किया गया। कुलीन स्त्रियोंको अनेक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र भेंटमें दिये गये । नगरमें विधिपूर्वक तोरण (बंदनवार) बांधे गये । और जिनमन्दिरोंके शिखरोंपर पताका लगाई गई ।६३-६५। कहाँतक वर्णन किया जाय, इतना ही कहना बस होगा कि, सब मनुष्योंने अपने २ घरमें महान् उत्सव मनाया । ठीक ही है, "जब राजा के ही पुत्र उत्पन्न हो, तो प्रजा उत्सव क्यों न करे" ।६६। जिस प्रकार हस्तिनागपुरमें श्री शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरःनाथ स्वामीके जन्म कल्याणकके समय देवोंने महोत्सव किया था, उसी प्रकार कृष्ण-नारायणके पुत्रोंके जन्ममें नगर निवासियोंने महान् उत्सव किया ।६७। जब प्राणप्यारी रुक्मिणीको पुत्र उत्पन्न हुआ, तब श्रीकृष्णजीका चित्त उसमें और भी अधिक आसक्त हो गया। उन्होंने याचकोंको इच्छासे भी अधिक दान दिया ।६८। श्रीकृष्णकी प्रसन्नता और तुष्टिका (संतोषका) पार न रहा । उन्होंने गुरु-जनोंका बहुत ही सन्मान किया और भाई बन्धुगणोंको हर एक प्रकारसे प्रसन्न करके व सुखसे रहने लगे ।६९। इस प्रकार यदुवंशियोंके राजा श्रीकृष्णनारायणके महलमें पांच दिन तक विधि अनुसार महोत्सव होते रहे । छट्ठे दिन क्या हुआ सो सुनिये—।७०।

उस दिन सूर्य अस्त हुआ । इसका कारण यह मालूम होता है कि, आजकी रात्रिके समय श्रीकृष्णनारायणके पुत्रका हरण होनेवाला है, जिससे कृष्णको तथा उसके स्वजनोंको बड़ा दुःख होगा और यह दुःख मुझसे न देखा जायगा, ऐसा जानकर मानों सूर्य अस्त हो गया । सो ठीक ही है—सत्पुरुष अपने सन्मुख दूसरे को दुःखित नहीं देख सकते । भावार्थ—दूसरेको दुःखी देखना नहीं चाहते ।७१-७२।

सूर्यके अस्त होनेपर क्या २ फेरफार हुआ, सो संक्षेपमें वर्णन किया जाता है—कमलिनी संकुचित हो गई। चारों ओर अंधकार फैल गया ।७३। चक्रवाकी शब्द करती है और कलियोंपरसे भौंरे उड़कर पड़ते हैं, इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि, कमलिनी रूपी स्त्री सूर्यपतिके वियोगमें रोती है, और आँसू टपकाती है। चक्रवाकीके शब्द, उसका रोना और भौंरोंका पड़ना, उसके आँसुओंका पड़ना है ।७४। संध्याके समय चक्रवाकी वियोगकी संभावनासे गिरगिर पड़ती है, पतिका मुखचुम्बन करके बारबार मूर्छित होती है, शरीरसे चिपटे हुए पतिका बारम्बार अवलोकन करती है और विरहके कारण सूर्यपर क्रोध करती है ।७५। सूर्यके समुद्रमें पतित होनेपर अर्थात् डूब जानेपर संध्यारूपी स्त्री उसके वियोगमें काष्ठका भक्षण करनेके लिये अर्थात् अग्निमें प्रवेश करनेके लिये विचित्रांबर शोभाको धारण करनेवाली होगई। अर्थात् जिस प्रकार सती होनेवाली स्त्री नाना प्रकारके अम्बर (वस्त्र) धारण करके सजती है उसी प्रकार संध्याका अम्बर अर्थात् आकाश रंगबिरंगी शोभाका धारण करनेवाला हो गया ।७६-७७। और अपने सूर्यपतिके चले जाने पर दिशारूपी गणिका (वेश्या) अंधकारके साथ रमण करनेके लिये चित्रविचित्र वस्त्र धारण करके तैयार हो गई ।७८। जब पृथ्वी पर अन्धकारका समूह फैला गया, तब ऊँचे नीचे सब स्थान सम हो गये अर्थात् एकसे दीखने लगे, जिस प्रकार मलिनात्मा राजाके होनेपर नाना प्रकारके आचरण करनेवाले ऊँचे और नीचे जातिके सम्पूर्ण लोगोंमें समता हो जाती है ।७९-८०। उस अंजनके समान काले अन्धकारके चारों ओर फैलनेपर दिशा, लता, आकाश, भूमि, पर्वत आदि कुछ भी नहीं रहे, सबका अभाव दीखने लगा। उस समय लोकमें नदी बन आदि किसीकी भी सीमा नहीं दिखती थी, जिस प्रकार मलीन राजाके राज्यमें प्रजा मर्यादाहीन हो जाती है ।८१-८२। उस अन्धकारसमूहमें रात्रिको लोगोंके जलाये हुये तेज युक्त दीपक शोभायमान होने लगे ।८३। वे विमल, सुदशायुक्त (अच्छी बत्तीवाले) उत्तम पात्रोंका सेवन करने वाले, दीपक ऐसे शोभित

होने लगे हैं, जैसे विमल लोगोंमें रहनेवाले भी तेजस्वी, मलिन, सुदशायुक्त और उत्तम पात्रोंका सेवन करनेवाले पुरुष शोभित होते हैं ।८४।

ऐसी रात्रिमें रुक्मिणी अपने पुत्रको लेकर प्रसूतिघरमें सो रही थी। उसके पास मंगलगीत गानेवाली तथा नाचनेवाली स्त्रियाँ भी सो रही थीं ।८५। और रक्षाके लिये महलके चारों तरफ शस्त्र-धारक सिपाहियों का पहरा लग रहा था ।८६।कृष्णजी किसी दूसरे महलमें चिन्तारहित सुखसे नींद ले रहे थे और अङ्गरक्षक उनकी रक्षा कर रहे थे ।८७। प्रफुल्लित चित्त होकर रुक्मिणी हजार स्त्रियों सहित अपने पुत्रका मुखकमल निहारती हुई पौढ़ी थी। जब रात्रिको अनेक उत्सव हुए, तब उसे सुख से भरपूर निद्रा आ गई। उसी समय रुक्मिणी आदिको कष्टका देनेवाला अन्य उपद्रव खड़ा हुआ, जो इस प्रकार है—।८८-८९।

एक समय मोहके वशमें वा दुर्बुद्धिकी प्रेरणासे राजा मधुने अपने सामन्त राजा हेमरथकी स्त्री हरी थी, जिससे हेमरथ अपनी स्त्रीका हरण वा वियोग जानकर राजकाज छोड़कर सुनसान निर्जन वनमें भ्रमण करता फिरा था और स्त्रीके विरहमें पागल हो गया था। क्योंकि "मोह बड़ा दुःखदाई होता है।" नगर वा वनमें घूमते घामते उसने अन्य मतावलम्बी तापसियोंकी सलाहसे पंचाग्नि का साधन किया और अन्तको तपके प्रभावसे मरके वह दैत्य हुआ ।९०-९३। एक दिन जब यह दैत्य विमानमें बैठकर आकशमें लीलासे विचर रहा था, तब दैवयोगसे उसी रात्रिको उसका विमान रुक्मिणी के महलके ऊपर आया ।९४। पवनके समान तेजसे जानेवाला विमान जब रुक्मिणीके बालकके ऊपर आया और चलते २ आपसे आप रुक गया ।९५। तब अपने विमानको अटका हुआ जानकर वह असुर विचारने लगा कि, या तो किसी दुर्बुद्धिने मेरे विमानको रोक दिया है ।९६। या नीचे कोई प्राचीन अतिशयवान जैन प्रतिमा है। कोई शत्रु है या अथवा कोई मित्र आपत्तिमें पड़ा हुआ है, अथवा कोई चरमशरीरी

देह संकटमें पड़ा हुआ है। इनमेंसे कोई कारण अवश्य है। अन्यथा मेरे विमानकी गति किसी प्रकार नहीं रुक सकती थी। पृथ्वी पर ऐसा कौन है, जो मेरे चलते हुए विमानको कील देवे? विमान अटकानेवाला तीन भुवनमें मुझसे बचकर कैसे रह सकता है? जिस दुराचारीने मेरे आकाशमें जाते हुए विमानको अटकाया है, उसे मैं नियमसे अभी यमराजके घर पहुँचा देता हूँ।९७-१००। जब दैत्यके अन्तरंगमें इसप्रकार विकल्पोंकी लहरें उछल रही थीं; उसी समय दुष्टबुद्धिके करनेवाले अवधिज्ञानसे (कुअवधिसे) उसने सब हकीकत जान ली कि, पूर्वभवमें जिस राजा मधुने पापबुद्धिसे मोहमें आकर मेरी स्त्री चन्द्रप्रभाका हरण किया था और उसके साथ आनंद उड़ाते हुए राज्यका कारबार चलाया था, वही दुराचारी उस पर्यायको छोड़कर (तपश्चरणके योगसे) स्वर्गको प्राप्त हुआ था, जहां उसने देवांगनाओं के सुख भोगे और फिर वहांसे चयकर पूर्वपुण्यके प्रसादसे वह रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ है। पूर्वभवमें जान बूझकर इस दुष्टात्माने मुझे दुःख दिया था परन्तु उस समय तो मैं असमर्थ था, इससे मेरी कुछ न चली थी, परन्तु अब मैं दैत्य अवस्थामें हर एक प्रकारसे समर्थ हूँ और यह अभी बिलकुल असमर्थ बालक है। इसलिये मैं इस दुराचारीको अवश्य ही नष्ट करूंगा। यदि मैं इस बालकका विनाश न करूं, तो मेरे दैत्यपनेको धिक्कार है।१०१-१०६ दैत्यने बड़ी देरतक इस बातका आगा पीछा विचार किया। निदान वह निश्चय करके आकाशसे रुक्मिणीके महलकी तरफ उतरा।१०७। वह क्या देखता है कि, महलके चारों तरफ शस्त्रधारी सुभट पहरा दे रहे हैं। इससे वह एकदम चकित हो गया। देरतक विचारनेके बाद उसे सुधि हुई कि, मैं तो दैत्य हूँ और ये मनुष्य हैं। वृथा ही मैं इनसे क्यों चोंक गया। क्रोधसे तप्तायमान होकर वह सुभटोंके पास आया और उन्हें तत्काल ही मोहकी निद्रा से अचेत करके महलके जड़े हुए कपाटोंके छिद्रमेंसे भीतर धँस गया। दैत्यने रुक्मिणीको भी मोहकी नींद से अचेत कर दिया, जिसका कि चित्त पुत्रके स्नेहसे भरा हुआ था। पीछे उसने बालकको सेज परसे

उठा लिया। १०८-१११।

दैत्यने महलके कपाट खोल लिये और प्रसन्नतासे वह बालकको बाहर निकाल लाया। पश्चात् वह दुर्बुद्धिधारक उसे आकाशमें ले गया और क्रोधसे नेत्र लाल करके उसकी ओर देख घुड़कके बोला ।११२-११३। रे रे दुष्ट महापापी ! तूने पूर्व भवमें घोर पाप कर्म किये हैं। उसकी तुझे याद है या नहीं? जब तू राजा मधु था और मेरी प्राणप्यारी रानी (चन्द्रप्रभा) को हरके ले गया था, उस समय तू सामर्थ्यवान था और मैं सामर्थ्यहीन था। इससे तूने मनमाना अन्याय कर डाला था। अब बोल मैं तुझे कौन २ से भयङ्कर दुःखोंका मजा चखाऊं ?।११४-११५। आरेसे चीरकर तिलके समान तेरे खंडखंड कर डालूं ? अथवा जिस समुद्रमें बड़ी २ ऊंची लहरें उठती हैं और जो मगर मच्छादि क्रूर प्राणियों से भरा है, उसमें तुझे फेंक दूं, तेरे हजारों टुकड़े करके दिशाओंको बलिदान दे दूं अथवा किसी पर्वतकी गुफामें ले जाकर चट्टानके नीचे दाबकर पीस डालूं ? रे दुर्मति ! मैं तुझे कौन २ से दुःखोंका भाजन बनाऊं, पूर्वभवमें धनयौवनके घमंडमें चकचूर होकर तूने घोर अनर्थ किया है, उसकी तू याद कर। रे दुराचारी ! तू ही कह दे कि मैं तेरा क्या करूं और पूर्वकर्मके उदयसे किसप्रकार तुझे तीव्र दुःख दूं ।११६-११९। इसप्रकार दैत्यने बेचारे बालकको बड़ी निर्दयताकी दृष्टिसे देखा। उसे तरह २ के कठोर शब्दोंके प्रहारसे धमकाया, चमकाया। फिर बड़ी देर तक वह इसी उलझनमें पड़ा रहा कि, ये दुःख दूं अथवा ये दुःख दूं, निदान शिलाके नीचे दाबनेका ही दृढ़ संकल्प करके दैत्य उस बालकको तक्षक नामक पर्वतपर ले गया ।१२०-१२१।

उस तक्षक पर्वतपर एक खदिरा नामकी अटवी थी, जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे संकीर्ण हो रही थी जहाँ तहाँ कांटे फैले हुए थे, पैने २ कंकर पत्थर बिछ रहे थे, गोखरू कांटोंकी भी जहाँ कमी न थी जहाँ इंगुदी, खदिर, बिल्व, धव, पलाश आदि जातिके वृक्ष तथा विषवृक्ष लगे हुये थे; जिस विकट

अटवीमें नेवले, सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि निर्दयी जीव विचर रहे थे। विशेष कहांतक कहा जाय, इतने हीमें समझ लेना चाहिये कि वह वन इतना डरावना था, कि उसे देखकर यमराजको भी भय उत्पन्न होता था।१२२-१२४। फिर बावन हाथ लम्बी और ५० हाथ मोटी दलदार कठोर मजबूत चट्टानके नीचे उस दयाहीन दैत्यने बेचारे बालकको दबा दिया। पीछे उसने चट्टानको अपने दोनों पावोंसे खूब दबाई (इस अभिप्रायसे कि वह बिलकुल पिचल जाय)।१२५-१२६। तदनन्तर दैत्य बोला, रे दुरात्मन्! तूने पहले खोटे कर्म उपार्जन किये थे, उसीका यह फल मिला है। इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है। यह तेरी ही करतूतका वा भूलका नतीजा है ऐसा कहकर और अपने मनोरथकी सिद्धि समझके वह दैत्य वहांसे चला गया।१२७-१२८। (आचार्य कहते हैं) इतना घोर उपसर्ग करनेपर भी वह बालक नहीं मरा। सो ठीक ही है "पुण्यात्मा जीवोंको आपत्ति कुछ भी त्रास नहीं पहुँचा सकती" भावार्थ–पुण्यके माहात्म्यसे दुःख भी सुखरूपमें परिणत हो जाता है।१२९। इस जीवने पूर्व भवमें ध्यान, जप, तप किया था। उसीके प्रतापसे इस भवमें वह चरमशरीरी अर्थात् तद्भवमोक्षगामी हुआ है। देखो? बावन हाथकी जबरदस्त शिलासे उस बालकका न मरण हुआ और न उसे रंचमात्र दुःख हुआ। बात सचमुचमें यों ही है। क्योंकि चाहे वन में हो या शहर में हो, पूर्वोपार्जित पुण्य ही देहधारियों की रक्षा करने वाला है।१३०-१३१। जिस भव्य जीवके पल्ले पूर्वभवका संचय किया हुआ पुण्य बँधा हुआ है, उसका कैसा भी शत्रु क्यों न हो, बाल बांका नहीं कर सकता।१३२।

करुणावान सूर्य उदयाचल पर्वतपर पधारे। इस विचारसे कि देखें तो सही मेरी अनुपस्थिति में दुष्ट दैत्यने पूर्वभवके बैरको चितारकर बालकके साथ कैसा बर्ताव किया है? पूर्वपुण्यके प्रभावसे शिलाके तले दबे हुए बालककी आगे क्या दशा हुई, सो यहां वर्णन करते हैं।।१३३-१३५।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक विजयार्द्ध नामक सुप्रसिद्ध पर्वत है। उसकी दक्षिण दिशामें

मेघकूट नामका एक जगत् प्रख्यात नगर, धन, धान्यादिसे सम्पन्न और जिन चैत्यालयोंसे सुशोभित है। ऐसा जान पड़ता है, मानों इन्द्रकी नगरी अमरावती ही आ गई है ।।१३६-१३७। इस नगरमें कालसंवर नामकाराजा राज्य करता था, जो अपनी सम्पदा और गुणसे जगद्विख्यात् हो रहा था और जिसने शत्रुओंके वंशको निर्मूल कर डाला था ।१३८। इस राजाकी कनकमाला नामकी रानी थी जो सुप्रसिद्ध गुणवती तथा रूपवती थी। उसने अपनी सुन्दरतासे देवांगनाओंके रूपको भी जीत लिया था ।१३९। राजा कालसंवर कनकमाला रानी सहित शत्रुओंकी बाधासे रहित (निष्कण्टक) राज्य करता था। एक दिन वह कनकमालाको लेकर तथा विमानमें बैठकर क्रीड़ाको बाहर निकला और रमणीक देशोंमें, भांति २ के वनोंमें, मनोहर मेरुके शिखरोंपर चित्तप्रिय गंगा नदीके तटोंपर, मनोज्ञ २ कदली वृक्षोंके वनोंमें तथा नन्दनवनादि बगीचोंमें तथा और भी अनेक रमणीक स्थानोंमें क्रीड़ा करता हुआ दैववशात् उसी तक्षक पर्वतपर आया, जो बालक प्रद्युम्नकुमारसे सुशोभित हो रहा था।१४०-१४३। वहां आते ही राजाका विमान जो सपाटेसे आकाशमें जा रहा था, एकाएक अटक गया। विमान पुण्यके प्रभावसे ऐसा कीलित हो गया कि, तिलमात्र वह आगे पीछे न हटा ।१४४। तब राजा कालसंवरको बड़ी चिंता हुई। वह विचारने लगा, कि क्या हो गया जो विमान चलता ही नहीं है ? क्या किसीने कील दिया है ? अथवा कोई ज्ञानविभूषित मुनीन्द्र नीचे विराजमान हैं ? किसी जिनमदिरमें अतिशयवान प्रतिमा विराजमान है ? अथवा यहां मेरा कोई शत्रु या मित्र विद्यमान है ? वा कोई चरमशरीरी कष्टमें पड़ा हुआ है। देखें तो सही बात क्या है ? ऐसा विचारकर राजा अपनी प्राणप्रिया-सहित विमानमेंसे उतरा और उस पर्वतपर गया, वहां जाते ही उसको खदिरा वन दीख पड़ा ।१४५-१४८। वनमें धँसते ही राजाने एक बावन हाथकी बड़ी शिला देखी, जो बालकके मुखकी हवासे (सांस के जोरसे) हिल रही थी ।१४९। इतनी बड़ी लम्बी शिलाको डगमगाती हुई देखकर राजाको बड़ा

अचम्भा हुआ। वह विचारने लगा इसका क्या कारण है? मैंने तो आजतक ऐसी शिलाको कम्पित होती नहीं देखी। तब बड़े कौतूहलमें आकर उसने कुछ तो अपने शरीरके बलसे और कुछ विद्याके बलसे उस शिलाको उठाई।१५०-१५१।

ज्योंही राजाने शिलाको दूर किया त्योंही उसने उसके तले एक सुन्दर बालकको लेटे देखा जो मुसकरा रहा था, चंचल था, जिसके केश घूँघरवाले थे, हाथ पांव चलायमान हो रहे थे, जिसकी मुट्ठियां बँधी हुई थी, जिसके नेत्र कमलके समान प्रफुल्लित हो रहे थे, जिसके शरीरकी कान्ति ताये हुए सुवर्णके समान थी जिसने अपने मुखकी सुन्दरतासे पूर्णमासीके चन्द्रको भी लज्जित कर दिया था, जिसकी भुजा कमलकी नालके समान कोमल थी, तथा शुभलक्षणोंसे चिह्नित थी।१५२-१५४। ऐसे सुन्दर, बलवान, धीरवीर, कान्तिवान, प्राणीमात्रके नेत्र वा मनको हरण करनेवाले, पूर्वभवके संचित पुण्यको प्रगट करनेवाले और चरमशरीरी होनेके कारण अपने कट्टर बैरी दैत्यको जीतनेवाले सर्वगुण-सम्पन्न बालकको राजा कालसंवरने देखा और उसे जमीनपरसे अपने हाथोंमें उठा लिया। गोदमें लेकर विचारने लगा यह कोई उच्चकुलका उत्पन्न होनेवाला बड़ा भाग्यशाली मालूम पड़ता है। थोड़ी देर तक वह ऐसे ही विचार करता रहा। निदान उसने अपनी कनकमाला रानीसे कहा, देवी! तेरे कोई पुत्र नहीं है और तुझे पुत्रकी बड़ी लालसा लग रही है, इसलिये ले इस सर्वांगसुन्दर सर्वगुण-सम्पन्न बालकको तू ग्रहण कर। रानीने अपने प्राणनाथके अमृतके तुल्य मीठे वचनोंको सुनकर दोनों हाथ फैलाये। राजा उसके हाथमें बालकको छोड़नेवाला ही था कि, रानीने अपने हाथ पीछे खींच लिये। तब राजाने पूछा, प्रिये! तूने अपने हाथ पीछे क्यों खींच लिये।१५५-१६२। रानीका हृदय दुःखसे भर आया उसके नेत्रोंसे आंसूकी धारा निकलने लगी। वह हाथ जोड़कर बोली, प्राणनाथ! हाथ संकोचनेका जो कारण है सो मैं बतलाती हूँ, सुनो—आपके घरमें दूसरी रानियोंसे जन्मे एहु

५०० पुत्र विद्यमान हैं कहीं यह बालक उन पुत्रोंका दास होकर जीया, तो यह बात मेरे जीमें बाणके समान सदा चुभती रहेगी और मेरा जीवन भी निष्फल हो जायगा ।१६३-१६५। हे प्रभो ! यदि मुझ मंदभागिनीने पूर्वभवमें कोई महत् पुण्य संचय किया होता, तो क्या मेरी कुक्षिसे (कूखसे) पुत्रकी उत्पत्ति न होती ? मैं बड़ी भाग्यहीन हूँ, जो मेरे एक भी पुत्र नहीं है । नाथ ! भला दूसरेके पुत्रसे मुझे क्यों कर सुख हो सकता है ? दुःखदाई अन्यके पुत्रसे क्या ? इस प्रकार गद्गदवाणी बोलती हुई रानी कनकमाला रोने लगी।१६६-१६७। विलाप करती हुई रानीको देखकर करुणावान राजाका हृदय भर आया । वह बोला देवी ! संक्लेशको उत्पन्न करनेवाला दुःख मत कर, दुःख करनेसे तेरा मुखकमल व्यर्थ ही उदास हो जायगा, शरीर कृश हो जायगा और तेजहीन हो जायगा । देख ! तेरे सामने ही मैं इस पुत्रको युवराजका पद देता हूँ । ऐसा कहकर कालसंवर राजाने अपने मुखसे तांबूल (पानकी ललाईसे) बालकका तिलक कर दिया और कहा बेटा ! मैंने वास्तवमें सदाके लिये तुझे युवराजके पद पर स्थापित किया है । अब मेरे राज्यका स्वामी या तो मैं हूँ या तू है, दूसरा कोई नहीं ।६८-७२। ऐसा कहकर राजा कालसंवरने रानी कनकमालाको बालक सौंप दिया । रानीने अपने दोनों हाथ फैलाये और उसे ग्रहण किया ।१७३। तब रानीने बालकके मस्तक पर हाथ धरके उसे आशीर्वाद दिया कि 'बेटा ! तू चिरंजीव रह, और अपने माता पिताको सुख दे" ऐसा कहकर रानी कनकमाला उस बालक का चुम्बन करके बड़ी आनन्दित हुई ।१७४।

इस प्रकार तक्षक वनकी खदिरा अटवीसे उस बालकको लेकर राजा कालसंवर विद्याधर और कनकमाला विद्याधरी दोनों विमानमें बैठकर अपने मेघकूट नामा नगरको रवाना हुए । ज्यों ही वे अपने नगरके पास पहुँचे त्योंही राजाके सन्मुख (पेशवाईमें) मंत्रियों सहित नगरनिवासी आये । राजा की आज्ञानुसार प्रजाने बड़ा उत्सव किया, और विभूति सहित राजाका नगरमें प्रवेश कराया । अपने

महलको प्राप्त होते ही राजाने अपने मंत्रियोंको बुलाया और उनसे कहा, मंत्रिगण ! मैं एक बड़े आश्चर्यकी बात कहता हूँ, सुनो—पहले किसीको भी मालूम नहीं था कि, मेरी कनकमाला प्राणप्रियाको गर्भ है। क्या तुमने पहले कभी सुना है कि स्त्रियोंको गूढ़गर्भ भी होता है ? तब मंत्रियोंने राजाको सन्तोषित करनेके लिये कहा, जी हां महाराज ! हमने पहले कईबार सुना है कि, स्त्रियोंके गूढ़गर्भ होता है। वैद्यक आदि शास्त्रोंमें भी लिखा है ऐसा सुनते हैं और प्रत्यक्षमें भी कईबार यह बात देखी है ।१७५-१७९।

मंत्रियोंके वचन सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। उसने कहा मेरी रानी कनकमालाके भी ऐसा ही गूढ़गर्भ था, इस कारण दैववशात् आज वनमें ही उसके पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है। इस वास्ते रानीको बहुत जल्दी एक उत्तम प्रसूतिगृहमें ले जाओ। सूतिकाको बुलवाओ और प्रसूति समय जो २ कार्य करना पड़ता है, उसे करनेको कहो। तदनुसार मंत्रियोंने दाईको बुलवाया और प्रसूतिकर्मका (जापेका) कार्य प्रारम्भ करा दिया। पश्चात् आज्ञा दी कि, मंत्रीगण ! नगरमें तोरण, ध्वजा, पताकादि बँधवाओ, जिन मन्दिरोंमें उत्सव करावो, याचकोंको इच्छानुसार (किमिच्छित) दान दो, जेलखानोंमेंसे सर्व शत्रुओंको छोड़ दो और छत्र चँवर सिंहासनादि राज्य चिह्नोंको छोड़कर सब दान करदो ।१८०-१८५। राजाकी आज्ञानुसार मंत्रियोंने महोत्सवके साथ ध्वजा तोरणादिसे नगरीको सिंगार दी, सत्पुरुषोंका आदर सन्मान किया, बन्धुजनोंकी सेवा चाकरी की, कहां तक कहा जाय, समस्त प्राणधारियोंका दुःख दूर कर दिया। लवलेशमात्र किसीको किसी बातकी चिंता न रही ।१८६-१८७। हे भव्य जीवों ! पुण्यकी महिमा देखो, "जहां कहीं पुण्यात्मा जीव जाते हैं वहां उन्हें सहजमें ही इष्टसामग्री हाथ लग जाती है" ।१८८। इस प्रकार उस दिन नगरमें बड़ा उत्सव मनाया गया और सातवें दिन उसका नाम निकालने के लिये सब कुटुम्बी सज्जन इकट्ठे हुए, महोत्सव किया गया और सबने यह जानकर कि यह बालक

"परान् दमति" अर्थात् पर शत्रुओंका दमन करनेवाला दीख पड़ता है, उसका नाम प्रद्युम्नकुमार रक्खा ।१८९-१९०।

ज्यों २ प्रद्युम्नकुमार बड़ा होता गया, राजा कालसंवरके कुटुम्बी जनोंको तथा सर्व साधारण मनुष्योंको संतोष होता गया । राजाकी ऋद्धि धनादिक वृद्धिको प्राप्त होती गई। १९१। जिसप्रकार भ्रमर एक कमलसे उड़कर दूसरे कमल पर और दूसरेसे तीसरेपर बैठता है, उसी प्रकार प्रद्युम्नकुमार मनुष्योंके हाथों हाथ खेला करता था । भावार्थ—कोई भी उसे नीचे जमीन पर नहीं छोड़ते थे।१९२। उस समय किसी मनुष्यने तर्क किया कि, यह बालक राजाके कैसे हाथ लग गया ? बांझ स्त्रीके तो पुत्र होता ही नहीं है ।१९३। यह कौन है ? किसका पुत्र है और सुनसान जंगलमें राजा रानीके हाथ यह कैसे लग गया ।१९४। तब दूसरे मनुष्यने जवाब दिया, इस वार्तासे तुम्हें क्या प्रयोजन है जो कुछ राजा करता है, वह प्रमाण होता है । मुझे तो यह बालक पुण्यहीन नहीं दिखता है । कारण यदि यह पुण्यहीन होता, तो इसके कारणसे ऐसे महोत्सव क्यों होते ।१९५-१९६। जिस वस्तुका चिंतवन करो वह पुण्यके प्रभावसे प्राप्त होती है, इसलिये भव्य जीवोंको भवभवान्तरमें सदाकाल पुण्यसंचय करना चाहिये ।१९७। पुण्यके माहात्म्यसे प्रद्युम्नकुमार केवल कनकमाला रानीको ही नहीं, किन्तु राजा कालसंवरकी अन्यान्य समस्त रानियोंको तथा सर्व साधारण स्त्रियोंको अत्यन्त प्रिय हो गया । भावार्थ—स्त्रीमात्र उसका प्रेमसे लाड़ करने लगी । इसी प्रकार स्वजन तथा परजनोंका भी प्रद्युम्नकुमार प्रेमपात्र बन गया ।१९८। पूर्वभवके बैरसे दुष्ट दैत्यने इतने छोटे बालकके साथ कैसा खोटा बर्ताव किया, उसे मारने में कमी नहीं की तो भी देशान्तर मेघकूट नगरमें राजा कालसंवर के यहां वह बड़े सुखसे बढ़ने लगा, इसमें केवल पुण्य ही कारण है ।१९९। जिनके पास विशेष पुण्यका सचय होता है, उनको सहजमें ही अनेक प्रकारके सुख मिल जाते हैं। ऐसा जानकर हे भव्यजीवों ! सदाकाल

अपना परम हितका करने वाला धर्म धारण करो ।२००। धर्म ही समस्त प्रकारके सुखों का करने वाला है, धर्म ही जीव का भला करनेवाला है, धर्म ही गुरुओं का गुरु है, धर्मसे ही स्वर्ग मोक्षादि के अनेक प्रकारके मनोवांछित सुख प्राप्त होते हैं और धर्मसे ही सदाकाल चन्द्रमाकी चांदनी के समान निर्मल कीर्ति फैलती है अर्थात् यश दिन दूना रात चौगुना बढ़ता है। इसलिये हे बुद्धिवान भव्य प्राणियों ! जिस जिनधर्मकी उपासना मुनीन्द्रजन करते हैं उसे तुम धारण करो ।२०१।

इति श्री सोमकीर्तिआचार्यविरचितप्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें प्रद्युम्नकुमार आदिके हरण आदिका वर्णनवाला पांचवा सर्ग समाप्त हुआ।

षष्ठः सर्गः

उधर कालसंवर विद्याधरके स्वर्गके समान सुन्दर महलोंमें प्रद्युम्नकुमार अपने रक्षक माता पिताओंको सुखी कर रहा था, उनकी मनोवांछाओंको बढ़ा रहा था और स्वयं आनंदमें मग्न हो रहा था, इधर द्वारीकापुरिमें रानी रुक्मिणी की बालकका हरण हो जानेसे बड़ी बुरी दशा थी जिसे सुनकर लोगोंके हृदय भर आवेंगे । यहाँ संक्षेपमें उसका वर्णन करते हैं ।१-३।

जब दुष्ट दैत्य बालकको हर ले गया, तब रुक्मिणी निद्रासे सचेत होकर अपने सर्वगुणसम्पन्न बालकको चारों ओर देखने लगी ।४। जब अपनी सेजपर बालकको नहीं पाया, तब वह चकित होकर नौकर चाकरोंसे पूछने लगी, नौकरों ! तुम मुझे बहुत जल्दी बताओ, मेरा गुणवान पुत्र कहां है ? फिर चिन्ताग्रसित होकर विचारने लगी कि, यह देवकृत माया है, अथवा कोई इन्द्रजालका खेल है मुझे यह स्वप्न आरहा है, किंवा मेरी आँखोंमें भी अन्धेरा छा रहा है (जिससे बालक दिखाई नहीं देता) मेरा हृदय ही शून्य हो रहा है अथवा वात प्रकृतिमें आकर ही मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है कोई पूर्व जन्मका बैरी दैत्य मेरे बालकको हरके लेगया है अथवा किसी दासीकी गोदमें मेरा बालक खेल

रहा है धाय दूध पिलानेके लिये उसे अपने पास लेगई है अथवा नौकरउसे प्रेमसेखिलानेके लिये कहींले गये हैं।।५-१०। ऐसे नाना प्रकारके संकल्प विकल्प करके अत्यन्त मोह रखनेवाली उस रुक्मिणीने फिर विचार किया कि, हाय ! निर्दयी दैवने मुझ अबलाको जल्दी ही नष्ट कर दिया । अब मेरे जीवनमें क्या सार है ऐसा सोचकर एकदम पछाड़ खाकर भूमिपर गिर पड़ी । यह देखकर नौकरोंने उसे हरिचन्दनादिकके शीतोपचारसे सचेत किया ।११-१३। सो सचेत होकर वह अपने पुत्रकी यादमें छाती पीटने लगी और ढाड़ें मारकर रुदन करने लगी उस विलापको सुनकर नौकरोंका चित्त भी करुणासे भर आया ।१४। हाय हाय मेरे घुंघरालेबालोंवाले सुन्दर नासिकावाले और पूर्णचंद्रके समान सुन्दर मुखवाले पुत्र तू कहां चला गया बेटा तेरे नेत्र कमलके समान सुन्दर थे, तेरी भौंहें विकारयुक्त अर्थात् टेड़ी थीं, तेरी सुन्दरता कामदेवकी फाँसीके समान मोहक थी और सबको भ्रम नेके लिये तू कर्मकी फाँसी ही था, तूं कहां चला गया शंखके समान सुन्दर कण्ठवाले और गजकी सूंडके समान दृढ़ भुजाओंके धारण करनेवाले पूत्र तू कहां लोप हो गया जब इस प्रकार हाहाकार मचाती हुई रुक्मणी उच्च स्वरसे रोने लगी, तब कृष्णके रणवासकी समस्त रानियें दासियें आदि भी रुदन करने लगीं ।१५-१८। तथा इसी प्रकार कृष्ण पुत्रके हरण हो जानेके दुःखकारक समाचार सुनकर नगर निवासी जन भी विलाप करने लगे ।१६। सारे यादववंशियोंकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी, उनकी धारा प्रवाह आंसुओंकी बूंदें ऐसी जान पड़ती थीं, मानो उन्होंने सूतसे पोई हुई मोतियोंकी मालायें ही धारण कर रक्खी हों ।२०।

अचानक और पहले कभी सुना नहीं, ऐसे दुःखदायी कोलाहलको सुनकर श्रीकृष्ण एकदम नींदसे जाग उठे और पासके नौकरोंसे बोले, देखो तो सही, यह हाहाकार शब्दोंसे मिला हुआ रात्रिके पिछले भागमें क्या कोलाहल हो रहा है ? जाओ ! देखके, सुनके तथा चिल्लाहटके कारणको भली भांति जानके मुझे जल्दी खबर दो। कृष्ण महाराजकी आज्ञाको पाते ही एक दण्डधारी सेवक तत्काल

बाहर निकला और रणवासमें जाकर उसने इसका मूलकारण समझा, जिससे बहुत दुःखी होकर वह कृष्णजीके पास लौट आया ।२१-२४। और गुपचुप मस्तक झुकाके खड़ा हो गया । जब कृष्णजीने पूछा कि, कहो किस बातका कोलाहल हो रहा था, तब वह नौकर बड़े ही दुःखसे और गद्गद्वाणीसे बोला, हे प्रभो ! मैं क्या कहूं कुछ कहने योग्य बात नहीं है। तब कृष्णजी बोले, तू इतना व्याकुल क्यों हो रहा है वह वार्ता क्या ऐसी दुःखदायिनी है कि, उसे कहके भी सकुचाता है परंतु बिना कहे कैसे मालूम हो तब सेवक हाथ जोड़कर बोला, नाथ ! कहते हुए मेरा हृदय विदीर्ण होता है ।२५-२७। किसी दुष्टने रुक्मिणीमहारानीके बालकका हरण कर लिया है । वज्रपातके समान ऐसे वचन सुनते ही श्रीकृष्णजी, क्या ? क्या ? तू क्या कहता है ? इतना कहकर मूर्छित हो गये ।२८। जिस प्रकार वज्रके पड़ते ही वृक्ष पृथ्वीपर टूटकर गिर जाता है, उसी प्रकार ऐसी भयंकर घटनाकी खबर मात्रके सुननेसे उनका चित्त घायल हो गया और वे पछाड़ खाके जमीन पर गिर पड़े, जिससे निकटवर्ती नौकर चाकरोंको ऐसा मालूम हुआ मानो कोई पर्वत ही औंधा हो गया है ।२९। जब नौकरोंने नानाप्रकारके शीतोपचार किये, तब मूर्च्छा दूर हुई । सचेत होकर पुत्र हरणकी बातके याद आते ही वे बहुत शोक और विलाप करने लगे । तथा ढाढ़ें मारकर रोने लगे । नौकर चाकर भी चिंतातुर होकर आंसू बहाने लगे ।३०-३१। हाय हाय ! यह क्या हो गया, प्यारे पुत्र तू कहां चला गया तेरे बिना मेरा जीवन निःसार है । मेरे धन धान्य, दासी, दास, ग्राम, नगर, कर्वट, खेट मटंवादिक किस कामके, मेरे सैकड़ों राजा सेवक हों तो क्या अथवा मेरे पास हजारों हाथी घोड़े रथ आदिक हों, तो क्या जब तक तू था तभी तक ये सब मेरे थे । अब तेरे बिना मुझे ये तो क्या सब संसार असार दीख पड़ता है । बेटा मुझ पुण्यहीनको यहीं छोड़कर तू कहां चला गया मैं तेरे बिना दीन और दुःखी हो गया । जब तू ही नहीं है, तो अब मेरा इस संसारमें कौन बंधु है पुत्र शीघ्र आ और दुखरूपी सागरमें डूबते हुए अपने पिताको बचा ।

बेटा तू हमारा कुलकमलदिवाकर और गुणसमुद्र था। अब तू कहां लोप हो गया तू यदुवंशियोंके कुलरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिये चन्द्रमाके समान था तेरा शरीर बहुत सुन्दर और तेरी आवाज बड़ी प्यारी वा मीठी थी। अब तू कहां छिप गया, प्रिय वत्स तू बड़ा भाग्यशाली था स्वजन बधुवर्गके चित्तरूप कमलोंपर केलि करने वाला परम शोभनीक हंस था अब तू क्यों अदृश्य हो गया।३२-३८। इस प्रकार भांतिभांतिके मर्मभेदी वचनोंको उच्चारण कर कृष्णजीने बड़ी देर तक विलाप किया। उनके होठ टपकते हुए आंसूओंसे धुल रहे थे। कुटुम्बी जनोंने भी बहुत विलाप किया।३९। पश्चात् श्रीकृष्ण बन्धुवर्गके साथ दुःखसे अपने मस्तकको धुनते हुए रुक्मिणीके महलको चले। रास्तेमें उन्होंने अपने मन ही मनमें सृष्टिकर्ताको उलाहना दिया कि—हे विधाता तू क्यों तो ऐसे शुभलक्षणयुक्त चित्तको वशीभूत करनेवाले सुन्दर नररत्नको बनाता है और बनाकर पीछे उसे क्यों हर लेता है। धिक्कार है तेरे पाण्डित्यको (पण्डिताईको) जो मनोहर रूपकी रचना करके उसे फिर हरण कर लेता है।४०-४२। इस प्रकार विचार करते और धीरे २ पांव बढ़ाते हुए श्रीकृष्णजी रुक्मिणीके महलमें पहुँचे।

अपने स्वामीको आते देख रुक्मिणी एकदम खड़ी हो गई और कुलीनताका स्वाभाविक लक्षणस्वरूप विनय करके मूर्च्छा खाकर गिर पड़ी। सो देखा ही जाता है कि, अपने हितैषी स्वजनोंको देखते ही मनुष्योंका दुःख उमड़ आता है।४३-४४। यह देख श्रीकृष्णजीने शीतोपचारोंद्वारा उसकी मूर्च्छा दूर करनेका प्रयत्न किया। उसने सचेत होकर वह पुनः विलाप करने लगी।४५। श्रीकृष्ण भी दुःखित हो उसीके पास बैठ गये और बारंबार पुत्रकी याद करके उस दुःखको और भी बढ़ाने लगे।४६। रुदन करती हुई रुक्मिणीने अपने प्राणनाथसे कहा; हे स्वामी। आपके समान सामर्थ्यवानके विद्यमान होते हुए भी मेरा पुत्र कहाँ चला गया ?।४७। नाथ ! मेरे अभाग्यवश मेरा बालक चला गया। मैं बड़ी मन्दभागिनी हूँ। "क्या करूं ? अब मैं अपुत्रवती होगई" ऐसा कहकर भूमिपर गिर पड़ी, विह्वल

चित्त होकर जमीन पर लोटने लगी, अपने हाथोंसे छाती पीटने लगी और केशोंको बिखराये हुए वह दुःखिनी बाला ढ़ाढ़े मारकर रोने लगी—हाय ! हाय ! अब मैं क्या करूं कहां जाऊं और अपने मन को कैसे समझाऊं विलाप करती हुई रुक्मिणीको देखकर श्रीकृष्ण दुःखी होते हुए अपनी प्राणवल्लभा से बोले, देवी। मेरे ही प्रमादसे बालकका हरण हुआ है। मैं मूढ़बुद्धि अब क्या करूं विधाताने मुझे बड़ा धोखा दिया ।४८।५२। जब कृष्ण और रुक्मिणी दोनों पुत्रके मोहसे इसप्रकार दुःखित हो विलाप करने लगे, तब कुलपरम्परासे चले आये ऐसे वृद्ध मंत्रीगण शोक करते हुए उनके पास आये। और राजा रानीको भक्ति वा विनयसे नमस्कार करके गद्‌गद्‌वाणीसे बोले–महाराज। आप संसारके स्वरूपको भली भांति जानते हो। जो जीव इस असार संसारमें जन्म लेते हैं, उनका आयुके अंत समय नियमसे मरण होता है। षट्खण्ड पृथ्वीको वशमें करनेवाले पहले जितने विद्याधर तथा भूमिगोचरी चक्रवर्ती और तीर्थंकर हो गये हैं, उन सबका आयुके अंत होनेपर कालने कवलाहार कर लिया है। पृथ्वीपर अब उनका नाम मात्र हो सुनाई पड़ता है। धर्मचक्रके प्रवर्तक तीर्थङ्कर भगवान जो सुर असुरकर वंदित हैं, जिन्होंने केवलज्ञानरूपी दीपकसे तीन लोकके पदार्थोंको क्रमरहित प्रत्यक्ष देखा है और जो संसाररूपी समुद्रसे स्वयं तरने और अन्य भव्य जीवोंको तारनेमें समर्थ हैं, उनका भी परमौदारिक शरीर आयुके अंत समय कालका कवलाहार बन गया इसीप्रकार महापराक्रम और महाशक्ति के धारक अनेक बलदेव, कामदेव, नारायण, प्रतिनारायण इस पृथ्वीतल पर हो गये हैं, जिनकी रक्षा सहस्रों हाथी, रथ, सुभट, घोड़े आदिसे होती थी परंतु वे भी यमराजके कठोर दांतोंसे दले गये और परलोकवासी बन गये। इसी प्रकार अपनी शक्तिका मान करनेवाले अन्यान्य योद्धा और महासत्वके धारक शूरमा पृथ्वीतल पर हो गये हैं परन्तु वे भी अपने २ कर्माधीन अन्तमें प्राणान्त हो गये हैं सुर असुर चक्रवर्ती विद्याधराधीश सिंह अजगर आदि जितने बलिष्ट और क्रूरतम जीव हुए हैं सब यमपुर

को सिधारे हैं। अरहंत भगवानका यही कथन है कि, जो प्राणी जन्म लेता है वह नियमसे मरणको प्राप्त होता है और प्रत्येक जीव अपने २ कर्मानुसार सुख दुःख भोगता है ।५३-६५। हे स्वामी ! यम-राजका छोटे बड़े सभीके साथ समान रूपसे वर्ताव है ऐसा जानकर शोक और दुःखका त्याग कीजिये। क्योंकि शोक संसारका कारण है ।६६। शोक करनेसे मनुष्यका दुःख मिटता नहीं किन्तु बढ़ता है। जो बुद्धिमान पुरुष होते हैं वे किसी चीजके खो जाने लोप हो जाने वा किसी स्वजन परजनके मरण हो जानेपर शोक नहीं करते हैं। कारण शोक भूख और निद्रा इन तीनोंकी ज्यों ज्यों चिन्ता की जाती है ज्यों ज्यों इनका विचार किया जाता है त्यों त्यों इनकी बढ़ती होती है। हे तीन खण्डके स्वामी यदि आप ही इस प्रकार चिन्ता व शोक करोगे तो आपकी प्रजा भी दुःखित तथा विकल हो जायगी। ऐसा जानके आपको शोक करना उचित नहीं है। क्या आपके समान ज्ञानवानोंको जो संसारके स्वरूपको भलीभांति जानते हैं, इसप्रकार शोक करना चाहिये ? कदापि नहीं।६७-७०। और इसमें सन्देह नहीं है कि, जो बालक यादवकुलमें उत्पन्न होता है, वह प्रायः सौभाग्यवान, बलवान और दीर्घ आयुका धारक होता है ।७१। इसलिये हे राजन् ! आपके पुत्रको कोई बैरी हरके ले गया है, तो भी वह कहीं न कहीं सुखसे तिष्ठा होगा, सो कुछ दिन बाद आपके घर अवश्य आवेगा ।७२।

मंत्रियोंके समझानेसे राजाने शोकका त्याग करके चिंतातुर रुक्मिणीसे जिसका कि मुख सुन्दर बिखरे बालोंसे ढक रहा था, कहा—हे विचक्षणे ! तेरा पुत्र दीर्घ आयु वाला है, इस कारण उसकी अकालमृत्यु कदापि नहीं हो सकती, ऐसा समझकर तुझे धीरज धारण करना ही उचित है। हे मृगनयनी इसमें मेरा ही प्रमाद हुआ है, जिसे कि मेरा पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुन्दर पुत्र वैरीद्वारा हरा गया है। इसमें तेरा कोई अपराध नहीं है ।७३-७५। हे सुन्दर मुखे, देख अभी मैं दशों दिशाओंमें अपने सुभटोंको तेरे पुत्र की खोज करनेके लिये भेजता हूँ। और बहुत जल्दी उसे तेरी

गोदमें लाकर बिठला देता हूँ।

इसप्रकार समझाके श्रीकृष्णने रुक्मिणीका जिसके नेत्र लाल हो रहे थे रुदन करना बंद किया। और दुर्भेद्य कवचोंको धारण करनेवाले तेज हथियारोंवाले नवजवान कुलीन और सच्चे बलवान घुड़-सवारोंको उसी समय सेनाके साथ चारों ओर पुत्रकी खोज करनेके लिये भेज दिया। सो उन्होंने सारी पृथ्वी ढूंढ़ डाली। परन्तु जब कहीं भी उस बालकका पता नहीं लगा, तब खेदखिन्न होकर वे द्वारिका नगरीको लौट आये और कृष्णजीके सन्मुख मौन धारण कर लज्जासे वा शोकसे मस्तक नीचा करके खड़े हो गये। सुभटोंका मुख मलीन देखकर और उससे यह समझकर कि, इनको मेरे पुत्रका पता नहीं लगा है कृष्णजीने शोकको ज्यों त्यों दबाकर मुख नीचा कर लिया। इसी प्रकार अपने पतिके वचनों को मानकर रुक्मिणीने भी ज्यों त्यों अपने शोकके उद्वेगको रोका। द्वारिकानगरीके निवासियोंकी भी यही दशा हुई। सारी नगरी उत्साह और उत्सवहीन हो गई। सच है राजाके स्वाधीन ही राज्यभूमिकी शोभा-अशोभा हुआ करती है।७६-८४। यहां तक शोभा नष्ट हो गई कि कहीं भी कोई उत्सव, बाजोंका शब्द, गीत नृत्यादिक सुनने वा देखनेमें नहीं आते थे। उस पुत्रके विरहमें उस पुरीकी सारी शोभा नष्ट हो गई।८५।

उसी समय नारद मुनि आकाशमार्गसे आये और द्वारिकाके उपवनमें ठहर गये।८६। जब उन्होंने द्वारिकाकी दशा देखी तो मालूम हुआ कि, न यहाँ कोई शोभा ही दीखती है और न उत्सव ही कहीं होता है। तब उन्होंने चकित होकर किसी आदमीसे पूछा, जिससे मालूम हुआ कि, रुक्मिणी के पुत्रका हरण हो जानेसे श्रीकृष्णके शोकसे नगरीकी यह अवस्था हुई है। इन कठोर दुःखदाई वज्रप्रहारके समान वाक्योंको सुनते ही नारद मुनिका हृदय विदीर्ण हो गया, जिससे वे पृथ्वीपर गिरके बेहोश हो गये। थोड़ी देर तक मुनिनायक जमीन पर ही अचेत पड़े रहे। पश्चात् वनकी पवनसे उनकी

मूर्च्छा जाती रही तो भी अतिशय दुःखके कारणसे वे गुणदोषके विचारकी बुद्धिसे शून्य हो गये। थोड़ी देर वहीं ठहरके उक्त द्वारिकाकी ओर चले और धीरे २ वहाँ पहुँचे, जहां कृष्णजी बैठे हुए थे श्रीकृष्ण ने नारदजी को आते देख अपने आसनसे खड़े होकर नमस्कार करके आसन दिया व शोक करने लगे। और नारदजी दुःखी होकर मौनसे बैठ गये।८७-९३। थोड़ी देरके बाद दुःखको दाबकर, संक्लेश सहित, गद्‌गदवाणीसे नारदजी बोले;—।९४।

(आचार्य कहते हैं) देखो जिनेन्द्रदेवने जिस स्यादवादवाणीका प्ररूपण किया है, नारदजी उसके ज्ञाता थे, उसके बलसे वे अपने दुःखके स्वरूपको पहिचानते थे (कि यह मोहजाल है) वे सत तत्त्वोंके पूरे ज्ञाता थे और दूसरोंको सम्बोधनमें पूरे प्रवीण पण्डित थे, तो भी कृष्णके दुःखको देख कर दुःखी हो रहे थे-मोहकी लीला अपरम्पार है।९५-९६।

(नारदजी कहते हैं) कृष्णराज मेरी बात ध्यानसे सुनो। जो कुछ सर्वज्ञ जिनेश्वरने कहा है, वही मैं कहता हूँ:—"जितने संसारी जीव हैं, उनका एक न एक दिन विनाश अवश्य होता है, ऐसा जानकर शास्त्ररहस्यके ज्ञाताओंको शोक नहीं करना चाहिये। चिन्ता करनेसे गई चीज मिलती थोड़े ही है। यदि कोई मर जाय और उसकी चिन्ता की जाय तो वह जीवित पीछा नहीं आ सकता है। जिन श्रेष्ठ पुरुषोंने संसारको असार जानकर छोड़ा है और वनमें जाकर तपश्चरण किया है वे ही धन्य हैं। उन सत्पुरुषोंको माता पिताके वियोगका, वैरीद्वारा पुत्रके हरण होनेका, वा किसीके मरण वा जन्मका, न सुख है न दुःख है।९७-१००। यद्यपि मैंने घरद्वार छोड़ रक्खा है, सांसारिक सुखोंको जलांजुली दे रक्खी है, तथा मैं वनमें वास करता हूँ, देशव्रत संयमका धारक हूँ और सम्यक्त्वसे विभूषित हूं तथापि केवल तुम्हारे स्नेहके कारणसे तुम्हें दुःखी और चिंतातुर देखकर मैं भी दुःखी और सचिन्त हो रहा हूं। क्योंकि जीवधारियोंके बन्धुवर्गके निमित्तसे ही स्नेह होता है।

।१०१-१०२ हे कृष्ण ! पुत्रके वियोगसे तुम्हें अप्रमाण दुःख हो रहा है और तुम्हें दुःखी देखकर मैं अपने जीवनको निरर्थक समझ रहा हूँ। क्योंकि सिवाय कृतघ्नी पुरुषके ऐसा कौन है, जिसका चित्त अपने भाई बन्धुओंको दुःखी देखकर संक्लेशित न होता हो ? जिस प्रकार मैं तुम्हें दुःखी देखकर दुःखी हो रहा हूँ, इसी प्रकार जो २ तुम्हारे सच्चे स्वजन मित्रादि हैं, वे भी दुःखित हो रहे हैं, यह तुम सच समझो। परन्तु अब यह जो पुत्रहरणका दुःख हो रहा है, उसे तुम बिलकुल दूर कर दो। ।१०३-१०५। जगतमें ऐसा कौन है, जिसे पुत्रके वियोगसे दुःख न होता हो ? यह दुःख इतना दारुण होता है कि, किसी देवसे वा मंत्रतंत्रके आराधनसे नहीं मिट सकता है ।६। ऐसा जानकर इस संसारके कारण भूत शोकको छोड़ दो। आप स्वयं सब शास्त्रोंके ज्ञाता हो। जगतमें ऐसा कौन है, जो आपको उपदेश देनेकी सामर्थ्य रखता हो, कारण सूर्यके प्रकाशको दीपक कौन दिखावे ? ।७८। ऐसे अनेक प्रकारके वाक्योंसे नारदजीने, श्रीकृष्णको समझाया, तब उन्होंने प्रत्युत्तर दिया, भगवन् ! आपका कहना सत्य है। कृपा कर आप रुक्मिणीके पास महलमें पधारो और उसे समझाकर धीरज बँधाओ। कारण उसके दुःखको देखकर मेरा हृदय भर आता है ।९-१०। इस प्रकार कृष्णजीके दुःखको शमन करके उनके दुःखसे दुःखी नारद मुनि रुक्मिणीके महलमें गये ।११।

नारद मुनिको आये देखकर रुक्मिणी खड़ी होगई। उसने भक्तिभावसे प्रणाम किया और सन्मुख आसन धर दिया, जिसपर मुनि विराज गये। ठीक ही है, दुःखके जालमें फँसे रहने पर भी महत्पुरुष विनय करना नहीं छोड़ते हैं। १२-१३। रुक्मिणी नारदजीके चरणोंमें पड़कर रुदन करने लगी। क्योंकि दुःखी अवस्थामें अपने इष्ट मित्रादिकोंके देखनेसे दुःखके कपाट खुल जाते हैं। भूला हुआ दुःख उमड़ उठता है ।१३-१४। मुनि बोले, पुत्री ! कोई पूर्वभवका वैरी तेरे प्राणप्रिया पुत्रको हरके ले गया है, इस कारण मैं भी चिंताके सागरमें पड़ा हूं ।१५। रुक्मिणी बोली, महामुने ! मैं क्या करूं

मेरी सब आशा टूट गई। पुत्रको हरनेवाले दुष्टने बड़ा धोखा दिया। आपके विद्यमान रहते हुए भी मेरे सिरपर ऐसा दुःख टूट पड़ा, आश्चर्यकी बात है। १६। नारदजीने ज्यों त्यों अपना दुःख दाबकर रुक्मिणीसे कहा बेटी खड़ी हो जा,-दुःख वा चिन्ता रंचमात्र मत कर। कारण जो ज्ञानवान होते हैं, वे गिरी हुई गुमी हुई वा नाशको प्राप्त हुई चीजकी चिंता नहीं करते हैं।१७-१८। तू ऐसा मत समझ कि, मुझे ही आज ऐसे दारुण दुःखने सताया है, पहले ऐसा दुःख किसीको नहीं हुआ। ऐसा विचार यदि तेरे चित्तमें हो, तो उसे निकाल डाल।१९। प्राणीमात्रको पुत्रके वियोगसे ऐसा ही दुःख होता है, जो दुर्निवार है।२०। क्या तूने पुराणोंमें नहीं सुना कि, बड़े २ राजा महाराजाओंको पुत्रके वियोगसे दुःख हुआ है।२१। जिसका तीन खंडका स्वामी श्रीकृष्ण तो पिता और तेरे जैसी जगद्विख्यात माता है, किसकी सामर्थ्य है कि, उस बालकको मार डाले, ऐसा बालक छोटी उमरवाला भी क्योंकर हो सकता है।२२। हे पुत्री कोई पूर्वजन्मका वैरी तेरे पुत्रको हरके ले गया है, तो भी वह अनेक प्रकारकी विभूति और सौभाग्यसहित तेरे पास आ जावेगा। जैसा शास्त्रोंमें लेख है कि, सीता सतीका भाई भामण्डल पैदा होते ही पूर्वकर्मके योगसे किसी वैरी द्वारा हरा गया था, तो भी उसका विद्याधरके महलोंमें पालनपोषण हुआ था। वहीं वह बड़ा हुआ था और पीछे विद्या विभव ज्ञान विज्ञानसे विभूषित होकर अपने घर आकर अपने माता पितासे मिला था। उसीप्रकार तेरा पुत्र भी तेरे पास कालान्तरमें अवश्य आ जायगा इसमें सन्देह नहीं है।२३-२६।

तब रुक्मिणी शोकको दूर करके बोली, महाराज ! मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ। आप ध्यान देकर सुनें:—मेरे सुभटोंने घोड़ों पर सवार होके बालककी नदी वा समुद्र पर्यन्त तलाशी की परंतु उसका कहीं भी पता नहीं लगा। तो भी मुझे आपके कल्याणकारी वचन प्रमाण हैं। आपने जैसा कहा है वैसा ही होगा कारण आप मिथ्यावादी नहीं हैं।२७-२९। हे स्वामी आप मेरे मातापिताके

समान हितैषी हैं। आज आपके चरणकमलकी रजसे मेरा सब पाप विला गया ऐसा मैं समझती हूँ। भगवान् मैं इस संकट में आपके गुणोंका ही स्मरण कर रही थी और मुझे आपके दर्शनोंकी बड़ी लालसा (पिपासा) लग रही थी। जैसे कि गर्मीके दिनोंमें हरिण प्यासे होके मृगजलकी ओर झांकते हैं। मेरे पुण्योदयसे आप इस नगरीमें पधारे बड़ी कृपा की ।३०-३२। नारदजीने पुनः समझाया, पुत्री! चिंता मतकर। प्रयत्न तो किया ही जायगा, पश्चात् होनहार बलवान है! मैं पृथ्वीपर सब जगह तलाश करके तेरे पुत्रको ले आऊंगा। मैं तो भला बिना कारण ही सब जगह भ्रमण करता रहता हूँ, जिसमें मुझे रंचमात्र खेद नहीं होता है। तब यदि तेरे कार्यके लिये मैं पर्यटन करूं, तो मुझे कैसे दुःख हो सकता है? ।३३ ३५। अढ़ाई द्वीपमें ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहाँ मेरी गति न हो। मैं समस्त भूमि पर तेरे पुत्रकी तलाश करूंगा ।३६। नारदजीके वचन सुनकर रुक्मिणी बोली, महाराज उसका पता लगाना कठिन है। मैं बड़ी मन्दभागिनी हूँ जो मुझे पुत्रकी वार्ता तक सुनने को नहीं मिल सकती, तो भी प्रभु! आपके वचन मुझे मङ्गलकारी होवें। नारदजी रुक्मिणीको मलिन और दीन मुख देखकर बोले, पुत्री! मेरा कहा सत्य मान, किसी पूर्वभवके दुष्ट बैरीने ही तेरा पुत्र हरा है। यदि मैं तेरे पुत्रकी खबर न ला दूं तो तूं मेरे वाक्य झूठे समझना। अतएव तू शोक चिंताको दूर करके सावधान हो, मनमें धीरज धारण कर ।३७-३९। कंसके छोटे भाई श्रीअतिमुक्तक मुनिराज जो केवलज्ञानसे विभूषित थे, तथा तीनलोकके पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखने जाननेवाले थे, वे तो अष्टकर्मरूपी कट्टर शत्रुओंको नाशकरके मोक्षको प्राप्त हो गये और जो नेमिनाथ तीर्थंकर मतिश्रुतअवधिज्ञानके धारक सत्य २ कहनेवाले हैं, वे कुछ बतावेंगे नहीं। इस कारण मुझे जगत् प्रसिद्ध पूर्व विदेहको जाना होगा, जहांपर एक रमणीक पुण्डरीकिनी नामकी नगरी है, जिसमें श्रीसीमंधरस्वामी समवसरणमें विराजमान हैं। वहां जाकर भगवानको मैं प्रसन्नतापूर्वक नमन करूंगा, उनकी भक्तिभावसे तीन प्रदक्षिणा दूंगा और अष्टांग प्रणाम

कर उनका स्तवन करूंगा, पश्चात् तेरे पुत्रका सम्पूर्ण चरित्र सुनकर मैं तुझे धीरज बँधानेके वास्ते बहुत जल्दी आऊंगा, तू वृथा ही चिन्ता मत कर। संदेह न कर, मैं अवश्य आऊंगा। इस प्रकार नारदजीने रुक्मिणीका समाधान किया ।४०-४५। उससे मधुर वार्तालाप करके वे देशान्तरको रवाना हो गये।

नौकर चाकरोंने ऊंचा मुंह उठाकर आकाशकी ओर देखा, तो मालूम हुआ कि, नारदजी सूर्यके विमानसे भी दूर निकल गये हैं। पीछे थोड़ी देर बाद लोगोंने देखा, तो नारदजी इतने दूर निकल गये थे कि, किसीको न दिखाई दिये ।४६-४७।

मुनि सुमेरु पर्वतपर पहुँचे। रात्रिका समय निकट आया जान उन्होंने वहीं संध्यावन्दना की, प्रफुल्लित चित्त होकर अकृत्रिम चैत्यालयोंके जिनविम्बोंकी वंदना की, जो चारण ऋद्धिके धारक मुनीश्वर वहां विराजे थे, उनकी गुरुभक्ति सहित वंदना की ।४८-४९। और सुमेरुगिरिपर ही रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल होने पर संध्यावंदनादि नित्यक्रिया तथा जिनमंदिरोंकी वंदना करके वे वहांसे शीघ्र रवाना हो गये ।५०। और क्षणमात्र में वे पुण्डरीकिणी नगरीमें जा पहुँचे, जिसे देखकर वे चकित हो गये। कारण ऐसी नगरी उन्होंने कभी नहीं देखी थी ।५१। जहां धर्मचक्रके प्रवर्तक तीर्थंकर सदा काल विराजमान रहते हैं जहां छह खंड पृथ्वीके स्वामी चक्रवर्ती और बलदेव, वासुदेवादिक सदाकाल विराजते हैं और जहां सुर असुर देवादिक जिनभक्तिपरायणतासे सदैव आया करते हैं, हम उस नगरी की शोभाको कहांतक वर्णन करें। नारदजीने दूरसे समवशरणको देखा, जिसमें श्रीसीमंधरस्वामी विराजमान थे और जिनकी देव, देवेन्द्र, खगेन्द्रादिक, पूजा वंदना कर रहे थे। समवसरणको देखनेसे नारदजीको मालूम हुआ, तीनलोककी सारभूत सामग्री यहीं आकर इकट्ठी हुई है। उन अनेक प्रतिज्ञाओं के पालक ब्रह्मचारी नारदजीने आकाशसे नीचे उतरकर भक्तिपूर्वक समवसरणमें प्रवेश किया ।५२-५७।

सीमंधरस्वामीके दर्शनोंसे नारदजीको अत्यन्त आनन्द हुआ। प्रदत्तिणा आदि करके वे जिनेश्वरकी इस प्रकार स्तुति करने लगेः—"हे देवाधिदेव आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है। आप चतुर्निकायके देवोंकर सेवित हो, कामरूपी गजराजको सिंहके समान तथा भव्यजीवरूपी कमलोंको सूर्यके समान हो, आपके कर्मकलङ्क क्षीण हो गये हैं और मोह क्षीण हो गया है, अतएव आपको नमस्कार है।५८-६०। आपके चरणकमल सुर असुर देवोंकर वन्दित हैं, आप मोहरूपी अन्धकारको नाश करने के लिये अद्वितीय चंद्रमा हो और संसाररूपी वनको दग्ध करनेके लिये दावानलके समान हो, इसलिये आपको मेरा नमन है। आप मोक्षरूपी फलके अभिलाषी हो, केवलज्ञान नेत्रके धारक हो, स्याद्वादवाणीके प्रकाशक हो, धर्मतीर्थके स्वामी हो और मोक्षपदको प्राप्त करनेवाले हो इसलिये आपको मेरा अष्टांग नमस्कार है।६१-६३। आप अनध्यवसाय अज्ञानरूपी समुद्रके पारंगत हो, संसार समुद्रमें डूबने वाले भव्यजीवोंकी रक्षा करनेवाले हो सप्ततत्त्वोंके ज्ञाता दृष्टा हो अनंतवीर्यके धारक हो इसकारण आपको मेरा सविनय प्रणाम है। आप शांतिके कर्त्ता शंकर हो पापके हर्ता हर अर्थात् महादेव हो भवभवान्तरके सचित पापपुंजकोनाशकरनेवालेहो और केवलज्ञानकीमूर्ति हो इसलियेआपकेचरणारविंदमें मेरा नमस्कार है। ६४-६५। आप गर्भमें आये तब रत्नोंकी वर्षा हुई अतएव हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) हो आप ही ज्ञानद्वारा लोकमें व्याप्त होनेसे सत्याथ विष्णु हो आप ही भक्तजीवोंको चिन्तित पदार्थ देनेवाले कल्पवृक्षके समान हो इसलिये हे जिनेन्द्र ! आपको नमस्कार है।६६। इसप्रकार भांति २ के वचनोंसे सीमंधरस्वामीकी स्तुति करके नारदमुनि (बारह सभामें) मनुष्योंके कोठेकी तरफ बैठनेके लिये गये। परंतु वहांकी छवि को देख करके विचारने लगे यहां तो (बड़े लम्बे चौड़े ऊंचे) पांचसौ धनुषकी कायवाले मनुष्य बैठे हुये हैं और मेरा शरीर केवल दश धनुष ही ऊंचा और शक्तिहीन है। कहीं मैं इनके पांवके नीचे आकर दब गया तो मेरी मौतकी निशानी है इसलिये मुझे जिनेन्द्रके चरणकमलोंके पास ही बैठना ठीक है ऐसा

विचार कर नारद सीमंधरस्वामीके सिंहासनके नीचे जाकर निर्भय बैठ गये ।६७-७०। उसी समय जो चक्रवर्ती जिनेश्वरके साम्हने बैठा हुआ था, उसे नारदको सिंहासनके तले बैठा हुआ देख बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने अपना मस्तक बारंबार हिलाकर और बड़ी देरतक सोच विचार करके नारदको उठाकर अपनी हथेलीपर रखलिया ।७१-७२। यह कौन है ? और किस जातिका कीड़ा है ? जिसकी देहका आकार मनुष्यके समान है ऐसा विचार करते २ उस चक्रीको हृदयमें सन्देहको दूर करनेवाली यथार्थ बुद्धि उत्पन्न हुई कि जिनेश्वर समक्षमें विराजमान हैं तो भी मुझे सन्देह क्यों हो रहा है ? हाथमें पहने हुये कंकणको देखनेके लिये आरसीकी तलाशी करनी उचित नहीं है (कर कंगनको आरसी क्या ?) ।७३-७४। ऐसा विचारकर पद्मनाभी चक्रवर्तीने सीमंधरस्वामीको नमस्कार करके विनयपूर्वक पूछा, भगवन् ! मेरे चित्तमें एक भारी संदेह उत्पन्न हुआ है वह यह है कि:—आपने चार गति वर्णनकी हैं, अर्थात् देवगति, मनुष्यगति तिर्यंचगति और नरकगति, सो इन चारोंमेंसे यह जीव किस गतिका धारक है । ? ।७५-७६। तब देवाधिदेवकी दिव्यध्वनि हुई कि बुद्धिमान राजन् । सुनो ! यह मनुष्य है और भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुआ है ।७७। इसका नाम नारद है, यह पृथ्वीपर विख्यात बड़ा ज्ञानवान और चतुर है, श्रीकृष्णनारायणपर इसका अत्यन्त स्नेह है ।७८। जिनेन्द्रकी वाणीको सुनकर चक्रवर्तीने पुनः प्रश्न किया हे नाथ ! क्या भरतक्षेत्रमें इसीप्रकारके मनुष्य होते हैं ? मैंने तो इसे एक प्रकारका कीड़ा समझा था और आपके सिंहासनके तले बैठा देख कहीं किसीके पांवके तले आकर मर न जाय, ऐसा विचार कर अपने हाथकी हथेलीपर उठाकर रख लिया था ।७९-८०। तब जिनेन्द्रकी दिव्यध्वनि खिरी की, हे राजन् ! भरतक्षेत्रमें इस समय अवसर्पणीकाल वरत रहा है, इसके पीछे वहां जैसा होगा, सो सुनो—।८१।

भरतक्षेत्रमें उत्सर्पणी और अवसर्पणी कालका परिवर्तन हुआ करता है । इनमें प्रत्येकके अवान्तर

छह २ काल हैं . जिसमें अवसर्पणीके पहले कालमें मनुष्योंका शरीर तीन कोसका और आयु तीन पल्य की होती है। दूसरे कालमें मनुष्योंका शरीर दो कोसका और आयु दो पल्यकी होती है। तीसरे काल में शरीर १ कोस ऊंचा और आयु एक पल्यकी होती है। (वर्तमान) चौथे कालमें युगकी आदिमें प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभनाथ जिनेश्वर हुए थे, जिनकी आयु चौरासीलाख पूर्वकी थी और शरीर ५०० धनुष ऊंचा था इनके पीछे बहुतसा समय व्यतीत होनेपर श्रीअजितनाथादि मोक्षमार्गके परमोपदेशक २१ तीर्थंकर हुए हैं और उनके पश्चात् अब अवसर्पिणीके चौथे कालमें जो कि भारतवर्षमें प्रवर्त रहा है, हरिवंशको शोभाको बढ़ाने वाले श्रीनेमिनाथ स्वामी २२ वें तीर्थंकर जन्मे हैं। इनके समयमें मनुष्योंकी देह १० धनुष उंची है। ८२-८६। हे राजन्! यह देशव्रतका धारक नारद वहींसे मेरे पास आया है। चतुर्थकालके बीत जानेपर पांचवाँ काल आवेगा, जिससे मनुष्योंका शरीर ७॥ हाथ ऊंचा होगा और आयु १०० वर्षकी होगी। पश्चात् छठा काल आवेगा जिसमें मनुष्योंका शरीर १ हाथ ऊंचा होगा और आयु १६ वर्षकी होगी।९०-९२। यह सब कालचक्रके अनुसार घटा बढ़ी हुआ करती है।

भगवानकी वाणी सुनकर पद्मनाभि चक्रवर्तीने पुनः प्रश्न किया——भगवन्! ये नारद इतने २ बड़े पर्वतादिको उल्लंघनकर जिसका संकल्प भी नहीं किया जा सकता, ऐसे कठिनतासे प्राप्त होने वाले विदेहक्षेत्रमें कैसे किस कामके लिये और किसके पास आया है सो आप दयाकर प्रगट कीजिये। इस प्रकार जब रथांगके स्वामी पद्मनाभिचक्रवर्तीने प्रश्न किया, तब सीमंधरस्वामीकी बारह सभाके प्राणियोंकी धार्मिक रुचिको बढ़ानेवाली मनोहर दिव्यध्वनि खिरी——।९३-९६।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे यह नारद हरिवंशके राजा कृष्णनारायणके पुत्रकी खोजमें निकला है और उसका पता पूछनेके लिये मेरे पास आया है। श्रीकृष्णसे इसकी इतनी गाढ़ी प्रीति है कि, इसका चित्त उनके पुत्रके हरणकी खबर सुनकर बहुत ही आकुलित हो रहा है। इसने कृष्णपुत्रकी खोज

अनेक जगह की है, परन्तु कहीं भी ठिकाना नहीं लगनेसे यह मेरे पास पूछनेको आया है।९७-९८।

जिनेश्वरके वचनोंको सुनकर चक्रवर्तीने पुनः प्रश्न किया, भगवन्! आपने जिस कृष्णका नाम लिया है, उसका पराक्रम, बल, कुलादि कैसा है? निवासस्थान कहां है? उसका पुत्र कहां है? किस बैरीने उसका हरण किया है? वह अपने पिताके पास लौटकर कब आयेगा? ये समस्त वृत्तान्त आप वर्णन कीजिये।९९-२००। तब अनन्त लक्ष्मीके स्वामी श्रीसीमंधर जिनेन्द्रने दिव्यध्वनि द्वारा उत्तर दिया, बुद्धिशाली राजन्! तूने बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है, जिसके वृत्तान्तको सुननेसे श्रोता-गणोंका पाप नाशको प्राप्त होता है अतएव एकाग्र चित्त होकर सुनो, मैं वर्णन करता हूँ—।२०१।

भरतक्षेत्रमें द्वारिका नामकी एक नगरी है, जिसमें तीन खण्डका स्वामी (अर्द्ध चक्री) कृष्ण नारायण राज्य करता है, यह राजा यादववंशियोंका शृंगार है और हरिवंशमें शिरोमणि है। इसकी प्राणप्रिया रुक्मिणी रानी है। इतना सुनकर चक्रवर्तिने पुनः निवेदन किया, भगवन्! आप प्राणियोंकी वांछा पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षके समान हो, और मेरी अभिलाषा कृष्णनारायणके पुत्रके चरित्रको श्रवण करनेकी है। इसलिये दया करके उसका चरित्र आदिसे अन्ततक वर्णन करें। चक्रीकी प्रार्थनाको सुन कर सीमंधरस्वामीने कहा, हे भूपाल! मैं कृष्णपुत्र (प्रद्युम्न) का पापका नाश करनेवाला चरित्र वर्णन करता हूँ, ध्यानसे सुनो—।२-६।

द्वारिकापुरीमें यदुवंशियोंके कुलमें विचक्षण कृष्णनारायण राज्य करते हैं, जिनकी रुक्मिणी नामकी जगद्विख्यात रानी है। रानीको एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे वह साथमें लेकर जन्मसे छट्ठे दिन रात्रिके समय महलमें सो रही थी। उस समय पूर्वभवका एक दुष्ट बैरी दैत्य उस बालकको हरकर ले गया सो उसने तक्षक पर्वत पर खदिरा अटवीमें ले जाकर तथा पुरातन बैरको चितारकर एक बड़ी भारी शिलाके नीचे दाब दिया। पीछे उसी जगह विद्याधरोंका राजा कालसंवर अपनी

कनकमाला रानी सहित आया। सो उसने शिलाको हिलती देखकर उठाई। उसके नीचे एक मुसकराते हुए बालकको देखकर राजाने उसे अपने हाथोंमें ले लिया और रानी सहित उसको विमानमें बैठाकर अपने घर ले आया। वहां वह बालक बड़ा हो रहा है।७-११। जिसप्रकार शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला प्रति दिन बढ़ती है, उसी प्रकार उस बालकका कला कौशल्य दिनोंदिन बढ़ता जाता है। वह बालक प्रद्युम्न नामसे जगतमें विख्यात है।१२। जब वह शुभ लक्षणोंका धारक सोलह वर्षका हो जायगा, तब सोलहप्रकारके लाभ और दो विद्याओं सहित द्वारिकाको आवेगा और अपने माता पिता से मिलेगा। प्रद्युम्नकुमारके घर आते ही जो २ शुभसूचक घटनायें होंगी, सो इस प्रकार हैं—रुक्मिणीके स्तनोंमेंसे आप से आप दूध झरने लग जायगा, बनके वृक्षोंमें सब जातिके फलफूल आ जायेंगे, कमलोंके समूह प्रफुल्लित हो जांयगे, घरकी बावड़ी जो सूख रही है, जलसे भर जायगी, घरके साम्हने जो अशोक वृक्ष सूखा खड़ा हुआ है, सो भी ऊपरसे नीचे तक हराभरा हो जायगा पुष्पोंके गुच्छों वा फलोंके भारसे झुक जायगा। उसपर सुगंधलोलुपी भ्रमरगण गुंजार करेंगे। इसी प्रकार दूसरे वृक्ष भी जो घरके बगीचेमें लग रहे हैं, अपनी २ ऋतुका समय उल्लंघनकर एकदम फूल फल उठेंगे। कोयलके मीठे मनोहर शब्द सुनाई देंगे, नाचते हुए मोर ऐसे सुशोभित होंगे मानों ताण्डव नृत्य करते हों, उपवनमें आमके वृक्षोंमें मोर आ जायगा और फल भी लग जांयगे। जिनको देखकर सबका चित्तप्रफुल्लित हो जायगा। गूंगे आश्चर्यजनक वाणी बोलने लगेंगे कुबड़े(कुब्ज)मनुष्योंका शरीर सीधा हो जायगा काने और अंधे दोनों आँखोंसे भलीभांति देखने लग जांयगे कुत्सित (विकराल) नेत्रवाली स्त्रियें मृगलोचनी बन जांयगी कर्कशकंठवालोंका गला सुरीला हो जायगा कुरूप पुरुष रूप-वान हो जांयगे अशुभ लक्षणधारक शुभ लक्षणवाले बन जांयगे बेडौल मनुष्य सुडौल हो जांयगे और बहरे सुनने लग जांयगे और रुक्मणी रानीके शरीरभरमें रोमांच होने लगेगा। हे राजन्! जब

प्रद्युम्नकुमार अपने घर आवेगा, तब उपर्युक्त सब घटना होंगी इन सूचकों द्वारा समझ लेना कि ।१४-२५। उसका समागम होनेवाला है । और जो तेरी मनोहर हथेलीपर बैठा हुआ है वह जगन्मुन्य प्रसिद्ध नारद मुनि है । यह नवमा अधोवदन नामका नारद मोक्षमार्गमें निपुण है, देशव्रतका धारक है और यहां कृष्णनारायणके हितार्थ उसके पुत्रकी वार्ता सुननेको आया है, सो मैंने संक्षेप में वर्णन की है ।२६-२८।

तब पद्मनाभि चक्रवर्तिने सीमंधर स्वामीको नमस्कार करके निवेदन किया, हे कृपासिन्धु ! आप दया करके कृष्णपुत्र प्रद्युम्नकुमारका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाइये कि, उसका जन्मान्तरमें दैत्यसे बैर होनेका क्या कारण है, और उसने उस समय क्या २ पुण्य पाप उपार्जन किये हैं ।२९-३०। तब सीमंधर स्वामीने सप्तभंगीस्वरूप दिव्यध्वनिसे उत्तर दिया—।३१।

जम्बूद्वीपमें जगत्प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है जिसमें मगध नामका रमणीय देश है । उस देशमें शालिग्राम नामका एक विख्यात नगर है । एक समय इसी नगरमें सोमदत्त नामका एक रूपवान विप्र रहता था, जिसको अपनी जाति और कुलका बड़ा घमण्ड था । उसकी अग्निला नामकी सुप्रसिद्ध रूपवती स्त्री थी ।३३-३४। इनके दो पुत्र थे जो वेदशास्त्रके पारगामी, नवजवान, धनधान्यसम्पन्न, बलवान, अपनी जाति वा कुलका घमण्ड रखनेवाले, तीन जगतको तृणके समान गिननेवाले और विद्याविभवसंयुक्त थे । प्रथम पुत्रका नाम अग्निभूति और दूसरेका वायुभूति था । ये दोनों भाई मिथ्यामतावलम्बी और जैनधर्मसे सर्वथा परांगमुख थे । ३५-३७। इन्होंने बहुतसे अज्ञानी भोलेभाले जीवोंको बहका करके अपने धर्ममें शामिल कर लिया था । कारण यह स्वभावसे ही पदार्थोंके स्वरूपको विपरीत घटित करनेमें निपुण थे ।३८। ये दोनों भाई प्रसन्नचित्त, स्मृतिशास्त्रके ज्ञाता और धर्मतीर्थके प्रवतक श्रीवासुपूज्य तीर्थंकरके समयमें हुये थे । जब ये घमण्डी अग्निभूति वायुभूति

मगधदेशमें तिष्ठे थे, उसी समय एक दूसरी मनोहर घटना हुई, जो इस प्रकार है:—।३९-४०।

मगधदेशके बाहर रमणीक वनमें श्रीनंदिवर्द्धन नामा मुनीश्वर शिष्यवर्ग सहित पधारे, जो कामके नाश करनेवाले, सर्वशास्त्रोंके पारगामी, ज्ञाननेत्रके धारक, गंभीर वाणीके बोलनेवाले, अनेक प्रकारकी लब्धिकर शोभायमान और मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्तिके पालनेवाले थे ।४१-४२। वे यथोचित क्रिया कर्म करनेके बाद बनमालीसे बिना पूछे वहां जो अशोक वृक्षके नीचे एक निर्जन्तु स्वच्छ शिला पड़ी हुई थी उसपर विराज गये और पठन करने लगे।४३-४४। इतनेमें वनमाली आया और बगीचे की अद्भुत शोभाको देखकर अचंभित हो गया। परन्तु तत्काल ही उसने अशोक वृक्षके नीचे विराजे हुए मुनिराजको देखकर निश्चय कर लिया कि, यह सब इन्हींका प्रभाव है। मालीने मुनि महाराजको प्रणाम कर गुरुभक्तिसहित उनकी प्रदक्षिणा की ।४५-४७। इसप्रकार जब नंदिवर्द्धन यतीश्वर सर्व शुभ लक्षणोंके धारक, समुद्रके समान गंभीर बुद्धिवाले, सुमेरुके समान स्थिर, पापरूपी वृक्षको उखाड़नेवाले अष्टमदरूपी गजको सिंहके समान परीषहरूपी बड़े २ वैरियोंको जीतनेके लिये महासुभटके समान, सर्व परिग्रह कर रहित, गुणसम्पदासहित, यथार्थ मोक्षमार्गके दर्शानेवाले, मतिश्रुत-अवधिज्ञानसे सुशोभित वहीं विराजे ।४८-५०। जब मगधनिवासियोंको मालूम हुआ कि मुनिमहाराज उपवनमें पधारे हैं, तब वहांके जिनधर्मधुरंधर तथा जिन शासनश्रद्धालु सज्जन भक्तिभावसे वंदनाके लिये आये। उनके सिवाय बहुतसे लोग लोकलाजसे गये, बहुतसे दूसरोंके बुलानेके कारणसे गये और बहुतसे माध्यस्थ भावसे (समभावसे) कौतूहल देखनेके लिये गये। सो ठीक ही है, समस्त प्राणियोंके चित्तकी वृत्ति एकसी नहीं रहती ।५१-५३।

अच्छे २ वस्त्र पहने हुये और अनेक प्रकारके उत्सव करते हुए नगरवासियोंको वनकी तरफ जाते देखकर ब्राह्मणपुत्र अग्निभूति और वायुभूतिने विनोदके साथ किसी श्रावकसे पूछा, कहो ! आज

सब लोग बढ़िया २ वस्त्राभूषण पहनकर बनकी तरफ कहां जा रहे हैं ? तब उस श्रावकोत्तमने उत्तर दिया, क्या तुम अभी आकाशसे पृथ्वीपर पड़े हो, यह नहीं जानते कि सर्व शास्त्रके पारगामी अनेक ऋद्धिके धारक मनुष्य वा देवोंके पूजने योग्य मुनि महाराज वनमें पधारे हैं और उन्हींकी वंदनाको सर्व सज्जन जा रहे हैं श्रावकके वचनोंको सुनकर द्विजपुत्र बोल उठे—अरे मूर्ख शिरोमणि ! तू क्या निंदा के योग्य वाक्य मुंहसे निकालता है। दिगंबर तो जगतनिंद्य होते हैं, उनका शरीर मलीन होता है, वे मूर्ख होते हैं, वेद शास्त्रको बिलकुल नहीं जानते हैं, उनको साधु कैसे कह सकते हैं ? जो विप्रोंके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ हो, वेदोंका पाठी हो, बुद्धिवान हो, तरणतारण समर्थ हो, वही साधु कहा जा सकता है।५४-६१। हे शठ ! इसलिये पृथ्वीतलपर हम ही पूज्य हैं, मूर्ख मनुष्य दिगम्बरोंकी बंदनाको वृथा ही क्यों जाते हैं।६२। तब श्रावकने जिसका हृदय मुनिभक्तिसे भीजा हुआ था, उत्तर दिया—अरे दुष्टों ! तुम धर्म कर्मकी क्रियासे रहित हो, गृहस्थदशामें पड़े हुए हो, स्त्रियोंके मोहमें फंसे हुए हो, निंदाके पात्र हो भला तुम कैसे साधु कहलाये जा सकते हो ?।६३ ६४। जिनकी चरणकमल की रजसे भव्यजीवोंने अपनी देह पवित्र की है तथा जो निःसंदेह स्वर्गादिकके सुख भोगकर परम्परा से मोक्षको प्राप्त होते हैं वे ही सच्चे साधु जगत्पूज्य हैं। सर्व प्राणियोंके हितके कर्ता हैं, लोकनिंदामें मौन धारण करनेवाले हैं और कामवार्तासे रहित हैं। ऐसे साधु ही जगतसे स्वयं तिरने और दूसरोंको तारनेमें समर्थ हैं। पंचेंद्रियोंके विषयोंमें आसक्त तुम्हारे समान विप्र कदापि साधु नहीं कहे जा सकते।६५-६८। हे द्विज पुत्रों ! साधुकी निंदा करते हुए तुम्हारी जिह्वाके सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं होगये ? इसका हमको बड़ा आश्चर्य है।६८। श्रावकके ऐसे वचन सुनते ही द्विजपुत्र बड़े कुपित हुए। क्रोधसे उनकी आंखें वा नेत्र लाल हो गये। जोशमें आके वे बोले—"इस मूर्खसे वाद विवाद करनेमें क्या फायदा है ? हम दिगम्बरोंसे ही जाकर वाद करेंगे" ऐसा कहके वे तो अपने घर आये और श्रावक वनकी ओर

चला गया ।६९-७१।

घरमें आके द्विजपुत्रोंने अपने मातापिताके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा "पिताजी ! अपने शहरके निकट वनमें मूर्ख दिगम्बर आये हैं, सो उनसे वाद विवाद करनेके लिये हम जाते हैं । कारण यदि वे जिनधर्मके प्रकाशक वेद शास्त्रके शत्रु दो तीन दिन भी वनमें रहेंगे तो अनेक मनुष्य वेद शास्त्र से विमुख हो जांयगे । क्योंकि वे जैनशास्त्रको अच्छी तरह जानते हैं इससे वेद शास्त्रोंकी बातोंको मूलसे उखाड़ देंगे । इसलिए हमारा विचार है कि हम वेद शास्त्रके बलसे वाद विवादमें हरा देवें । फिर वे वनमें क्षणमात्र भी नहीं ठहरेंगे" ।७२-७५। तब माता पिताने कहा "पुत्रों तुम वनमें मत जाओ कारण दिगम्बर साधु बड़े चतुर होते हैं नाना देशोंमें विहार करते रहनेसे वे बड़े अनुभवी हो जाते हैं, सर्व शास्त्रोंके पारगामी होनेसे वे शास्त्रार्थमें निपुण होते हैं, और प्रतिदिन पठन पाठनमें लगे रहते हैं । इससे जगतमें किसकी सामर्थ्य है, जो ऐसे दिगम्बर साधुओंसे विवाद करें" ? ।७६-७७। गर्वसे भरे हुए पुत्रोंने माता पिताके उक्त वचनोंपर ध्यान नहीं दिया । वे मूर्खतासे घमण्डमें चकचूर होकर बोल उठे—"हम दोनोंको विद्या वा वादमें जीतनेवाला पृथ्वीपर है ही कौन ? आप ऐसे दीन वचन क्यों कहते हो ? देखो ! हम अभी वनमें जाते हैं और उन्हें वादमें जीत लौटकर आते हैं" ऐसा कहकर वे दोनों द्विजपुत्र माता पिताके समझाने और मना करनेपर भी घरसे बाहर निकलकर वनकी ओर चले ही गये ।७८-८०।

जो श्रीनन्दिवर्द्धन मुनिराज वनमें विराजे हुए थे और जिन्हें शिष्यगण सुन्दर शृंखलाके समान घेरे बैठे हुए थे, उनको वादमें जीतनेकी अभिलाषासे अग्निभूति वायुभूति द्विजपुत्र वनकी तरफ जा रहे थे । रास्तेमें वे परस्पर बड़े अभिमानसे बातचीत करते जाते थे (कि हम मुनियोंसे ऐसा कड़ा प्रश्न करेंगे, देखें कैसा उत्तर देते हैं) ।८१-८२। रास्तेमें एक पहाड़ी पड़ती थी, जिसकी तलैटीमें एक

सात्विक मुनि तिष्ठे हुए थे। उन्होंने जब द्विजपुत्रोंको घमंडमें बड़बड़ाते हुए जाते देखा, तब पूछा, कहो तुम दोनों बड़े अभिमानसे कहां जारहे हो तब ब्राह्मणोंने बड़े जोशसे जवाब दिया "हम नन्दिवर्द्धन नामके यतिको वादमें जीतनेके लिये जारहे हैं" ।८३-८५। तब सात्विक मुनिने विचारा कि नन्दिवर्द्धन मुनिवर दयाके सरोवर हैं, अनेक यतिरूपी हंसोंकर सेवित हैं, और तपश्चरणकर अत्यन्त निर्मल हैं। उस सरोवरको गँदला करनेके वास्ते ये दोनों भैंसे घमंडमें चकचूर होकर जारहे हैं, यह ठीक नहीं है। इन्हें किसी तरहसे यहीं रोक देना चाहिये ऐसा विचारकर उन्होंने कहा, द्विजपुत्रों ! इधर मेरे पास आओ और कुछ वाद विवाद तुम्हें करना हो, मुझसे करो। मैं बहुत शीघ्र तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा ।८६-८८। जब विप्रपुत्रोंने मुनिके शास्त्रार्थ करनेके वचन सुने, तब वे मदोन्मत्त होकर उनके पास आये और बोले, अरे लज्जाहीन ! वेदशास्त्रपराङ्मुख ! तू क्या निंद्य वचन निकालता है, यदि तू ज्ञानवान, गुणवान विद्यावान हो तो हमसे वाद विवाद करनेके लिये तैयार हो जा ।८९ ९१। क्रोधमें लाल ताते होकर ब्राह्मण फिर बोले, रे मूढ़ ! गर्वके वचन मुंहसे निकालनेमें क्यासार है विद्वानोंकी मडलीके बीचमें तू हमें विवादमें परास्त करेगा ऐसी कल्पना करना भी निरर्थक है। कारण हम पहले ही कह चुके हैं कि तेरी क्या सामर्थ्य है दूसरी बात यह है कि, जब अपना विवाद होने ही वाला है तो जो हारेगा उसपर क्या दण्ड किया जायगा इस बातका भी निश्चय प्रथम ही सज्जन मण्डलीमें हो जाना आवश्यक है। कारण बिना किसीकी साक्षीके विद्वज्जनोंको विवाद करना उचित नहीं है ।९२ ९५। तब सात्विकि मुनिने उत्तर दिया, द्विजपुत्रों ! तुम्हें जो रुचे, सो प्रतिज्ञा विद्वानोंकी सभामें करो, मुझे वह स्वीकार है ।९६। तब द्विजोंने जोरसे उत्तर दिया, हे शठ ! "यदि विद्वानोंके सामने तू हम दोनोंको विवादमें हरा देगा, तो हम इस बातका नियम करते हैं कि, तुम्हारे चेले बन जांयेंगे और यदि हम दोनों भाई तुम्हें हरा देंगे, तो सच समझो तुम इस देशकी सरहदसे बाहर निकाल दिये जाओगे,

क्षणमात्र नगरमें नहीं रहने पाओगे," तब सात्विक मुनिराजने कहा, विप्रों ! जो कुछ तुम दोनोंने कहा है, वह मुझे अक्षरशः प्रमाण है । इसप्रकार द्विजपुत्र और मुनिराज सभाके सामने वचनबद्ध हुए और स्पर्द्धा करते हुए तिष्ठे ।९७-३०१।

जब नगरवासियोंने सुना कि मुनि और द्विजपुत्रोंका विवाद होनेवाला है, तब वे दौड़े चले आये । शास्त्रार्थके सुननेकी अभिलाषासे मनुष्योंकी भीड़ लग गई । चहुँ ओरकी जगह खूब भर गई । जब सभामें सब लोग अच्छी तरहसे बैठ गये तब प्रसंग देखकर मुनिराज योग्यतासे और सरसतासे बोले, द्विजपुत्रों ! उद्धतताको छोड़कर प्रथम तुम्हीं मुझसे कोई प्रश्न करो । यदि किसी शास्त्रमें कहीं भी किसी प्रकारका तुम्हें संदेह रहा हो तो अपनी शंका प्रगट करो मैं उसका उत्तर दूंगा ।२-५। द्विजपुत्रोंने मुनिके वाक्य बड़े घमण्डसे सुने और अभिमानके आवेशमें आके मुस्कराके कहा–रे मूढ़ पहले हमको नमस्कार कर और फिर यदि तेरे दिलमें किसी पदार्थके स्वरूपके समझनेमें सन्देह रहा तो हमसे पूछ । यदि तू हमारे चरणोंमें झुकेगा और अपना सन्देह प्रगट करेगा तो हम अवश्य तेरे प्रश्नका उत्तर देंगे ।६-८। मुनिवर इन (असभ्यताके) वचनोंको सुनकर रंचमात्र क्रोधित नहीं हुए और बोले:– "ठीक है, मैं तुमसे पहले एक बात पूछता हूँ—कि तुम दोनों कहांसे आये हो ?" । ९ । मुनिके प्रश्नको सुनते ही द्विजपुत्र हँसे और बोले रे मूढ़ ! क्या तू इतना भी न जान सका हम ग्रामसे आये हैं यदि इतनी मोटी बात भी न जानी तो कुछ न जाना । मालूम होता है कि तू सूर्य चन्द्रमाको भी न जानता है ।१०-११। तब सात्विक मुनिराजने जवाब दिया:–मैं यह अच्छी तरहसे जानता हूँ कि तुम दोनों ग्रामसे आये हो और सोमशर्मा विप्रके पुत्र हो इत्यादि तुम दोनोंके विषयमें मैं सब कुछ जानता हूं । परन्तु मेरा यह प्रश्न नहीं है, मैं तो यह पूछा है कि "परभवको किस पर्यायको छोड़कर तुम दोनों यहां आये हो" ।१२-१३। तब विप्रपुत्र बोले–क्या कोई ऐसा ज्ञानवान है जो पूर्वभवकी बात

बता सके जो तू भरी सभाके भीतर ऐसा प्रश्न करता है, इसीसे जाना जाता है कि, हमारे कहे अनुसार वास्तवमें तू शठ ही है ।१४-१५। तब मुनिमहाराज बोले, विप्रों ! यदि तुम अपनी ही बात नहीं बता सकते हो, तो दूसरेकी बात क्या बता सकोगे ? हम तुम्हारे साथ क्या विवाद करें ।१६। तब विप्रोंने उत्तर दिया, हम तो परभवकी बात कुछ कह नहीं सकते हैं । हे मूढ़ ! यदि तू जानता है, तो जल्दी कह ! ।१७। तब मुनिराजने कहा, द्विजपुत्रों मैं समस्त सभाके समक्षमें तुम दोनोंके भवान्तर वर्णन करता हूँ । तब विप्र कुपित हुए और बोले, हे दिगम्बर शठ यदि तू यथार्थ जानता हो, तो कह ? तब सात्विकि मुनिराजने समस्त सज्जन मण्डलीमें कहा कि, मैं इन दोनों विप्रपुत्रोंकी भवान्तरकी वार्ता कहता हूँ, जो विश्वास करने योग्य है, अतएव ध्यानसे सुनो—१८-२०।

पहले इस शालिग्राम नामके गांवमें प्रवर नामका एक धनाढय ब्राह्मण रहता था, जिसका खेती करनेका धन्धा था ।२१। उसके पास एक बड़का वृक्ष (वटवृक्ष) था, जिसके नीचे कर्मके योगसे दो श्याल रहा करते थे ।२२। मृतकोंका मांस खाकर वे अपनी गुजर करते थे और आनन्दसे रहते थे। कुछ काल व्यतीत होनेके पश्चात् एक दिन प्रवर ब्राह्मण (किसान) जब जलवृष्टि होनेके आसार दिखाई पड़ रहे थे, हल बखर आदि खेतीके सामानकी चीजें और नौकरों चाकरों समेत खेतकी तरफ जा रहा था । जब रास्तेमें उसने आकाशकी ओर दृष्टि की, तब बादल घटाटोप बाँधे हुए गड़गड़ाहट आवाज करते हुए गरज रहे थे और रंगबिरंगे इन्द्रधनुष्यको खींच रहे थे । मानों संसारको ताप करने वाले शत्रुस्वरूप ग्रीष्म ऋतुको ही घुड़क रहे हैं । सीत्कार शब्दमिश्रित सनसनाहट शब्द करती हुई पवनने पृथ्वीतल कम्पायमान कर रक्खा था । इतनेहीमें मेघोंसे लगातार पानी बरसने लगा । जिससे प्रवर विप्र पानीसे बिलकुल भींज गया, उसे बड़ा दुःख हुआ । उसके हाथ पांव ढीले पड़ गये, इसकारण वह खेतका सामान वहीं पटकके कांपता हुआ अपने घर लौट आया । उसी समयसे ७ दिनतक लगातार

मूसलधार जलवृष्टि होती रही। पानीके मारे आजीविकाके साधनके लिये बाहर न निकलनेके कारणसे प्राणीमात्र भूखसे व्याकुल हो रहे थे। श्यालका जोड़ा भी भूखसे अतीव दुःखी हो रहा था। जब आठवें दिन पानी कम हुआ, तब दोनों श्याल वहांसे निकले। उन्होंने खेतमें पड़ी हुई और पानीमें भीजी हुई एक रस्सी देखी। कड़ी भूखके मारे वे उसे खा गये, जिससे उनके उदरमें शूलकी बड़ी भारी वेदना उठी और अन्तमें चारोंदिशाओंमें पैर तानके वे मरणको प्राप्त हो गये। और उन्हीं दोनों के जीव सोमसर्मा विप्रके यहां (तुम दोनों) पुत्ररूप उत्पन्न हुए हो।२३-३३। इसप्रकार पूर्वभवके श्याल इस भवमें द्विज हुए हैं, इसीलिये कहते हैं कि, संसारमें न किसी मनुष्यकी उत्तम जाति है और न किसी की नीच। ये प्राणी अपना भोगा हुआ सुखदुःख भी तो जानते नहीं हैं और जातिका मद करते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है।३४-३५। देखो ! पूर्वभवमें श्याल पर्यायमें जो अशुद्ध रस्सीका भक्षण करके प्राणान्त हुए हैं, वे ही द्विजपुत्र विद्वानोंके सन्मुख मान शिखरपर चढ़ रहे हैं।३६। हे विप्रों ! जो तुम्हारे वैराग्यका कारण है, उसे तुमने क्यों विसार दिया ? क्योंकि यह जीव भवभवान्तरमें जैसे पुण्यका संचय करता है, उसीके अनुसार मिष्ट फलको भोगता है।३७। जो जीव समीचीन (यथार्थ) धर्मसे विमुख रहता है, वह जाति, रूप, कुल, सौभाग्य, धन, धान्यसे भी वर्जित रहता है और उसे विद्या, यश, बल, लाभ आदि उत्तमोत्तम पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं होती। धर्मविहीन प्राणी उत्तम सुखका भागी नहीं होता।३८-३९। सत्यार्थ धर्मके प्रभावसे यह जीव उत्तम अंगका, उच्चकुलमें जन्म लेनेवाला विद्यावान, धनवान, सुखी, देवपूजामें तत्पर रहनेवाला, सबजीवोंपर दया करनेवाला, सर्वका हितैषी और क्रोध मान कषायकर रहित होता है।४०-४१। इसलिये तत्त्वज्ञानियोंको प्रथम ही धर्म अधर्मका स्वरूप भली भांति समझ लेना चाहिये और पापको दूर ही से छोड़कर अपने चित्तको धर्ममें लगाना चाहिये।४२। हे द्विजपुत्रों ! यदि तुम यों कहो कि परभवकी वार्ता जो वर्णन की गई है हमें याद नहीं आती, तो मैं

सब मनुष्योंके साम्हने उसे प्रत्यक्ष किये देता हूँ ।४४।

प्रवर किसान, जिसका ऊपर वर्णन कर चुके हैं, पानी बरसना बन्द होनेके पश्चात् अपने खेत की दशा देखनेके लिये गया तो उसे मालूम हुआ कि हल आदि खेतीका सामान प्रचण्ड पवनके झकोरेसे इधर उधर बिखरा पड़ा हुआ है और रस्सी आदि कुचली वा खाई हुई पड़ी है । फिर वहीं कुछ आगे उसने गिरे हुए प्राणरहित दो श्याल देखे । तब वह विप्र निर्दयतासे उनपर कुपित हुआ और उनकी खाल खिंचाकर तथा भस्त्रा (भातड़ी) बनाके अपने घर ले आया तथा अपने घरके छप्पर की खूंटीसे कसके बांध कर निश्चिन्त हो गया ।४४-४८। वह खाल अभीतक वहीं बँधी हुई है । यदि किसीको विश्वास न हो, तो इस गूंगेके घर जाकर यह कौतुक देख आओ ।४६। जो प्रवर नामका विप्र था, उसने अनेक यज्ञ होम जाप्यादि किये थे । इस कारण आयुके अन्तमें मरकर वह मोहके वशसे अपने पुत्रकी स्त्रीके उदरसे उत्पन्न हुआ ! सो इस बालकको अपने घरकी जमीन देखते ही जाति-स्मरण हो गया । पूर्व भवकी बात याद आनेसे वषाद करके वह विचारने लगा:—अब मैं क्या करूं ? मेरी सब आशा नष्ट हो गई । मोहकी पाशमें फँसके मैं अपने ही पुत्रका पुत्र हुआ हूं । यह पापका ही प्रभाव है । अब मैं अपने ही पुत्रको पिता और पुत्रवधूको माता कैसे कहूं ? ऐसी बात बोलते मुझे लज्जा आती है अब क्या करूं और क्या कहूं, ऐसी चिन्ता करते २ उसे विचार उत्पन्न हुआ कि गूंगा बनकर मैं अपनी लज्जाको निभा सकूंगा । तदनुसार बाल्यावस्थासे ही उस बालकने मौन धारण कर लिया और वैसी ही गूंगी अवस्थामें बढ़ते हुए वह यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ । ५०-५७। हे द्विजपुत्रों अपना वाद विवाद सुननेकी अभिलाषासे वही मूक विप्र मनुष्योंके साथ यहां आया है और इस सभामें देखो, वह बैठा हुआ है ।५८। तब दयासिन्धु श्रीसात्विकि मुनि महाराजने सब मनुष्योंके सामने उस मूक विप्रको बुलाया—हे प्रवरके पुत्र इधर आ तूने अज्ञानतासे वृथा ही क्यों मौन धारण

कर रक्खा है ? उसे छोड़ दे । ५६-६०। और अपने अमृतस्वरूप वचनोंसे बंधुवर्गों को आश्वासन दे। संसारकी ऐसी ही विचित्र लीला है कि, जो अपनी पुत्री है वह माता हो जाती है, पिता पुत्र हो जाता है, मालिक सेवक हो जाता है, सेवक मालिक बन जाता है, पुत्रबधू पुत्री बन जाती है, पुत्री माता हो जाती है, धनवान निर्धन हो जाता है, दरिद्री धनाढय हो जाता है। कुत्ता देव और देव कुत्ता हो जाता है, यह सब कर्मकी विचित्रता है ऐसा जानकर बुद्धिवानोंको हर्ष तथा शोक नहीं करना चाहिये ।६१-६४। अब सर्वत्र सुखका देनेवाला और संसारके भयको नष्ट करनेवाला एक धर्म ही करना चाहिये जिससे अन्य जन्ममें पापके फलसे उत्पन्न होने वाले और बंधुओंका वियोग करनेवाले भयंकर दुःख फिर न देखना पड़े ।६५-५५।

श्रीसात्विकि मुनिराजके वचन सुनके गूंगे विप्रने उनका बहुतवार अभिनन्दन किया। उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा निकलकर टपकने लगी। वह दोनों हाथ जोड़कर मुनिवरके चरणोंमें मस्तक धर कर बड़े विनयसे बोलाः–"हे कामरूपी गजेन्द्रको सिंहके समान साधु शिरोमणि आप मेरी प्रार्थना सुनियेः–हे स्वामी संसार समुद्रसे पार करनेवाली जिनदीक्षा मुझे शीघ्र ग्रहण कराइये। मुझे इस असार संसारके बन्धुजन, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, धान्य से कुछ प्रयोजन नहीं है। हे भगवन्! मैंने अच्छी तरह इस बातका अनुभव कर लिया है कि यह असार संसार तृणके समान त्यागने योग्य है इसलिये जिससे भववास बसेरा मिट जाय ऐसी जिनदीक्षा मुझे प्रदान करिये" ।६७-७१।

सात्विकि मुनिराजने बोलते हुए मूक विप्रको दीक्षा लेनेमें तत्पर देखकर कहा—"पहले तुम अपने माता पिता वा कुटुम्बियोंसे मिलो। उनकी आज्ञा ले आवो तत्पश्चात् तुम्हें दीक्षा दी जावेगी"। मुनिराजके वचनों का उल्लंघन करना ठीक नहीं है ऐसा जानकर तत्काल वह मूक विप्र अपने घर गया। अपने कुटुम्बियों से मिला और बात चीत करने लगा। उसको देखकर माता पितादिक सब

रोने लगे कि बेटा ! तू किसके बहकानेमें आ गया था जो आज पर्यन्त मौन साधके गूंगा बन रहा था ? ।७२ ७४। तब वह सबसे क्षमा मांगकर बोला कि मैंने मोहकर्मको उत्पन्न करनेवाली अनेक चेष्टायें की थीं जिससे मरके मैं अपने पुत्रका ही पुत्र हुआ हूँ । जाति स्मरण होनेसे मैंने यह बात जानी तब लज्जावश मैंने यह समझके चुपकी साध ली कि मैं अपने पूर्वभवके पुत्र वा पुत्रवधू को अब पिता वा माता नहीं कह सकता ।३७५। अब मैं संसारका विनाश करनेवाली जिनदीक्षा स्वीकार करूंगा । कारण जब तक प्राणी संसारके जालमें फंसा रहता है तबतक अनेक प्रकारके सुख दुःख उच्च नीचपन को प्राप्त होता है ।३७६। यह जीव अकेला ही अपने कमाये हुए पुण्य पापके अनुसार सब दुःख पाता है अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरणको प्राप्त होता है ऐसा जानकर संसारका कारण मोह कदापि नहीं करना चाहिये । इसलिये मैं अपने आत्मकल्याण के लिये वीतराग दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करूंगा ।३७७-७८। ऐसा कहके उस विप्र पुत्रने अपने कुटुम्बियोंसे क्षमा मांगी और उसने भी सब पर क्षमा की और वहांसे वनको रवाना होगया ।

वनमें जाके मूक ब्राह्मणपुत्रने सात्विकि मुनिराजके चरण कमलमें नमस्कार किया और उस बुद्धिशालीने गुरुकी आज्ञासे बड़ी रुचिके साथ व्रत ग्रहण किये ।३७९। जब सभामें बैठे हुए सभ्य पुरुषोंने ब्राह्मणको जिनदीक्षा लेते देखा तब कई भव्य जीवोंको सम्यक्त्व हो गया, कई सज्जनोंने गार्हस्थ्य धर्म अङ्गीकार किया । भावार्थः—कई सत्पुरुषोंने महाव्रत धारण किया और कई धर्मानुरागियों ने बारह प्रकारका गृहस्थियोंका व्रत स्वीकार किया । कई भाइयोंने जिनपूजनकी प्रतिज्ञा और कई महानुभावोंने ब्रह्मचर्य ग्रहण किया ।८०-८१। इसप्रकार इधर तो अनेक सज्जनोंने धर्म ग्रहण किया और उधर जो कौतुकी श्रावक लोग मुनिके वाक्योंको सुनकर प्रवर विप्रके घर गये थे, वे शीघ्र ही उसके घरसे चमड़ेके भस्त्रे (भाथड़ी) ले आये और उन्हें सब मनुष्योंको दिखाये, जिनको देखकर मुनिवाक्योंमें

सबको दृढ़ श्रद्धान हो गया। उन भस्त्राओंको देखते ही अग्निभूति और वायुभूति दोनों घमण्डी द्विजपुत्रोंका मान गलित हो गया—मुँह उतर गया, उन्होंने लज्जासे अपना मस्तक नीचा कर लिया, उनका कला कौशल्य और वाक्प्रपच सब उड़ गया।८२-८४। और सब लोगोंने उन्हें धिकार! धिक्कार! किया तब वे अपना मुँह छुपाकर चुपचाप अपने घर चले गये।

जब द्विजपुत्रोंके मां बापने (सोमशर्मा और अग्निलाने) अपने पुत्रोंको आया जाना, तब वे क्रोधसे तप्तायमान होकर जोरसे बोले, रे रे। पापी कुपुत्रों! तुम हारकर आये हो, यहांसे चले जाओ, हमें मुंह न दिखावो।८५-८६। हमने तुम्हें बहुत द्रव्य व्यय करके अनेक शास्त्र पढ़वाये, तो भी तुम दिगम्बरसे वनमें शास्त्रार्थमें हार गये? रे रे मूढ़ कुलक्षणधारी पुत्रों तुम्हारे निमित्तसे पढ़ाने लिखाने पालने तोषनेमें जो द्रव्य हमने खर्च किया है, वह सब व्यर्थ ही गया। तुम दोनोंको हमने पहले ही मना कर दिया था कि, वनमें मत जाओ। परन्तु तुमने हमारा कहा नहीं सुना। यदि वनमें गये थे, तो हारके मुंह दिखाने इस नगरमें क्यों आये? रे मूर्खों यदि तुम मुनिको शास्त्रार्थमें न जीत सके थे, तो शस्त्रसे (हथियारसे) तो जीतना था? परन्तु तुमसे यह भी नहीं बना, धिक्कार है तुम्हें।३८७-३९०। माता पिताके वचनोंको सुनकर अग्निभूति वायुभूति लज्जित और कुछ संतोषित हुए तथा उनके साम्हनेसे मुंह छुपाकर अलग चले गये और परस्पर विचारकरने लगे कि, शास्त्रार्थमें हारनेके पश्चात् अपना भी ऐसा ही विचार था कि मुनिका काम तमाम कर देना ही ठीक है, परन्तु अपन बिना माता पिताकी सम्मतिके उस समय ऐसा न कर सके। अब इनकी भी ऐसी ही सलाह है, तो आज ही रात्रिको वनमें जाकर दिगम्बर मुनिका प्राणान्त कर डालना चाहिये।३९१-३९२। ऐसा विचार कर जब तक रात्रिका समय नहीं आया दोनों द्विजपुत्र अपने ही घर ठहरे। ज्यों ही रात्रि पड़ने लगी, दोनों अपनी २ कमर कस ली। इच्छा की पूर्ण करनेवाली एक २ कामधेनु तलवार प्रत्येकने अपने

बायें हाथमें ले ली और बाईं बाजूके कानके ऊपर चोटी बांध ली तथा क्रोधसे अपने नेत्र लाल करके वे नगरके बाहर निकल आये और जहाँ सात्विकी मुनिराजसे वादविवाद हुआ था, उसी दिशाकी ओर रवाने हो गये ।३९३-३९५।

उधर सात्विकि मुनिराजने द्विजपुत्रोंसे शास्त्रार्थ करनेके बाद क्या किया, सो वर्णन किया जाता है—जब द्विजपुत्रोंको मुनिवरने वादमें परास्त कर दिया, तब वे अपने गुरु नन्दिवर्द्धन मुनींद्रके पास आये । उन्होंने उनके चरणकमलोंमें नमस्कार किया और बहुत विनयसे कहा, भगवन् मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिये । वाद विवाद न करनेका नियम होते सन्ते भी मैंने विप्रपुत्रोंसे शास्त्रार्थ किया, इसका कृपाकर यथोचित प्रायश्चित्त बताइये ।९६-९८। तब नन्दिवर्द्धन मुनिराजने अपना मस्तक हिलाया और कहा हे वत्स तुमने वादविवाद किया, यह काम ठीक नहीं किया । कारण इससे मुनियोंका संघ नाशको प्राप्त होगा क्योंकि वे दुष्ट द्विजपुत्र जिनका मान खण्डन हो गया है जिन्हें माता पिताने भी तिरस्कृत किया है, और जिनकी सब इच्छायें नष्ट हो गई हैं, वे कुपित होकर आज रात्रिको अपने २ हाथमें तलवार लेकर वनमें आवेंगे और सर्व मुनियों का वध करेंगे ।९९-४०१। गुरुके वचनोंको सुनते ही सात्विकि मुनिका चित्त कम्पायमान हो गया और मुनियोंकी होनहार मृत्युको सुनकर उनका चित्त अत्यन्त संक्लेशित हुआ ।४०२। उन्होंने श्रीनन्दिवर्द्धन मुनिनायक से निवेदन किया कि, हे कृपासिंधु मेरी यह प्रार्थना है कि, जिसप्रकार मुनिसंघकी रक्षा होती हो वही उपाय कृपाकर मुझे प्रगट करो । यदि मेरे अपराधसे ही मुनियोंका वध होता हो तो मेरे जीवनको धिक्कार है । और मरने पर भी कौन गति होगी, नहीं कहा जा सकता ।३-४। तब गुरुने कहा, वत्स ! मैं एक उपाय बताता हूँ । वह यह है कि, जिस स्थान में द्विजपुत्रोंसे तूने वाद विवाद किया हो, वहीं तू रात्रिके पड़ते ही पहुँच जा और उस स्थानके रक्षक क्षेत्रपालकी आराधना करके उससे दो पैंड जमीन ले ले । उसीमें

तू बैठ जा और मरण पर्यन्त सन्यास धारण कर आत्मस्वरूपके चिन्तवनमें लवलीन होजा। वहां वे ही द्विजपुत्र आवेंगे और प्रथम ही बादमें जीतने वाले तुम्हें देखकर आग बबूला हो जाँयगे और वध करनेको तुझपर ही तलवार चलावेंगे। तब वही क्षेत्रका रक्षक देव अपनी सामर्थ्यसे उन दोनों को ज्यों के त्यों कील देगा अर्थात् काठके समान हलन चलन क्रियासे रहित कर देगा।५-७। ऐसा करनेसे निःसंदेह मुनिसंघकी रक्षा होगी गुरुके मुखारविन्द से इन वचनोंको सुनकर सात्विकि मुनि बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने बारम्बार गुरुके चरणोंमें नमस्कार किया और उनसे क्षमा मांगी। इसी प्रकार उसने समस्त मुनिसंघसे भक्तिपूर्वक क्षमा याचना की और निःशल्य होकर उनपर क्षमा की। पश्चात् उसने समस्त संघसे कहा—यदि मेरी रात्रि कुशलतासे व्यतीत जावेगी, तो मैं सबेरे ही आकर आपसे मिलूंगा। ऐसा कहकर सात्विकि मुनि वहांसे रवाना हो गये।८-१०।

श्रीनन्दिवर्द्धन मुनिराजकी आज्ञानुसार सात्विकि मुनि बहुत शीघ्र उस स्थानपर पहुँच गये, जहां द्विजपुत्रोंसे विवाद हुआ था। सन्ध्याका समय था, इसकारण प्रथम उन्होंने संध्यावन्दन किया। पश्चात् क्षेत्रपालकी आराधनापूर्वक उन्होंने दो पैंड जमीन ले ली और उसमें वे सावधानचित्त होकर सन्यास धारण कर ध्यानमें तिष्ठ गये।११ १२। जब इस प्रकार समताके धारक और इन्द्रियोंके दमन करनेवाले योगीश्वर ध्यानमें लवलीन हो रहे थे, उसीसमय दुष्टात्मा अग्निभूति और वायुभूति द्विजपुत्र नंगी तलवार लिये हुये वहां आ पहुँचे उन दोनोंकी दृष्टि सात्विकि मुनिपर पड़ी। उन्हें बैठा देखकर दुष्ट द्विजोंका चित्त हरा भरा हो गया। वे विचारने लगे, ठीक है अब तो अपना मनोरथ सफल हो गया। कारण अपनेको सहजमें ही पहले वहीमानखंडन करनेवाला शत्रु मिल गया। ऐसा सोचकर वे दोनों मुनिके समीप आयेऔर उन्हें ध्यानमें निश्चल अङ्ग देखकर बोले।१३-१६। रे रे दुष्ट! महापापी विद्वानोंकी सभामें तूने वादविवादमें अन्याय किया। और हमारा मान गलित किया। उस अपराधको तू याद कर और अब

उसका फल चख !।१७। बड़े भाई अग्निभूतिने अपने छोटे भाई वायुभूतिसे कहा-भाई ! क्या देखता है, तू झपाटेसे अपनी तलवार चलाकर इसके प्राण ले ले, जिससे अपना चित्त शान्त हो जाय। तब वायुभूतिने जवाब दिया–"भाईसाहब ! मेरी बात सुनो, ये मुनि ध्यान कर रहे हैं। मैं इन्हें हनूंगा तो मुझे मुनिघातका वज्रपाप लगेगा।" तब बड़ा भाई बोला "मैं भी प्रथम तलवार नहीं चला सकता जिससे मुनिघातका बज्रपापका भागी मुझे होना पड़े।" इसप्रकार शास्त्रके बलसे दोनोंमें बहुत समय तक विवाद होता रहा। सो ठीक ही है "मूर्ख हितैषी मित्रकी अपेक्षा विद्वान शत्रु भी अच्छा होता है।" अन्तमें दोनों क्रोधी विप्रोंने यही विचार किया कि–अपन दोनों जने एकसाथ मुनिपर अपनी २ तलवार चलावें। इस विचारसे वे आगे बढ़े और मुनिको दोनों तरफ खड़े हो गये। दोनोंने दुर्बुद्धिसे अपने नेत्र लाल कर लिये, भृकुटी (भौंहें) चढ़ा लीं और यमराज का रूप धारणकर दुष्टोंने मुनिके प्राण लेनेके लिये उनके मस्तकपर तलवार सहित हाथ उठाये। उसी समय आकाशसे एक यक्षाधीश क्षेत्रपाल क्रीड़ा करता हुआ जा रहा था। विप्रपुत्र मुनिवध करनेको उतारू हो रहे हैं, यह देखकर उसका हृदय करुणासे भींज गया। वह विचारने लगा कि, विचारे मुनिराज तो ध्यानमें तिष्ठे हुए हैं। इन्होंने कोई अपराध नहीं किया है परन्तु ये दुष्ट, पापी, नीच इन्हें मारनेको क्यों तैयार खड़े हैं ? जो योगीश्वर शत्रु मित्रको समान दृष्टिसे देखते हैं और जो प्राणीमात्रके हितकर्ता हैं, वे ही क्या आज इन पापी हत्यारों द्वारा हते जावें ? यदि मैं ऐसे महा मुनिकी रक्षा न करूं, तो मेरा इस क्षेत्रका रक्षक देवता होना वृथा ही है। अभी मैं इन पापियोंके सैकड़ों टुकड़े किये डालता हूँ। ऐसा विचारकर वह यक्षराज उनके निकट आया।४१८-३०। उन्हें देखते ही उसके चित्तमें एक विचार उत्पन्न हुआ कि, अभी इन पुत्रोंका वध करना भी ठीक नहीं है। कारण इनको कतल हुए सुनकर जगतमें अपकीर्ति फैल जायगी। क्योंकि प्रातःकाल होते ही कई मनुष्य यहां आवेंगे और इन दोनों को मरे हुए

देखकर कहने लग जावेंगे कि, मुनिने इनका वध किया है। इसप्रकार वृथा ही दिगम्बर मुनियोंका अपयश जगतमें फैल जायगा। यदि मैं इन द्विजपुत्रोंके शतखण्ड करूं तो यह बाधा खड़ी होती है। विवेक पुरुषोंको ऐसा बर्ताव करना चाहिये, जिससे बिलकुल बदनामी न होवे। इसलिये मैं इन दोनों दुष्टआत्माओंको राजा तथा अन्य मनुष्योंके साम्हने आग्रहपूर्वक मारूंगा। अभी इनका मारना ठीक नहीं है कारण इनकी दुष्टता भी जगतमें प्रगट होनी चाहिये। ऐसा विचारकर अग्निभूति वायुभूति नामक दुष्ट द्विजपुत्रोंको तलवार उठाते हुए जैसेके तैसे ही कील कर वह यक्षाधीश अपने स्थानको चला गया।३१-३५।

दूसरे दिन सूर्योदयके समय कई श्रावक वा इतर नगर निवासी मुनिदर्शनोंको वनमें गये। तब उन्होंने देखा कि दो मनुष्य अपने हाथमें तलवार लिये हुए मुनिराजके प्राण लेनेको खड़े हैं। परन्तु क्षेत्रपालने इन्हें हतवीर्य करके वहांके वहां कील दिये हैं, जिससे उनका हलना चलना भी बंद हो गया है। इस आश्चर्य जनक तमाशेको देखनेके लिये नरनारी दौड़े चले आते थे, क्योंकि ग्राममें चारों ओर इस की खबर फैल रही थी। द्विजपुत्रोंके दुष्ट कर्मको देखकर सब लोगोंने उनकी बड़ी निन्दा की कि— अरे पापी दुष्टों तुमने यह क्या असुहावना कार्य करना विचारा? कल तो तुम विद्वानोंके साम्हने शास्त्रार्थमें हार गये थे और तुम्हारे चेहरेका पानी उतर गया था, अब हत्यारों तुमसे कुछ न बन सका तो इनको मारकर बदला लेना चाहते थे? तुम्हें धिक्कार है धिक्कार है!।३६-३९।

जब नगरके बाहर कलकलाट मच रहा था, राजाने भी इसकी आवाज सुनी। वह विचारने लगा, क्या बात है? तब किसी सज्जनने निवेदन किया कि—हे राजन् कल वनमें सोमशर्मा विप्रके पुत्रोंने मुनिसे शास्त्रार्थ किया था, वे समस्त विद्वानोंके साम्हने शास्त्रार्थमें हार गये थे और लज्जित होकर अपने घर लौट आये थे। पश्चात् वे ही दुष्ट कल रातको मुनिराजको मारनेके लिये वनमें गये थे।

ज्यों ही उन्होंने मुनिपर तलवार उठाई, त्यों ही क्षेत्रपालने उन्हें कील दिया। यह वार्ता सुनते ही राजा अचंभित होता हुआ अपने स्वजनों सहित देखनेको वनमें गया। तब उसने द्विजपुत्रोंको वैसे ही कीलित देखा, तब चकित हो गया। उस समय वहां मनुष्य इसप्रकार वचन बोलरहे थे,—देखो इन दुष्टोंको क्या सूझी थी, जो सर्व प्राणियोंके हितकर्ता, धर्मधुराके आधार, जिनेन्द्रके मुखारविन्दसे समुत्पन्न धर्मके स्तम्भ, दयामूर्ति ऐसे मुनिका ही वध करनेको उतारू हो रहे थे। इन्हें धिक्कार है। इत्यादि ।४०-४५।

कई मनुष्य द्विजपुत्रोंके घर गये और उनके माता पितासे बोले:—जरा वनमें जाकर अपने पुत्रोंकी दशा तो देखो उन्होंने कैसा घोर अन्याय करना विचारा था, तुमने भी उनके जगनिंद्य कर्मको सुना होगा ? ऐसे वचन सुनते ही वे चौंक पड़े और पूछने लगे, कहो तो सही हमारे पुत्रोंने क्या किया है तब मनुष्योंने जवाब दिया, लो तुम अपने पुत्रों की करतूत सुनो;—वे दोनों दुष्ट वनमें गये और मुनिपर तलवार चलाने लगे उसी समय यक्षराजने पापियों को जहांका तहां कील दिया है। यह सुनते ही माता पिता बहुत घबराये और तत्काल वनको गये ।४६-४६।

अपने अग्निभूति वायुभूति पुत्रोंको कीलित देखते ही सोमशर्मा और अग्निलाका चित्त दुःखसे भर आया। उनके नेत्रोंसे धारा प्रवाह आँसुओंकी झड़ी लग गई। वे बोले—"हाय हाय पुत्रों तुम कैसी दुःखकी दशामें पड़े हुए हो" इतना कहकर वे माता पिता सात्विकि मुनिराजके चरणकमलों में पड़ गये और इसप्रकार विनती करने लगे:—हे स्वामी आप जीव मात्र पर दया करनेवाले हो कृपा करके मेरे पुत्रोंको जीवनदान दो, यही भिक्षा हम मांगते हैं ।५०-५२। जो अपने उपकारीपर ही भलाई करता है उसे साधु नहीं कहते किन्तु जो बुराईके बदले दूसरे की भलाई करता है, उसीको सत्पुरुष सच्चा साधु कहते हैं ।५३। जब द्विजपुत्रोंके माता पिता इसप्रकार रोदन कर रहे थे उसी समय मुनि

राजको ध्यान मुद्रा समाप्त हुई उन्होंने अपने नेत्र उघाड़े तो देखा कि, द्विजपुत्र काठके समान कीलित खड़े हुये हैं। मुनिवरने इस बातपर रंचमात्र भी रोष न किया कि ये तो मेरेपर ही खड्ग प्रहार करने वाले थे। किन्तु उन्होंने दयाभावसे अपने मुखारविंदसे ये वचन कहे कि—जिस दयालु यक्षराजने यह चमत्कार किया है, वह अपने रूपको प्रगट करे और इन द्विजपुत्रोंको इस बंधनसे छोड़ देवे ।५४-५६।

सात्विकि मुनिराजकी आज्ञानुसार उनके पुण्योदयसे तत्काल ही यक्षराज हाथमें दण्ड लेकर प्रगट हुआ और प्रणाम करके बोला, हे महाराज ! आप इस विषयमें रंचमात्र चिंता न करें, सन्तोषसे विराजे रहें। यदि मैं बिना कारण किसी का वध करूं तो आपका मना करना ठीक है ।५७-५८। कल रात्रिको जब ये दोनों दुष्ट ब्राह्मण आपपर तलवार चलानेवाले थे। उसी समय इनको नष्ट कर डालने का मेरा विचार था, परन्तु आपने ही इनका प्राणान्त किया है इसप्रकार वृथा लोकनिंदा न फैल जावे, ऐसा जानकर मैंने इन्हें ज्योंके त्यों कील दिया, जिससे कि सवेरेके समय सब लोग इनकी दुष्टताका फल प्रत्यक्ष देख लेवें। हे नाथ ! अब मैं सबके सामने इन मदोन्मत्त द्विजपुत्रोंको मारके दिखा देता हूँ। इतना कहकर यक्षराज दण्ड लेकर पहले राजाको मारनेको आगे बढ़ा और बोला, अरे दुष्ट राजन् ! क्या तेरे राज्यमें ऐसे २ हत्यारे अनाड़ी विप्र रहते हैं जिनके हृदयमें रंचमात्र दया नहीं है और जो मुनीश्वरोंको भी मारनेसे नहीं डरते हैं ? ।५९-६१। तब राजा बहुत घबराया और (हाथ जोड़कर) बोला—यक्षराज ! मुझे इस बातकी बिलकुल खबर नहीं थी कि, ये दुष्टात्मा मुनिराजके वध करनेको उतारू हुए हैं। यदि मैं यह वृत्तांत जानता होता और इन्हें इस घोर वज्रपाप कर्म से नहीं रोकता, तो मैं अपराधी ठहरता। तब सात्विकि मुनिराजने यक्षसे कहा:—राजाको इसबातकी खबर तक नहीं थी। इसमें इनका कोई अपराध नहीं है। तब मुनिराजके वचनोंको सुनकर देव राजाको छोड़कर दण्ड हाथ में लेकर तथा कुपित होकर दोनों द्विजपुत्रोंको मारनेके लिये झपटा। तब मुनि बोले, यक्षेन्द्र ! तुम्हें

मेरे वास्ते इनके प्राण हरने उचित नहीं हैं। कारण समभाव से उपसर्ग सहना, यह मुनियोंका कर्त्तव्य है। यतिधर्म जिनेन्द्रदेवने इसीप्रकार वर्णनकिया है। उपसर्ग जीतना यही तप है।६२-६७। उपसर्ग सहने से कर्मरूपी शत्रुओंका विनाश होता है। जबतक उपसर्ग न सहेंगे, तब तक पापका नाश किसप्रकार हो सकता है? ।६८। तब यक्ष बोला, हे दयासिन्धु ! आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि, आप मुझे अपराधीको दण्ड देनेसे न रोकें। आप अपने धर्मकर्म कीजिये, इस ओर ध्यान न दीजिये, मैं अभी इन मुनिहिंसक दुराचारियोंको यमराजके यहां भेज देता हूँ। जब मुनिराजने देखा कि, यह द्विजपुत्रोंको जीता छोड़ता ही नहीं है तब बोलेः—यक्षराज ! एक बात और सुनो। इनको जीवनदान देनेका एक दूसरा कारण है कि, ये दोनों श्रीनेमिनाथ स्वामी बाईसवें तीर्थंकरके वंशमें श्रीकृष्णनारायणके पुत्र होवेंगे और उसी भवसे कर्मोंको नाशकर मोक्षको प्राप्त होंगे।६९-७२। इसकारण इनका विनाश करना उचित नहीं है। तब यक्षेन्द्रने मारनेके संकल्पको छोड़कर मुनिराजको नमस्कार किया और राजा तथा समस्त मनुष्योंके सन्मुख अग्निभूति वायुभूति द्विजपुत्रोंको कीलित दशासे मुक्त कर दिया। इसप्रकार जैनधर्मकी प्रभावना करके यक्षराज वहां से लोप हो गया। राजादिकों को यह चमत्कार देखकर जैनधर्ममें बड़ी श्रद्धा हो गई और वे अतीव प्रफुल्लित हुए। सो ठीक है "धर्मकी प्रभावना देखकर कौन प्रसन्न नहीं होता है?" ।७३-७५।

बन्धनसे छूटते ही द्विजपुत्र अग्निभूति वायुभूति ने श्रीसात्विकि मुनिराजके साम्हने खड़े होकर नमस्कार करके बड़े विनय से कहा—"हे कृपासिन्धु ! हमने घोर अन्याय किया, आप क्षमा करो। आपके समान साधुओंको हम सरीखे अज्ञानी बालकोंपर कोप नहीं करना चाहिये।" तब मुनिराजने उत्तर दिया "पुत्रों मैंने प्रथमहीसे क्षमा धारण कर रक्खी है, सदाकाल जीवमात्रसे मेरी क्षमा है अब कहो कौनसी नवीन क्षमा मैं धारण करूँ, संसार में यह जीव अपने कर्मानुसार सुख दुःख पाता

है । जिसने जिसे पूर्वजन्ममें दुःख दिया है वह उसे इस जन्ममें (पलटेमें) दुःख देता है और जिसने पूर्वभवमें जिस जीवका उपकार किया है वह इस भवमें उसका प्रत्युपकार करता है । यह यथार्थ बात है। पूर्वभवमें जो कर्म उपार्जन किया है वही सुख दुःख, लाभ अलाभ जय पराजय करने में कारणभूत होता है, ऐसा जानकर किसीप्रकार दोष नहीं देना चाहिये । पुत्रों ! तुमने मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं किया है, इस कारण इस बातकी तुम रंच मात्र भी चिंता मत करो ।" मुनिराजके वचनामृतको सुनते ही दोनों विप्र-पुत्र वैराग्यसे विभूषित हो गये उन्होंने बारम्बार मुनिराजको नमस्कार करके कहा, हे दयासागर ! हमारी यही प्रार्थना है कि आप धर्मरूपी गृहके सुदृढ़ स्तम्भ हो, आपका शरीर धर्मसाधन और आत्मकल्याणका साधनभूत है और हमने दुर्बुद्धिसे आपके ऐसे पूज्य शरीरको विनाश करने का विचार किया था, जिसका वज्र पापबंध हुआ होगा इसमें सन्देह नहीं इसलिये कृपाकर हमें कोई ऐसा व्रत, जप, तप बताओ, जिसके पुण्योदयसे यह हमारा कर्मबन्धन शिथिल हो जाय ।७६-९०।

तब सात्विकी मुनिराजने उत्तर दिया, द्विजपुत्रों ! मैं तुम्हें धर्मके कारण व्रतादि सुनाता हूँ जो पापरूपी वृक्षको कुल्हाड़ीके समान काट डालते हैं और जो धर्म महावृक्षके बीजभूत हैं ।९१। रत्नत्रय धर्ममें प्रधानभूत प्रथम सम्यग्दर्शन है, जो पच्चीस दोषोंकर रहित और निःशंका, नि कांक्षा आदि आठ अंगोंसहित होता है, अणुव्रत पांच प्रकारका है,—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-परिमाण । शिक्षाव्रत चार प्रकार का है,:—देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्त्य । गुणव्रत तीन प्रकार का है:—दिग्व्रत अनर्थदंडव्रत और भोगोपभोगपरिमाणव्रत । इस प्रकार गृहस्थी श्रावकोंके पालने योग्य सागारधर्म १२ प्रकारका है । इसके सिवाय रात्रिभोजनत्याग और दिवसमैथुन-त्याग करना चाहिये षट्कर्म अर्थात् देवपूजा गुरु उपासना स्वाध्याय संयम तप और दान भी प्रतिदिन करना चाहिये । तीन मकार अर्थात् मद्य मांस मधुका त्याग अतीचाररहित करना चाहिये । आचार

तथा कन्दमूलादि नहीं खाना चाहिये । सब प्रकारके फूल तथा और भी जो जैनशासनमें दूषित बतलाये हैं ऐसे निंद्य तथा पाप करनेवाले घुने धान्य और पुष्पित वस्तुएँ भी त्याग करना चाहिये । बुद्धिमानोंको सदाकाल परोपकार करना चाहिये और पर निंदारूपी पातकको मन वचन काय से त्याग देना चाहिये । इसी प्रकार जिनेन्द्रदेवने उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग आकिंचन ब्रह्मचर्य ये दश धर्म वर्णन किये हैं जो भव्य जीवोंको संसार समुद्रसे पार कर देते हैं । ऐसा जानकर द्विजपुत्रों ! तुम सर्व पापके नाश करने वाले धर्मको संचय करो यही सार वस्तु है ।६२-६६।

मुनिराज के मुखारविंदसे धर्मका स्वरूप सुनकर अग्निभूति और वायुभूति दोनों द्विजपुत्रों ने अपने माता पिताके सहित भक्तिपूर्वक गृहस्थधर्म धारण किया ।५००। और जिनभाषित सम्यक्त्व को पाके वे द्विजपुत्र अपने मातापितासहित चित्तमें अतीव प्रसन्न हुए । सो ठीक ही है "धर्मरूपी रत्न को पाकर किसका चित्त सन्तुष्ट नहीं होता है ।" जो अमृतपान करते हैं उन्हें सन्तोष होता ही है ।५०१-५०२। द्विजपुत्र जिनकी कई मनुष्य तो प्रशंसा करते थे और कई निंदा करते थे बन्धुओं सहित श्रीसात्विकि मुनिराज को नमस्कार करके अपने घर चले आये ।५०३। वे जिनेन्द्र के चरणकमल की रजसे अपना मस्तक पवित्र करके और जिनधर्ममें अपने चित्तको लवलीन करके सुख से तिष्ठे ।५०३-५०४। जिनचैत्यालयों में जिन धर्मके महान उत्सव कराने वा गुरुवन्दना में ये दोनों द्विजपुत्र नगरवासी जनों में अग्रसर गिने जाने लगे ।५०६। इसप्रकार ये तो धर्मध्यानसे अपने दिन व्यतीत करने लगे परन्तु मिथ्यात्व परिणतिके प्रभाव से कुछ दिनोंमें उनके माता पिताओंने अपना चित्त जिनधर्म से पराङ्मुख कर लिया ।

एक दिन उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर कहा, बेटा ! अब तुम्हें वेदमार्गसे विपरीत जिनधर्म के व्रतादिक पालन करना ठीक नहीं है । उस समय ऐसा ही मौका आन पड़ा था, जिससे

जिनधर्म ग्रहण करना पड़ा था, परन्तु अब अपना कार्य तो सिद्ध हो ही गया इसलिये वेदशास्त्र से विरुद्ध धर्मको पालन करनेकी जरूरत नहीं है, जिससे प्राणियों की नीचगति होती है ।५०६-५०६। अग्निभूति और वायुभूति चुपचाप अपने माता पिता की बात सुनकर उसे पी गये, कुछ भी जवाब नहीं दिया । उन्होंने समझ लिया कि, हमारे माता पिता की रुचि अभी तक कुधर्म में ही लगी हुई है ।५१०। वे सचिन्त हो विचारने लगे, अब क्या करें ? किससे कहें ? हमारे मातापिताका चित्त पाप में लिप्त हो रहा है । इसकारण उनका चित्त कुछ समय व्याकुल रहा, परन्तु पीछे उन्होंने सन्तोष लाभ करके गृहस्थों के बारह प्रकार के व्रत और सम्यक्त्व भली भांति पालन किया, मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकारूप चार प्रकार के संघको नवधा भक्तिसे दान दिया, जिन मन्दिरोंमें विधिपूर्वक अष्ट-द्रव्यसे जिनपूजन की और अन्तमें समाधिमरण करके स्वर्गलोक को गमन किया ।५११-१३।

अग्निभूति वायुभूतिके जीव स्वर्गमें उपपाद शय्यापर उत्पन्न हुए । वहां देवांगनाओंके गीत, नृत्यादि सुनकर वे शय्यापरसे एकदम जाग उठे और विचारने लगे, हम कहां आ गये ? स्वर्ग की विभूतिको देखकर चकित होकर वे कहने लगे । यह अद्भुत जयजयकार का शब्द काहेका हैं ? इतने में ही उन्हें अवधिज्ञानसे प्रगट हुआ कि, हम सौधर्म नामके पहले स्वर्गमें इन्द्र उपेन्द्र हुए हैं । यह जिनधर्मके धारण करनेका वा विशेष पुण्य का ही महात्म्य है, जिसमें हमें शैय्या, विमानादि अनेक प्रकार की भोगोपभोगकी सामग्री प्राप्त हुई है । भाग्यहीन प्राणियों को स्वर्गोंके सुख नहीं मिल सकते ।५१४-५१७। इसप्रकार विचारकर देवगतिमें उन्होंने प्रसन्न चित्तसे जैनधर्मको पालन किया । और चित्तमें निर्मल सम्यग्दर्शनको निरन्तर धारण किया । अपने पूर्वभवकी वार्ताको स्मरणकर उन्होंने जिनधर्म में दृढ़ श्रद्धान ठानकर पाँच पल्य पर्यन्त वहांके ऐसे सुख भोगे, जिन्हें कोई उपमा नहीं दी जा सकती ।५१८। धर्मके प्रभावसे मनोवांछित उपमा रहित पदार्थ, सुन्दर रूप, गम्भीरबुद्धि, वचन-

कला, (वाक्पटुता) चतुराई, चित्त की निर्मलता, धनधान्यादिक तीनलोक की प्रसिद्ध २ वस्तुएं और चन्द्रके समान निर्मल यश इस प्राणीको सहजमें ही प्राप्त होता है। यह सब पूर्वभवके संचित पुण्यका ही प्रभाव है, ऐसा जानकर भव्य जीवोंको रुचिपूर्वक धर्मधन संचय करना चाहिये ।५६६।

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिंदीभाषानुवाद में नारदमुनिका महाविदेह में जाना, श्रीसीमंधर स्वामीके समवशरणमें पहुँचना, चक्रवर्ती के प्रश्नानुसार दिव्यध्वनिद्वारा प्रद्युम्नके पूर्वभवसम्बन्धी अग्निभूति वायुभूतिका स्वर्गको प्राप्त होना: इत्यादि वर्णनवाला छट्ठा सर्ग समाप्त हुआ।

सप्तमः सर्गः ।

भरतक्षेत्रमें कौशल नामका एक देश है जो स्वर्गके समान सुशोभित है। क्योंकि स्वर्गमें अप्सरसः अर्थात् देवांगनाएं हैं और इस देश में भी अप्सरसः अर्थात् स्वच्छ जलके सरोवर हैं।१। जहांके बगीचेमें चम्पक, अशोक, पुंनाग, नारिंग आदि तरह तरह के वृक्ष लगे हुए हैं, जो फूलोंके भारसे लद रहे हैं।२। जहांकी बावड़ी निर्मल जलसे भरी हुई है जिनमें सुवर्णकी बनी हुई सुन्दर सीढ़ियें हैं और कमल खिले हुए हैं।३। जहांके तालाब, हंस वा सारस पक्षियोंके शब्दोंसे मानसरोवर के समान शोभायमान मालूम पड़ते हैं।४। जहांकी नदियोंमें खूब पानीका पूर आ रहा है, जिनमें गम्भीर भँवरें आती हैं, जिनसे वे ऐसी सुन्दर मालूम पड़ती हैं, जैसे मनोहरबुद्धि शोभायमान होती है।५। जिनका मध्यभाग गहरे पानीके शब्दायमान रहता है, और जिनकी किसीको थाह नहीं मिली, ऐसे बड़े बड़े उज्ज्वल जल के भरे सरोवर शोभित हो रहे हैं।६। जहांकी भूमि साँठोंकी (गन्नोंकी) बाड़ियोंसे सघन हो रही है, और स्थान २ में दानशालायें खुली हुई हैं।७। वहांके मनोहर ग्राम इतने निकट २ हैं कि, मुर्गा (कुकुंट) एक गांव से उड़कर दूसरे गांव में पहुँच जाता है। जहाँ धन धान्यकी कमी वा शत्रुका उपद्रव नहीं है।८। जहां स्वप्नमें भी दुर्भिक्ष पड़नेकी वार्ता नहीं सुनाई पड़ती और न सात प्रकारकी ईतियोंका तथा चोर आदिकोंका उपद्रव होता है।९। जहां कोई

भी किसीका तिरस्कार नहीं करता और आतंक व्याधि आदि नामनिशानको भी नहीं हैं ।१०। कौशलदेशके निवासी सज्जन कुबेरके समान धनवान, धर्मकर्मको भलीभाँति आचरनेवाले न्याय मार्गसे चलनेवाले और प्रभावशाली गुणोंके धारक थे ।११।

ऐसे कौशलदेशमें अयोध्या नामकी एक प्रख्यात नगरी है जो स्वर्णपुरीके समान रमणीक थी तथा देव पूजादिक पुण्यकर्मों कर बड़ी सुन्दर दीख पड़ती थी ।१२। जिसे श्रीनाभिराज के पुत्र ऋषभनाथजी प्रथम तीर्थंकरके जन्मोत्सवमें कुबेरने रची थी । जिसके चहुँओर मजबूत किला होनेसे उसमें शत्रुओंका प्रवेश नहीं हो सकता था । जिसमें ओरसे ओरतक पुण्यात्मा जीव बसते थे तथा कोई भी पापात्मा नहीं दिखाई देता था ।१३-१४। जहांके मनुष्य पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान शोभायमान थे । इतनी विशेषता थी कि चन्द्रमा सुवृत्त अर्थात् गोल होता है और वहांके निवासी सुवृत्त अर्थात् शुद्धव्रतादिकके पालनेवाले थे, चन्द्रमा कलंक सहित है और वे मनुष्य किष्कलंक अर्थात् निर्दोष थे, चन्द्रमा सोलह कलाओंका धारक होता हैं और वे बहत्तर कलाके धारक थे, चन्द्रमा कृष्णपक्षमें घटता है, परन्तु वहांके मनुष्यों के गुण सदा बढ़ते रहते थे, चन्द्रमा दोषाकार अर्थात् रात्रिका करनेवाला होता है, परन्तु मनुष्य दोषाकार अर्थात् अवगुणी नहीं थे ।१५। जहांके प्रत्येक घरोंमें गीत, नृत्य, कला केलि, लीला, कटाक्ष विक्षेपआदि विभ्रमसे सुशोभित और रूपवती स्त्रियां थीं ।१६। जहांकी निपुण प्रजा षट्कर्मको पालन करती थी ओह जहां त्यागी, गुणी, शूरवीर, जिनधर्मपरायण धर्मात्माओं की बड़ी संख्या पायी जाती थी ।१७। जिस अयोध्यापुरीमें तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महान् पुरुषोंका जन्म होता है और जहां चतुर्निकायके देव आकर जन्मकल्याणादि महोत्सव करते हैं, उनकी शोभा हम कहाँतक वर्णन करें ।१८।

इस अयोध्यापुरीमें अरिंजय नामका राजा राज्य करता था, जो यथार्थमें 'अरिंजय' अर्थात्

शत्रुओंका जीतनेवाला, वैरियोंका नाश करनेवाला और शरणागत प्राणियोंकी रक्षा करनेवाला था । ।१६। जिसके पास हजारों हाथी थे और अनेक प्रकारके घोड़े रथादिक थे जिनकी संख्याका कुछ पार न था ।२०। जिसके नौकर चाकर भक्तिवान, शक्तिवान, कुलीन, कुलपरम्परासे कार्य करनेवाले और शत्रुराशिके विध्वंस करनेवाले थे ।२१। वह राजा उत्तमोत्तम गुण वा शुभ लक्षणोंको धारकर, कुबेरके समान द्रव्यवान, प्रजापालनमें तत्पर और निर्दोष था ।२२। इसके दान देनेकी उदारताको देखकर कल्प-वृक्ष लज्जित हो गये और इस प्रकार मुँह छिपाकर चले गये कि आज तक पृथ्वीपर पीछे न आये ।२३। प्रजाका पालन करनेमें प्रवीण, स्त्रियोंके नेत्र वा मन चोरनेवाले, कामदेवके समान सुन्दर देहवाले इस राजाने भली-भांति पृथ्वीपर राज्य किया ।२४। इस राजाकी प्रियंवदा नामकी गुणवती रानी थी जो अपने भर्तारको ऐसी प्यारी थी जैसे इन्द्रको इन्द्राणी और चन्द्रमाको रोहिणी ।२५। यह रानी अरिंजय राजाकी बड़ी भक्त थी और बड़ी धर्मात्मा प्रेमकर्म में आसक्त पतिव्रता सर्वगुणसम्पन्न शुभ-लक्षणोंकी धारक अमृतके समान मीठे वचन बोलनेवाली और सुन्दरताके सर्वलक्षणों से मण्डित थी ।२६-२७।

अयोध्यापुरीमें एक समुद्रदत्त नामका सेठ रहता था जो पुण्यात्मा श्रावकोत्तम निर्दोषवंशसे उत्पन्न गुणवान शीलवान शंका कांक्षादि पचीस दोषवर्जित सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान वा सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयसे मण्डित षट्कर्मको नित्य पालने वाला इन्द्रके समान भक्तिसे जिनपूजा करनेवाला श्रावकोंकी त्रेपन क्रिया पालनेवाला और क्षमा मार्दव आर्जव आदि दश धर्मों को धारण करनेवाला था ।२८-३०। वह गृहस्थोंके देशव्रत पालता मिथ्यात्वको टालता और सर्वदा उत्तम मध्यम जघन्य पात्रोंको नवधा भक्तिसे दान दिया करता था ।३१। इसके सिवाय वह सेठ गृहस्थधर्मकी क्रियाके आचरणमें बड़ा चतुर था जैनशास्त्रोंके रहस्यको जाननेवाला था देवशास्त्रगुरु का उपासक और दयालु था ।३२। उसकी

धारिणी नामकी सेठानी थी, जो रूपवती, शुभलक्षणोंकी धारिका, सुन्दरता रूपी जलकी वापिका, उज्वल उच्चकुलसे उत्पन्न हुई, गुणोंके भार वा विनयसे नम्र रहनेवाली, पतिके चित्तको कामरूपी धनुष के तीरसे भेदनेवाली, देवशास्त्रगुरुका आदर करनेवाली सप्तशील और सम्यक्त्वकी धारनेवाली, पतिव्रता उत्तम आचरणवाली और दोनों कुलोंको विशुद्ध करनेवाली थी। समुद्रदत्त सेठने धारिणी सेठानी के साथ अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करते हुए और सुखसागरमें मग्न रहते हुए कितना समय व्यतीत कर दिया यह नहीं जाना गया।३३-३६।

कुछ समय व्यतीत होने पर पुत्रकी इच्छा करनेवाले उन स्त्रीपुरुषोंके पूर्वमें कहे हुए अग्निभूति वायुभूतिके जीवोंने जो पहले स्वर्गमें इन्द्र उपेन्द्र हुए थे, पुण्यके प्रभावसे जन्म धारण किया। स्वजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्यके समान उन पुत्रोंके जन्मके समय समुद्रदत्त सेठने खुशीमें बड़ा भारी उत्सव कराया याचकोंको जी खोलकर दान दिया स्वजनोंका आदर सम्मान किया जिनमंदिरोंमें पूजा विधान कराया और नगरभरमें अभयदान दिलवाया अर्थात् यथाशक्ति पशु पक्षी मनुष्यादिक जो बंधनमें पड़े हुए थे उन्हे छुड़वा दिये गये। इस प्रकार छह दिन तक समुद्रदत्त सेठने अपनी शक्तिके अनुसार महान् उत्सव किया।३७-४०। सातवें दिन अपने कुटुम्बी वा इतर सत्पुरुषोंको आमन्त्रण देकर बुलवाया और विधिपूर्वक अपने दोनों पुत्रोंका नामकरण कराया। जो पहले जन्मा उसका नाम मणिभद्र और जो पीछे जन्मा उसका नाम पूर्णभद्र रक्खा गया। जिसप्रकार शुक्लपक्षमें चन्द्रमा प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता है, उसीप्रकार चन्द्रके समान सुन्दर मुखवाले वे दोनों श्रेष्ठिपुत्र बड़े होने लगे।४१-४२। जब लड़कोंकी अवस्था पांच वर्षकी हुई, तब समुद्रदत्त सेठने उन्हें जिन मन्दिरमें ले जाकर विधि पूर्वक देवशास्त्रगुरुकी भक्तिभावसे पूजा की। पश्चात् जैन उपाध्यायके पास अपने दोनों पुत्रोंको विद्याभ्यास करानेके लिये बिठा दिया। सो पूर्वपुण्यके प्रभावसे उन दोनोंने श्रीजिनमन्दिरकी पाठशालामें

विद्याभ्यास किया। जब वे अनेक शास्त्र, पुराण, सिद्धान्त ग्रन्थ सीखकर विद्या वा कलामें प्रवीण हो गये और सोलह वर्षकी अवस्थाको प्राप्त हो गये, तब माता पिताने अपने नवयौवन सम्पन्न तथा स्वजनोंको आनन्दकारी पुत्रोंका उन्हें युवावस्थाको प्राप्त हुआ देखकर अपने कुलके योग्य उत्तम कन्याओंके साथ विवाह कर दिया। इससे माता पिताको बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। इसप्रकार धर्म अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थोंको निरन्तर पालन करते हुए तथा सुखसागरमें निमग्न रहते हुए उन दोनों पुत्रोंने अपना काल व्यतीत होता न जाना।४३-४८।

कुछ दिन बाद नगरके निकटवर्ती प्रमद उद्यान में महेन्द्रसूरि नामक जगतप्रसिद्ध मुनिराज पधारे, जो निर्दोष थे, मति श्रुत अवधि ज्ञानके धारक थे और अनेक कलाओंमें कुशल थे। उनके संग और भी बहुत मुनिजन थे।४९-५०। मुनिवरके शुभागमन से बगीचेकी अनोखी शोभा हो गई, तरह २ के वृक्ष उत्तम पत्तों फूलों और फलोंसे लद गये।५१। झाड़ोंमें षट्ऋतुके फल फूल लग गये, उनपर भ्रमर गुंजारने लगे, मानों मुनिराजके समागम होने से वे धनी हो गये।५२। गाय और व्याघ्रके, बिल्ली और हंसके, हिरणी और सिंहके, मोर और सांप आदिके बच्चे व इसी प्रकार और भी विरोधी जंतु अपनी जातिका स्वाभाविक वैरभाव भूलकर मुनिमहाराजके संघके कारण हिल मिलकर क्रीड़ा करने लगे।५३-५४। थोड़ी देर में उस उपवनकी रक्षा करनेवाला माली वहां आया और ऋतुसमय को उल्लंघन कर फूल, फल, वृक्षोंको देखकर चकित हो विचारने लगा कि, ये परिवर्तन कुछ न कुछ शुभ अशुभ सूचक हैं।५५-५६। इसके कारणकी तलाशीमें चहुँओर घूमकर देखने लगा, तब उसे मालूम हुआ कि, एक मुनिराज संघसहित विराजे हुए हैं। मालीने मुनिवरके दर्शन कर निश्चय कर लिया कि यह सब इन्हींका माहात्म्य है, जिससे बगीचेकी विचित्र शोभाको देखकर अचम्भा होता है।५७-५८।

इस बातकी खबर देनेके लिये वह माली शीघ्र बगीचेमेंसे सर्व ऋतुके फलफूल लेकर राजा

अरिंजयके पास पहुँचा। राजद्वारपर द्वारपालकी आज्ञा लेकर माली भीतर गया। सो पहले उसने दूरसे ही महाराजको नमस्कार किया और फिर द्वारपालकी आज्ञासे सन्मुख जाकर फलफूलादि भेंट किये ।५९-६०। फिर बोला हे राजन्! आपने रमणीक बागमें, जिसमें मत्त कोयलें कूकती हैं एक संयम रत्नसे सुशोभित महासाधु पधारे हैं। जिनके शुभागमन से वृक्षोंमें सर्व ऋतुके फलपुष्पादि आ गये हैं। उन प्रभावशाली मुनिराजकी कृपासे महाराज! आप चिरकाल राज्य करो और सुखसे विराजो। मालीके मुखसे ऐसे समाचार सुनते ही राजा अरिंजयका हृदय प्रफुल्लित एवं हराभरा होगया। उसने उसी समय अपने सिंहासनसे उठ, जिस दिशामें मुनि विराजे थे, सात पैंड आगे जा विनयपूर्वक परोक्षरूप प्रणाम किया। फिर माली को पंचांग प्रसाद (पांचों कपड़े) तथा षोड़श आभरण उतारकर दे दिये और उसे प्रसन्न करके वनको विदा कर दिया। पश्चात् राजाने आनन्दभेरी बजवाकर नगरभर में यह वार्ता प्रगट करवादी। ज्यों ही सत्पुरुषोंको खबर मिली, त्यों ही वे बड़ी प्रसन्नता से पूजाकी सामग्री लेकर जिनभक्तिके वशीभूत हो मुनिवन्दनार्थ राजा के दरवाजे पर आ गये। जब राजाने देखा कि बहुतसे भाई एकत्रित हो गये हैं, तब वह कुटुम्बसहित हाथीपर असवार होकर मुनिवन्दना को रवाना हुआ।६१-६७। और सब जिनधर्म परायण लोग राजा के साथ २ चले। जब राजा अरिंजय प्रमद उद्यानके पास पहुँचा, तब हाथीसे नीचे उतर आया। उसने मुनिभक्तिसे राज्यविभवको शरीरपरसे उतार दिया और नम्रतासे महेन्द्रसूरि मुनिराजके पास जाकर नमस्कार करके गुरुभक्ति सहित तीन प्रदक्षिणा दी पश्चात् संघके समस्त मुनियोंके सहित गुरुको पंचांग नमस्कार करके सामने बैठ गया।६८-७०।

जब सब भव्यजीव यथोचित स्थानमें बैठगये, तब राजा अरिंजय हाथ जोड़कर और मस्तक नमाकर श्री महेन्द्रसूरि मुनिराज से बोले हे स्वामी! बंध और मोक्षका स्वरूप क्या है? संसारी जीवोंको

कैसे कारणों से बन्ध होता है और किस उपायसे कर्म बन्धनको तोड़कर वे अत्यन्त दुर्लभ मोक्षको प्राप्त करते हैं ? कृपाकर इस विषय को समझाइये ।७१-७२।

तब श्री महेन्द्रसूरि मुनिराज बोले, हे भूपाल ! मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर संक्षेपमें वर्णन करता हूँ, सुनो:—जिनेन्द्र भगवानने बन्धके मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच कारण बतलाये हैं—तत्वोंका तथा पदार्थोंका अश्रद्धान करना सो मिथ्यात्वनामा कर्मके योगसे निश्चय करके बन्धका कारण है । उस मिथ्यात्वके जिनेन्द्र भगवानने दो भेद कहे हैं एक निसर्गज अर्थात् अगृहीत-मिथ्यात्व और दूसरा गृहीत-मिथ्यात्व । गृहीत-मिथ्यात्वके एकान्तमिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, संशय-मिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व, और अज्ञानमिथ्यात्व ऐसे पांच भेद हैं । सो मिथ्यात्वनामा कर्मके योगसे पापाश्रवका कारण होने से तथा आठों ही प्रकारके कर्मोंको उत्पन्न करनेका कारण होनेसे जिनेन्द्र भगवानने इनको बंधस्वरूप कहा है । हे राजन् ! इन मिथ्यात्वोंके फलस्वरूप इस समय तीनसौ तरेसठ प्रकारके मत फैले हुए हैं ।७३-७६। हे नराधिप ! षट्कायके जीवों की हिंसा का त्याग नहीं करना और पांच इन्द्रिय तथा मनको वशमें नहीं करना सो बारह प्रकारकी अविरति है । स्त्रीकथा, राजकथा, भोजनकथा और देशकथा ये ४ विकथा और क्रोध मान माया लोभ ये ४ कषाय तथा ५ इन्द्रियें निद्रा और राग इस तरह १५ प्रमाद हैं । अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, और संज्वलनके भेदसे क्रोध, मान, माया, लोभरूप १६ भेद तथा नो हास्य, रति, अरति आदि कषाय, सब मिलकर २५ कषाय हैं । चार मनोयोग, चार वाग्योग, पांच काययोग, एक आहारक काययोग और एक आहारक मिश्रयोग ऐसे १५ योग हैं । ये सब ही बंध के कारण होनेसे बंधस्वरूप हैं ।८०। इस जीवको जो कर्म बंधन से छुड़ाता है ऐसा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका समुदाय ही एक मोक्षका कारण है । जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष इन सप्ततत्वों का जो

श्रद्धान करना है उसीको सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दर्शन कहते हैं ? सम्यक्त्व बिना न आजतक किसीकी मुक्ति हुई और न होवेगी ।८१-८३। शुक्लध्यानरूपी अग्निके योगसे कर्मरूपी ईंधनका क्षय होता है । इसमें यह चिंतवन करना पड़ता है कि कर्म भिन्न हैं और आत्मा भिन्न पदार्थ है, कर्म जड़ है और आत्मा चैतन्यस्वरूप है । सम्यग्दर्शन जिनागममें दो प्रकारका कहा गया है, एक निसर्गज, दूसरा अधिगमज । निसर्गज सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं, जो बिना गुरु आदिके उपदेशके स्वयं होता है और अधिगमज सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं, जो उपदेशादिक सुननेसे हो जाता है । जिनेन्द्रने सम्यक्त्व तीन प्रकारका भी वर्णन किया है अर्थात् उपशमसम्यक्त्व क्षयोपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व इसप्रकार विवक्षासे सम्यक्त्व एकप्रकार, दोप्रकार, तीनप्रकार आदि भेदरूप वर्णन किया है । जो नवपदार्थ अर्थात् सप्ततत्त्व और पुण्यपापके स्वरूप को (अन्यून, यथार्थ, अधिकतारहित, विपरीततारहित) जाने उसे जिनागममें सम्यग्ज्ञान कहते हैं ।८४-८६। सम्यग्ज्ञान पांच प्रकार का है अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान । मतिज्ञानावरणीके क्षयोपशमसे मतिज्ञान, इसीप्रकार अपने २ कर्मके क्षयोपशमसे श्रुत अवधि और मनःपर्ययज्ञान होते हैं और केवलज्ञानावरणीके सर्वथा क्षयसे अथवा चार घातियाकर्मके नाश करनेसे केवलज्ञान होता है । सम्यक्चारित्र जिनेन्द्रने तेरह प्रकारका वर्णन किया है, जिसका ग्रहण प्राणियोंको अवश्य करना चाहिये (वह इस प्रकार है ५ समिति, ३ गुप्ति, ५ महाव्रत) इसप्रकार जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का वर्णन किया गया है, उसीका समुदाय ही मोक्षका मार्ग है । तत्त्वार्थ का जो श्रद्धान अर्थात् रुचि वा प्रतीति उसी को सम्यग्दर्शन कहते हैं ।८७-८६। भव्यजीवों को सदाकाल ऐसा चिंतवन करना चाहिये कि ये शरीर भिन्न है और मेरा आत्मा चैतन्यघन इससे भिन्न है । यह आत्मा कर्मके वशसे जैसे शरीर को प्राप्त होता है, उसी शरीर के आकार का हो जाता है । भावार्थ—आत्मा लोकाकाशके समान असं-

ख्यात प्रदेशी है, आकाशके समान अमूर्तीक है और कर्मलेपकर रहित सिद्धस्वरूप है।९०। आत्माका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये कि यह नित्य, विनाश रहित, वृद्धावस्था रहित, जन्म रहित, कर्मकलङ्क रहित, बाधा रहित, गुण रहित वा गुण सहित।९१। जब आत्माको हृदयमें कर्मोंसे रहित ध्याते हैं, तब निश्चयसे कर्मोंका क्षय होता है और जो सब कर्मोंका क्षय हो जाना है, वही मोक्ष है, इस प्रकार हे राजन्! तेरे प्रश्नानुसार मैंने संक्षेपसे बन्ध और मोक्षका स्वरूप वर्णन किया है। इसका भावार्थ यह है कि कर्मबन्धनकी प्रेरणासे यह जीव नरकादि गतिको प्राप्त होता है और वहांके घोर दुःख सहता है और जब कर्मबन्धनसे सर्वथा छूट जाता है, तब मोक्षावस्थामें विनाश, भय, जरा, जन्म, वियोग, रोग, शोकादिसे वर्जित हो जाता है।९२-९५। इसप्रकार शुद्ध शान्त स्वभावके धारक, हित-मितभाषी मुनिवर श्रीनन्दिवर्द्धन महाराज राजाके प्रश्नोंका उत्तर कहके मौनसे तिष्ठे। राजा को मुनिराजके वचनोंसे अपार आनन्द हुआ।९६।

अथानन्तर–राजा अरिंजयने प्रसन्नचित्तसे अपने हाथ जोड़े और मुनिराजसे निवेदन किया, हे प्रभो! प्राणीमात्रके हितैषी! आपके वचनानुसार मैंने संसारका स्वरूप स्पष्ट रीतिसे जान लिया है कि, यह संसार क्षणभंगुर और साररहित है। इसमें प्रीति करना अनुचित है। शरीर सैकड़ों रोगों से भरा हुआ है, पंचेन्द्रिय के विषय विष के समान हैं,।९७-९९। यौवन क्षणस्थायी है, संयोग स्वप्न के समान निःसार हैं और सुख दुःखमयी जीवन शरदऋतुके मेघके समान तत्काल नष्ट हो जाने वाला है।१००। शरीर सम्बन्धी भोग किंपाक (इन्द्रायण) फलके समान अन्तमें बड़े दुखदायी हैं और लक्ष्मी-धनसम्पत्ति हाथीके कानोंके समान चंचल है ऐसा मुझे निश्चय हो गया है। इसलिये हे महामुने! संसार शरीरभोगादिसे मेरा चित्त विरक्त होगया है और आपके चरणकमलके प्रसादसे मैं जिन-दीक्षा लेना चाहता हूँ जो संसार समुद्र से पार उतारने वाली है।१०१-१०२। हे प्रभो! आप मुझपर

कृपा करो और जिनदीक्षा ग्रहण कराओ, जिससे संसारके जन्ममरणकी झंझट से छूटकर मैं निराकुल अवस्था को प्राप्त हो जाऊँ ।१०३।

राजा अरिंजयके वचनोंको सुनकर श्रीमहेन्द्रसूरिने कहा हे नृपति ! तूने दीक्षा ग्रहण करनेका बहुत उत्तम विचार किया है ।१०४। ऐसा विचार पुण्यवानोंके सिवाय दूसरोंके चित्तमें उत्पन्न नहीं होता जिनदीक्षाके प्रभावसे यह जीव कर्म काटके मोक्ष पदको प्राप्त कर सकता है—फिर स्वर्गादिककी तो कथा ही क्या है ? ।१०५। तुम्हें ऐसा दृढ़ निश्चय करके जैनी दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करना चाहिये । मुनिराजके मुखारविंद से राजा अरिंजयने ऐसे वचन सुनकर अपने पुत्रको राज्यका कारभार सौंप दिया ।१०६। और अनेक राजाओंके साथ सर्वप्राणियोंकी हितकारिणी स्वर्गमोक्षकी देनेवाली दीक्षा ग्रहण की ।१०७। राजाकी वैराग्यपरिणति और मुनिराजका धर्मोपदेश सुनकर विचक्षण बुद्धिके धारक समुद्रदत्त सेठको भी वैराग्य उत्पन्न हुआ । सो उसने भी संसारकी लीला समझकर अपने दोनों पुत्रोंको घरका कारभार सौंप दिया और सर्व परिग्रहसे रहित होकर जिनदीक्षा धारण कर ली । ।१०८-१०९। ततपश्चात् समुद्रदत्त सेठके मणिभद्राक्ष और पूर्णभद्र नामक दोनों श्रेष्ठ तथा चतुर पुत्रों ने मुनिराजको नमस्कार किया और सर्व हितकारी गृहस्थोंका धर्म पूछा कि, ।१०। हे महाराज ! हम अभी आपकी उपदेशी हुई जिनदीक्षा ग्रहण करनेको असमर्थ हैं, इसलिये कृपाकरके गृहस्थियोंका धर्म जो कल्पवृक्षके समान स्वर्गादिक तथा परम्परासे मोक्षका देनेवाला है, हमें बतलाइये ।११। तब मुनिराज ने कहा, हे श्रेष्ठिपुत्रों ! आदरपूर्वक एकचित्त होकर सुनो, मैं संक्षेपमें गृहस्थ धर्मका वर्णन करता हूँ ।१२। जो संसार कूपमें गिरनेवाले जीवोंको हस्तावलम्बन देकर शीघ्र ही धारयति अर्थात् धारण करता है—बचा लेता है, उसे धर्म कहते हैं ।१३। जो सर्व प्राणियोंको अपनी आत्माके समान समझता है, पर द्रव्यको मिट्टीके ढेलेके तुल्य गिनता है और दूसरेकी स्त्रीको माताके सदृश समझता है, उसीका

नाम धर्मात्मा है ।१४। जिनेन्द्रदेवने धर्म दो प्रकारका वर्णन किया है एक अनागारधर्म और दूसरा सागारधर्म । अनागार धर्म तपस्वियोंके आचरने योग्य है और सागार धर्म गृहस्थियोंके धारण करने योग्य है ।१५। इनमेंसे प्रथम ही गृहस्थोंके धर्मका वर्णन करता हूं जो कि सम्यग्दर्शन सहित पांच अणुव्रत और सात शीलोंवाला होता है । गृहस्थोंके मुनि, अर्जिका श्रावक श्राविकारूप चार प्रकारके संघको आहार औषध शास्त्र (ज्ञान) और अभयदान देना चाहिये और सम्यक्त्वका नाश करनेवाले मिथ्यात्वको सर्वथा त्याग करना चाहिये ।१६-१७। तथा श्रीजिनेन्द्रने जो श्रावकोंके अष्टमूलगुण (पांच उदुम्बर और तीन मकारका त्याग) वर्णन किये हैं उनको धारण करनेके लिये उदुम्बरादिका त्याग करना चाहिये ।१८। इसके सिवाय किसी प्राणीकी निन्दा नहीं करनी चाहिये, कारण यह दुर्गतिको ले जाती है। किसीका विश्वासघात नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह बड़ा पापका कारण है ।१९। प्रत्येक मासकी २ चतुर्दशी और २ अष्टमी इन चार पर्वके दिनोंमें उपवास धारण करना चाहिये, निःशंका, निःकांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना इस प्रकार ८ अङ्गसहित चन्द्रमाके समान निर्मल सम्यग्दर्शनको धारण करना चाहिये ।२०। जिस प्रकार समुद्रमें गिरे हुए रत्नका मिलना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार अत्यन्त दुर्लभ धर्मरत्न जो हाथ लगता है, मिथ्यात्वके संसर्गसे मूलसे नष्ट हो जाता है और पीछे उसका मिलना दुष्कर हो जाता है ।२१। इस कारण मिथ्यात्वको जड़मूलसे उखाड़कर फेंक देना चाहिये और सर्वोत्कृष्ट सम्यक्त्वको ही धारना चाहिये । मिथ्यात्वसे नरकमें पतन होता है और सम्यक्त्वके प्रभावसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है । जहां सर्व प्रकारके मनोज्ञ इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त होते हैं और अनेक देवी देव सेवा करते हैं भयंकर लड़ाईमें धर्म कवचके समान रक्षा करता है और दुस्तर संसार समुद्र से पार होनेको नावके समान होता है ।२४। इस लोकमें धर्म ही कल्पवृक्ष है, धर्म—ही चिन्तामणि रत्न है, धर्म ही कामधेनु है और हरएक चिंतित पदार्थको देनेवाला

एक धर्म ही है ।२५। भवभवान्तरमें परिभ्रमण करनेवाले पथिकस्वरूप संसारी जीवको मार्गमें आश्रय-भूत धर्म ही एक प्रकारका पाथेय (कलेवा) है। धर्मसे भव्य को कभी कष्ट नहीं होता है धर्मके प्रभावसे संसारमें भटकता हुआ भी यह जीव सब जगह सुखी ही रहता है ।२६। जिसका चित्त धर्ममें लवलीन रहता है, उसीको ग्रह, भूत, पिशाच, शाकिनी सर्पादि किसी प्रकारकी बाधा नहीं करते ।२७। धर्मके प्रभावसे जीव तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, राजा तथा चर्मशरीरी (तद्भवमोक्षगामी) होता है ।२८। धर्मात्मा पुरुषोंको सात सात मंजिलवाले ऊंचे सुन्दर महल हाथी रथादि प्राप्त होते हैं।२९। सेवा करनेसे रूपवान स्त्री सुपुत्र स्नेही भाई और धनधान्यादिकी प्राप्ती होती है ।३०। जो वस्तु देश देशांतरोंमें तथा समुद्रोंके परली पार पाई जाती है वह भी धर्मके प्रभावसे अपने घर आ जाती है ।३१। धर्मके समान कोई बन्धु नहीं, धर्मके समान कोई मित्र नहीं और धर्मके समान कोई स्वामी नहीं ऐसा जानकर भव्य जीवोंको अपना चित्त धर्ममें लगाना चाहिये ।३२।

श्रीमहेन्द्रसूरि मुनीन्द्रके मुखारविंदसे धर्मका स्वरूप सुनकर मणिभद्र और पूर्णभद्र दोनों श्रेष्ठिपुत्रोंको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने मुनीश्वरको नमस्कार किया, सम्यक्त्व धारण किया और गृहस्थोंके बारह प्रकारके व्रत ग्रहण किये ।३३। पश्चात् मुनिराजको नमस्कार करके वे दोनों विचक्षण अपने घर लौट आये और जीव दयाको पालते हुए धर्म ध्यानसे तिष्ठे ।३५। जिनमन्दिरोंमें उन्होंने अष्टद्रव्यसे पूजा की तथा भक्तिभावसे प्रभावना भी की ।३६। उत्तम पात्रोंको चार प्रकारका दान दिया, इसप्रकार उन्होंने धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थ सिद्ध किये परन्तु उनका चित्त पापकार्यमें रंचमात्र भी आसक्त न हुआ ।३७। धर्मके प्रभावसे लीलामात्रमें प्राप्त होनेवाले भोगउपभोगकी सामग्रीसे आनन्द लूटते हुये और सुखसागरमें डूबे हुए उन्होंने अपना बीतता हुआ समय न जाना ।३८।

कुछ काल व्यतीत होनेके पश्चात् एक दिन वनमें मुनिराज पधारे । उनकी बन्दनाके लिये

दोनों श्रेष्ठीपुत्र (भाई) धर्मवासनासहित अष्टद्रव्य लेकर चले ।३९-४०। दैवयोगसे उन्हें मार्गमें एक कुरूप चाण्डाल और उसके साथ एक कुत्ती दीख पड़ी ।४१। उनको देखतेही दोनोंके हृदयमें बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई । ठीक ही है अन्तरात्मा बड़ा ज्ञानवान होता है, जिससे शुभाशुभकी समझ स्वयं उत्पन्न हो जाती है ।४२। इनको देखते ही चाण्डाल और कुत्ती दोनोंका चित्त भी बहुत प्रसन्न हुआ । इस प्रकार इन चारों प्राणियोंमें परस्पर गाढ़ी प्रीति उत्पन्न हुई । यहाँ तक कि, मोहके उदयसे ये अपने जीमें एक दूसरेको आलिंगन करने की इच्छा करने लगे ।४३-४४। तब वे चारों जल्दीसे मुनिराजके पास गये । वहां श्रद्धावान सेठके पुत्र नमस्कार करके मुनिके समीप बैठ गये ।४५। और भक्तिसहित बोले, हे कृपासिन्धु ! इस चांडाल और कुत्तीसे हम दोनोंको इतना मोह उत्पन्न हुआ, सो इसका क्या कारण है ? कृपाकर वर्णन कीजिये । तब मुनिराज बोले, पुत्रों ! एकाग्रचित्त होकर सुनो, मैं कहता हूँ ४६-४७। कारण बिना कार्यकी उत्पत्ति कदापि नहीं होती है । ये कुत्ती और चांडाल पूर्वभवमें तुम्हारे माता पिता थे, इसीसे तुम्हें इनको देखते ही स्नेह उत्पन्न हुआ है । क्योंकि सम्पूर्ण देहधारियोंका अन्तरात्मा निश्चय-पूर्वक ज्ञानी होता है । उसे अपने पूर्वके सम्बन्धका अनुभव हो जाता है ।४८-४९। मुनिराजके ऐसे वचनों को सुनकर श्रेष्ठिपुत्रोंने पुनःप्रश्न किया, कि हे प्रभु पूर्वभवमें ये हमारे माता पिता किसप्रकार थे, सो भी आप सुनाइये । तब मुनिश्वर बोले पुत्रों सुनो—

पहले यह चांडाल शालिग्राम नगरमें विप्र कुलसे उत्पन्न हुआ सोमशर्मा नामका विप्र था और यह कुत्ती अग्निला नामकी उसकी स्त्री थी । ये दोनों ही वेदशास्त्रके जानने वाले थे ।५२। खोटे देवकी आराधनामें इनका चित्त लगा रहता था, यज्ञके लिये ये पशुवध करते थे जिनधर्म से बड़ा द्वेष रखते थे और हिंसा तथा अन्य २ निन्दित कार्यों में दत्तचित्त रहते थे ।५३। इस जन्म से पहले तीसरे भवमें तुम दोनों इनके पुत्र थे । उस समय तुममेंसे एकका नाम अग्निभूति था और दूसरे का

वायुभूति ।५४। एकबार कारणवश सोमशर्मा व अग्निलाको जिनधर्मका प्रभाव प्रगट हुआ था और उनकी उस धर्ममें प्रतीति भी उत्पन्न हुई थी। परन्तु अपनी जातिके घमंडमें चकचूर होके जीवमात्र को तृणके समान गिनते हुए उन पापाचारियोंने दुर्लभतासे प्राप्त हुए जिनधर्मको त्याग दिया, जिस पापके कारण मरकर उन दोनों का नरकमें पतन हुआ ।५५-५६। सो वहां उन्होंने पांच पल्य पर्यन्त छेदन, भेदन, ताड़न, पीलन, तापन आदि नानाप्रकारके घोर दुःख सहे ।५७। पापकर्मसे प्रथम नरकके ऐसे दुःख सहके आयु पूरी होने पर जिनधर्म की निन्दा तथा मिथ्यात्वके उदयसे कौशल देशमें सोमशर्मा नामका तुम्हारा पूर्वभवका पिता तो चांडाल हुआ और तुम्हारी अग्निला नामकी माता कुत्ती हुई है। उस समय तुम दोनों इनके पुत्र थे, अतएव तुमपर इनका अगाध स्नेह था। यही कारण है कि, इन्हें भी तुम्हें इस भवमें देखते ही मोह उत्पन्न हुआ ।५८-६०। जिनधर्मका तिरस्कार करना कालकूट विषवृक्ष के समान है, जिसमें मिथ्यात्वरूपी जलसिंचन होने से अनेक अशुभ २ फल उत्पन्न होते हैं ।६१। तुमने पूर्वभवमें भलीप्रकार जिनधर्मको पालन किया था, जिससे तुम मरणकर स्वर्गको प्राप्त हुए थे। वहां अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम सुख भोग वहां से चयकर तुम दोनों जिनधर्मके प्रभावसे सेठ के पुत्र हुए हो। हे पुत्रों! ये सब पुण्य पापके फल हैं, ऐसा चित्त में दृढ़ श्रद्धान करो ।६२-६३।

इसप्रकार श्रेष्ठिपुत्रोंने मुनिराज के कथनसे अपने स्नेह सम्बन्धका निश्चय किया और धर्मस्नेहके वशीभूत होकर उन्होंने उस चांडाल वा कुत्तीको भी व्रत ग्रहण कराया ।६४-६५। धर्मको ग्रहण करके वह चांडाल मुनिराज से बोला, "हे स्वामिन्! आपकी कृपासे आपके कहे अनुसार मुझे पूर्वजन्मका स्मरण होनेसे सर्व वृत्तान्त प्रगट हुआ ।६६। सो विप्रकी उत्तम जाति तो कहां और चांडाल का नीच कुल कहां, इसका विचार करते ही मेरा चित्त शोकचिन्तासे भ्रमित हो रहा है ।६७। इसलिये आप मुझे शोक, रोग, भयसे आकुलता तथा जन्म, जरा मरणकी वेदनासहित इस संसार सागर से

पार होने की तदबीर बताओ ।६८। तब मुनिराजने उन्हें निःशंकादि अष्टांगसहित सम्यक्त्व ग्रहण कराया और बारह प्रकारका धर्म भी धारण कराया ।६९। कुत्ती व चांडालने बड़ी प्रसन्नतासे व्रत ग्रहण कर लिये । पश्चात् वह चांडाल तो धर्मवासना सहित एक महिने में ही सन्यासपूर्वक मरणको प्राप्त हुआ ।७०। सो जिनधर्मके प्रभावसे नन्दीश्वर द्वीपमें अनेक देवोंकर सन्मानित पांच पल्यकी आयुवाला देव हुआ ।७१। और कुत्ती सात दिन तक व्रतपालन करके मरने पर उसी देशके राजाकी मनोहर पुत्री हुई ।७२। वह अनेक प्रकारके शास्त्र और उपशास्त्र पढ़कर पण्डिता हो गई । उसके शरीरके सम्पूर्ण अवयव बड़े ही सुन्दर थे । एक दिन वह उपवनमें क्रीड़ा करनेके लिये गई । सो वहां राजाने उसके यौवनसम्पन्न रूपको देखकर देश देशान्तरके राजाओंके पास दूत द्वारा सुन्दर पत्र भेजकर उन्हें बुलाये ।७३-७४। और अनेक उत्सव सहित, स्वयंवरमंडप सजाया । जब स्वयंवरमंडप भर गया, तब राजकन्याने सोलह प्रकारके आभूषण पहनकर स्वयंवरमंडपमें प्रवेश किया ।७५। उसी समय नन्दीश्वरद्वीपके देवने (चांडालके जीवने) जो जिनवन्दनाके लिये जा रहा था, राजकन्याका स्वयंवर देखा ।७६। ज्यों ही वह वहां आया और राजकन्याको देखा, त्योंही उसे पूर्वभवका स्मरण हो आया कि यह तो मेरी ही अग्निला नामकी स्त्री है, इसको अब समझाना चाहिये । ऐसा विचारकर उसने अपने स्वरूपको गुप्त रखके कहा, राजकन्ये ! क्या तू अपने पूर्वभवकी दशाको भूल गई ? जो तूने मोह कर्मके उदयसे कुत्तीकी पर्यायमें कष्ट भोगे हैं । अब तूने पाणिग्रहण करनेकी लालसासे यह निरर्थक कार्य क्यों रचा है ? जो संसारका कारण है । क्योंकि भोग संसारके बढ़ानेवाले ही होते हैं ।७७-८०। और क्या तू पहले तीन भवोंके दुःख भूल गई जो नरकमें तथा कुत्ती और चांडालके भवमें अपन दोनोंने भोगे हैं ? ।८१। देवके वाक्योंको सुनते ही राजकन्याको पूर्वभवका स्मरण हुआ और वह उसी समय वैराग्य परिणामसहित स्वयंवरसे बाहर निकल आई ।८२। और तत्काल ही वनमें जाकर उस वैराग्य विभूषिता

राजकन्याने श्रीश्रुतसागर मुनिराजके पास निर्मल जिनदीक्षा ले ली ।८३। स्वयम्बरमें तिष्ठे हुए राजकुमारोंको बड़ा आश्चर्य हुआ कि, बिना कारण उदासीन होकर राजकन्या कैसे चली गई ? ।८४। राजा भी अपनी पुत्रीके उदासीन होनेका कुछ भी कारण न जान सका। इस प्रकार राजकन्या को सम्बोधित करके वह देव अपने मनोवांछित स्थान को चला गया ।८५। राजकन्याने चिरकाल पर्यन्त अर्जिका के महाव्रत पालन किये आयुके अन्तमें शरीरको छोड़कर स्त्रीलिंग छेदकर स्वर्गलोकको प्राप्त किया ।८६। जिनधर्मके प्रभावसे इस जीवको क्या प्राप्त नहीं होता ? अर्थात् मनोवांछित सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं। ऐसा जानकर जिन भाषित धर्मका सदाकाल पालन करना योग्य है ।८७।

इसप्रकार मुनिराजने कथाके प्रसंगानुसार कुत्ती और चांडालका वृत्तांत जो पूर्वभवमें श्रेष्ठिपुत्रों के माता पिता थे संक्षेपसे कह सुनाया ।८८। तब दोनों सेठके पुत्र मुनिवरको अष्टांग नमस्कार करके प्रसन्नता पूर्वक अपने घर गये और जिनपूजनादि धर्मकृत्य करने लगे ।८९। पश्चात् सम्यक्त्वको पालते हुए वे उत्तम सन्यासस‍हित मरके सौधर्म स्वर्गमें देव हुए ।९०। जिस प्रकार आकाशमें पवनके सहारेसे मेघ उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार प्रथम स्वर्गमें उपपाद शय्यासे वे उत्पन्न हुए ।९१। जिसप्रकार एकदम आकाशमें इन्द्र धनुष तथा बिजली सर्वांगसुन्दर पूर्णरूपसे उत्पन्न होती है, उसी प्रकार पुण्योदयसे सेठके पुत्र स्वर्गमें पूर्ण अवयवसहित वैक्रियक शरीरवाले उत्पन्न होगये ।९२-९३। उसी समय देवांगनायें आईं और आरती आदि से पूजा करने लगीं ।९४। देवताओंने स्वर्गके दिव्य वस्त्राभरण पहनने को दिये और अनेक प्रकार की असवारी आदिसे उनकी सेवा की ।९५। इस प्रकार मणिभद्र और पूर्णभद्र श्रेष्ठिपुत्र सर्व शुभ लक्षणोंके धारक, सर्व वस्त्राभूषणभूषित और विमान असवारी पर आरूढ़ ऐसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुए ।९६। सो ठीक ही है, पुण्यके प्रभावसे यह प्राणी स्वर्गको प्राप्त होता है। वहां जिन चैत्यालयों की वन्दना वा जिनधर्मकी प्रभावना करता है और देवांगनाओंके मुख कमलका

अमर बनता है। स्वर्गके देव सदाकाल सुख समुद्र में मग्न रहते हैं, नव यौवन अवस्था में बने रहते हैं, चर्मसंकोच (बली) तथा सफेद बालकर रहित, सप्तधातु वर्जित उनका शरीर रहता है, और पदार्थ की इच्छा होते ही कण्ठमेंसे अमृत झरता है, जिससे तृप्ति हो जाती है।१७-१९। पुण्यके उदयसे स्वर्गसम्बन्धी भोग भोगते हुए बहुतसा समय व्यतीत हो जाता है, जो मालूम भी नहीं पड़ता।२००। इसी पुण्य के प्रभावसे स्वर्गमें देव होकर वा वहांसे चयकर ढाईद्वीपमें राजादिक होकर सम्यक्त्व सहित यह प्राणी सुख चैनसे रहता है और परम्परासे मोक्षका अधिकारी बन जाता है।२०१। पुण्यके प्रभाव से उत्तम पर्यायको धारणकर यह प्राणी कामदेवके समान सुन्दर, बड़े राज्यका स्वामी, अनेक गुणोंका धारक, ज्ञानवान, प्रतापवान, कीर्तिवान, कांतिवान, धैर्यवान भाग्यवान और शूरवीर होता है और कहां तक कहा जाय, तीनलोक में जितने उत्तम पदस्थ वा जितनी शुभ सामग्री हैं, वह सहजमें ही पुण्यात्मा जीवको प्राप्त होती हैं, ऐसा जानकर भव्यजीवोंको निरंतर पुण्यका संचय करना चाहिये।२०२।

इति सोमकीर्तिआचार्यविरचित प्रद्युम्न चरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें प्रद्युम्नकुमारके तीसरे भव सम्बन्धी मणिभद्र, पूर्णभद्र श्रेष्ठिपुत्रोंका धर्मस्वरूपश्रवण, स्वर्गलोकगमन आदिके वर्णन वाला सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

अष्टमः सर्गः

जिस सुप्रसिद्ध कौशल देशका ऊपर वर्णन कर आये हैं, उसी देवदानव—सेवित नगरमें पद्मनाभ नामका राजा राज्य करता था, जो रूपवान और प्रख्यात था तथा जिसने अपने प्रतापसे शत्रुओंको जीतकर दशों दिशाओंमें अपनी कीर्ति फैला दी थी।१-२। जिसप्रकार स्वर्गमें इन्द्र और पातालमें शेषनाग राज्य करता है उसी प्रकार यह बलाढ्य राजा न्याय नीतिसे भूतल पर राज्य करता था।३। जिसकी रूपवती श्यामवर्णा गजगामिनी, नवयौवना, सर्वाङ्गसुन्दर, चित्तको चुरानेवाली धारणी नामकी रानी थी। जिसप्रकार इन्द्रको इन्द्राणी और महादेवको पार्वती अत्यन्त प्रिय थी उसी प्रकार राजा

पद्मनाभको धारणी अत्यन्त प्यारी थी ।४-५। इस रानीके साथ राजाने पूर्व पुण्यके प्रभावसे इच्छानुसार भोग-उपभोगकी सामग्री पाकर आनन्द लूटा और राज्यका कारबार उत्तम रीतिसे चलाया ।६। इस प्रकार राज्य करते २ रानीके गर्भसे स्वर्गलोकसे चयकर दो पुत्रोंने अवतार लिया ।७। उस रानीकी कुक्षिसे सर्व शुभ लक्षणोंके धारक उन दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई, सो ठीक ही है । क्योंकि पूर्वपुण्यके प्रभावसे मनोवांछित पदार्थकी प्राप्ति होती है ।८। राजा पद्मनाभने पहले पुत्रका नाम मधु और दूसरेका कैटभ रक्खा । पुत्रोत्पत्तिकी खुशीमें राजाने बड़ा उत्सव किया ।९। जब वे रूपवान पुत्र सर्व शुभ लक्षणों के धारक, सर्वाङ्गसुन्दर यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए, तब राजाने कुलवती, रूपवती, गुणवती कन्याओं के साथ उनका विवाह (लग्न) कर दिया ।१०-११। एक दिन पद्मनाभ राजाने अपने नवयौवनसम्पन्न मनोहर मधु वा कैटभ पुत्रोंको देखकर विचार किया कि प्रथम तो मनुष्य जन्म ही पाना दुर्लभ है, उस में भी उत्तम उच्च कुलमें जन्म लेना, राज्यसुख, पराक्रम, हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, शूरता, स्त्री, पुत्र पौत्रादिका पाना बहुत दुर्लभ है । इससे भी जैनधर्मका पाना पुण्यहीनोंके लिये अत्यन्त कठिन है । परन्तु पुण्योदयसे ये सब सामग्री मुझे प्राप्त हुई है ।१२-१५। जो कुछ संसारमें प्राणियोंको भोग उप-भोगकी वस्तुएँ मिलती दीख पड़ती हैं, वे सब पुण्यके प्रभावसे मुझे प्राप्त हुई हैं ।१६। इसलिये अब मुझे आत्मकल्याण करना चाहिये, जिससे मैं अजर अमर स्वरूप मोक्षकी नित्य अवस्थाको प्राप्त कर सकूं ।१७। इसप्रकार बहुत देरतक विचार करनेके पश्चात् राजा पद्मनाभके हृदयमें वैराग्यछटा प्रकाशमान हुई । उसने सामन्तोंके साम्हने अपने मधु नामक प्रथमपुत्रको राज्याभिषेक पूर्वक राजतिलक करा कैटभको युवराज बना दिया ।१८। तत्पश्चात् वह राजा हजारों स्त्रियोंके परिग्रहको छोड़कर वैराग्य भूषित अनेक राजपुत्रोंके साथ श्रीनिर्ग्रन्थ गुरुके चरण शरणको प्राप्त हुआ और वहां उसने आलोचना करके भक्तिपूर्वक जिनदीक्षा ले ली । इसप्रकार पद्मनाभ राजा शीलधारक यतिके पदस्थको प्राप्त हुआ ।

मधु राजा और कैटभ युवराजने कुलक्रमसे प्राप्त हुए राज्यको चन्द्र और सूर्यके समान प्रजाके सुखकी अभिलाषा करते हुए भलीभांति चलाया।२१। वे दोनों प्रताप, शूरवीरता, तथा पराक्रमसे शोभायमान राजा, अपने अनुचर लोगोंके साथ बन्धुके समान वर्ताव करते थे और शरणागतों की रक्षा करते थे।२२। इनके दोनों चरणोंको शत्रु तथा मित्रोंके राजागण भी अपने मस्तकपर धारण करते थे और इनका पराक्रम जगतमें फैल रहा था।२३। एकदिन सामन्तराजाओंकी मंडलीके बीचमें विराजमान मधुराजाने एकाएक नगरके बाहरसे आते हुए कोलाहलके शब्द सुने।२४। तब उसने द्वारपालसे पूछा कि—यह क्या कलकलाट सुनाई पड़ रहा है। मैंने ऐसा कोलाहल नगर वा देशमें आजतक नहीं सुना यह क्या मामला है?।२५। तब द्वारपालने विनयसे मस्तक नमाया और हाथ जोड़के निवेदन किया कि, हे राजन्!।२६। यह एक दुष्ट राजा है, जिसकी बड़ी सेना तथा मजबूत किला है। वह आपके सारे देशको विध्वंस किये डालता है। क्योंकि वह प्रतिदिन धूर्ततासे आता है और मनुष्य तथा पशुओंके झुण्ड के झुण्ड पकड़के लेजाता है। तथा नगर और ग्रामोंमें आग लगा जाता है।२७-२८। जब कभी उसका साम्हना करनेको बड़ी सेना जाती है, तब वह अपने नगरके किलेमें जाकर छिप जाता है और वहींसे निर्भय होकर गर्जता है।२९। वह अयोध्या नगरीके बाहरकी सब वस्तुएँ हरके ले जाता है, इसी कारण वहांके रहने वालोंको अपने-अपने प्राणोंकी चिंता पड़ रही है और वे यह हल्ला मचा रहे हैं।३०। सभाके बीचमें द्वारपालके मुख से कोलाहलका कारण सुनतेही राजा मधु कोपको प्राप्त हुआ उसने अपनी भौंहें चढ़ालीं और लाल मुँह करके बोला, हे कुलीन मन्त्रियों! तुमने आज पर्यन्त मुझे यह वार्ता क्यों नहीं सुनाई?।३१-३२। तब मंत्रियोंने उत्तर दिया, हे राजन्! आपकी बाल्यावस्था थी और वह शत्रु किला सेनादिक कारणसे अनेक राजाओंसे भी जीता नहीं जाता था, ऐसा जानकर हमने आपके समक्ष इसकी चरचा नहीं की थी।३३।

तब मधुराजाने उत्तर दिया, सुनो ! क्या सूर्य उदय होतेही रात्रिके अन्धकार को नाश नहीं कर डालता है ? मेरी छोटी अवस्था भी हुई तो क्या हुआ, ये तुम्हारी बड़ी बेसमझी है जो इसकारण से तुमने आजतक मुझे इस बातकी खबर तक नहीं दी अस्तु ! ।३४-३५। अब तुम शत्रु पर चढ़ाई करनेके लिये अपनी सर्व सेना तैयार करो, मैं जाते ही किले को तोड़ डालता हूँ ।३६। आज्ञा पाते ही मंत्रियोंने संग्राम के लिये इकट्ठे होनेके वास्ते रणभेरी (संग्रामार्थ तुरही) बजवाई, जिससे सब सेना एकत्र होगई ।३७। तब राजा मधु सेना सहित रवाना हुआ, मार्गमें हाथियोंके दांतोंसे अनेक वृक्ष टूट २ कर गिर पड़े नानाप्रकारके चक्रोंसे मार्गमें आने जानेको रास्ता नहीं रहा, घोड़ोंके खुरोंसे पृथ्वी खण्डित हो चली, जिन नदी नालोंका जल सेनाकी दृष्टिमें अगाध दीख पड़ता था, उनमें सेनाके उस पार चले जानेपर कीचड़मात्र दीखने लगा ।३८-४०। जिस जिस स्थान की जमीन ऊँची थी, सब सेना के जोर से सम होगई और जो स्थान सम था वह विषम हो गया ।४१। रास्तेमें राजा मधु वटपुरके पास पहुँचा । ज्योंही उस शहरके हेमरथनामक राजाको खबर मिली, त्योंही वह मिलनेके वास्ते आया और उसने बड़ी भक्तिके साथ मस्तक नमाके मधुको प्रणाम किया । तब राजा मधुने भी आलिंगन करके कुशलादि पूछा । पुनः विनयपूर्वक सिर झुकाके राजा हेमरथ बोला,—हे स्वामी ! प्रसन्न होकर आप अपने चरण कमलकी रजसे सेवकके घरको पवित्र करें, हे कृपानिधान ! आप एक दिन मेरी राजधानीमें मुकाम करें और दयादृष्टिसे मेरी राज्यविभूति देखकर पश्चात् देशान्तरको गमन करें ।४२-४६। मधुराजाने उसके नगरमें प्रवेश करना स्वीकार किया, विशेष आदरको प्राप्तकर कौन मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता ।४७। राजा हेमरथ यह देखकर कि राजा मधुने मेरे सत्कारको स्वीकार किया है, शहर शृङ्गारित करनेके लिये नगरमें गया, स्थान २ में ध्वजा तोरणादिक बँधाये, मार्गमें पुष्पसमूह बिखरा दिए और गाजेबाजोंके साथ तथा भाटोंके जय जय के शब्दोंके साथ पूर्णमहोत्सवसे राजा मधु

का वटपुरमें प्रवेश कराया ४८-५०। पश्चात् उन्हें अपने महलमें ले गया और रत्नोंका चौक पूरके सुवर्णके सिंहासन पर बिठाया ।५१।

तब हेमरथ राजाने अपनी चन्द्रप्रभा रानीसे कहा हे मृगत्तणे ! तू स्वयं जा और राजा मधु का सत्कार कर और मंगल आरती उतार ।५२। तब चन्द्रप्रभा बोली, हे नाथ मेरी प्रार्थना सुनो,—ऐसी नीति है कि, जो अपनी मनोहर चीज हो, उसे राजाओंको न दिखलाना चाहिये, कारण उस चीज को देखकर राजाओंका चित्त सचमुच में चलायमान होजाता है इस कारण आप दूसरी रानीको वहां भेजकर यह कार्य करा लेवें मुझसे यह काम न करावें ।५३-५४। तब राजा हेमरथ बोला,—हे देवी तू बड़ी भोली है उसके यहां तेरे समान रूपवान सैकड़ों दासी हैं, इसलिये हे शुभमुखे वह तुझपर रंच मात्र भी पापदृष्टि न धरेगा, तू अपने चित्तकी शल्यको निकाल डाल और तू ही मेरे साथ चल और राजा मधुकी आरती उतारकर सन्मान कर ।५५-५६। अपने भर्तारका अत्यन्त आग्रह देखकर रानी चन्द्रप्रभाने एक सुवर्णके मनोहर थालमें उत्तमोत्तम बहुमूल्य मोती धरे और दधि-अत्तत मोती आदि मंगलीक द्रव्य भी उसमें रखलिये और राजा हेमरथ की आज्ञा से सोलह शृंगार करके वह मधुराजाके पास गई । राजा हेमरथ चन्द्रप्रभा रानीने तंदुल मौक्तिक आदिसे बड़े विनय और भक्तिसे मधुराजाकी आरती की ।५७-५९।

राजा मधु अपने साम्हने उस सर्व शुभ लत्तणों की धारक, सर्वांग सुन्दर, मनोहर रानी चन्द्रप्रभाको देखकर कामबाण से घायल होगया ।६०-६१। और मनमें विचारने लगा यह लत्मी है, कि इन्द्राणी है, पार्वती है कि चन्द्रकी स्त्री रोहिणी है, कामकी वल्लभा रति है, कि यशकी मूर्ति है, कि कीर्तिकी छबि है ? यह क्या है ? कौन है ? ।६२-६३। लोगोंका कहना है कि चन्द्रमा सागरसे उत्पन्न हुआ है, परन्तु मैं तो केवल इसके गालों पर पसीनेके बिन्दु ही चन्द्रमा जैसे देखता हूँ ।६४।

ऐसा मालूम होता है कि, ब्रह्मा ने चन्द्रका सार ग्रहण करके इसका मुख बनाया है, कमलसे इसके हाथ पांव बनाये हैं, हस्तीके कुम्भस्थल लेकर दोनों स्तन बनाये हैं, मृगीके नेत्रोंसे नेत्र बनाये हैं और हंसिनीकी चाल लेकर इसकी गति बनाई है ।६५-६६। अथवा विधाताने किसप्रकार इसकी रचना की है, कुछ समझमें नहीं आती । इसके समान रूपवान सुन्दरांगी जगतमें न कोई है न कोई हुई और न कभी होवेगी ।६७। चन्द्रप्रभाको इस तरह चिन्तवन करते हुए राजा मधुका चित्त कामबाणसे वेधा गया और वह शून्य हृदय होकर चित्रामके समान हलन-चलन क्रिया से रहित होकर उसके सौन्दर्यको देखते ही रहा, मानों सुन्दरीने उसके चित्तको चुरा ही लिया हो । पुनः राजा विचारने लगा कि।६८। उसहीका जन्म सफल है, उसीका मनुष्य भव पाना सार्थक है, तथा वही धरातल पर कृतकृत्य है, उसीका पूर्ण भाग्योदय है और उसीके पूर्वभवके प्रबल पुण्यका इस समय उदय है, जिसकी यह मनोहर सुन्दरी प्राणवल्लभा है ।६९-७०। जिस समय राजा मधु इस प्रकार मोहपाशमें फँसे हुए थे और चिन्ताचक्रमें गोते लगा रहे थे उसीसमय रानी चन्द्रप्रभा—अपने प्राणनाथ हेमरथ के साथ राजा मधुकी आरती करके अपने स्थानको गई । परन्तु अपने साथ राजा मधका चित्त भी चुराये लिये गई ।७१।

अयोध्याके स्वामी राजा मधुका चित्त ठगाया जानेसे—छला जानेसे शून्य जैसा हो गया । उसके विरह दुःखसे वे अतिशय चितातुर होगये । शय्याको पाकर उसपर पड़ गये । मानसिक दुःखके मारे उन्होंने खाना पीना, सोना, बोलना छोड़ दिया ।७२-७३। राजाकी ऐसी दशा देखकर एक सचतुर मंत्री पास आया । उसने राजाको उदास देखकर अनुमान किया कि ये किसी गुप्त चिंतामें पड़े हुए हैं ।७४। और स्नेहपूर्वक पूछा, महाराज ! आप ऐसे विकल और चिंतातुर क्यों हो रहे हैं ? आप पूर्वके समान न तो वस्त्राभूषण शरीर पर धारण करते हो और न आपकी देहकी चेष्टा ही जैसे पहले थी अब दीख पड़ती है। स्वामिन् ! क्या आपके चित्तमें उस दुष्ट बैरीका खटका लगा हुआ है ? ।७५-७६। शत्रुविषयक रंचमात्र

भी चिंता आप मत करो कारण मैं आपके शठ शत्रुको देखते २ क्षणमात्र में जीत लूँगा।७७। यदि आप चित्त प्रसन्न न रखोगे, तो अपनी सब सेना मन में यह समझेगी कि, राजा मधुका चित्त शत्रुसे भयभीत होकर उदास हो रहा है।७८। मन्त्रीके ऐसे वचनोंको सुनकर राजा मधु बोला, मुझे शत्रुका किंचित्मात्र भी दुःख नहीं है।७९। तब मंत्रीने फिर पूछा, महाराज ! तो फिर कौनसा कारण है, जिससे आप इतने दुःखित और सचिन्त हो रहे हैं।८०। तब मधुने पास बुलाकर कहा, हे मंत्रीशिरोमणि ! मैं अपने दुःखका कारण तुम्हें कहता हूँ वह यह है कि राजा हेमरथकी चन्द्रप्रभा रानीके लिये मेरा जी तड़फ रहा है।८१। जिस घड़ीसे मैंने उस रूप-यौवनशालिनीको देखा है, मेरा चित्त कामाग्निसे तप्तायमान होरहा है और मुझे पलभर चैन नहीं पड़ती है।८२। राजाके वचन सुनकर वह प्रधान मंत्री बोला, हे स्वामिन् आपने अपने चित्तमें यह बहुत ही अनुचित विचार किया है। यह कार्य इसलोक और परलोक दोनोंके विरुद्ध और निंदनीक है। इसको सुनते ही जगतमें आपका अपयश फैल जायगा। और सेनाके सुभटोंका चित्त बिगड़ जायगा। नीतिका वाक्य है कि "लोकनिंदितकार्यको मनसे भी नहीं विचारना चाहिये"।८३-८५। वचनोंको सुनकर राजाने कहा, (तुम्हारा कहना तो ठीक है, परन्तु) इसके बिना तो मैं एकक्षण भी नहीं जी सकूंगा।८६। यदि मेरे जीवनसे कुछ प्रयोजन हो अर्थात् यदि तुम चाहते हो कि मैं जीता रहूँ तो बने जिसप्रकारसे ऐसा उपाय करो, जिससे यह सुन्दरी मुझको प्राप्त हो सके। बिना चन्द्रप्रभाके राज्य, धन, सेना, रत्न, परिवारादिसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं।८७-८८। जब मंत्रीने देखा कि मधुका चित्त चन्द्रप्रभामें बिलकुल आसक्त हो रहा है तब अपने कर्तव्यको दृढ़तासे हृदयमें धारण करके राजासे बारम्बार कहा, कि महाराज ! चित्त समाधान करके मेरी बात सुनो, इस समय जो प्रेम सम्बन्धी चिन्ता आपके चित्तमें उत्पन्न हुई है, उसे अभी छोड़ दो। कारण दूसरे सामंत राजागण आपको परस्त्री अभिलाषी जानेंगे, तो उनका चित्त बिगड़ जायगा और वे अपने अपने घर

लौट जावेंगे। और संग्राम करनेकी जो तैयारी की गई है, निष्फल हो जायगी। यदि ये सुभट मांडलिक राजादिक विकल चित्त होने पर तुम्हारे साथ संग्राममें गये, तो कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा इसलिये आपको यह बात अपने मनमें गुप्त ही रखना उचित है।८९-९२। पहले सामन्त राजाओंकी सेनाकी सहायतासे वैरीको परास्त करो, पश्चात् मैं आपका मनोवांछित कार्य सिद्ध करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। शत्रु के जीतनेपर जो आप कहोगे वह बन सकेगा। इसप्रकार मन्त्रीके मनोहर वचनोंको सुनकर राजा मधुने अपने चित्तमें धैर्य धारण किया कि, मेरा मनोरथ अवश्य सिद्ध होगा। राजाने मन्त्रीसे कहा, तुम्हें मेरे कार्यको सर्वथा सफल करना होगा, मेरे चित्तको विश्वास उत्पन्न करनेके लिये तुम मुझे वचन दो, जिससे मेरे चित्तमें चैन उपजे तब मन्त्री ने राजाकी इच्छानुसार इस बातका वचन दिया।९३-९६।

मन्त्रीके मनोहर वचनोंको सुनकर राजा मधु स्वस्थचित्त होकर वैरीको परास्त करनेकी उत्कंठा से सर्व सेनासहित रवाने होनेको तैयार होगया।९७। मन्त्रीके आग्रहसे वह राजा हेमरथ भी अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ वटपुर से चल पड़ा।९८। सो मार्गमें सेनाकी सघनता और वेगसे पर्वतके शिखरों को गिराते, नदियोंको सुखाते, और वृक्षोंका नाश करते हुए रात्रिके समय राजा मधुने उस महती सेना से राजा भीमके नगरको आ घेरा।९९-१००। बाजोंकी आवाज सुनकर उस नगरमें कलकलाहट मचने लगा—वहांकी प्रजाका शरीर भयसे थरथराने लगा और सबको बड़ी भारी चिंता उत्पन्न होगई।१०१। राजा भीमने यह कोलाहल सुनकर मंत्रीसे पूछा, नगर निवासी इतना हल्ला क्यों मचा रहे हैं।१०२। मन्त्री बोला,—महाराज! मधुराजा बड़ी सेना लेकर चढ़ आया है।१०३। इसपर राजा भीमने कहा, तुम विना निश्चय किये क्या बोलते हो? क्या इस जगतमें कोई भी ऐसा बलवान है, जो मेरा साम्हना कर सके?।१०४। क्या किसीने कभी देखा वा सुना है कि, सिंहके ऊपर मृगसमूह कूद पड़ा है, अथवा

यमराज पर प्राणधारी आ झपटे हैं, अथवा गरुड़के ऊपर सर्प इकट्ठे होकर आ पड़े हैं ।१०५। तब मन्त्रीने मस्तक नमाकर निवेदन किया महाराज ! सचमुचमें राजा मधु बड़ी जंगी सेना लेकर आया है और उसने नगरको वेढ़ लिया है ।१०६। उसके भयसे मनुष्योंने शहर कोटके कपाट जड़ लिये हैं और वह अपनी सेना सहित नगरके बाहर डटा हुआ है गर्ज रहा है, ।१०७। यह समाचार सुनते ही भीमराज कोपायमान हुआ और घमण्डमें चकचूर होकर बोला, मन्त्री ! मेरे नगरके निवासी क्या इतने कायर और डरपोक हैं ? उनसे कह दो कि, कपाट न जड़ें ।१०८। ऐसे क्षुद्रके आने पर कपाट जड़देना निपट अनाड़ीपना है ! मैं अभी शहरके बाहर जाकर उससे युद्ध करता हूँ ।१०९। ऐसा कह कर और तत्काल बड़ी सेना साथमें लेकर शूरवीरताके शब्दोंकी गर्जना करनेवाला राजा भीम झपाटेसे नगर के बाहर निकल पड़ा ।११०।

चार प्रकारकी सेना (हाथी सवार, घोड़ेसवार, रथ सवार, और प्यादे) सहित राजा भीमको बाहर आया देखकर महापराक्रमी बलवान् राजा मधु अपनी सेनासहित तैयार हो गया, ।११। थोड़ी ही देरमें दोनों ओरकी अतिशय उद्धत, मदोन्मत्त, और शूरवीर घटाटोप सेना सुसज्जित होकर खड़ी होगई ।१२। दोनों ओरके बाजोंके उच्च शब्दोंसे बन्दिजनों (भाटों) के जयजयकारके शब्दोंसे रथोंके चीत्कार शब्दोंसे घोड़ोंके हिनहिनानेसे हाथियोंकी गर्जनासे ! सुभटोंकी खिलखिलार हँसीसे और धनुषोंके टंकारेके शब्दोंसे वहां कानोंसे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था ।१३-१४। ऐसे महाविकराल युद्धके भयङ्कर शब्दोंको सुनकर कायर पुरुषोंके हाथमेंसे युद्धके शस्त्र गिरने लगे और शूरवीरोंके शरीर में हर्ष रोमांच उठने लगे ।१५। दोनों सेनामें परस्पर हुँकारे शब्दोंसे, बध करनेसे तथा चोट मारनेसे घोर युद्ध हुआ ।१६। खड्ग, कुंत, बाण, तीर, चक्र, मुद्गर, किर्चा, नाराच, (लोहमयीबाण), भिंदिपाल (गोफण) गदा, हल, शक्ति, मूशल, भाला, तलवार, लाठी, मुष्टी आदिसे भयानक युद्ध हुआ १७-१८।

जिसमें संग्रामकी भूमि समुद्रकी उपमाको प्राप्त हुई ! समुद्रमें मनोहर जल तरंग उठती हैं और संग्राममें घोड़े क्रीड़ा करते हैं समुद्रमें लहरोंके उछलनेसे फेन उत्पन्न होता है और संग्राममें स्वच्छ श्वेत-चमर ढुलरहे हैं समुद्र किनारे पर्वतोंके टुकड़े २ करडालता है और संग्राममें पर्वतकेसमान उन्नतहाथियोंके शस्त्रों द्वारा खण्ड २ होरहे हैं, समुद्रमें अनेक प्रकारके मोती निकलते हैं और संग्राममें हाथियोंके मस्तक खण्ड खण्ड होनेसे गजमुक्ता (मोती) निकल रहे हैं, समुद्रमें अनेक रत्न उत्पन्न होते हैं और संग्राममें योद्धाओंके मुकुटों में से टूटकर अनेक रत्न गिर रहे हैं, समुद्रमें मगरमच्छ होते हैं और संग्राममें हाथियोंके कटे हुए पांव हैं वही मगरमच्छ सदृश हैं समुद्रमें मछलियां होती हैं और संग्राममें घोड़ोंके छिन्न-भिन्न चरण हैं वही मीनके समान हैं, समुद्रमें कछुवे होते हैं और संग्राममें सुभटोंके कटे हुए मस्तक जो लोहमें गिर रहे हैं वे ही कछुवे हैं समुद्रमें काई होती है और संग्राममें सुभटोंकी आंतें मांस अस्थि आदि सेवाल हैं, समुद्रमें जल भरपूर रहता है और संग्रामभूमि रुधिरसे डबाडब भर रही है ।१६-२२। इन सब पदार्थों से समस्त सेना महासमुद्रकी समानताको प्राप्त हुई और उसमें अनेक सुभटोंके प्राण विनाशको प्राप्त हुए ।२३। इसप्रकार महायुद्धमें अयोध्यापति महाराज मधुने भीमराजका पराजय किया—और उसे दैवयोगसे जीवित बांध लिया ! चारों ओर जय जयकार होने लगा ! राजा मधु शत्रुको वश करके और फिर उसे दूसरे देशमें छोड़कर तथा उसके स्थानमें अपने शूरवीर कुलागत सामन्तोंको छोड़कर अपनेको कृतार्थ समझता हुआ अयोध्यापुरीकी ओर रवाने हुआ १२४-१२५।

संग्राम भूमिसे लौटते समय मार्ग में अनेक देश के राजा मधु महाराजा के पुण्य के प्रभाव से अनेक प्रकारकी भेटें ले लेकर मिलनेको आये, सो उन्हें अपना शासन स्वीकार कराके आज्ञाकारी बनाके निज-निज देश में स्थापित करके मधुराजा आगे बढ़े । उस समय राजा मधुने पहली बात याद करके अपने मन्त्री से कहा, कि मैं अब वटपुरको सेना सहित अवश्य जाऊँगा, जहां कि चित्तको

हरनेवाली चन्द्रप्रभा सुन्दरी विद्यमान है ।१२७-१२६। तब मन्त्री चित्तमें विचारने लगा, क्या किया जावे राजा अभीतक चन्द्रप्रभा को नहीं भूला है । अब मैं क्या करूं ? वास्तवमें यह परस्त्रीपर अत्यन्त मोहित हो रहा है । ३० । तब मन्त्रीने उत्तर दिया, महाराज जो हुक्म, सेनासहित वटपुरको ही चलते हैं, आप चित्तमें चिन्ता न करें ।३१। तब मंत्रीने सेनापतिको अलग बुलाकर कहा कि रात्रि को तुम वटपुरको दूर एक बाजूही छोड़कर सीधे सेनाको कौशलपुरी (अयोध्या) के तरफ ले जाना ।३२। सेनापतिने वैसा ही किया । अर्थात् रात्रिके समय राजा मधुसहित समस्त सेना को वटपुर के रास्तेको छोड़कर कौशलनगरी की तरफ ले गया ।३३।

प्रातःकाल होते ही अयोध्या नगरी के पास पहुँचे । जब नगर निवासियोंको मधुराजाके शुभागमन होनेके समाचार पहुँचे, तब वे तोरण-ध्वजादिकसे नगरको सुशोभित करने लगे ।३४। सब दूकाने सजाई गईं और मार्गमें पुष्प फैलाये गये । अयोध्याके अनेक सेठ साहूकार मंगलीक सामग्री भेंटमें लेकर राजाके सन्मुख आये और नयरूपी लक्ष्मीसे युक्त मधुराजासे मिले ।३५-३६। जब राजाने उन्हें अपने नगर निवासी देखकर विचारा तो मालूम हुआ कि यह तो अयोध्यापुरी है, इससे राजाके चित्त में अत्यन्त दुःख चिंता और कोप उत्पन्न हुआ ।३७। उन्मत्त होकर वह अपने मन्त्रीसे बोला, हे मूढ़ ! तूने मेरे साथ यह क्या छलवाली बात दुश्चरित्र किया ।३८। जो खोटा अभिप्राय कर वटपुर को छोड़कर मुझे यहां ले आया । यह तूने बड़ा प्रपंच रचा । तू बड़ा असत्यवादी जान पड़ता है ।३६। यह सुनकर प्रधान मन्त्रीने सेनापतिको बुलाकर पूछा कि—तुम वटपुरके रास्तेको छोड़कर इस रास्तेसे अपनी सेना बिना आज्ञाके कैसे ले आये ? ।४०। तब सेनापति कांपने लगा और हाथ जोड़कर विनयसे बोला स्वामिन् ! क्षमा करो मैं रात्रिके अन्धकारके कारणसे मार्ग भूल गया ।४१। मैं अजानपनेसे अयोध्याके रास्तेसे ले आया मैंने यह जान बूझकर अपराध नहीं किया है । इसलिये मेरी भूलको

आप क्षमा करो ।४२। राजा सेनापतिके वचन सुनकर चुप हो रहा उसका अन्तरंग चिन्ता ज्वालासे दग्ध हुआ । बाहर बन्दियोंकी जय ! जय ! ध्वनि होने लगी । इसप्रकार राजाने महान उत्सव सहित राजमार्गसे अयोध्यानगरीमें प्रवेश कर अपने महलमें प्रवेश किया ।४३।

राजाको आया देखकर नगरवासिनी तथा महलोंकी सुहागन स्त्रियोंने गीत नृत्यादि सैकड़ों प्रकारके उत्सव किये । परन्तु उनसे शून्यहृदय राजाका मन रंजायमान न हुआ ।४४-४५। आसन भूषण शयन असन पान सुगन्धी पुष्पोंकी माला तथा अनेक प्रकारके अतर फुलेलादि और नवयौवन शालिनी सर्व शुभलक्षण धारिणी हाव भाव विलास विभ्रम मण्डित उन्नत कुचवाली, विनयसहित मस्तक झुकाई हुईं स्त्रियांये सब वस्तुएँ राजा मधुको चन्द्रप्रभा मोहिनी के वियोगमें हलाहल–विषके समान दीख पड़ती थीं ।४६-४८। इसप्रकार राजा तो अपने महलमें तिष्ठा और मन्त्रीगण अपने २ घरमें चुपचाप बैठ गये । राजाके पास जावेंगे तो वह उसी चन्द्रप्रभाके गीत गायेगा और हमें उलहने देगा, ऐसा जानके उसके पास न जाना ही उन्होंने ठीक समझा ।४९। चिन्ताके मारे राजा मधुका शरीर दुर्बल हो गया और उसे रोगोंसे पीड़ा होने लगी । काम ज्वरसे तप्तायमान होनेके कारण उसे कहीं क्षणमात्र भी साता न हुई ।५०।

अथानन्तर सर्व ऋतुओंमें श्रेष्ठ वसन्त ऋतुका आगमन हुआ । राजा मधुको चन्द्रप्रभाके वियोगमें यह ऋतु घावपर नमक छिड़कनेके समान मालूम हुई ।५१। वनमें माकन्द जातिके (आम) वृक्षोंमें मन्जरी आ गई और कदम्बके झाड़ोंमें फूलोंके गुच्छेके गुच्छे लटकने लगे ।५२। इसी प्रकार अशोक बकुल आदि नानावृक्ष अपने समयानुकूल भलीभांति फूल गये ।५३। सरोवरोंमें कमल खिले हुए हैं, और उनपर भ्रमर समूह गुंजायमान हो रहे हैं । वे त्रिलोकविजयी कामदेवके छत्रके समान शोभित होते हैं ।५४। कोयलका कूकना वही बाजोंका शब्द है, भ्रमरोंकी झंकार वही गीतोंकी सुरीली

आवाज है, और मलयाचलका सुगन्धित वायु है, सो ही गन्धर्व गुरु बनकर मानों वनकी श्रेणियोंको नृत्य कराता है ।५५-५६। ऐसा कोई भी वृक्ष नहीं दीख पड़ता था, जिसमें पुष्प न लगे हों, और ऐसे कोई पुष्प न थे, जिनपर भ्रमर गुञ्जायमान न हों ।५७। इसप्रकार जब वसन्त ऋतु पृथ्वीपर फैल रही थी तब राजा मधु कामके बाणोंसे सर्वथा घायल हो रहा था ।५८। उसकी कामाग्निको मोतियोंके हार, घनसार, कमल, केलेके पत्ते तथा ताड़पत्रके पंखेकी हवा, चन्दन, चन्द्रमाकी चांदनी आदि संसारमें जितने शीतोपचार हैं, कोई भी शमन न कर सके ।५९-६०। सो ठीक ही है, कामिनीकी विरहज्वालासे संतप्त पुरुषके लिये कमल-चन्दनादि कौन २ औषधियां विषके सदृश नहीं हो जाती हैं ? ।६१। राजा मधुको चन्द्रप्रभाकी वियोग अग्निमें इसप्रकार तप्तायमान देखकर कुटुम्ब-परिवारके सब मनुष्य शोक करने लगे ।६२। परन्तु मंत्रीने लज्जा वा भयके वशसे राजाको मुंहतक नहीं दिखाया उधर राजाने वियोगकी आगसे पीड़ित हो खाना पीना सब छोड़ दिया ।६३।

एक दिन राजा मधुके जीवनकी आशा न देखकर कुटुम्बी जनोंने उसे जमीन पर सुला दिया। जब किसीने जाकर प्रधानमंत्रीसे यह समाचार कहे ।६४। और मंत्रीने ज्योंही यह वृत्तांत सुना त्योंहि उस स्थान पर आया, जहां धरतीपर राजा बेचैन पड़े हुए थे ।६५। निकट जाकर मंत्रीने विनयसे नमस्कार किया और सन्मुख बैठ गया यह देख राजाने उसके गलेमें अपनी दोनों भुजायें डाल दी, और पूछा मंत्री ! मेरे मरनेपर तेरे चित्तका समाधान कैसे होगा ? ।६६-६७। तब वह चतुर मन्त्री चिन्ता करने लगा, कि राजा घोर दुःखमें पड़ा हुआ है, अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? किससे पूछूं और क्या कहूँ ? ।६८। यदि मैं छलबल करके हेमरथ राजाकी चन्द्रप्रभा प्रियाको उड़ाके ले आऊं, तो यह बनी बात है कि, राजा मधुकी अपकीर्ति जगतमें फैल जायगी ।६९। और यदि मैं उस नवयौवनाको लाकर इससे न मिलाऊं, तो राजा प्राण तज देगा इसमें सन्देह नहीं है ।७०। जब ये

दोनों ही कार्य विरुद्ध हैं, तब मुझे क्या करना चाहिये इसप्रकार बहुत समयतक चिन्तवन करके यह निश्चय किया कि, बने जिस तरह मुझे राजाकी इच्छा पूरी करना चाहिये। क्योंकि जब राजाका ही विनाश हो जायगा, तो मेरा सब कार्य बिगड़ जायगा ।७१-७२। कोई न कोई उपाय करके मुझे चन्द्रप्रभाको ले आना ही ठीक है। इसका पूरा २ विचार करके सचिव शिरोमणीने मधु नृपतिसे कहा ।७३। महाराज आप क्यों इतने दुःखित, चिंताक्रान्त और उदासीन हो रहे हो ? सोच फिकर छोड़ो, सचेत और स्वस्थ हो जाओ, मेरे वचनोंपर विश्वास रक्खो मैं आपकी मनमोहनी हृदयवासिनी चन्द्रप्रभाको अवश्य मिलाऊंगा ।७४। मैंने यह समझा था कि, अपने घर आके राजकार्यमें रत होके आप इस अपयशके कार्यको भूल जावोगे, परन्तु हेमरथकी प्राणवल्लभाको आप अभीतक नहीं भूले और मुझे दिखता है कि उसके बिना आपके प्राण पर बड़ा भारी विघ्न उपस्थित होगा ।७५-७६। इससे अब मैंने निश्चय कर लिया है कि, महाराजकी इच्छा पूरी करनी ही होगी, जो कुछ दैवयोगसे यश अपयश होगा, सह लिया जावेगा ।७७। परन्तु प्रभो ! अब आपको धीरज धारणकर सुखसे तिष्ठना उचित है, क्योंकि जो कार्य स्वस्थतासे होता है वही कुछ शोभनीक दीखता है ।७८। मन्त्रीके मनोहर वचन सुनते ही राजाके चित्तमें कुछ शान्ति हुई उसने चन्द्रप्रभाके विरहसे उत्पन्न हुए दुःखको दबा लिया ।७९। मन्त्रीने भी राजाके कार्यको सिद्ध करनेका दृढ़ संकल्प करके सारी पृथ्वीमें अपने दूत भेजे और उनके द्वारा कहला भेजा कि—जो २ राजा मधुराजाधिराजके शासनको पालन करने वाले हैं उन्हें अपनी रानियों सहित शीघ्र आना चाहिये कारण राजा मधु इस वसन्त ऋतुमें सस्त्रीक राजाओं और अपनी रानियों सहित उपवनमें जाकर क्रीड़ा करेंगे ।८०-८२। उस नृपचन्द्र अर्थात् मधुराजाके आमन्त्रणको पाकर और उनकी आज्ञाको सिरपर धारण करके सम्पूर्ण राजागण अपनी २ प्राणप्यारियों सहित हर्षित हृदयसे अयोध्या नगरीमें आ पहुँचे ।८३।

इसके पश्चात् एक पत्र प्रेमके सुन्दर अक्षरोंसे लिखकर परम विचक्षण दूतके हाथ राजा हेमरथके पास भेजा गया ।८४। जिसे पढ़कर और राजा मधुके स्वयं हाथका लिखा हुआ जानकर राजा हेमरथ बहुत प्रसन्न हुआ । वह अपनी चन्द्रप्रभा रानीको बुलाकर बोला, देखो ! देखो ! प्रिये राजाधिराज मधु निश्चय कर मेरी भक्तिसे अत्यन्त सन्तुष्ट हैं, इसीलिये उसने मुझपर कृपादृष्टि कर दूतके हाथ यह प्रेमपत्र भेजा है सो तुम भी इसे अपने हाथमें लेकर बांचो तब रानी चन्द्रप्रभाने उस पत्रको अपने हाथमें लिया और बांचा ।८५-८७। पत्र में इस प्रकार लिखा था:—

"स्वस्तिश्री वटपुर रमणीक नगर विराजमान सर्वोपमायोग्य राजा हेमरथके प्रति कुशल प्रश्न के पश्चात (राजाधिराज मधु) लिखते हैं कि तुम्हारी भक्तिसे हम बहुत प्रसन्न हैं । तुम हमारे प्रियमित्र हो, इसमें सन्देह नहीं है । तुम्हारे समान हितैषी मेरे राज्यमें दूसरा सामन्त नहीं है । जो मेरा राज्य है, उसे तुम अपना ही समझो । तुम संकोच छोड़ो और हमसे रंचमात्र भी भेदभाव मत रक्खो । ऐसा जानकर और हमपर प्रेमभाव धारणकर तुम्हें अपनी प्राणप्रियाके साथ यहां अवश्य आना चाहिये । कारण हमारा इस वसन्त ऋतुमें महोत्सवके साथ वनमें जाकर राजपुत्रोंके साथ एक मास पर्यन्त क्रीड़ा करने का पक्का विचार है । तुम्हारे दर्शनोंकी अभिलाषा से यहां अनेक राजा अपनी २ प्राणवल्लभा सहित पधारे हैं । इसलिये बहुत शीघ्र अपनी चन्द्रप्रभा प्रियाको साथमें लेकर आपको यहां आना चाहिये" इति ।८८-९४।

पत्र पढ़नेपर चन्द्रप्रभाने विनयके साथ राजा हेमरथसे विनती की कि, हे स्वामिन् मेरी बात ध्यानसे सुनो, राजाओंका सेवकों पर अत्यन्त आदरका दिखाना भी ठीक नहीं होता है (यह कोई जाल रचा गया है, राजा गूढ़ नीतिमें गोता मारते हैं, उनका कोई भी कार्य बिना प्रयोजन नहीं होता) ।९५। इसलिये हे नाथ आप चाहें तो पधारें परन्तु मुझे साथ न ले चलें, कारण (आरती उतारते

समय ही मैं राजा की अनीति दृष्टि जान गई हूँ) मैं वहां जाऊँगी तो वह हरण किये बिना नहीं छोड़ेगा ।९६। तब राजा हेमरथने उत्तर दिया, हे मूढ़मते ! तू क्या निन्दित वाक्य कहती है तेरे समान सुन्दर राजा मधुके यहां हजारों दासियें हैं ।९७। तब दूरदर्शी रानीने प्रत्युत्तर दिया, स्वामिन् ! मैंने जो उचित समझा सो कह दिया । जो भवितव्यमें लिखा है वह आगे तुम्हें मालूम हो जायगा, ऐसा कहकर चुप होगई ।९८। तब राजा बोला हे मृगेक्षणे ! सब अच्छा ही होगा; तू विकल्प न कर मेरे साथ अवश्य चल ।९९। इसप्रकार राजा हेमरथ चन्द्रप्रभाको समझा बुझाके और अनेक दासी दास परिवार अपने साथ लेकर बहुत जल्दी वटपुरसे अयोध्याको रवाने हो गया । चलते समय अनेक अनिष्ट शकुन हुए, तो भी "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" होनेके कारणसे राजाने उस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया ।२००।

जब राजा हेमरथ अयोध्या नगरीके पास पहुँचे, तब राजा मधुने बड़े विनयके साथ अपने परिवार सहित उनके सन्मुख जाकर अत्यन्त प्रेमसे हेमरथको गले लगा लिया और बहुत बढ़िया सजे धजे स्थान में उसे रानी चन्द्रप्रभा सहित ठहरा दिया ।२०१-२०२। और षट्रसके व्यंजनोंसे वा आदर सत्कारसे राजा हेमरथ को अतिशय प्रसन्न किया । उसके अन्य सर्व लोगोंका भी अच्छा सम्मान किया गया ।३।

राजा मधुने यह देखकर कि बहुतसे राजा आ गये हैं वनको शृङ्गारित कराया । राजाओंको फँसानेके लिये यह सब जाल फैलाया गया सो ठीक ही है, ऐसा कौनसा कार्य है जो मायाके द्वारा सिद्ध नहीं होता ? ।४। वह वन फूलोंकी पराग रज से सुगंधित और मदोन्मत्त कोयलकी कूक तथा भौंरोंकी झंकारसे सुशोभित हो गया । सिंदूरादि पदार्थोंसे रचे हुए बनावटी पर्वतोंसे रमणीक दीखने लगा । सुगंधित रज के बिखरने से उसकी शोभा बढ़ गई । इसके सिवाय हरिचन्दन की कीचड़से, कपूर केशरादि सुगंधित वस्तुओंसे भरी हुई सैंकड़ों वापिकाओंसे, सोने चांदीके रंग बिरंगे बंधनवारोंसे तथा

और भी नाना प्रकारसे वह उत्तम वन विभूषित किया गया ।५-८।

जब राजा मधुने सुना कि वन सज धजके तैयार हो गया तब वह अपनी रनवासकी रानियों सहित तथा सामन्तों व उनकी स्त्रियों सहित प्रसन्न चित्तसे वन क्रीड़ाको रवाने हुवा । ६ । सो वहां लताओं के रमणीय पत्तोंसे, फूलोंके पतनसे, भौंरोंकी भंकारसे, कोयलोंकी मधुरध्वनिसे, मंजरी (मोर) युक्त आमके वृक्षों और मुकुलित कलियोंसे, वह वन राजा को आया जान विविध अर्घ दे रहा है, ऐसा जान पड़ने लगा ।१०-११। इसी वनमें राजा मधुने केशर मिश्रित जल पिचकारियोंमें भरकर अतिशय मनोहर क्रीड़ा की, तो भी उस विरहीको कहीं रंचमात्र सुख न हुआ ।१२-१३। अन्य जो जो राजा थे, वे भी अपनी २ रानियोंके साथ अनेक प्रकारकी रंगविरंगी क्रीड़ा करने लगे ।१४। इस प्रकार राजा मधु उस वसन्तके श्रेष्ठ समयमें सब लोगोंके साथ एक मास पर्यन्त खूब क्रीड़ा करता रहा ।१५। पश्चात् महोत्सवके साथ अयोध्या नगरी में आकर वह अपने महलमें तिष्ठा ।१६। और समस्त राजाओंको वस्त्र असवारी आभूषणादिकसे संतुष्ट करके स्त्रियों सहित शीघ्रतासे विदा करने लगा ।१७। अन्तमें उसने राजा हेमरथसे बुलाकर कहा, मित्र ! अभी मेरे पास तुम्हारे तथा तुम्हारी रानीके लायक गहने तैयार नहीं हैं, इसलिये तुम अपने नगरको शीघ्र चले जाओ । कारण, बिना स्वामीके देशको सूना देखकर वैरी अपना अधिकार कर लेते हैं ।१८-१९। हे मित्र ! जब मैं तुम्हारे वटपुरमें आया था, तब तुमने मुझे जी जानसे सन्तोषित वा सम्मानित किया था ! इसलिये मेरी भी ऐसी इच्छा है, मैं तुम्हारे व तुम्हारी रानी के योग्य आभूषणादि भेंटमें प्रदान करूं ।२०। इसलिये तुम बेखटके अपनी चन्द्रप्रभा रानीको यहीं छोड़ जावो मैं उत्तम आभूषण देकर उसे तुम्हारे पीछे शीघ्र ही विदा कर दूंगा ।२१। आपके तथा आपकी प्रियाके योग्य अलङ्कार तैयार नहीं हैं सुनार घढ़ रहे हैं सो बहुत जल्दी बने जाते हैं ।२२। भोले राजा हेमरथने उस कामीके वचन सच्चे जानकर कहा बहुत अच्छा !

जैसी आपकी इच्छा, और नमस्कार करके वह अपनी प्रिया चन्द्रप्रभाके पास आकर बोला हे देवी ! मेरी बात सुन ! राजा मधुने मुझे तो विदा कर दिया है इस कारण मैं वटपुर को जाता हूँ और तुझे विश्वासपात्र वृद्ध मंत्री नौकर चाकरोंकी निगरानीमें यहीं छोड़ जाता हूँ। सो हे प्रिये ! तू आभूषणादि लेकर जल्दी चली आना। राजा मधु अपनी पहली भक्तिको देखकर अत्यन्त प्रसन्न है। इसलिये उसने तुझे यहाँ छोड़ जानेके लिये कहा है।२३-२६। सो तू यहीं ठहर, मैं जाता हूँ। राजाके वचनोंको सुनकर रानी चन्द्रप्रभाने दुःखित हृदय होकर उत्तर दिया।२७। हे नाथ ! मैं समझ चुकी कि एक तो आप अपने अभाग्यके वशसे मुझे यहां ले आये हैं और दूसरे अकेली छोड़कर घर जाते हैं। इससे अब आप निश्चय समझ लो कि राजा मधुने मुझे अपनी स्त्री बनाकर अपने महलमेंही स्थापित करली है अर्थात् राजा मधु बलात्कार मुझे अपने रणवासमें दाखिल करलेगा और अपनी स्त्री बनालेगा। पीछे आप बहुत पछताओगे, तब राजा हेमरथने कहा हे मूढ़मति तू बड़ी भोली दीख पड़ती है तू जीमेंसे ऐसा सन्देह निकाल डाल, जैसा तू समझ रही है वैसा उनका दुष्ट अभिप्राय नहीं है राजा इस समय मेरेपर अत्यन्त प्रसन्न हो रहा है। मैंने इसके जीकी खोटी चेष्टा आजतक नहीं देखी है। इसलिये चिन्ता न करके यहां सुखसे रहना। और मेरे वटपुर पहुँचते ही शीघ्र ही आजाना।२८-३२। रानी चन्द्रप्रभाने फिर कहा हे स्वामी ! आप मधुके मीठे २ वचनोंमें मत फँसो—इसका फल बहुत ही कटुक होगा, उस पीछे आपकी आंखें खुलेंगी और हाथ मल मलकर पछताओगे। इसप्रकार रानी चन्द्रप्रभाने बहुत कुछ समझाया परन्तु राजा हेमरथकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई वह रानीके वचनों पर बिलकुल ध्यान न देकर उसे वहीं छोड़कर अनेक अपशगुन होनेपर भी वटपुर को चला गया। सो ठीक ही है होनहारका कोई प्रतिकार नहीं है।३३-३५।

राजा हेमरथके चले जानेपर क्या हुआ सो सुनो। राजा मधुने अपने मंत्रीको बुलाया और मोहा-

न्ध होकर उससे कहा—मेरी प्राणप्यारी कमलनयनी चन्द्रप्रभाको ले आओ, देर न करो । तब मन्त्रीने उत्तर दिया, महाराज ! कुछ देर और ठहरिये, जरा रात्रिका समय तो होने दीजिये । तब राजाके चित्तमें कुछ सन्तोष हुआ और ज्यों त्यों उसने दिवसकी घड़ियां पूरी कीं ।३६-३८। अथानन्तर सूर्य राजा मधुको दुःखी देखकर उसपर कृपा करके मानों वह धीरे २ अस्ताचलकी ओर चला ।३९। और चकवा चकवीका वियोग करता हुआ कमलोंको संकोचित करता हुआ, कामी जनोंको सतोषित करता हुआ तथा पश्चिम दिशाको रक्त करता हुआ, सूर्य अस्त हो गया । उसके अस्त होने पर संध्याने आकाशरूपी आंगनमें पांच रंग धारण कर लिये ।४०-४१। और जो अन्धकार सूर्यके प्रतापके कारण डरकर पहाड़की गुफामें छुप गया था, सो मौका पाकर राज्य जमानेके लिये निःशंक बाहर निकला और दशों दिशाओंमें फैल गया ।२४२। जिससे ऊंचा, नीचा, चलायमान, स्थिर, सम, विषम तथा सब प्रकारके वर्ण अन्धकारके फैलावसे समान हो गये एकसे दिखने लगे जैसे निंदित राजाके आगे बुरे भले ऊंचे नीचे सब समान हो जाते हैं ।४३-४४। रात्रि समय आकाशमें तारागण दीखने लगे, सो ऐसे शोभायमान हुए मानों नीलमणिकी भूमिपर मालतीके फूल बिखरे हुए हैं ।४५। और चन्द्रमाका उदय हुआ जिसने केतकीके पुष्पके समान श्वेतता युक्त अपनी चांदनी चहुँ ओर फैलाकर पृथ्वीको सफेद कर दिया । चन्द्र महाराजने जगतको अन्धकारसे पीड़ित देखकर प्रजाके हितार्थ अपने किरणरूपी बाण चहुँ ओर छोड़े ।४६-४७। इसप्रकार जब रात्रिके पहले पहरमें चन्द्रमाकी चांदनी खिल रही थी, तब मन्त्रीकी आज्ञासे राजाने एक दूतीको बुलाकर अपनी प्रियाके पास भेजी ।४८।

जब चतुर दूती राजा हेमरथकी रानी चन्द्रप्रभाके पास पहुँची, तब उसने पास जाकर विनय सहित प्रणाम किया और कहा, हे देवी ! सावधान चित्त होकर राजा मधुने जो सुन्दर वचन मेरे द्वारा कहला भेजे हैं, सो सुनो ।४९-५०। तब रानी चन्द्रप्रभा बोली—कि जो कुछ तेरे स्वामीने कहा हो,

सुनाओ। दूती विनयपूर्वक बोली ।५१। राजा मधु महलमें विराजे थे, कि अकस्मात् राजा हेमरथके दूतने आकर सविनय निवेदन किया कि, राजा हेमरथने मेरे मुखसे कहलाया है कि, मेरी रानी चन्द्रप्रभाको बने जिस प्रकार मेरे पिछलग वस्त्राभरणसे सुसज्जित करके रवाना कर दो। यदि मुझ पर आपका सच्चा स्नेह है तो विलम्ब न करो ।५२-५३। सो दूतके वचन सुनकर राजा मधुने आपको आज ही विदा कर देना उचित समझा है और मेरे साथ आपको वहां बुलाया है, जो गहने आपके लिये बनवाये हैं, सो अभी तैयार नहीं हैं, इसलिये राजा मधु अपनी स्त्रियोंके गहने ही आपकी भेंट में देंगे और आपको ।५४। अपने प्रीतमके पास सबेरे ही भेज देंगे। इसलिये मेरे साथ राजा मधुके महलमें शीघ्र चलो ।५५। दूतीके वचन सुनकर रानी चन्द्रप्रभा चिंता करने लगी कि अब मैं क्या करूं? यदि मैं राजा मधुके पास जाती हूँ तो वह अपना मनोरथ सिद्ध करेगा अर्थात् मुझे अपनी स्त्री बना डालेगा। और यदि नहीं जाती हूँ तो राजा क्रोध करेगा। इस कारण चलना ही ठीक है। लाचार ठण्डी सांस खींचती, आंसू टपकाती हुई अपने वृद्ध नौकरों तथा उस दूतीके संग वह मृगाक्षी राजाके महलको रवाना हुई ।५६-५८।

उस समय राजा मधु महलके सातवें खंडमें तिष्ठे थे इस कारण दूतीने रानीके नौकर चाकरों को तो नीचे ही छोड़ दिया और वह चन्द्रप्रभाको लेकर महलके ऊपर गई और राजासे मिलाकर अपने घर लौट आई ।५९-६०। रानी राजाको अकेला बैठा देखकर बड़ी चिन्तातुर हुई। उसका शरीर थर २ कांपने लगा। लज्जाके कारण उसने राजासे कुछ न कहा। (मौन धारणकर खड़ी रही) तब राजाने स्वयं उसका हाथ पकड़ कर जबरदस्ती अपनी सेज पर बिठा लिया। और मनोहर परिहास युक्त चापलूसी के वचन कहना प्रारम्भ किया। हे सुन्दरी! ठण्डी हो! प्रसन्न हो! इस समय तू हर्षके स्थानमें सोच क्यों करती है? ।६१-६४। जो तेरा हेमरथ राजा है, वह मेरा ही आज्ञाकारी

है । इस बात की तो तुझे बड़ी खुशी मनानी चाहिये । राजा मधुके ऐसे वचन सुनते ही रानी चन्द्रप्रभाने उत्तर दिया ।६५-६६। हे महाराज ! आप उत्तम कुलके उपजे, धर्मात्मा न्यायवन्त और जगत् प्रसिद्ध होकर ऐसा महानिंद्य कार्य क्यों करना चाहते हो, जब बाड़ ही खेतको खाने लगी, तब कौन रक्षा कर सकता है ।६७। दूसरेकी स्त्रीका सेवन जगतनिंद्य है । ऐसे कार्यको ज्ञानवान वा न्यायवान पुरुष कदापि स्वीकार नहीं करते । और जो कुलीन सती स्त्रियें हैं, वे परपुरुषको, (चाहे वह कामदेव के तुल्य रूपवान क्यों न हो)कभी अङ्गीकार नहीं करेंगी और दुराचार कर अपने भर्तारको कभी नहीं ठगेंगी ।६८। ऐसे नाना प्रकार के वचनोंसे रानी चन्द्रप्रभाने राजा मधुको समझाया परन्तु कामबाणसे वेधित होकर कामांध राजा जबरदस्ती रानी चन्द्रप्रभासे रमण करने लगा ।६९। जब राजाने अपने मनोहर वचनोंसे हँसी मस्करीसे, चुम्बन, विरुत, रत कुटिलदृष्टि आदि कामचेष्टाओंसे रानी चन्द्रप्रभाको कामासक्त कर दिया, तब वह भी अपने भर्तार हेमरथकी याद भूल गई और आनन्दमें मग्न होकर उसने अङ्गोंके संकोच, किंकिणीके शब्द, मनोहर हाव भाव विलास, विभ्रम, गीत, नृत्य, कथादिसे राजा मधुके चित्तको रंजायमान कर दिया तथा सुरत लीलाके गाथा दोधक आदि कहकर भांति २ के विनोदसे राजाने भी उस भामिनीको तल्लीन कर डाली ।७०-७२। और मोहके वशीभूत होकर उसने चन्द्रप्रभाको अपने महलमें रख लिया, तथा इस इच्छित पदार्थको प्राप्तकर अपने राज्यको सार्थक गिनने लगा ।७३। उसने चन्दन अगरु आदि शीतल पदार्थों से जलकी वापिका सुगंधित कराई और उसमें रानी चन्द्रप्रभाके साथ मनोवांछित मनोहर क्रीड़ा की और इसी प्रकार इनका अनेक वनों उपवनों में, नदियोंके निकट पर्वतोंकी तलहटीमें, विहार करते, मौज उड़ाते और सुन्दर झूलोंमें झूलते हुए बहुतसा समय व्यतीत होगया । परन्तु····सुखसागरमें मग्न होने से उन्होंने उस बीतते हुए काल

को न जाना निदान अतीव मोहित होकर मधुराजाने चन्द्रप्रभाको अपनी पटरानी बनाली ७४-७६।

अब राजा हेमरथ की क्या दशा हुई सो सुनोः—जिन मन्त्री वा नौकरोंको, राजा हेमरथ वटपुरको जाते समय रानी चन्द्रप्रभाके साथ अयोध्यामें छोड़ गया था, वे यह देखकर कि मधुने चन्द्र-प्रभा को अपनी रानी बना लिया है, निराश होकर वटपुरको चले आये।७७। और राजा हेमरथको सब वृत्तांत कह सुनाया जब राजाने अपनी प्राणप्यारी का हरण सुना, तब उसका हृदय विदीर्ण होगया—मूर्च्छा खाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और कुछ देरतक अचेत पड़ा रहा। तब मन्त्री आदिकों ने शीतोपचार द्वारा राजा को सचेत किया।७८-७९। ज्यों ही राजा सचेत हुआ, उसने क्रोधसे अपने नेत्र लाल कर लिये और मन्त्रियोंको हुक्म दिया, सेना तैयार करो।८०। मैं अभी अयोध्याको जाता हूँ और राजा मधुको जीतकर अपनी प्राणप्यारी चन्द्रप्रभाको ले आता हूँ।८१। तब मंत्रियोंने उत्तर दिया महाराज! आपका जाना ठीक नहीं है कारण मधु बड़ा बलवान है, वह अपने से नहीं जीता जा सकता है।८२। मन्त्रियोंकी बात सुनकर राजा हेमरथ मनमें यह विचार करके कि सचमुच मधु का जीतना अत्यन्त कठिन है। उद्यम रहित हो गया, ठंडी सांस खींचने लगा और काम पिशाचके वशीभूत हो रानी चन्द्रप्रभाको बारम्बार याद कर खेद खिन्न हो सेजपर जा पड़ा और विह्वल चित्त हो गया।८३-८४। शून्य चित्त होकर कभी हँसने लगा कभी महल में जाने लगा, कभी सभामें आकर गाने वा रोने लगा, कभी जीमें कुछ विचार कर घर आता और खिड़कीमेंसे इधर उधर झांकता, कभी झरोखेपर चढ़कर देखता, परन्तु उसे सब शून्य ही दीखता था। रानी चन्द्रप्रभाके बिना घर सूना देख कर वह गला फाड़ २ कर रोने लग जाता। हाय हाय! प्रिये! दयिते! प्राणवल्लभे! मेरे ही प्रमाद से उस दुष्टात्माने तुझे हरी है। अब मैं क्या करूं? कहां जाऊँ? किससे पूछूँ? और क्या कहूँ? ऐसे तरह २ के विकल्पों से उसकी बुद्धि मारी गई और विचारहीन पागल होकर वह अपनी पुरी में

भ्रमण करने लगा। दुष्ट काम पिशाच के वशीभूत होकर उसने अपने कुटुम्ब, बन्धुगण, राजकाजको छोड़ दिया और लड़कोंकी टोलीमें वह अकेला डावाँडोल फिरने लगा ।८५-९०। नगरकी गलियोंमें तथा वनमें हाय प्रिये ! हाय प्रिये ! करता हुआ चक्कर लगाने लगा मूढ़बुद्धिको वस्त्र वा वेषकी रंच-मात्र सुधबुध न रही। योंही इतस्ततः भटकने लगा ।९१। बिना वस्त्रके धूलिसे जिसका शरीर मलीन होरहा है; जिसके बाल रूखे हो रहे हैं। जिसके मुखकी कांति जाती रही है जिसने कंधेपर फटे वस्त्र धारण कर रक्खे हैं, ऐसी दशाको प्राप्त हो राजा हेमरथ अनेक नगरोंमें फिरते २ मोहके वशीभूत होकर दैवयोगसे अयोध्यामें पहुँचा ।९२-९३। वहां रास्तेमें जाती हुई स्त्रियोंको देखकर उनके पीछे दौड़ने लगता और कहने लगता, हे चन्द्रप्रभा ! जरा ठहर जरा ठहर मेरी बात तो सुन ।९४। ऐसे वचन सुनकर उसे उन्मत्त पागल जानकर स्त्रियें कंकर फेंककर पत्थर मारने लगीं और कई स्त्रियें डरकर दूर भागने लगीं। जिधर जिसके पास जावे वे सब इसे दूर ही से दुतकार देते थे। इस प्रकार गली गलीमें बाजारमें पागल हेमरथ डावाँडोल फिरने लगा ।९५-९६।

एक दिन जब रानी चन्द्रप्रभा झरोखेमें बैठी थी, तब उसकी धायने राजा हेमरथका राजमहल की तरफ दौड़ते और हाय २ जोर जोरसे चिल्लाते हुए देखा और पहचान लिया कि ये तो राजा हेमरथ है। उसकी निपट बुरी दशा देखकर वह अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगी ।९७-९८। यह देखकर चन्द्रप्रभा बोली, हे माता मैं तेरे रुदनको देखकर बड़ी व्याकुल हो रही हूँ। इस कारण तू मुझे शीघ्र बता किस दुष्टने तेरा अपमान किया है ? बिना कारण तू क्यों रोती है ? ।९९-२००। तब धायने उत्तर दिया, पुत्रिके ! कुछ भी कारण नहीं है। यों ही मेरे आंखोंमें आंसू आगये हैं। जब रानीने बहुत आग्रह किया और कारण पूछा, तब धायने गद्गद् वाणीसे कहा, पुत्री ! तू तो सुखमें मग्न होकर अपने भर्तारको भूल गई। परन्तु तेरे प्राणप्यारे राजा हेमरथकी यह दशा हुई है कि वह तेरे

वियोग में पागल होगया है और राजकाज छोड़कर इधर उधर मारा मारा फिर रहा है उसके साथमें नीच जातिके लड़के हैं मुझसे राजाकी ऐसी दुर्दशा देखी सुनी नहीं गई इसीसे मैं दुःखित होकर रोने लगी और कोई कारण नहीं है ।२०१-२०३। रानी चन्द्रप्रभा ऐसे वाक्योंको सुनकर, जिन्हें उसने पहले कभी नहीं सुने थे, कुपित हुई और बोली, माता ! तूने अच्छा नहीं किया, इसप्रकारके असुहावने वाक्य जिनको सुनकर मुझे दुःख उपजे, तुझे कहना उचित न था। भूले हुए दुःखकी याद दिलाकर तू मुझे विशेष दुःखी क्यों करती है ? ।२०४-२०५। तू नीच कुलकी दासी है, इसमें सन्देह नहीं, ऐसा नहीं होता तो तू भूले हुए दुःखको याद दिलाकर क्यों उभाड़ती और मुझे दुःखित करती ? २०६। तूने मुझे दूध पिलाया है, इसलिये तू मेरी माताके समान है। यदि ऐसा न होता तो मैं तेरा बहुत बड़ा अनिष्ट करती। ७। जिसका मुख पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान है, जिसके नेत्र चंचल हैं, जिसकी आकृति सुन्दर है, जिसकी दीर्घ और सुपुष्ट भुजा हैं, जिसने अपने रूपसे कामदेव को भी जीता है और अनेक राजा जिसकी आज्ञा सिरपर धारण करते हैं, ऐसे मेरे पतिकी तू मेरे सामने निन्दा करती है ।८-९। चन्द्रप्रभाकी धायने समझा कि, रानीने मेरी बात झूठ समझ ली है। ऐसा समझने पर वह आगे भी मुझपर सन्ताप करेगी, इसलिये इसे राजा हेमरथको साक्षात् दिखा देना चाहिये, जिससे इसके चित्तका सन्देह दूर होजाय ।१०-११। ऐसा विचारकर उस चतुर धायने चन्द्रप्रभा से कहा, पुत्री ! देख अभी मैं तुझे तेरे सुन्दर पतिको दिखाती हूँ। तब चन्द्रप्रभा बोली, अच्छा बता कहां हैं ? उसी समय जब पागल राजा, राजमहल के झरोखेके नीचे आया, तब धायने उस बुरे वेष धारण किये हुए राजाको दिखाया और कहा पुत्री ! तूने देखा, गतिसे, लक्षणसे, चेष्टासे यह राजा हेमरथ ही मालूम पड़ता है ? रानीने उसके लक्षणोंसे और चेष्टासे जान लिया कि यह मेरा प्यारा पति ही है जो पद पदपर हाय प्रिये ! हाय प्रिये ! करता हुआ चिल्ला रहा है ।१२-१५। अपने भर्तारकी

ऐसी दशाको देखकर वह शोक करने लगी और उसके दुःखको देखकर स्वयं दुःखित होती हुई विचारने लगी—धिक्कार है मेरे जीवनको, मैं महापापिनी हूँ जो मेरे वियोगमें मेरे पतिको ऐसी दशा हो रही है और मैं राजा मधुमें रम रही हूँ धिक्कार है इस स्त्रीपर्यायको जिसमें सदाकाल परवश रहना पड़ता है। इस प्रकार जिस समय धायके साथ महलमें रानी चन्द्रप्रभा अपनेको बारम्बार निंद रही थी उसी समय वहां राजा मधु आ पहुँचा ।१६-१६।

रानी चन्द्रप्रभा अपने गूढ़ दुःखको छुपाकर उसके सन्मुख खड़ी हो गई और अपने हाथोंसे उसके हाथ पकड़कर प्रेम सम्भाषण किया। राजा भी पूर्वके समान स्नेहसे उस गौरवशालिनी रानीको लेकर महलके ऊपर छतपर लेगया ।२०-२१। जिस समय राजा चन्द्रप्रभा सहित आनन्दसे शरद्ऋतु सम्बन्धी चांदनी की शोभा देख रहा था उसी समय एक दूसरी घटना हुई सो इस प्रकार है कि—नगर का चंडकर्मा नामका कोटवाल एक पुरुषको दृढ़तासे बांधकर लाया और राजमहलके ऊपर जाकर राजा को नमस्कार करके बोला महाराज इस युवा पुरुषने परस्त्रीका सेवन किया है इसकारण मैं इसे बांधकर आपके पास लाया हूँ। इसने जैसा अपराध किया है वैसा इसे दंड मिलना चाहिये। ऐसा कहकर और हाथ जोड़कर कोटवाल खड़ा रहा ।२२-२५। तब क्रोधायमान होकर राजा मधुने हुक्म दे दिया, कि कोटवाल! जल्दी जाओ और इस पापीको शूलीपर चढ़ादो। जो पापोंसे डरनेवाले राजाओंके आगे तो दोष करना तो दूर रहा, दोष करनेवालोंकी वार्ता भी विवेकी जन नहीं कर सकते हैं ।२६-२७। राजाके वचन सुनकर और जीमें अत्यन्त क्रोधित होकर रानी चन्द्रप्रभा विनयसे बोली, हे नाथ! मेरी बात सुनो। यह पुरुष रूपवान् और युवा है। इसको आप क्यों प्राणरहित करनेकी आज्ञा देते हो? इसने ऐसा क्या अपराध किया है? ।२८-२६। मधुने उत्तर दिया—हे विचक्षण देवी, इस पापीने पराई स्त्रीका सेवन किया है। और इस पापका यही दंड है दूसरा नहीं है। तब रानी मुस्करा कर

विनयसे बोली, हे स्वामी, परस्त्री गमनमें कौनसा ऐसा बड़ा पाप है जो यह बेचारा रूपयौवनसम्पन्न पुरुष शूली पर चढ़ाया जाता है ? ।३०-३२। राजा मधु अपने कुकर्मकी याद भूलकर बोला–प्रिये, यह महान् वज्रपाप है । इससे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है ।३३। यह सुनकर चन्द्रप्रभाने फिर कहा, मुझे तो यह कोई पापका काम नहीं दीखता आप वृथा ही बेचारे को शूली देते हो । तब राजा मधुने शास्त्र परिणाम सहित प्रत्युत्तर दिया कि,—

श्लोकः—परस्त्रीगमनं नूनं देवद्रव्यस्य भक्षणं । सप्तमं नरकं यांति प्राणिनो नात्र संशयः ॥

अर्थात्–परस्त्री सेवन करनेसे और देवद्रव्यको हजम करजानेसे मनुष्य सातवें नरकको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ।३४-३५। यदि समस्त पाप एक तरफ रक्खे जावें और परस्त्रीसंगमरूप पाप दूसरी बाजू रक्खा जाय, तो परदारासेवनका पाप समस्त पापोंकी अपेक्षा वजनदार निकलेगा, ऐसा शास्त्रमें लिखा है । इसलिये निश्चय जानो कि इससे बढ़कर महान् पाप नहीं है । परस्त्रीके लम्पटी इस लोकमें कलंकित होते हैं, राजद्वारा वध बंधनके दंडको पाते हैं, और परलोकमें नरकको प्राप्त होते हैं। इसलिये पराई स्त्री सर्वथा त्यागने योग्य है ।३६-३७। पराई स्त्री भोगी हुई वस्तु अर्थात् उच्छिष्टके समान है तथा बुद्धिमानोंको निंदित धनधान्यका विनाश करनेवाली, पापकी खान और लड़ाईकी जड़ है अतएव परनारीसेवन सर्वथा त्यागने योग्य है ।३८।

राजा मधुके ऐसे वचन सुनकर रानी चन्द्रप्रभा बोली:–यदि परस्त्रीसेवन करना सचमुचमें पातक है और आप पुण्य पापके स्वरूपको भली भांति जाननेवाले हैं, तो हे नाथ ! मुझ पराई स्त्री को आपने छल करके क्यों हरी ? ।३९-४०। आपने न मेरी मेरे पिताके घर जाकर कुँवारी अवस्था में मंगनी की । और न मेरे साथ विवाह किया फिर आपने मेरा हरण क्यों किया, मेरा शीलभङ्ग क्यों किया ? ।४१। चन्द्रप्रभाके ऐसे वचन सुनकर राजा मधु बहुत लज्जित हुआ और उत्कृष्ट वैराग्यको प्राप्त

होकर विचारने लगाः—हाय हाय मुझ पापीने ऐसा जगनिंद्य कर्म क्यों किया धर्मात्माओंको परस्त्री-हरण तथा परस्त्रीसेवन करना सर्वथा अनुचित है ।४२-४३। मैं तो धर्म अधर्म कर्मों को वा उनके फलों को अच्छी तरहसे जानता था फिर भी मोहके वशीभूत होकर मैं अंधा कैसे हो गया ।४४। जो असत्य है वह कभी सत्य नहीं हो सकता और जो अधर्म है वह त्रिकालमें कभी धर्म नहीं हो सकता ऐसा जानकर ज्ञानवानोंको अधार्मिक सकल निन्दनीक कार्य कभी न करना चाहिये ।४५। यह शरीर माताके रुधिर और पिताके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है। मल मूत्रादि अशुचि पदार्थयुक्त गर्भस्थानमें रहा है। माताके उगालसे बढ़ा है, अतिशय निन्द्यद्वारसे बाहर निकला है, अपवित्र सप्तधातुमयी है, और चर्म से आच्छादित अस्थि तथा जालका पिंड है। ऐसे शरीरको देखकर मोह कैसे किया जाता है ।४६-४७। हाय ! यह जीव संसारकी दशाको इन्द्रजालके समान अस्थिर जानता बूझता हुआ भी मूढ़ होकर क्यों इसी में मोहित होता है बड़ी विचित्रता है ।४८। मेरे घरमें क्या मनोहर सुन्दर रानियाँ नहीं थीं फिर मुझ जड़मतिने इस पराङ्गनाका हरण सेवन क्यों किया ?।४९। जैसा मैंने इस भवमें पाप-कर्म उपार्जन किया है वैसा ही मुझे फल भोगना पड़ेगा। क्योंकि जैसा बीज बोते हैं, वैसा ही फल उत्पन्न होता है ।५०। क्या मेरे पास रूपयौवनसम्पन्ना बड़े और उन्नत कुच धारण करनेवाली चित्तको चुराकर वशीभूत करनेवाली स्त्रियां नहीं थीं, जो मैंने मोहके जालमें फँस परवनिता सेवनरूप घृणित कर्म किया यह मोह ही नरकका ले जाने वाला और संसारका कारण है ।५१-५२। धन, धान्य, स्त्री, यौवन, पंचेन्द्रियके विषय, सेना, बन्धुवर्ग, पुत्र, मित्रादिके तथा यह जीवन कोई भी स्थिर नहीं है। ।५३। इसप्रकार जिस समय विषयाभिलाषासे विरक्त होकर राजा मधु संसारकी असारताका विचार करते हुए उत्तरोत्तर वैराग्य परिणतिको प्राप्त हो रहे थे, तथा उस परस्त्री सेवन करनेवाले पुरुषको छोड़ने की आज्ञा देकर अपने महलमें बैठे थे, उसी समय एक मुनिराज आहार लेनेके लिये महल की

तरफ आये। उन्हें आये देखकर राजा मधु और चन्द्रप्रभा हर्षित होते हुए सन्मुख गये।५४-५६। ऋषीश्वरको अतिशय भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर राजाने कहा, "भगवन्! तिष्ठो तिष्ठो आहार पानी शुद्ध है" ।५७। फिर उन्होंने मुनिराजको जन्तुरहित आसनपर बिठाया, आचमन कराया, उनके भक्तिभावसे चरण प्रक्षालन किये और चरणोदकको नमन करके अपने मस्तकपर चढ़ाया ।५८। फिर मन वचन कायकी शुद्धि सहित मुनिराजके चरण कमलोंकी पूजा की, वंदना की और अपनेको पवित्र किया ।५९। पश्चात् राजा मधुने चन्द्रप्रभारानीके सहित कुशीलादि पापोंका प्रत्याख्यान करके त्याग करके शुद्ध परिणामोंसे नवधा भक्तिपूर्वक मुनिराजको आहार दान दिया और महान् पुण्य उपार्जन किया ।६०-६१। जब अन्तरायको टालकर मुनिवरने निर्विघ्न पारणा कर लिया, तब उन्होंने "अक्षय दान हो" ऐसा आशीर्वाद दिया ।६२। जिसके प्रभावसे राजाके यहांपर पंचाश्चर्य हुए। सो ठीक ही है "जो कार्य भावसे किया जाता है, वह निश्चयसे सफल होता है" ।६३। ध्यान तथा शास्त्राभ्यासमें परायण रहनेवाले तथा पर-पदार्थ मात्रमें ममत्व भावको न धारण करनेवाले वे मुनिराज आहार ग्रहण कर लेनेके बाद वनमें विहार कर गये और वहां आत्मस्वरूपके ध्यानमें दत्तचित्त हो गये, जिसके प्रभावसे उन्होंने चार घातिया कर्मोंका नाशकरके सुर असुरोंद्वारा पूज्य दिव्य केवलज्ञानको प्राप्त किया ।६४-६५। वनपालके मुखसे यह शुभ संवाद पाकर राजा मधुने आनन्दभेरी बजवाकर सारे नगर निवासियों को सचेत कर दिया और गजपर सवार होकर अपने कुटुम्बी तथा परिजनोंके साथ भक्तिपूर्वक वन्दना के लिये चल पड़ा। जब उसने केवली भगवान को देखा, तब हाथीसे उतर कर और राजचिन्होंको छोड़कर अष्टांग नमस्कार किया। जिसके उत्तरमें मुनिराजने "धर्मवृद्धि हो" ऐसा आशीर्वाद दिया। मधु महाराजने विनयपूर्वक धरतीमें बैठकर और हाथ जोड़कर निवेदन किया कि, हे प्रभो मेरे ऊपर कृपा करके मुझे जिनधर्म का स्वरूप समझाइये ।६६-७०। राजाके प्रश्नको सुनकर

मुनि महाराज बोले, हे महामति राजा ! जिन भगवान के कहे हुए दशप्रकारके धर्मको मैं संक्षेपमें कहता हूँ जिसके प्रभावसे भव्य जीवोंको स्वग मोक्षका सुख सहजमें मिल सकता है, अन्य सामान्य वस्तुओंकी तो वार्ता ही क्या है ? ।७१-७२। जो विवेकी जीव हैं, उन्हें सम्यक्त्व सहित दश प्रकारका धर्म तथा बारहों व्रत बड़ी भक्तिसे धारण करना चाहिये ।७३। इस संसारके चरित्रको दुःखदाई और असार जानकर जिनेन्द्रकथित दशप्रकार के धर्मका ही शरण लेना उचित है। धन, धान्य, कोश, रत्न, कुटुम्बादिक किसीमें सार नहीं है ।७४-७५। धर्मका स्वरूप सुनते ही राजा मधु परम वैराग्यको प्राप्त हुआ। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्रको विधिपूर्वक राज्यका कार्यभार सौंपकर दिगम्बर मुनियोंकी पदवी को प्राप्त कर ली अर्थात् उसने दिगम्बरी दीक्षा ले ली, उसकी परिणीता पट्टरानी ने भी आर्यिका व्रत अङ्गीकार किया ।७६-७७। इसी प्रकार कैटभने भी जो कि मधुका छोटा भाई था, अपनी स्त्रीसहित दीक्षा धारण कर ली अर्थात् कैटभ मुनि होगया और उसकी पत्नी आर्यिका हो गई ।७८। जब चन्द्रप्रभाने देखा कि मैं दोनों ओरसे भ्रष्ट हुई मेरा पति तो राजकाज छोड़कर मेरे विरहमें पागल हो गया और राजा मधु दीक्षा धारणकर नग्न दिगम्बर हो गया। तब वह भी अतिशय भक्ति भावसे आर्यिका हो गई ।७९।

इस प्रकार इन सर्व जीवोंने वैराग्यसहित दुर्धर तपश्चरण किया और गुरुभक्तिमें परायण होकर अनेक जैन शास्त्र पठन किये, जिससे शास्त्र रहस्यके पूर्ण वेत्ता होकर पुण्ययोगसे समाधिमरण करके वे सबके सब स्वर्गलोक को प्राप्त हुए ।८०-८१। चन्द्रप्रभा का जीव देवांगनाकी अवस्थामें राजा मधुके जीवके साथ चिरकाल तक सुख भोगकर मलिन कर्मके योगसे अच्युत स्वर्गसे चयकर विजयार्द्ध पर्वतपर गिरिपत्तन नामके नगरमें जो हरि नामका राजा और हरिवती नामकी रानी थी, उनके कनकमाला नामकी पुत्री हुई ।८२-८४। सो यही कनकमाला मेघकूट नामके रमणीक नगरके राजा कालसंवरकी

रानी हुई है ।८५। और जो राजा मधुका जीव तपश्चरणके प्रभावसे सोलहवें स्वर्गमें देव हुआ था, वह देवगतिके दिव्यसुखको भोगकर और आयुके अन्तमें वहांसे चयकर पूर्व पुण्यके प्रभावसे द्वारिका नगरीमें यादवोंके श्रेष्ठ कुलमें कृष्णनारायणकी रानी रुक्मिणीके गर्भमें आया है ।८६-८७। और कैटभ का जीव कुछ दिन पश्चात् कृष्णकी जाम्बवती रानीके गर्भमें आया है ।८८। और जो राजा हेमरथ अपनी चन्द्रप्रभा रानीके वियोगमें पागल होगया था वह दुःखसागररूप संसारमें चिरकालपर्यन्त नीच योनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ कर्मयोगसे मनुष्य होकर और फिर कुतपसे मरकर धूमकेतु नामका असुरोंका नायक देव हुआ ।८९-९०। यही दैत्य विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे क्रीड़ा करता हुआ जा रहा था, सो दैवयोगसे रात्रिके समय उसका विमान द्वारिका नगरीमें रुक्मिणीके महल पर, जिसमें कि बालक था, आते ही कुण्ठित हो गया । तब उसे ज्ञानसे प्रगट हुआ कि, पूर्वभवमें जिस मधुराजा ने छल बलसे मेरी स्त्रीको हरा था, वही मेरा बैरी यहां जन्मा है । तब बैर भँजानेके विचारमें वह दुष्ट दैत्य बेचारे छहदिनके छोटे बालको हरकर ले गया, ऐसा जानकर हे नृपति किसीसे बैर कदापि नहीं करना चाहिये ।९१-९३। इस संसारमें बैर भयंकर दुःखका देने वाला है इससे धर्मका विनाश होता है और नरकादि कुगतिमें घोर वेदना सहनी पड़ती है ।९४। ज्ञानवानोंको संसारके कारणभूत बैर विरोधका ऐसा कटुक परिणाम जानकर उसे सर्वथा त्यागदेना चाहिये ।९५।

इसप्रकार श्री सीमंधरस्वामीकी दिव्यध्वनिसे पद्मनाभि चक्रवर्ति आदि श्रोतागणोंने प्रद्युम्न-कुमारका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना, जिससे सर्व जीवोंके परिणामोंमें अतिशय शांति स्थापन हो गई ।९६। कृष्णपुत्रका वृत्तांत सुनकर नारद मुनि अत्यन्त प्रफुल्लित हुए और अपने कार्यकी सिद्धि हुई जानकर तीर्थेश्वरको अष्टांग नमस्कार करके समवसरण से बाहर निकल आये ।९७। श्रीकृष्णके प्रेमबन्धनकी प्रेरणासे उनके पुत्रको देखनेकी अभिलाषासे विजयार्द्ध पर्वतके मेघकूट नामक नगरको प्राप्त हुए । और

वहांके राजा कालसंवरकी सभामें जाकर पहुँचे ।९८-९९। नारद मुनिको आता देख राजाने अपने सिंहासनसे उठ सन्मुख जाकर और भक्तिपूर्वक अर्घपाद्यादि देकर उनका यथोचित सन्मान किया। तब नारदजी आशीर्वाद देकर सुन्दर आसनपर विराज गये और थोड़ी देर तक प्रेमभावसे राजा कालसंवरसे वार्तालाप करते रहे। पश्चात् वे बोलेः—राजन्! मैं तुम्हारा अन्तःपुर (रणवास) देखना चाहता हूँ ।४००-२। राजाने उत्तर दिया हे स्वामिन्! बहुत अच्छा, आप अपने चरणकमलकी रजसे मेरे गृहको पवित्र कीजिये ।३। तब नारदजी तत्काल ही कृष्णपुत्रको देखनेकी उत्कंठासे रणवासमें चले गये ।४।

रानी कनकमालाने नारद मुनिको आया देखकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया, और अर्घपाद्य तथा आसन देकर उनका सत्कार किया। थोड़ी देर बैठकर मुनि बोले, रानी! मैंने सुना है कि तेरे गूढ़गर्भसे पुत्रकी उत्पत्ति हुई है? तब वह बोली, हे नाथ आपके चरणकमलोंके प्रसादसे हुआ तो है। यह सुनकर नारदजी बोले, देवी तू अपने सुखकारी पुत्रको दिखा तो सही, कहां है? तब रानी कनकमालाने प्रद्युम्नकुमारको लाकर मुनिके चरणोंमें डाल दिया। मुनिने उसके सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया कि "हे पुत्र तू चिरंजीव रह! चिरकाल सुखी रह! और अपने माता पिताओंके मनोरथको सफल कर।" ।५-९। नारदजीने फिर रानी से कहा, हे देवी! तू बड़ी भाग्यशालिनी है जो तेरे ऐसा भव्य और सर्व शुभलक्षणोंका धारक पुत्र उत्पन्न हुआ है। मेरी अभिलाषासे तेरा यह पुत्र चिरकाल जीवित रहे ।१०। इसप्रकार कृष्णपुत्रको देखकर प्रफुल्लितवदन नारदजी अन्तःपुरसे बाहर निकल आये और रुक्मिणीके महलको जानेके मनोरथसे द्वारिकाको रवाना हो गये ।११। द्वारिकामें पहुँचते ही नारदजी पहले मधुसूदन श्रीकृष्णनारायणसे मिले और पीछे रुक्मिणीसे मिले। रुक्मिणीको प्रद्युम्नविषयक सम्पूर्ण वृत्तांत, जो सीमंधरस्वामीने दिव्य ध्वनिसे वर्णन किया था, कह सुनाया। अर्थात् प्रद्युम्नका स्थान, उसकी पूर्वभवकी वार्ता, वय, रूप, लक्षण, उसके आगमनका काल वा चिह्न

कह सुनाये और यह भी प्रगट कर दिया कि वह सोलह लाभ तथा दो विद्याओं सहित द्वारिकामें आवेगा ।१२-१४। यह वृत्तान्त सुनकर रुक्मिणीको अथाह आनन्द हुआ । इस प्रकार पुत्रवार्ताको सुनाकर और कृष्णनारायण तथा रुक्मिणीको प्रसन्न करके नारदजी अपने यथोचित स्थानको चले गये ।१५। नारदजीके वाक्योंसे प्रीतियुक्ता रुक्मिणी अपने चिरंजीव पुत्रकी याद करती हुई और उसके आगमनकी बाट देखती हुई सुखसे रहने लगी ।१६।

आचार्य कहते हैं:—इस प्रकार संसारी जीव कर्मके बन्धनमें पड़े हुए चारों गति सम्बन्धी सुख दुःखादिके योगसे निरन्तर नाना योनियोंमें परिभ्रमण करते हैं । इसलिये निर्मल बुद्धिके धारक अपने हिताभिलाषी भव्यजीवोंको स्वर्गमोक्षका दाता जिनेश्वरप्रणीत सोम अर्थात् चन्द्रमाके समान निर्मल 'धर्म' सदाकाल धारण करना चाहिये ।४१७।

इति सोमकीर्तिआचार्य विरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें प्रद्युम्नकुमारके पूर्वभवकी वार्ता तथा नारदकथित कृष्णपुत्रकी वार्तासे रुक्मिणीकी प्रसन्नताका वर्णनवाला आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

नवमः सर्गः

पूर्वपुण्यके प्रभावसे श्रीप्रद्युम्नकुमारने राजा कालसंवरके महलमें अपनी सुन्दरतासे मनुष्यमात्रके चित्तको वशीभूत कर लिया । वह ज्यों २ बाल्यावस्थासे बड़ा होता गया, त्यों-त्यों उसका कला-कौशल्य इसप्रकार बढ़ता गया, जैसे दोयजके चन्द्रमाकी कला दिनोंदिन बढ़ती जाती है ।१। सर्व स्त्रीपुरुष उस मनोहर बालक को बड़ी प्रसन्नतासे प्यार करने लगे और हाथोंहाथ खिलाने लगे । क्योंकि, पुण्यवान जीव सबको प्यारा लगता है ।२। ज्यों २ प्रद्युम्नकुमार बड़ा होता गया, त्यों त्यों राजा कालसंवरकी ऋद्धिसिद्धि धनधान्यादिक समस्त वृद्धिको प्राप्त होती गई ।३। यह कुमार राजा और रानी दोनोंको प्राणसे प्यारा लगने लगा । सो ठीक ही है, सौभाग्य और प्रेमपात्रता पूर्व पुण्यके उदयसे

प्राप्त होती है ।४। यह कुमार बाल्यावस्थाको उल्लंघनकर क्रमसे यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ । परन्तु युवावस्थाके साथ २ उसे कामविकार उत्पन्न नहीं हुआ ।५। थोड़े कालमें ही प्रद्युम्नकुमार शास्त्रोंमें व शस्त्रविद्या में प्रवीण हो गया, अनेक प्रकारकी कलामें कुशल होगया, गुणगणसम्पन्न हो गया और साहस धीरता वीरतामें सब शूरवीरोंमें अग्रसर होगया ।६। जो शत्रुगण महा साधनसहित अपने बलके घमण्डमें चकचूर होकर जंगी सेना लेकर राजा कालसंवरपर चढ़ाई करनेको आते थे, उनसे प्रद्युम्न-कुमार सेनासहित स्वयं युद्ध करता था । और उन्हें जीतकर उनकी सेनाको दशोंदिशाओंमें भगा देता था । क्योंकि उसका पुण्य प्रबल था और यह निश्चय है कि, पुण्यके योगसे जीत ही होती है ।७-८। इस प्रकार प्रद्युम्नकुमारने चढ़ाई करके आये हुए अनेक शत्रुओंको परास्त करके उज्ज्वल कीर्ति सम्पादन की, और फिर बड़ी भारी सेना और साधनोंके सहित दिग्विजय करनेके लिये कूच किया ।९। और संग्राममें धीरता, वीरताको धारण करनेवाला वा महती सेनाके अधीश्वर जो २ विद्याधर थे, उन सबके देशोंमें सेना सहित गमन किया ।१०। इसप्रकार सम्पूर्ण शत्रुओंको परास्त करके–दिग्विजय करके कुछ दिनोंमें प्रद्युम्नकुमार बड़ी भारी विभूतिके सहित अपने नगरको लौट आये ।११। जब राजा कालसंवरने सुना कि, प्रद्युम्नकुमार दिग्विजय करके आगया है, तब उसने अपने मन्त्री आदिकों को आज्ञा देकर नगरीको नानाप्रकारके ध्वजातोरणादिकोंसे शृङ्गारित कराई ।१२। और महोत्सवसहित कुमारका नगरमें प्रवेश कराया । कुमारने पिताको देखकर उन्हें विनय वा भक्तिसहित नमस्कार किया । उस समय राजा कालसंवरने अपने विजयी पुत्रको देखकर आनन्दमें मग्न होकर विचार किया कि, मैंने पहले इसे वनमें यद्यपि युवराजपद दे दिया है परन्तु वह बात सबको प्रगट नहीं है । इसलिये अब मैं इसे सर्व मनुष्योंके साम्हने युवराजपद प्रदान कर दूँ तो अच्छा हो ।१३-१४। ऐसा विचार कर इस कार्यके लिये राजा कालसंवरने शुभमुहूर्त व शुभयोगमें देश देशान्तरके राजाओंको आमन्त्रण

देकर बुलवाया और समस्त मगडलीके समक्षमें प्रद्युम्नकुमारसे कहा, हे पुत्र ! मेरी बात ध्यान देकर सुन—जिस समय तू बनमें अपनी माताके गूढ़गर्भसे उत्पन्न हुआ था, उसी समय मैंने तेरे शुभलक्षणों को देखकर तुझे प्रसन्नतासे युवराजपद प्रदान कर दिया था ।१६-१७। परन्तु यह बात सबको प्रगट नहीं है । इसकारण अब मैं सबकी साक्षीसे तुझे युवराजके पदपर स्थापित करता हूँ । सो तू इसे हर्षसे स्वीकार कर ।१८। तब प्रद्युम्नकुमारने पिताकी आज्ञानुसार बड़ी प्रसन्नतासे युवराजपद अङ्गीकार किया । क्योंकि राज्य पाना किसे प्रिय नहीं होता ।१६। इस महोत्सवकी खुशीमें राजा कालसंवर ने याचकोंको बहुतसा दान दिया स्वजनों मित्रवर्गों के तथा अन्यान्य लोगोंके सब मनोरथ पूरे किये ।२०। इससे प्रद्युम्नकुमारकी कीर्ति पृथ्वीमें फैल गई । और वह नगर तो प्रद्युम्नकी कथासे ही सब ओरसे परिपूर्ण हो गया ।२१।

रानी कनकमालाके सिवाय, राजाकालसंवरकी अन्य पांचसौ रानियें और थीं, जिनसे पांचसौ विद्या विशारद पुत्र हुए थे ।२२। वे नित्य प्रात:काल उठकर अपनी २ माताको विनयसहित प्रणाम (पावाँढोक) करते थे ।२३। एकदिन माताओंने अपने पुत्रोंसे क्रोधित होकर कहा, हे शक्तिहीन कुपुत्रो ! तुम हुए जैसे न हुए। तुम्हारी उत्पत्तिसे क्या लाभ हुआ ? जब तुम्हारे देखते २ जिसकी जातिपांतिका कुछ पता नहीं है, उस पापी दुष्टात्माने तुम्हारा राज्य अर्थात् युवराजपद ले लिया और तुम कोरे रह गये, तब तुम्हारे जीनेसे क्या ? इससे तो मरे ही अच्छे थे ।२४-२५। तुम सबको चाहिये कि, एकत्र होकर उसे जितनी जल्दी हो सके धोखेसे मार डालो । क्योंकि इसके जीते जी तुम्हारा कुछ भी नहीं है, अर्थात् तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा ।२६। दुष्ट पुत्रोंने अपनी माताओंके अभिप्रायको समझ लिया और सबने मिलकर यह निश्चय कर लिया कि, बने जिस उपायसे प्रद्युम्नके प्राण लेना चाहिये ।२७। उन्होंने तत्काल अपनी माताओंसे कहा कि, जैसी आपकी आज्ञा है, वैसा ही हम शीघ्र प्रयत्न करेंगे और

नमस्कार करके वे बाहर निकल आये ।२८। पश्चात् वे सबके सब दुष्ट मायाचार करके कामदेवसे आकर के मिल गये और शीघ्र ही उससे ऊपरी प्रीति करने लगे ।२६। वे सदाकाल प्रद्युम्नके खान, पान, शयन, आसनादिकमें घातका मौका देखने लगे । यहां तक कि, वे दुष्ट प्रद्युम्नके भोजन, पानके पदार्थोंमें विष मिलाने लगे । परन्तु दैवयोगसे वह विष अमृतरूप परिणमने लगा । पूर्वपुण्यके प्रभावसे दुःखकारी पदार्थ भी सुखकारी हो जाता है ।

जब दुष्टोंने देखा कि, हमने हजारों उपाय रचे, परन्तु पुण्ययोगसे प्रद्युम्नका कुछ भी बिगाड़ न हुआ, तब कुपित होकर उन्होंने उसे नष्ट करनेका एक दूसरा उपाय अपने मनमें स्थिर किया ।३२। तदनुसार वे दुष्ट भ्राता वज्रदंष्ट्रको अपना अगुआ बनाकर और विश्वास दिलाकर प्रद्युम्नकुमारको विजयार्द्ध शिखरपर ले गये ।३३। वहां उन्होंने जिनेन्द्रभगवानका शुभ्र शरदऋतुके बादलोंके आकार को धारण करनेवाला, हजार शिखरों वाला, मनोहर, रत्नसुवर्णमयी जिनमन्दिर देखा । उसके भीतर जाकर उन सबने जिनभगवानकी वन्दना की ।३४-३५। पश्चात् वे सब जिनमन्दिरसे बाहर निकलकर द्वार पर खड़े हो गये ।३६। जब सबने गिरिशिखरपर गोपुर देखा, तब वज्रदंष्ट्र महाधूर्त बोला, भाइयों ? मैं तुम्हें एक बड़ी अच्छी बात बताता हूँ, जिसे बड़े विद्याधर कहते चले आये हैं । वह यह है कि, जो कोई इस गोपुरके भीतर जायगा उसे सुख वा राज्यका देनेवाला मनोवांछित लाभ होवेगा । पश्चात् वह कुशलतासे लौट आवेगा । यह बात किसीसामान्य पुरुषकी कही हुई नहीं है । किन्तु वृद्ध विद्याधरोंका ऐसा कथन है । यह कदापि असत्य नहीं है । सो तुम सब यहीं तिष्ठो मैं जाता हूँ और तुम्हारे लिये शीघ्र लाभ लेकर आता हूँ ।३७-४०।

तब पराक्रमी प्रद्युम्नकुमार वज्रदंष्ट्रसे बोला, भाई ! कृपाकर मुझे आज्ञा दो, तो मैं इस गोपुर में जाकर लाभ ले आता हूँ ।४१। तब कुटिल आशयका धारक वज्रदंष्ट्र बोला, प्रद्युम्न ! तू मुझसे

क्या पूछता है अच्छी बात है तू ही जा ।४२। तब सन्तुष्ट होकर सरलचित्त प्रद्युम्नकुमार शीघ्र ही उस गोपुरमें चला गया । जैसे कोई निःशंक होकर अपने घरमें घुसता है ।४३। कुमार वेगसे आगे बढ़ा और बीचमें पहुँचते ही उसने जोरसे शब्द किया तथा पैरोंसे द्वारको धक्का दिया ।४४। शब्दको सुनते ही भुजंगनामा देव जाग उठा और क्रोधसे लाल होकर प्रद्युम्नकुमार पर झपटके बोला:— अरे पापी दुराचारी अधम मनुष्य तूने मेरा दिव्यस्थान क्यों अपवित्र किया ? ।४५-४६। क्या तूने नहीं सुना है कि जो मेरे घरमें पांव भी रखता है, उसको मैं देखते ही मार डालता हूं ! तेरी क्या मौत आ गई है अथवा किसीने तुझे बहका दिया है तब प्रद्युम्नकुमार धीरवीरतासे बोला, रे असुराधम ! मूढ़ ! तू क्यों वृथा ही गरज रहा है ? तुझमें कुछ बल हो, तो मेरे साम्हने आ और मुझसे युद्ध कर, जिससे तुझे अभी मालूम हो जाय कि, शूरता किसे कहते हैं और कायरता (डरपोकपन) किसे कहते हैं ।४७-४९। ज्यों ही देवने ऐसे शब्द सुने, त्योंही वह क्रोधित होकर प्रद्युम्नकुमार पर उछला । तब दोनों शूरवीरों का महाभयंकर मल्लयुद्ध हुआ । दोनों घुस्सा, मुट्ठी, चपेट वा हुँकारकी ध्वनिसे चिरकाल तक लड़ते रहे ।५०-५२। अन्तमें भुजंगनामादेव हार गया और वह कुमारके चरणोंमें गिरकर नमस्कार करके बोला, हे नाथ ! मैं आपका चाकर हूँ और आप मेरे स्वामी हो । इसलिये मुझपर कृपा करो और मेरा अपराध क्षमा करो ।५२-५३। इसप्रकार विनयसे प्रसन्न करके देवने श्रीप्रद्युम्नकुमार को एक सुवर्णमय रत्नजटित सिंहासनपर बिठा दिया । उसपर विराजमान होकर उन्होंने देवसे पूछा, तुम कौन हो, और किस वास्ते इस पर्वतकी गुफामें रहते हो ? विनयसे अपने शरीरको झुकाकर देव बोला, स्वामी ! मैं सत्य २ निवेदन करता हूं, आप ध्यानसे सुनें,—मैं यहां आपके लिये ही चिरकाल से निवास करता हूँ । इसका खुलासा हाल इस प्रकार है कि,—।५४-५६।

इसी विजयार्द्ध पर्वतपर अलंकार नामका एक उत्तम नगर है जो समृद्धशाली लोगोंसे सघन

हो रहा है। उसमें एक गुणोंका सागर कनकनाभि नामका राजा राज्य करता था, जिसकी अनिला नामकी रानी पतिव्रताकी धुरीको धारण करनेवाली थी।५७-५८। राजा रानी इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए सुखसे राज्य करते थे, जिससे आनन्दमें मग्न होकर उन्होंने व्यतीत होता हुआ समय नहीं जाना।५९। कुछ दिनोंमें स्वर्गसे चयकर एक अतिशय सुन्दर और गुणवान पुत्रने जो कि देवोंके समान था, उनके यहां अवतार लिया। उसका हिरण्यनाभि नाम रक्खा गया। राजा कनकनाभि ने चिरकाल पर्यन्त राज्य करके और निरन्तर सुख भोगकर एकदिन राज्यलक्ष्मीको विनाशीक और यौवनको क्षणभंगुर जान कर विषयोंसे विरक्त चित्त हो वैराग्यसे अपने हृदयको विभूषित किया। और अपना सारा राज्य पुत्रको सौंप दिया तथा परम उदासीनता सहित वनमें जाकर श्रीपिहिताश्रव मुनिराजको परम भक्तिसे अष्टांग नमस्कार किया और उसने दिगम्बरी दीक्षा ले ली।६०-६३। पश्चात् गुरुके पास द्वादशाङ्ग पठन किया और घोर तपश्चरण किया, जिससे घातिया कर्मोंका विनाश कर श्रीकनकनाभिने केवलज्ञानको प्राप्त किया।६४। भव्यजीवोंको उपदेश दिया और चार अघातिया कर्म नष्ट कर मुक्तिलक्ष्मीके गृहको प्राप्त किया, जहां अनन्ते सिद्ध विराजे हैं और अनन्त आत्मीक सुखका अनुभव करते हैं।६५।

तदनन्तर राजा हिरण्यनाभि कंटकरहित और शत्रुसे रहित होकर राज्यका कारभार उत्तमतासे चलाने लगा।६६। एक दिन जब हिरण्यनाभि राजा अपने महलके ऊपर तिष्ठा हुआ था, उस समय उसने बड़ी भारी विभूति और बड़ी भारी सेनासहित किसी दैत्येन्द्रके राज्यको देखा। उस आश्चर्य कारक राज्य सम्पदाको देखकर उसने अपने मनमें सोचा कि, मेरी राज्य सम्पदा इससे बिल्कुल हीन है। इसलिये धिक्कार है, मेरे जीवनको वा मेरी राज्य विभूतिको।६७ ६८। मैं भी ऐसी ही कोई विद्या साधन करूं, जिससे मुझे मनोवांछित राज्य विभव प्राप्त हो। बहुत बार विचारकर उसने इसी बातका दृढ़ संकल्प कर लिया और अपने छोटे भाईको राज्यका कारभार सम्हलाकर आप विद्या साधनार्थ

सिद्ध नामक वनको चला गया। और तपस्या करनेको उद्यत हो गया। वहा उसने गुरुके द्वारा पाई उत्कृष्ट विद्याओंका साधन किया। पश्चात् पुण्यके प्रभावसे रोहिणी विद्याका साधन करके और उसकी सिद्धिसे अतिशय प्रसन्न होकर महान् उत्सवके सहित वह अपने अलंकार नामक नगरको लौट आया। ६९-७१। तथा छोटे भाईसे राज्यका कारबार अपने हाथमें लेकर अंकुश रहित स्वतंत्र होकर राज्य करने लगा। विद्याओंके द्वारा साधन किये वैभवसे इन्द्रके समान शोभित होता था। इसप्रकार राजा हिरण्यनाभिने पुण्यके प्रभावसे चिरकाल तक राज्यसुख भोगा ।७२।

एक दिन वह राजा संसारको निःसार जानकर वैराग्यको प्राप्त हो गया। और तत्काल ही राज्याभिषेक पूर्वक अपने पुत्रको विभूतिसम्पन्न राज्य सौंप कर श्रीनमिनाथ स्वामीके समवसरणमें गया। ।७३-७४। उसने जिनेश्वरको नमस्कार कर परम भक्तिसे हाथ जोड़कर विनती की कि,:—हे भगवन्। यह संसार असार है, मुझे इस बातका भली भांति श्रद्धान हो गया है। मैं अनादिकालसे संसारमें रुल रहा हूँ अतएव हे तीन भुवनके नाथ ! संसारका नाश करनेवाला कोई उत्कृष्ट व्रत मुझे प्रदान करो। ७५-७६। तब नमिनाथ स्वामीने उत्तर दिया, हे भव्य ! तूने भला विचार किया। जिनेश्वरी दीक्षा अभागियोंको प्राप्त नहीं होती है। इसलिये तू सहर्ष महाव्रत अङ्गीकार कर। जिस समय राजा हिरण्यनाभि दीक्षा ग्रहण करनेको तत्पर हुआ, उसी समय विद्याओंने हाथ जोड़कर विनती की कि, हे नाथ ! आप तो अब जिनेन्द्रभाषित दीक्षा लेते हो, हम आपके बिना अनाथ हो जावेंगी, बतलाओ कि, हम क्या करें ।७७-७९। यह सुनकर राजा हिरण्यनाभिने श्रीनमिनाथ स्वामिसे पूछा, हे भगवन्। इन विद्याओंका क्या करना चाहिये ? इनका स्वामी कौन होगा ? आप दयाकर प्रगट कीजिये ।८०। तब जिनेन्द्र दिव्यध्वनि खिरी कि,:—हे वत्स ! इन विद्याओंका जो स्वामी होनहार है, उसे मैं पहले ही बताता हूं, ध्यान देकर सुनो ।८१-८२।

हरिवंशशिरोमणि श्री नेमिनाथ तीर्थंकरके जो ज्येष्ठ भ्राता, नवमें नारायण, द्वारिकानाथ, श्री कृष्णराज होंगे, तथा उनकी जो गुणवती, रुक्मिणी नामकी रानी होगी, उसके गर्भसे पुण्यके प्रभावसे प्रद्युम्न नामका महाबली पुत्र होगा। सो जब वह मणिगोपुरमें आवेगा, तब वही बलवान, पराक्रमी, धीर, गंभीर, रूपवान कुमार इन विद्याओंका स्वामी होगा। जिन भगवानके मुखसे ऐसी वार्ता सुनकर राजा हिरण्यनाभिने मुझसे कहा कि, जो कोई गर्वशाली, बलवान, तथा सर्वमान्य पुण्य, मणिगोपुरमें आवे और तुमसे युद्ध करनेको कमर कसके तैयार हो जावे, वही इन सब विद्याओंका नायक होगा, इसलिये तुम "गोपुर" में जाओ और वहीं तिष्ठो। इतना कहकर राजा हिरण्यनाभिने दीक्षा ग्रहण कर ली। ।८३-८८। अनेक शास्त्र पठन किये, आत्म स्वरूपका ध्यान किया, घातिया कर्मोंका विनाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तमें अघातिया कर्मोंको निर्मूलकरके परमपदको प्राप्त हुए।८९। अज्ञानुसार मंत्र मण्डलकी रक्षा करता हुआ और आपकी वाट देखता हुआ हे महाभाग्य उसके कहनेके कारण मैं इस गोपुरमें रहता हूँ।९०। अब आप इन मंत्रगणों को (विद्याओंको) ग्रहण करो ये निधि तथा कोष भी अङ्गीकार करो क्योंकि हे विभो मुझे यहां रहते बहुत समय बीत गया है। पश्चात् अमोलक रत्नोंका बना हुआ मुकुट और दिव्य आभरण देकर और प्रद्युम्नको पूजा करके वे विद्यायें बोली।९१-९२। हे महाराज वे श्रीनमिनाथ स्वामीकी दिव्यध्वनिसे हमने जैसी आपकी शोभा सुनी थी वैसी ही आज साक्षात् देखी। आप ही हमारे स्वामी हो इसमें सन्देह नहीं। हम सब आपकी किंकरी हैं हमारे लायक चाकरी हो सो कहो।९३। तब श्रीप्रद्युम्नकुमार बोले—आजसे हमने तुम्हें अपना किंकर किया यह निश्चय समझो। अब जब हम याद करें तब हाजिर होना।९४।

उधर जब वज्रदंष्ट्र धूर्तने देखा कि गोपुर गुफाके भीतर प्रद्युम्नको बड़ी देर लग गई है तब वह प्रसन्न होकर अपने भाइयोंसे बोला–भ्रातागण सच समझो आज दैत्यके द्वारा प्रद्युम्न मारा गया।

चलो अब आनन्दके साथ घर चलें। ऐसा कहकर ज्यों ही वे लोग घर चलनेके लिये उठे त्यों ही उन्होंने गुफासे निकलते प्रद्युम्नको देखा। ।९५-९७। उसे उत्तमोत्तम आभूषण पहने हुए और देवोंसे पूजित देखकर वे सब राजकुमार गर्वगलित हो गये। परन्तु अपने मनमें भावको छुपाकर मायाचारी से उससे मिले और फिर उस भोले किन्तु बलवान प्रद्युम्नको काल गुफाकी ओर ले चले ।९८-९९। गुफासे कुछ दूर सब खड़े हो गये तब वज्रदंष्ट्र धूर्तेश बोला—जो कोई इस गुफाके भीतर जावेगा उसे अनेक सुखदायक इष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होगी इसलिये हे भ्रातागण तुम किंचित् काल यहीं ठहरो मैं गुफामें जाता हूँ और अभी कार्य सिद्ध करके लौट आता हूँ ।१००-१०१। तब सरलस्वभावी प्रद्युम्नकुमार बोला भाई साहब कृपाकर मुझे ही गुफामें भेजो तो अच्छा हो ।२। यह सुनकर वज्रदंष्ट्रने खुशीसे उसे जाने की आज्ञा दे दी। तब भोला प्रद्युम्न शीघ्र ही गुफामें इसप्रकार चला गया जैसे कोई मनुष्य प्रसन्नतासे निडर होकर अपने घरमें प्रवेश करता है ।३।

काल गुफाके भीतर धँसते ही श्रीप्रद्युम्नकुमारने एक वज्रपातके समान अतिशय डरावना कानोंको बुरा लगने वाला कर्कश शब्द किया ।४। जिसके सुनते ही गुफानिवासी राक्षसेन्द्र चौंक उठा, और क्रोधसे अरुण नेत्र किये हुए तत्काल प्रगट हो गया। प्रद्युम्न से बोला अरे पापी! दुराचारी! नराधम! तूने मेरे पावन स्थानको भ्रष्ट क्यों किया? क्या तूने इस गुफाका हाल पहले नहीं सुना था, जो यमराजके घर जानेके लिये यहां आया है ।५-७। उसके उक्त वचन सुनकर बलवान प्रद्युम्न बोले, रे नीच! केवल बकनेसे ही यहां पुरुषार्थ प्राप्त नहीं होगा। यदि तुझमें अद्भुत शक्ति है, तो मुझसे आकर युद्ध कर। रे नीच! जिनका केवल नीच पुरुषों में व्यवहार होता है, ऐसी गाली वृथा क्यों देता है? ।९। रे शठ यदि तू शूरवीर है, धीर है, और रणकलामें चतुर है, तो शीघ्र ही मुझसे युद्ध कर! विलम्ब क्यों कर रहा है? उसक तेजस्वी वाक्योंको सुनकर वह राक्षसराज क्रोधित होकर

चला, उधर प्रद्युम्न भी कुपित होकर सामना करने लगा। दोनों ओरसे बल्गना तर्जना चपेटिका और मुष्टियोंसे चिरकाल तक मल्लयुद्ध हुआ। परन्तु जब राक्षसने देखा कि, प्रद्युम्न अजेय है, जीता नहीं जा सकता है, तब उसके पूर्वपुण्यके प्रभावसे वह भक्तिपूर्वक चरणोंमें गिर पड़ा।१०-१३। पश्चात् उसने कमल नालिके तंतुओंके समान दो बारीक चंवर, एक निर्मल छत्र, एक पवित्र रत्न, एक सुन्दर तलवार, वस्त्राभूषण, वा पुष्प इतने पदार्थ प्रद्युम्नकुमार को भेंटमें दिये और कहा,–।१४-१५। हे नाथ मैं आपका किंकर हूँ, आप मेरे स्वामी हो। तब कुमार उसे वहीं स्थापन करके छत्र चँवरादि साथमें लेकर उस विकराल कालगुफासे बाहिर निकल आया।१६।

जब दुष्ट भ्राताओंने देखा कि, प्रद्युम्न फिर भी दैवयोगसे बच गया और दिव्य वस्त्राभूषण पहने हुए, देवसे पूजित होकर, सूर्यके समान प्रतापपुंज दिखाता हुआ, प्रसन्नतासे चला आ रहा है, तब उनका मुख उदास पड़ गया।१७। इसप्रकार जब द्वितीय लाभ सहित पुण्यात्मा प्रद्युम्न भाइयोंके पास आया तब वे ऊपरी प्रसन्नतासे फिर मिले और उस भोले स्वभाव वाले राजकुमारको तीसरी नाग नामकी गुफाकी तरफ ले गये।१८। गुफासे दूर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र धूर्तेश पूर्ववत् मायाचारीसे बोला–जो कोई इस गुफामें शीघ्रतासे प्रवेश करेगा उसे चिन्तित पदार्थ प्राप्त होगा।१९। इसकारण अबकी बार तो मैं ही जाता हूँ और शीघ्र देवदत्त लाभ लेकर लौट आता हूँ। तुम यहीं ठहरो।१२०। तब विनयसहित प्रद्युम्न कामदेव बोले भाईसाहब कृपाकर पहलेके समान अबकी बार भी मुझे आज्ञा दो तो लाभके लिये मैं इस गुफामें भी जाऊं।२१। तब वज्रदंष्ट्र बोला–इसमें क्या पूछते हो? तुमसे मैं क्या कहूं जैसे तुम हमें प्रिय हो वैसा कोई दूसरा नहीं है।२२। अतएव तुम ही खुशीसे जाओ और पूर्वपुण्यके प्रभावसे जयसहित मनोहर लाभ ले आओ।२३। तब कुमार प्रसन्नतासे तत्काल ही उस गुफामें निर्भय होकर चला गया। और वहां उसने गुफाके स्वामी नागराजसे भयङ्कर युद्ध करके उसे

अपने वशमें कर लिया अर्थात उसे जीत लिया।

तब सपराजने नमस्कार किया और सन्तुष्ट होकर उसे एक नागशय्या वीणा कोमल आसन सिंहासन वस्त्र आभूषण तथा गृहकारिका और सैन्यरक्षिका ये दो विद्यायें दक्षिणामें दीं। जिन्हें कुमार ने ग्रहण कीं।२३-२५। इसप्रकार उस देवको अपना आज्ञाकारी बनाकर उसे वहीं छोड़कर और भेंटके पदाथ साथ लेकर वह देवपूज्य प्रद्युम्नकुमार गुफामेंसे बाहर निकलकर अपने भाइयोंके समीप आया। इसे देखकर वे भी मायाचारीसे प्रसन्नता पूर्वक मिले।२८-२९।

इसके पीछे वे सब प्रद्युम्नकुमारको एक भयङ्कर देवरक्षित बावड़ी दिखानेको ले गये। उससे कुछ दूर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र बोला:—जो पुरुष शंकारहित होकर इस वापिकामें स्नान करता है, वह सुभग, रूपसम्पन्न तथा जगतका पति होता है।१३०-१३१। भाईके वचन सुनते ही वह भयरहित तथा बुद्धिमान कुमार वेगसे जाकर बावड़ीमें कूद पड़ा। और गजेन्द्रके समान निर्भय होकर पानीमें मज्जन करने लगा। उसके दोनों हाथोंसे वापिकाके जलके बलपूर्वक आलोड़ित तथा ताड़ित होनेसे वापिका रक्षक देव बहुत क्रोधित हुआ। इसके मृदंगके समान जल ताड़नेके शब्दोंको सुनकर वह बाहर निकल आया और बोला, अरे पापी! नराधम! तूने इस सुरेन्द्रकी पवित्र जल वापिका जिसमें निर्मल कमल प्रफुल्लित हो रहे हैं, अपने हाथ पांवके संचालन वा आघातसे क्यों अपवित्र की?।३२-३६। रे दुराचारी! तूने यह अन्याय रूप वृक्षका बीज बोया, अब उसका फल चाख! देख तुझे मैं अभी यमपुरीको पहुँचा देता हूँ।३७। ऐसे निन्द्य वचन सुनते ही क्रोधमे संतप्त होकर प्रद्युम्न बोले —रे असुराधम! वृथा ही क्यों बड़बड़ाता है, तुझे अपनी शूरवीरताका घमण्ड हो तो उसे लड़ाई में प्रगट करना। यदि तू शूरवीर हो, तथा कृतकृत्य हो तो आ मेरे साम्हने।३८-३९। उसके इन वचनों से क्रोधित होकर राक्षस भी युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गया। दोनोंका घोर युद्ध हुआ अन्तमें

प्रद्युम्नने असुरको हरा दिया। वह चरणोंमें गिरकर बोला, महाराज ! निःसंदेह मैं आपका किंकर हूँ, आप मेरे स्वामी हो।४०-४१। पश्चात् देवने प्रद्युम्नकी पूजा की और एक मकरकी ध्वजा उन्हें प्रदान की। उसी समयसे संसारमें प्रद्युम्नका मकरकेतु नाम प्रसिद्ध हुआ।४२। प्रद्युम्नकुमारको लाभ लेकर आता देख भाइयोंका मुँह काला पड़ गया। तो भी वे ऊपरी प्रसन्नता प्रगट करके मायाचारीसे उससे मिले और फिर एक जलते हुए अग्निकुण्डको दिखानेके लिये ले गये। कुण्डसे दूर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र बोला—भ्रातागण ! एक बात सुनो। वृद्ध विद्याधरोंने एक सबको हितकारी बात बताई है कि जो कोई पुरुष इस प्रज्वलित अग्निकुण्डमें प्रवेश करेगा, उसको मनोवांछित पदार्थ मिलेगा, तथा वह राजा भी हो जायगा।४३-४६। यह बात सुनते ही प्रद्युम्न सन्तुष्ट होकर साहससे निःशंक होकर अग्निकुण्डके समीप आया और उस असुरसेवित कुण्डमें कूद पड़ा। जब प्रद्युम्नने उसे चहुँ ओरसे दलमलित किया, तब वहांका देव क्रोध से लाल मुख करके प्रगट हुआ।१४७-१४९। स्मर अर्थात् प्रद्युम्न कामदेव और दैत्यका घोर युद्ध हुआ। अन्तमें देवका पराजय हुआ। वह सन्तुष्ट होकर प्रद्युम्न के पांव पड़ने लगा और मनोहर वचन बोला, महाराज मुझपर प्रसन्न होओ,—और कृपा करके ये अग्निके धोये हुए तथा सुवर्ण तन्तुके बने हुए दो वस्त्र आप ग्रहण करो।५०-५१। हे महाबली आजसे मैं आपका दास बन गया। ऐसा कहकर जब देवने विदा किया, तब कुमार भेंट लेकर कुण्डके बाहर निकल आया।५२। उसे देखते ही वे सबके सब भाई अपने मनमें अतिशय क्रुद्ध हुए और अपनी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसे एक मेषाकार पर्वतपर ले गये। पर्वतके निकट खड़े होकर वज्रदंष्ट्र बोला, जो कोई धीरवीर बलवान पुरुष निःशंक होकर इस पर्वतपर जावेगा, वह मनोवांछित पदार्थ पावेगा, ऐसा अनुभवी विद्याधर कहते हैं।५३-५४। तब भाईको नमस्कार करके पुण्यवान प्रद्युम्नकुमार प्रसन्न होकर शीघ्र ही मेषाकार पर्वतपर गया।५५। जब वह सरल परिणामी

मदनकुमार पर्वतके दोनों शिखरोंके बीच में जाकर खड़ा हुआ, तब वे दोनों दिव्यशिखर दोनों ओरसे झुककर आपसमें मिलने लगे और कुमारको बीचमें दाबने (चपेटने) लगे ।५६। कुमार समझ गया कि, यह कोई देवकी माया है, इसलिये उसने दोनों शिखरोंको अपने दोनों हाथोंसे रोककर अपनी कुहनियोंका ठूंसा लगाया ।५७। तब एक वहां रहनेवाला महा असुर प्रगट हुआ । वह कर्कशध्वनि से अण्डवण्ड बकने लगा जिससे प्रद्युम्न उसके साथ युद्ध करने लगा । अन्तमें हारकर असुरने हाथ जोड़े और कहा ।५८-५६। हे नाथ क्षमा करो मैं आपका दास हूँ । ऐसा कहकर देवने कुमारको दो रत्नोंके कुण्डल दिये ।६०। जब कुण्डल लेकर प्रद्युम्नको आता देखा, तब दुष्ट बन्धुगण कुपित हुए और वज्रदंष्ट्र से बोले ।६१। इस दुष्ट बलवाले प्रद्युम्नको हम सब मारेंगे । क्यों कि यह पापी जहां जाता है, वहींसे महा लाभ लेकर वापिस आता है । यदि इस समय इसका निवारण नहीं किया जावेगा, तो पीछे कठिनाई होगी । क्योंकि, व्याधियां और बैरी जड़ पकड़ लेनेपर दुर्जय हो जाते हैं ।६२-६३। तब वज्रदंष्ट्रने उत्तर दिया, भ्रातृगण निराश मत होओ, उत्साह भंग न करो, अभी तो सैकड़ों उपाय उसको मारनेके हैं ।१६४। किसी न किसी जगह लोभयुक्त प्रद्युम्न फँस जायगा और प्राण तज देगा । क्योंकि लोभी किसी न किसी संकटमें पड़कर मरणको प्राप्त हो जाता है और निर्लोभी सुखको प्राप्त होता है । इतने में प्रद्युम्न आ पहुँचा, सब मायावी भ्राता उससे मिले । वह वज्रदंष्ट्रके चरणोंमें नम्रीभूत होगया, तब वे सब मिलकर उसे सब ओरसे रमणीय और नाना कौतुकों से भरे हुए विजयार्द्ध पर्वतको देखनेके लिये ले गये ।

उक्त वनमें एक आम्रवृक्ष (सहकार) लगा हुआ था । उससे दूर खड़े होकर पापात्मा वज्रदंष्ट्र बोला ।१६५ १६८। जो कोई महानुभाव इस आम्रवृक्षके अमृततुल्य फल भक्षण करे, सो सदा यौवन-युक्त रहे, जरावर्जित रहे और सौभाग्यशाली होवे ।६९। तब बली प्रद्युम्न बड़े भ्रातासे बोले, भाई !

यदि आप आज्ञा करो, तो मैं वृक्षके फल आस्वादन करूँ ।७०। आज्ञा मिलते ही प्रद्युम्न शीघ्र ही वृक्षके पास गया, निःशंकरूप वृक्षपर चढ़ गया और उसकी डालियां जोरसे हिलाने लगा ।७१। तब वहां रहनेवाला देव बन्दर का रूप धारण कर प्रगट हुआ, जिसका मुख लाल हो रहा था, नेत्र क्रोधसे सुर्ख हो रहे थे, भौंहें टेढ़ी हो रही थीं और रूप महा भयानक दीख पड़ता था। वह प्रद्युम्नसे निंद्य वचन बोलने लगा,—अरे दुराचारी नीच मानव ! तू मेरे सहकार वृक्षपर क्यों चढ़ा ? और डालियोंको हिलाकर तू फलोंको पृथ्वीपर क्यों गिरा रहा है ? ।७२-७४। बन्दरके दुर्वचन सुनते ही कुमार कुपित हुआ और उससे लड़नेको उद्यत हुआ। दोनों में बहुत समय तक युद्ध हुआ। अन्तमें जब प्रद्युम्नने उसे पूंछ पकड़कर जमीन पर पटकना चाहा, तब वह भयभीत होकर प्रगट होगया और बोला, मुझे छोड़ दो, मुझ दीन पर कृपा करो ।७५-७७। ऐसा कहकर देवने एक मुकुट, एक अमृतमाला और दो आकाशगामिनी पादुका कुमारको भेंट कीं ।७८। उस दैत्यको अपना बनाकर और उससे पूजित हुआ प्रद्युम्नकुमार झाड़से उतरकर आने लगा। यह देखकर वे सब भाई क्रोधित हुए और कहने लगे हम इसे अभी मारेंगे। वज्रदंष्ट्र बोला, भाइयों उतावली मत करो, स्वस्थ होकर बैठो। इतनेमें प्रद्युम्न आ पहुँचा। तब वे सब कुटिल अभिप्राय धारण करने वाले उससे मिले और उसे कपिल नामके वनमें ले गये।

उस कपिलवनसे कुछ दूरी पर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र बोला, जो मनुष्य इस सुन्दर वनमें प्रवेश करता है, वह अपने इच्छित पदार्थोंको पाकर पृथ्वीका स्वामी होता है। विजयार्द्धके रहनेवाले वृद्ध विद्याधरोंके मुँहसे यह बात सुनते आते हैं, इसलिये तुम सब यहीं ठहरो, मैं शीघ्रतासे जाकर मनचिंतित पदार्थोंको प्राप्त करके आता हूँ ।१७६-१८४। उसके इस वचनसे संतुष्ट होकर प्रद्युम्नकुमार प्रसन्नतासे उस वनमें घुस गया और वृक्ष पर चढ़ गया। इतनेमें वहां एक असुर अंजनके समान काले

हाथीका आकार धारण करके आया, उसके साथ प्रद्युम्नने बड़ा विषम युद्ध किया। और उसे बलगन तर्जनमें मदरहित कर दिया। तब वह गज विनयपूर्वक बोला, हे नाथ मैं आपका सेवक कामगज हूँ। समय पड़ने पर मुझे स्मरण कीजिये। ऐसा कहकर उसने कामदेवकी पूजा की। कामकुमार इस तरह देवपूजित होकर लौट आये। तब वे सबके सब राजकुमार उन्हें अनुबालक शिखर पर ले चले। वहां दूर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र फिर बोला, इस पर्वतपर जो शूरवीर आरोहण करता है, वह पृथ्वीका एकाधिपति होता है। इसके वचनसे संतुष्ट होकर प्रद्युम्नकुमार साहसपूर्वक शिखर पर चढ़ गया। वहां भी पहलेकी तरह चरणोंके प्रहारसे सर्पके आकारको धारण करनेवाला दैत्य सचेत हो गया जिससे वह बड़े वेगसे क्रोधित होकर साम्हने आया। उसने ताड़ना और दुर्वचनोंसे बड़ा भारी युद्ध किया। परन्तु अन्तमें उसे प्रद्युम्नने बहुत ही जल्दी जीत लिया। तब उस दैत्यनाथने संतुष्ट होकर अश्व-रत्न (घोड़ा) छुरी, कवच (जिरहवख्तर) और मुद्रिका ये दिव्य चीजें भेंट की और भक्तिपूर्वक प्रद्युम्न की पूजा की। इसप्रकारसे वह नवमें लाभकी प्राप्ति करके लौट आया। उसे आता देखकर वे मूर्ख विद्याधर कुमार आपसमें विचारने लगे कि, यह पापी फिर बड़ा भारी लाभ लेकर आ गया। अब इस दुष्टका क्या करना चाहिये? ।१८५-१९६।

इसके पश्चात् प्रद्युम्नकुमारको वे सब शरावास्य नामक महापर्वत पर ले गये। उस पर्वतको देखकर बड़ा भाई बोला, भाइयों! मेरे वचन सुनो,—।१९७। जो बलवान मनुष्य निःशंक और निडर होकर इस पर्वतपर चढ़ता है, वह निश्चयपूर्वक सम्पूर्ण विद्याधरोंकी राज्यलक्ष्मीको प्राप्त करता है। ।१९८। इसलिये तुम सब भाई यहीं ठहरो, मैं वहां जाकर और अपना इच्छित लाभ लेकर शीघ्र ही आता हूँ।१९९। उसके इसप्रकार वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार बड़े भाईसे बोला कि नहीं, आप न जावें, शरावाकार पर्वतपर मैं ही जाता हूँ।२००। बड़े भाईकी आज्ञा लेकर प्रद्युम्नकुमार शीघ्र ही

गया और पर्वतपर चढ़कर सहसा उसके शिखर को कम्पायमान करने लगा।२०१। इतनेमें वहांका रहनेवाला देव प्रगट हुआ और कुपित होकर प्रद्युम्नके साथ युद्ध करने लगा। लड़ाईमें उसे जीतकर विजयी प्रद्युम्नने उससे कंठी, बाजूबंद, दो कड़े और कटिसूत्र (करधनी) ये दिव्य आभूषण प्राप्त किये। इसके सिवाय उस असुरने इनकी भले प्रकार पूजा की इसप्रकार सन्मान प्राप्त करके राजकुमार शीघ्र ही लौट आया। उसे देखकर वे सब राजपुत्र जीके जीमें कुढ़कर रह गये और कुपित होकर बराहाकार पर्वत पर ले गये। दूर खड़े होकर विद्याधर पुत्र बोले।२०२-२०५।

इस शूकराकार पर्वतमें जिसका आकार शूकर के ही समान है, जो कोई प्रवेश करता है, वह शूरवीर पृथ्वीका स्वामी होता है।२०६। इस वाक्यसे उत्साहित होकर प्रद्युम्नकुमार जल्दीसे दौड़ता हुआ पर्वतपर चढ़ गया। उसके चढ़नेपर पर्वतका शूकरके समान मुख मिलने लगा, तब उसे इसने अपनी कुहनियोंसे विदारण कर डाला।२०७। यह देख बराहमुख नामका महाबली देव प्रद्युम्नके साथ भयंकर युद्ध करने लगा।८। सो पूर्व पुण्यके बलसे प्रद्युम्नने उसे भी जीत लिया। संसारमें जितनी सुखकारी वस्तुएँ हैं, वे सब पुण्यवानोंको सुलभतासे प्राप्त हो सकती हैं। दुष्कर नहीं हैं।२०६। उस देवने जयशंख नामका शंख और पुष्पमयी धनुष्य, ये दो दिव्य वस्तुएँ प्रद्युम्नकी पूजा करके प्रदान की।१०।

लाभ लेकर आते हुए विजयी प्रद्युम्नकुमारको देखकर वे मूर्ख फिर क्रोधित हुए और उसे पद्म नामके वनमें ले चले।११। पहलेकी तरह दूर खड़े होकर वज्रदंष्ट्र बोला यह पद्मवन पृथ्वीमें अतिशय प्रसिद्ध और रमणीय है।२१२। इसमें जो कोई जाता है और जल्दीसे भयरहित होकर लौट आता है, उसके हाथमें निश्चय समझो कि, संसारका आधिपत्य आ जाता है।२१३। उसके वचनोंसे सन्तुष्ट होकर बलवान प्रद्युम्नकुमार बड़े वेगसे वहां गया। क्योंकि लाभकी आशासे ही उद्यम होता है। पद्मवनमें जानेसे लाभ होगा, इस विचारसे उसने वहां जानेमें क्षणमात्र भी विलम्ब न किया।२१४। उस

वनमें पहुँचकर धीर वीर कुमारने देखा कि, एक मनोजव नामका विख्यात विद्याधर एक वृत्तके नीचे बँधा हुआ है ।१५। उसे देखकर कुमारने निडर होकर पूछा कि, हे विद्याधर ! इस जनशून्य वन में तुझे किसने बांधा है ? ।१६। मनोजवने उत्तर दिया, हे नाथ ! मेरे वचन सुनिये । वसन्तक नामके विद्याधरने जो कि मेरा पूर्वका वैरी है, मुझे बांधा है ।१७। हे विभो ! अब मैं आपकी शरणमें आया हूँ । मेरा शत्रु इसी वृत्तपर है । मैं आपका किंकर हूँ, इसलिये मुझे जल्दीसे छोड़ दो ।१८। यह सुनकर कुमारने कहा, हे भाई ! तू व्यर्थ भय मत कर, मैं तुझे बहुत जल्दी छोड़ देता हूँ ।१९। कुमारने ज्यों ही विद्याधरको छोड़ा, त्योंही वह इनसे बिना कुछ बातचीत किये, धीरे २ शत्रुके पीछे गया और जल्दी ही उसे बांधकर कुमारके सामने ले आया और बोला:—उपकारसमुद्रस्वरूप ! आपसे बिना पूछे ही जो मैं यहांसे जल्द ही चला गया था, सो हे नाथ ! इस रिपुके पकड़नेके लिये चला गया था । अब मैं आपके ही प्रसाद से जीता हूँ ।२०-२२। ऐसा कहकर उस विद्याधरने कुमारको दो विद्याएँ एक बहुमूल्य हार और एक इन्द्रजाल नामकी विद्या संतुष्ट करनेके लिये दी । इसके पश्चात् प्रद्यु-म्नकुमारने मनोजव और वसन्तक इन दोनों विद्याधरोंका विरोध मिटाकर उनमें खूब मित्रता करा दी । इससे सन्तुष्ट होकर वसन्तक विद्याधरने कुमारको अपनी नवीन यौवनकी धारण करनेवाली और सम्पूर्ण शुभ लक्षणों वाली, एक अतिशय सुन्दरी कन्या दे दी । आचार्य महाराज कहते हैं कि, पुण्यसे क्या २ वस्तुएँ प्राप्त नहीं होतीं ? अर्थात् पुण्यसे सभी कुछ प्राप्त हो सकता है ।२२३-२२५।

इस प्रकार अनेक लाभोंको लेकर आते हुए प्रद्युम्नकुमारको देखकर वे मूर्ख राजकुमार मन ही मन में जल गये । और क्रोधित होकर प्रद्युम्नको कालवन नामक वनको ले गये । वनसे कुछ दूर खड़े वज्रदंष्ट्र ने फिर भी पहलेकी तरह कहा, इस वनमें जो कोई प्रवेश करेगा, वह उत्तम लाभको प्राप्त करेगा ।२६-२७। तब उसके वचन सुनकर बलवान कुमार जिसका चित्त लाभके लोभसे प्रसन्न हो रहा था,

जल्दीसे उस वनमें पैठ गया ।२८। और वहां पहुँचकर उसने वहांके महाबल नामक दुष्ट दैत्यको जीत लिया । जिससे संतुष्ट होकर उसने मदन, मोहन, तापन, शोषण और उन्मादन नामक पांच विख्यात पुष्पबाणोंके सहित एक पुष्पधनुष्य दिया । पूर्व पुण्यके प्रभावसे उसी समयसे मनुष्योंको मोहित करने वाला और स्त्रियोंको उन्मादन करनेवाला वह कुमार यथार्थमें मदन अर्थात् कामदेव नामको धारण करने वाला हुआ ।२९-३१।

इस लाभको लेकर आते हुए देखकर वे सबके सब विद्याधरकुमार दुःखी हुये और फिर क्रोधके वश उसे भीमा नामकी दुष्ट गुफामें जो भयङ्कर सर्पका रूप धारण करने वाली थी, पहले जैसी छल कपटकी बातें करके ले गये । सो प्रद्युम्नने उस गुफामें भी जल्दीसे जाकर उसके अधिकारी देवको जीत लिया और उससे भी एक पुष्पमयी छत्र और एक पुष्पमयी सुन्दर शय्या ये दो चीजें भेंट में प्राप्त कीं ।३२-३४। उस देवने इनकी पूजा मानता करके और नमस्कार करके इन्हें विदा कर दिया, सो ये जल्दीसे लौट आये । मनुष्योंको पुण्यके प्रभावसे निरन्तर सुख ही प्राप्त होता है ।३५।

प्रद्युम्नको लाभसहित लौटा देखकर वे दुष्टबुद्धि राजकुमार अपने बड़े भाईसे बोले, अब हम लोग प्रद्युम्नको अवश्य मारेंगे । क्योंकि इस तरह यह दुराचारी जहां जाता है, वहांसे कुशलपूर्वक लाभसहित लौट आता है । देवसे भी यह नहीं मारा जाता है ।३६ ३७। अतएव अब हम इसे खड्ग की चोटसे मार डालते हैं इसमें संशय नहीं है । आप एक ओर मौन धारण करके बैठे रहें, और हम को न रोकें ।३८। तब वज्रदंष्ट्र बोला, मेरी बात सुनो । अब भी शत्रुका घात होने योग्य दो स्थान बाकी हैं । सो वहां लेजाकर हम इस दुष्टको अवश्य मार डालेंगे तब तक दुष्टचित्त प्रद्युम्नके विषयमें कुछ भी नहीं करना चाहिये ।३९-४०। इतनेमें प्रद्युम्न आ गया और उससे सब भाई मिले । पश्चात् उसे छल करके विपुलनामके वनमेंलेगये ।४१। जहाँ श्रीजयन्तनामका नानाप्रकारके वृक्षों तथा लतावल्लीसे

सुशोभित अतिशय ऊंचा पर्वत था। उसे दूरसे देखकर वज्रदंष्ट्र बोला, जो धीर वीर इसमें प्रवेश करके –तथा रमण करके जल्द ही लौट आता है वह चिन्तित पदार्थोंको पाकर देवोंके द्वारा पूजनीय होता है। उनके ऐसे वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार जल्दीसे चला ।४२-४४। और ज्योंही उस विचक्षणने वन में प्रवेश किया, त्योंही जयन्तक पर्वतपर उसकी दृष्टि पड़ी ।४५। जिसके पसवाड़ेमें जलसे परिपूर्ण और वेगसे बहनेवाली नदी बह रही थी और जिसके किनारेरूप कंठ तमालादि वृक्षोंसे शोभायमान हो रहे थे ।४६। वहां एक तमालवृक्षके नीचे पड़ी हुई शिलाके फलकपर एक कामिनी आसन लगाये हुए ध्यान में मग्न हो रही थी। वह रूप और यौवनसे लबालब भरी हुई थी, नासिकाके अग्रभागमें अपनी दृष्टिको जमाये हुए थी, नानाप्रकारके लक्षणोंसे युक्त और गुणोंके पार पहुँची हुई थी, तांबेके समान लाल नखोंसे पाटलके समान स्फटिककी मालाका ध्यानपूर्वक जाप करती थी रेशमका सफेद धोया हुआ वस्त्र पहने थी छूटे हुए बालोंसे उसकी दोनों भौंहें ढक रही थी मुखकमलसे निकलती हुई सुगन्धिके कारण भौंरोंके झुण्डके झुण्ड भ्रमण करते हुए उसके मुखकी सेवा करते थे। उन्नत सघन कुचोंके भारसे उसका शरीर नम्रीभूत होरहा था जंघाओंसे आलसयुक्त थी और स्वभावसे कृश अर्थात् पतली थी। जिसने हाथीकी चालको अपनी गतिसे जीत ली थी वीणाके समान जिसकी आवाज थी शंखके समान जिसका कंठ था सुन्दर नुकीली नासिका थी कमलके समान सुन्दर और चंचल जिसके नेत्र थे अधिक क्या कहें जिसने अपने रूपसे तीन लोककी स्त्रियों के रूपको जीत लिया था, उस सर्वलक्षणयुक्ता सर्वाङ्गसुन्दरी सर्व विद्याओंमें निपुण और संपूर्ण उत्तम गुणों से शोभायमान सुन्दरीको देखकर प्रद्युम्नकुमार चकित हो गया और विचारने लगा,–।४७-५५। क्या यह सूर्यकी स्त्री है? अथवा चन्द्रमाकी कामिनी है? अथवा इन्द्राणी ही देखनेके लिये आई है? कामकी स्त्री रति है, अथवा कान्ति, कीर्ति, किन्नरी और धरणेन्द्र की स्त्री, इनमेंसे कोई है? ।५६-

।५७। लोक की उत्कृष्ट कान्ति इसी ही में है, इसीमें मनको रमानेवाला रूप है, इसीमें भव्यता है और इसीमें सारा लावण्य भर दिया गया है ।५८। इसहीमें सारे गुणोंका घर है, और इसी में कलाओं का समूह है, अधिक क्या कहा जावै सारी महिमा इसीमें मुद्रित की गई है ।५९-६०। इस प्रकार ध्यानके योगसे निश्चल हुई उस त्रैलोक्य सुन्दरियोंके रूपको जीतनेवाली सुन्दरीको देखकर मदन (प्रद्युम्न-कुमार) मदन अर्थात् कामदेवसे विह्वल हो गया । तत्काल ही कामदेवके पांचों बाणोंसे घायल होकर व्यग्रचित्त हो गया और वहीं बैठ गया । इतने ही में वसन्तक नामके देवका आगमन हुआ ।६१-६३। वह प्रद्युम्नके चरण कमलोंको नमस्कार करके उनके समीप ही बैठ गया । तब कुमारने उस सुन्दरी कन्याके विषयमें पूछा—६४। हे महाभाग ! मेरे आश्चर्यका कारण शीघ्र कहो कि यह परम-सुन्दरी इस निर्जन वनमें किसलिये रहती है ।६५। यह किसकी पुत्री है, और किसलिये तपस्या करती है ? यह नव यौवन से परिपूर्ण और स्त्रियोंमें जितने गुण होने चाहिये उनकी घर है ।६६। यह सुन-कर वसन्तकने कहा हे नाथ ! मेरे वचन सुनो,–एक प्रभंजन नामका विद्याधरोंका स्वामी है । उसकी वाक् नामकी स्त्री है, जो गुणोंकी सागर है । उसके उदरसे रति नामकी विख्यात कन्या उत्पन्न हुई, जो इस समय नवीन यौवनको धारण किये हुये तपस्या कर रही है । यह सुनकर प्रद्युम्नने पूछा, यह किस कारणसे यह कष्ट उठा रही है, ।६७ ६९। तब वह देव बोला, इसका कारण मैं कहता हूँ, आप सुनें । एक दिन इसके पिताके घर एक योगी आया । आहार करने के बाद राजाने विनयसे पूछा, हे स्वामिन् ! मेरी रतिनामा पुत्रीका होनहार पति कौन है ? ।७०। तब मुनिराजने उत्तर दिया, राजन् ! सुनो,—द्वारिका नगरीके राजा कृष्णकी रुक्मिणी रानीका जो प्रद्युम्न नामका सर्वलक्षण सम्पन्न और सर्वविद्यानिधान पुत्र है, वही तेरी पुत्रीका होनहार पति है । वह बड़े भारी साहससे इस प्रकार के लक्षणोंसे युक्त होकर विपुल नामके भयंकर वनमें आवेगा । वही तेरी पुत्रीका पाणिग्रहण करेगा

।२७१-२७३। सो योगीके वचनोंपर विश्वास करके यह रति नामकी कन्या उत्कृष्ट पति के प्राप्त करने की इच्छासे यहां वनमें तप कर रही है ।२७४। जिसके विषयमें मुनिराजने कहा था, लक्षणों और गुणोंसे वे तुम ही मालूम होते हो, इसमें अब संशय नहीं रहा है । इस कन्याके पुण्यके प्रभावसे आप यहां पधारे हो । आप दोनोंका जैसा रूप है, वैसा पृथ्वीतलपर दूसरेका नहीं है । आप दोनोंका सम्बन्ध होनेसे ही विधाताका श्रम सफल गिना जायगा ।७५-७६। देवके ऐसे वचन सुनते ही प्रद्युम्नकुमार बहुत प्रसन्न हुए । हर्ष और लज्जासे नीचेको मुख किये हुये वे ऐसे सुन्दर वचन बोले:—मैं तो पुण्ययोगसे भ्रमण करता हुआ यहां वनमें चला आया था । सो इस सुन्दरीको देखते ही कामबाणों से बेधित हो गया हूँ ।७७-७८। अतएव तुम्हारे प्रसादसे हम दोनोंका सम्बन्ध हो जाय, तो अच्छा हो । क्योंकि उत्तमोंके संयोगसे ही देहधारियों के दुःखकी शांति होती है ।७९। प्रद्युम्नके ऐसे वचन सुनकर वसन्तध्वज देवको संतोष हुआ । तब उसने तत्काल ही दोनोंका विधिपूर्वक पाणिग्रहण करा दिया ।८०-८१। स्त्रीके परम लाभको प्राप्त करके प्रद्युम्नकुमारको सन्तोष हुआ । उसके पश्चात् ही उन्होंने पूर्वके बड़े भारी पुण्यके उदयसे एक दूसरा भी लाभ प्राप्त किया ।८२। जो इस प्रकार है:—

पाणिग्रहण हो चुकनेके पश्चात् उसी मनोहर वनमें एक सकट नामका असुर, कुमारसे आकर मिला ।८३। उसने भी प्रद्युम्नको प्रणाम करके हर्षके वेगमें कामधेनु और वसन्तके समान सुन्दर फूलों का रथ ये दो दिव्य वस्तुएँ भेंट कीं ।८४। इसके पश्चात् प्रद्युम्नकुमारने उसी पुष्परथपर अपनी प्यारी रतिके सहित उस वनसे कूच कर दिया । सो तत्काल ही लीला मात्रमें वे वनसे बाहर निकल आये ।८५। जब भाइयोंने सोलहों लाभोंको प्राप्त करने वाले कुमारको देखा, तब वे सबके सब मलीनमुख हो गये ।८६।

वह सुन्दर मदनकुमार अपनी रतिके साथ रथमें आरूढ़ होकर आनन्द से चला ! उसके

आगे आगे वे सब विद्याधर भाई चले ! जिस समय वह नगरकी ओर चला, उस समय वे सब भाई भी जिनके कि मलिनमुख थे, नगरकी ओर आगे दौड़ने लगे ।८७-८८। इस उदाहरणसे विद्वानोंके आगे पुण्य और पापके फल ऐसे प्रगट हुए, जैसे वे स्वयं (पुण्यपाप) बोल रहे हों कि, पुण्यका फल यह है और पापका फल यह है । यह दृष्टान्त नगरनिवासियोंने प्रत्यक्ष देखा ।८९।

रतिके सहित कामदेवका आगमन सुनकर इस नगरकी स्त्रियां देखनेके लिये बाहर निकल आईं ।९०। कौतुक देखनेके लिये आकुल हुई उन सब सरला और चपला दृष्टिवाली स्त्रियोंने अपने मुखचन्द्रोंसे झरोखोंको ढँक दिया ।९१। कामदेवके रूपपाशमें बिंधी हुई अनेक श्रेष्ठ वनितायें अपने २ घरोंके काम काज छोड़कर परस्पर झगड़ने लगीं ।९२। कोई एक स्त्री दूसरेसे बोली, तू अपने खुले हुए केशोंको फैलाकर मुझे आगे की ओर क्यों नहीं देखने देती है ? मेरे साम्हनेकी दिशाको तूने क्यों रोक रक्खी है ।९३। और तूने ये अपनी भुजायें मेरे साम्हने क्यों फैला रक्खी है ? मेरे साम्हनेसे जल्द हट जा और मुझे देखने दे ।९४। कोई एक अपनी सखीसे कहती है हे आलि ! जब प्रद्युम्न-कुमारका नयनोंको अमृतके समान लगनेवाला रूप ही नहीं देखा, तब जीतव्यसे और उस मनुष्य जन्मसे क्या ? नेत्रोंके पानेकी सफलता तभी है, जब ये दर्शन हों, नहीं तो इनका पाना ही व्यर्थ है ।९५-९६। एक और स्त्री जो कुचोंके भारसे झुक रही थी और नितम्बोंके भारसे आलसयुक्त हो रही थी और इसीलिये एकाएक चलनेके लिये असमर्थ थी, प्रद्युम्नकुमारके देखनेके लिये आई और अपनी सखीसे हर्षित होकर बोली, उस कुमारका शरीर जिन परमाणुओंसे बना है, वे ही उत्तम पर-माणु हैं ।९७-९८। उसी माताको धन्य है जिसने उसे अपने उदरमें धारण किया होगा । और कोई एक युवती रतिके साथ कामदेवको देखकर अपनी बराबरवालीसे बोली, इस मदनालसा सुन्दरीको धन्य है, जो इसके अङ्कमें (गोदमें) सुशोभित होती होगी ।९९-२००। कई एक ऐसी स्त्रियां जिनके

वस्त्र शिथिल हो गये थे, बाल बिखर रहे थे और कुचोंपरसे हार टूटकर झड़ रहे थे, अपने शरीरकी सुध बुध भूलकर अर्थात् कपड़े, बाल और हार न सम्हालकर प्रद्युम्नको देखनेके लिये दौड़ीं।३०१। किसी किसीने कड़ोंको कानोंमें पहन लिये, किसीने कटिसूत्रको गलेमें पहन लिया, किसीने हारको कमरमें पहन लिया और मेखलाको सिरमें डाल ली, नेत्रोंमें केसर लगाली कपोलोंमें कज्जल लगा लिया। इसप्रकार विह्वल होकर अपने आपको भूलकर प्रद्युम्नको देखने दौड़ीं। ठीक ही है, साक्षात् मदनके दृष्टिगोचर होनेपर योग्य अयोग्यका विचार कहां रह सकता है ? ।२-३। कोई एक स्त्री रूप और यौवनसे परिपूर्ण प्रद्युम्नको देखकर कामदेवके शरसे विद्ध हो गई, जिससे उसके सारे शरीरमें रोमांच हो आया ।४। इस प्रकारसे प्रद्युम्नकुमारके आनेपर नगरकी स्त्रियोंने नानाप्रकारकी चेष्टायें कीं। ठीक ही है, जो जीव कामकी फांसीमें फँस जाते हैं, वे क्या २ चेष्टायें नहीं करते हैं ।३०५।

इसप्रकार नगर निवासिनी स्त्रियोंको दर्शन देता हुआ प्रद्युम्नकुमार राजमहलमें पहुँचा, जहां कि, कालसंवर विराजमान थे ।३०६। उसने उनके चरणकमलोंको अपने मस्तकके केशोंसे मार्जन करके बड़ी विनय तथा भक्तिके साथ प्रणाम किया ।७। पिताने भी पुत्रका आलिंगन किया और उसके मुख तथा मस्तकको चूमा। फिर शरीरादिकी कुशलता पूछी ।८। प्रद्युम्नकुमारने कहा, प्रभो ! आपके चरणकमलोंके प्रसादसे तथा आपकी कृपासे मेरी निरन्तर कुशल ही रहती है ।९। ऐसा कहकर और थोड़ी देर बैठकर प्रद्युम्नकुमार अपने पिताकी आज्ञा लेकर लीला करता हुआ माताके मंदिरमें गया ।१०। सो जननीका आलिंगन करके और चरणकमलोंको विनयपूर्वक नमस्कार करके साम्हने बैठ गया ।३११। कनकमालाने भी सोलह लाभोंको प्राप्त करके आए हुए अपने श्रेष्ठपुत्रको आशीर्वाद दिया ।३१२। वह कुमार सम्पूर्ण लक्षणों सहित, नवीन यौवनका धारण करने वाला, अपने यशसे संसारको व्याप्त करनेवाला, और सम्पूर्ण गुणोंका स्थान था। उसका मस्तक कोमल, काले घुंघराले, तथा विस्तृत केशों

से अत्यन्त सुन्दर था, नेत्र काले सफेद लाल और बड़े बड़े थे, चन्द्रमाके समान सौम्य मुख था, शंखके समान मनोहर कंठ था, सुमेरुकी भीतके समान वक्षःस्थल था, सिंहके समान कमर थी, हाथीके समान चाल थी, तपाये हुए सोनेके समान सुन्दर शरीर था। इस अनेक उपमा समूहसे जो संयुक्त था, ऐसे गुणोंवाले उस प्रद्युम्नके रूपको देखकर कामकी प्रेरी हुई कनकमाला मर्मका भेद करने वाले कामदेवके वाणसे बिद्ध होकर ऐसी दीनमुख हो गई, जैसे तुषार लगा हुआ कमल हो जाता है।३१३-३१९। विरहकी आगसे उसका शरीर संतप्त होने लगा। दुःखके मारे वह अपने हाथ पर कपोल रखकर चिंता करने लगी।२०। विरहसे आर्द्रित होकर वह नयनोंसे आंसू बहाने लगी और विचारने लगी, हाय! मैं क्या करूँ? कहां जाऊँ। क्या पूछूँ और क्या कहूँ?।२१। लावण्यसे भरा हुआ मेरा यह नवीन यौवन, मेरा रूप, मेरी कांति और मेरे गुण, धैर्य, विभव, कला आदि तब ही सफल होंगे, जब मैं इस सर्व विद्याओंसे युक्त और सुन्दर कुमारका सेवन करूँगी। अन्यथा ये सब विफल हैं। इनका होना न होना बराबर है।२२-२३। जिसने इसके मुख कमलके मधुर मधुका पान न किया और अपनी आंखोंसे इसके मुख पंकजको नहीं देखा, प्रणयसे कुपित होकर कमलसे इसे नहीं मारा, प्रेमसे इसका आलिंगन नहीं किया, तिरछे कटाक्षोंसे इसको नहीं देखा और सुरति क्रीड़ाके समय किंकिणीका मनोहर शब्द न किया, उस स्त्रीके विफल जीवन से क्या? अर्थात् इसको पाये बिना कोई भी स्त्री भाग्यशालिनी नहीं हो सकती है।२४-२६। जब तक कनकमाला इन विचारोंमें उलझी रही, तबतक प्रद्युम्नकुमार नमस्कार करके अपने महलको चला गया।३२७।

प्रद्युम्नके चले जानेपर कनकमाला दुःखी होती हुई सोचने लगी, हाय, मुझे यह क्या होगया है? कामके वाणोंसे मेरा सारा शरीर घायल हो गया है। मुझसे उसकी विरहवेदना नहीं सही जाती है।३२८। उस समय कनकमाला निर्लज्ज होकर नानाप्रकारकी विकार चेष्टायें करने लगी। बारंबार

अपने कुचोंको देखने लगी और बारम्बार जम्हाई लेने लगी ।२६। शरीरमें जो आभूषण पहने हुए थी, उन सबको अलग करके अपने शरीरकी निन्दा करने लगी ।३०। केशोंको खोलकर फिर बांधने लगी, तथा उतारे हुए भूषणोंको फिर पहनने लगी ।३१। कामदेवकी तपनसे वह ऐसी तप्त हुई कि, केलेके पत्तोंकी हवा, चन्दन, काजल, चन्द्रमाकी किरणें, शीतलहार और घनसागर चन्दनका लेप भी उसे शांतिदायक न हुआ । उससे कामाग्नि शांत नहीं हुई ।३२-३३। विरहसे व्याकुल हुई उस विद्याधरीकी भूख प्यास निद्रा जाती रही । कोई भी शारीरिक सुख नहीं रहा । बहुतसे वैदयोंने आकर उसे देखी, परन्तु कुछ फल नहीं हुआ । क्योंकि उसका विरहसे उत्पन्न हुआ रोग साध्य नहीं था ।३४-३५।

एक दिन राज सभामें बैठे हुए राजा कालसंवरने प्रद्युम्नकुमारसे कहा, बेटा ! मेरी एक बात सुन ।३६। तेरी माता तो रोगसे अतिशय पीड़ित है, उसके जीनेमें भी सन्देह हो रहा है, फिर तू उसके पास अभी तक क्यों नहीं गया है ? ।३७। तब प्रद्युम्नकुमारने विनयपूर्वक अपने पितासे कहा, मैंने माता की बीमारी की बात न तो सुनी और न जानी । इसलिये नहीं गया । अब आप की आज्ञासे हे विभो ! मैं माताके महलमें अभी जाता हूँ । ऐसा कहकर वह शीघ्र ही कनकमालाके महलमें गया वहां जाके उसने बड़े दुःखसे देखा कि, वह खाली भूमि पर सो रही है । उसका शरीर विरहसे घायल हो रहा है ।३७-४०। माताको दुःखी देखकर प्रद्युम्न विनयपूर्वक प्रणाम करके और उसके आगे नीचा मस्तक करके बैठ गया ।४१। उसके शरीर की चेष्टा और स्वरूपको देखकर प्रद्युम्नकुमार रोग का कारण विचारने लगा कि, मुझे यह रोग तो बात पित्त कफजनित दिखता नहीं है । परन्तु इसके शरीरमें वेदना अवश्य ही बड़ी भारी हो रही है ।४२-४३। माता के शरीरमें यह रोग किस प्रकार उत्पन्न हुआ है, और इसकी शांति कैसे होगी ? ।४४। जब तक कुमारने नीचा मुँह किये हुए दुःखके साथ इस प्रकार अनेक चिन्तायें कीं, और रोगके कारणका विचार किया, तब तक

वह कामवती कनकमाला बड़े आलस्यसे जम्हाई लेती हुई क्षणभरमें उठ बैठी, और परिवारके लोगों को अर्थात् दासदासियोंको दूर करके अँगड़ाती हुई प्रद्युम्नकुमारसे मीठे शब्दोंमें बोली, ।४५ ४७। हे मदन ! एकाग्रचित्त होकर मेरी बातको सुनो । क्या तुम्हें मालूम है कि यथार्थमें तुम्हारे माता और पिता कौन हैं ? ।४८। प्रद्युम्नने कहा, तुम मुझसे ऐसा क्यों पूछती हो ? मेरी समझमें तो निश्चय करके तुमही मेरी माता हो, और कालसंवर महाराज मेरे पिता हैं ।४९। यह सुनकर कनकमाला रानी बोली, तुम अपनी आदि मध्य और अन्तकी सब कथा सुनो,—।५०।

एकबार मैं अपने स्वामीके साथ वनक्रीड़ा करनेके लिये गई थी । सो नदी, नद, तालाब और कैलाशपर्वतके शिखरों पर बहुत कालतक रमण करके हम खदिरा नामकी बड़ी भारी अटवीमें पहुँचे, जिसके बीचमें तक्षक नामका बड़ा भारी पर्वत शोभित है। जब हमारा विमान उक्त पर्वतके ऊपर पहुँचा तब आकाशमें तुम्हारे पुण्यके प्रभावसे वह अटक रहा ।५१-५३। यह देख हम दोनों पर्वत पर उतरे, तो देखा कि, एक बड़ी भारी शिला तुम्हारी स्वांसके जोरसे हिल रही थी। अचरज होनेसे उसे उठाई, तो सुन्दर आकार और सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंके धारण करनेवाले तुम दिखलाई दिये। सो तुम्हें मैंने तत्काल ही स्नेहके वश उठा लिया और अपने हृदयमें निश्चय करके कि तरुण होनेपर तुम्हें ही मैं अपना पति बनाऊंगी, तुम्हें घर ले आई और पालन पोषण करके बढ़ाने लगी ।५४-५६। अब तुम कामके योग्य होगये हो, मेरे अतिशय प्यारे हो, इसलिये मेरे साथ भोगोंको भोगो । यदि ऐसा न करोगे, तो मैं मर जाऊंगी और तुम्हारे सिरपर स्त्रीहत्याका बड़ा भारी पाप लगेगा ।५७। माता के मुँहसे इसप्रकार दोनों लोकोंसे विरुद्ध वचन सुनकर प्रद्युम्नका मस्तक दुःखसे ठनक उठा । वह बोला, हे माता ! तूने यह निंद्यसे भी अतिशय निन्द्य बात क्या कही ? क्या उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषों को ऐसा कार्य शोभा देता है ? ।५८-५९। हे माता ! कुमार्गमें गये हुए अपने चित्तको तुझे रोकना

चाहिये, जिससे कुलमार्गमें अर्थात् शीलव्रतमें रत्त रहते हुए, तेरी प्रशंसा होवे ।६०। इसप्रकार वह माताको बारम्बार समझाकर शीघ्रही उसके महलसे निकल आया और चिन्तित होकर घर छोड़कर वनको चला गया । वहां एक मन्दिरमें मुनिराज विराजमान थे जो द्वादशांगके धारण करनेवाले अवधिज्ञानी धीरवीर और मुनियोंके एक संघके नायक थे । उनका नाम श्रीवरसागर था । प्रद्युम्नने उनके दर्शन किये तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया और भक्तिपूर्वक आगे बैठकर दुःखसे मलीन मुख किये हुए अपनी माताके चित्तके विकारकी बात जो कि अतिशय गोप्य थी एकान्तमें मुनि महाराजसे निवेदन की । और पूछा हे नाथ कृपा करके कहो कि वह नानाप्रकारके विकारोंको प्राप्त होकर और कामसे आकुलित होकर मुझमें आसक्त हुई है।६१-६६। प्रद्युम्नके वचन सुनकर यति महाराज बोले हे बुद्धिमान कुमार ! संसारकी विचित्र चेष्टाओंका श्रवण करो । कारणके बिना कभी कोई भी कार्य नहीं होता है । स्नेह अथवा वैर सब पूर्वजन्मके सम्बन्धसे होते हैं ।६७-६८। हे वत्स ! पूर्वजन्ममें जब तू मधु नामका राजा था तब तूने राजा हेमरथकी चन्द्रप्रभा नामकी रानीको मोहके वश हरण करली थी । सो वह दीक्षा लेकर और उत्कृष्ट तप करके तेरे ही साथ सोलहवें स्वर्गमें उत्पन्न हुई थी । वहांपर बाईस सागर तक उत्कृष्ट सौख्य भोगकर और आयुके अन्तमें चयकर विजयार्द्ध गिरिमें कालसंवरकी रानी कनकमाला हुई है और तू स्वर्गमें अपने छोटे भाई कैटभके साथ चिरकालतक सुख भोगकर द्वारिकानगरीमें यदुवंशतिलक श्रीकृष्णनारायणका पुत्र हुआ है ।६९-७३। सो जिस समय तू अपनी माता रुक्मिणीके साथ सोता था, उस समय पूर्वके वैरी दैत्यने हरण करके क्रोधमें आकर तक्षक पर्वतकी एक शिलाके नीचे तुझे दबा दिया था ।७४। वहां राजा कालसंवर और रानी कनकमालाने पहुँचकर शीघ्र ही निकाल लिया और स्नेहके साथ तुझे बड़ा किया ।७५। इस समय पूर्व मोहके वशसे तुझे देखकर कनकमाला कामसे अतिशय संतप्त हुई है । क्योंकि मोह बड़ी कठिनाईसे छोड़ा जाता है ।७६।

वह तुझे मोहके वशसे दो विद्यायें देना चाहती है, सो तुझे वहां जल्द ही जाकर छल करके उन्हें ले लेना चाहिये ।७७। यह सुनकर प्रद्युम्नने हर्षित होकर मुनिराजसे कहा, हे नाथ ! आपके वचनोंका मैं पालन करूँगा । आप जीवधारियोंके अकारणबन्धु हैं । इसलिये मेरे चित्तमें जो एक बड़ा भारी विस्मय हो रहा है, उसके विषयमें और भी कुछ पूछता हूँ कि, मेरी माताके (रुक्मिणीके) साथ जो बाल्यावस्थामें ही अतिशय दुःसह विरह हुआ है, वह मेरी माताके कर्मोंके दोषसे हुआ है अथवा मेरे पापके उदयसे हुआ है ।७८-८०। यह सुनकर मुनिराज बोले हे वत्स ! सुनो, यह तुम्हारा वियोग तुम्हारी माताके ही कर्मके दोषसे हुआ है। उसका कारण मैं कहता हूँ । क्योंकि पूर्वमें संचित किये हुए पुण्य और पापसे ही सुख और दुःख भोगने पड़ते हैं ।८१-८२।

जम्बूद्वीपमें भरत नामका प्रख्यात क्षेत्र है और उसमें मगध नामका उत्तम देश है, जो प्रसिद्ध २ मनुष्यों से भरा हुआ है । उसमें एक लक्ष्मी नामका ग्राम है। वह पृथ्वीमें प्रसिद्ध है । उसमें सोमशर्मा नामका विप्र राजा था, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला, श्रुतिस्मृतिके अनुसार चलनेवाला, जप होम आदि कर्मोंमें तत्पर रहनेवाला और ब्रह्मकर्मके विचारोंका ज्ञाता था ।८३-८५। उसकी कमला नामकी भार्या थी, जिसके पास मायाचार बिलकुल नहीं था उसके उदरसे रूप और गुणकी घर लक्ष्मीवती नामकी कन्या उत्पन्न हुई ।८६। लक्ष्मीवती सभी लक्षणोंसे परिपूर्ण थी । जब वह यौवनभूषित हुई, तब अपने रूपके आगे तीन जगतको तृणके समान गिनने लगी ।८७। एक दिन उसके घर एक महीनेका उपवास किये हुये एक योगिराज आहार करनेके लिये—पारणा करनेके लिये आये । वे निर्मल अवधिज्ञानके धारण करनेवाले, सर्व शास्त्रोंके पारगामी, कामदेवरूपी महाशत्रुको जीतनेवाले और रत्नत्रयरूपी विभूषणके धारण करने वाले थे । परन्तु उनका शरीर धूल वगैरासे मलिन होरहा था ।८८-८९। जिस समय वह रूपशालिनी लक्ष्मीवती अपने सर्व सुन्दर रूपको दर्पणमें देख रही थी,

उसी समय वे ज्ञानी मुनिराज पीछेसे आये और दर्पणमें उनका स्वरूप दिखाई दिया। जब उसने अपने रूपके समीप मुनिके रूपको देखा, तब बड़े भारी घमण्डके साथ उसने अपने मनमें विचार किया कि कहां तो मेरा सम्पूर्ण लोगोंके मनको हरण करनेवाला मनोज्ञ रूप और कहां इस मुनिका निंदनीय रूप ? मुनिके इस रूपको धिक्कार है ! धिक्कार है ! इस प्रकारसे उस पापिनीने उक्त मुनिचन्द्रके उत्तमरूपकी नानाप्रकार से निन्दा करके बड़ा भारी पाप कमाया ।९०-९४। उस पापके उदयसे वह पापिनी थोड़े ही समयमें कुष्टरोगसे पीड़ित हो गई। उसके सारे शरीरमें घिनावना कोढ़ होगया। ठीक ही है, निन्दा कर्मके प्रभावसे कहीं भी सुख नहीं मिलता है ।९५ ९६। उस कोढके कारण उसके शरीरमें बहुत दुःख होने लगे, जिसके सहनेमें असमर्थ होकर वह आगमें गिर पड़ी। और विवश होकर आर्तध्यानसे मरकर उस बड़े भारी पापके फलसे निंदनीय शरीरको धारण करनेवाली गर्दभी (गधी) हुई। सो घोर दुःख सहकर मरी और गृहशूकरी हुई। वह भी कोटपालके मारनेसे प्राण छोड़कर कुत्ती हुई ।९७ ९८। एक दिन शीतकालमें वह कुत्ती अपने बच्चोंके साथ किसी बगीचेके समीप एक घासकी गंजीमें बैठी हुई थी। घासमें आग लगनेसे उसीमें जल गई। बच्चोंके मोहके मारे निकलकर भाग नहीं सकी। वह मरकर पापके फलसे भेकनिगम नगरमें किसी धीवरकी पुत्री हुई। उसका शरीर अतिशय निंद्य और दुर्गंधियुक्त हुआ। उसके शरीरकी बुरी गन्ध उसके कुटुम्बके लोगोंसे भी नहीं सही गई, इसलिये उन्होंने उस पापिनीको घरसे निकाल दी। ठीक ही है, पापी पुरुषको सुख कहां मिल सकता है ? ।३९९-४०२। परिवारके लोगोंके द्वारा भी निन्द्य ठहराई हुई वह धीवरी घरसे निकल कर गंगा के समीप एक सैंकड़ों छेदवाली घासकी झोंपड़ी बना कर रहने लगी ।४०३। और लोगों को डोंगीके द्वारा पार उतार कर उनसे पाये हुए पैसोंसे अपना उदर पोषण करने लगी ।४। वहां रहकर वह अपने कमाये हुए द्रव्य

में से थोड़ा बहुत द्रव्य अपने पिताके घर भी भेज दिया करती थी। इस तरह वहां वह अपने पापका फल प्रगट करती हुई रहने लगी और उसका नाम दुर्गन्धा पड़ गया।५। इस प्रकारसे वह अपने दिन काटती हुई रहती थी कि, एक दिन माघके महिनेमें संध्याके समय जब कि शीत पड़ रहा था उस नदीके तीरपर वही मुनिराज आये जिनकी इसने पूर्वमें निन्दा की थी और वे जाप करते हुए एक स्थानमें विराजमान हो गये।६-७। उसने उन्हें देखकर मनमें विचार किया कि, ये योगीन्द्र ऐसे जाड़ेमें इस नदीके किनारे कैसे ठहरेंगे? मैं अग्नि जलाकर और कपड़े ओढ़कर अपनी कुटीरमें बैठती हूँ, तो भी मुझे ठण्ड लगती है फिर यहां ये कैसे रहेंगे ऐसा विचार करके वह रातको मुनिराजके पास गई और आग जलाकर तथा वस्त्र ओढ़ाकर उनका शीत निवारण करने लगी।८-१०। सवेरा होने तक वह उसी प्रकारसे शीत निवारण करती हुई और विह्वलकी तरह यह कहती हुई कि, उधर शीत है! इधर शीत है? बैठी रही।११। जब सवेरा हुआ, तब योगिराजने ध्यानको छोड़कर उससे पूछा, शोमशर्मा ब्राह्मणकी पुत्री बेटी लक्ष्मीवती! तू कुशल से तो है? धीवरीने अपना कुछका कुछ नाम सुनकर मनमें सोचा, ये सत्यवचनके बोलने वाले योगीन्द्र क्या कहते हैं जैनशासन को धारण करने वाले तो कभी झूठ नहीं बोलते हैं, फिर यह क्या कारण है इस प्रकार बहुत विचार करने से वह मूर्च्छित हो गई। और उसी समयसे उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसके द्वारा वह अपने पूर्व भवोंका चिंतवन करने लगी।१२-१५। थोड़ी देरमें ठण्डी हवाके लगने से उसकी मूर्च्छा दूर हो गई। इसलिये उसने उठकर मुनिके चरणोंको नमस्कार किया और विनयपूर्वक अतिशय रोदन करते हुए कहा, हे नाथोंके नाथ! इस जन्ममें यह मेरी क्या दशा हुई। कहां तो विप्रका जन्म और कहाँ यह धीवरका जन्म।१६-१७। हे विभो! मुनि निंदाके प्रभावसे जो मैंने बड़ा भारी पाप कमया था, उसी पापके फलसे मैं भ्रमण कर रही हूँ। १८। हे नाथ! पूर्वभवमें मैंने भारी पापके उदयसे तुम्हारी ही निन्दा की थी, इसलिये अब

मुझपर कृपा करके क्षमा करो ।१९। और वह धर्म मुझे सुनाओ जिससे मेरा इस पापसे छुटकारा हो। आप सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करने वाले हैं, और आप ही जीवोंका उपकार करने वाले हैं ।४२०। यह सुनकर उस रोती हुई धीवरीसे वे दयावान योगी बोले, हे बेटी तू दुःख मत कर क्योंकि यह दुःख ही संसारका करने वाला है ।२१। "यह बात सब ही लोग जानते हैं कि, रोनेसे राज्य नहीं मिलता है" इस लिये अब तू रोना पूर्ण कर, बहुत रो चुकी और जिन भगवानके कहे हुए धर्मको धारण कर ।२२। ये प्राणी पूर्व जन्मके कमाये हुए कर्मों का फल भोगते हैं। इसलिए मुनिनिन्दा करने के पापसे तू निन्द्य कुल में उत्पन्न हुई है ।२३। अब तू गृहस्थ धर्म में अनुरक्त होकर दयामयी धर्म को धारण कर। यह सुनकर धीवरी बोली, हे प्रभो ! उस धमका स्वरूप मुझे समझाओ ।२४। तब मुनि महाराज ने सम्यक्त्वसहित बारह प्रकार का गृहस्थ धम उस धीवरी को समझाया ।२५ तब जिनेन्द्रदेवका भाषण किया हुआ वह सद्धर्म ग्रहण करके धीवरीने पापके नाश करने वाले मुनिराजके चरणोंको नमस्कार किया ।२६। इसके पश्चात् दयालु मुनि महाराज तो तपस्याके योग्य स्थानको चले गये और वह धीवरी नवीन पापके आश्रवसे वर्जित तथा जिनधर्ममें सदा अनुरक्त रहकर कुछ काल तक उसी झोंपड़ी में रही। पश्चात वह जिनधर्ममें लवलीन रहने वाली बाला प्रसन्नता सहित कौशला नगरीको गई ।२७-२८। वहां वह जब हर्षके साथ जिनेन्द्र भगवानके मन्दिर में गई तब उसका धर्मपालिनी नामकी अर्जिकासे मिलाप हुआ, जो गणिनी अर्थात् अनेक अर्जिकाओंके संघकी स्वामिनी थी ।२९। उस अर्जिकाने बहुतसा धर्मोपदेश दिया, जिससे वह धीवरी धर्मध्यानमें और भी अधिक परायण हो गई ।३०। वह उसके पीछे पीछे रहने लगी और नानाप्रकारके तप करने लगी, जिससे उसका शरीर कृश हो गया ।३१। एक दिन वह धीवरी अर्जिकाके साथ राजगृह नामके श्रेष्ठ नगरकोगई। वहां उसने जिनमन्दिरमें जाकर नमस्कार किया। और फिर रातको उसी

अर्जिका के साथ नगरके बाहिर जो गोपुर था, वहां जाकर जब वह अर्जिका गोपुरकी गुफामें प्रवेश करके ध्यानस्थ हो गई, तब गुफाके बाहिर ही एक स्थानमें उपवास धारण किये हुए जिनदेवके नामका जप करनेमें ध्यान लगा दिया ।४३२-४३४। उसी रात्रिको दैवयोगसे वहां एक भयङ्कर व्याघ्र आया और इस धीवरकी लड़की को भक्षण कर गया ।३५। सो जिनधर्मके प्रभावसे उसका ध्यान योग धारण किये हुए ही मरण हो गया । उस समय वह व्रतोंका पालन भी करती थी, इसलिये शरीर छोड़कर सोलहवें स्वर्गमें इन्द्रकी इन्द्राणी हुई । वहां उसने पूर्वपुण्यके प्रभावसे चिरकाल तक सुख भोगे ।३६-३७।

धीवरीका जीव आयुके अन्तमें स्वर्गसे चयकर कुंडनपुर नामके श्रेष्ठ नगरके राजा भीष्मके गुणवती पुत्री हुआ । पूर्व पुण्यके प्रभावसे उसका रुक्मिणी नाम हुआ । रुक्मिणी उसके बड़े भाईने पहले दमघोषके पुत्र शिशुपालको देनी कही थी ।३८-३९। परन्तु पीछे नारदके मुँहसे श्रीकृष्ण नारायणकी प्रशंसा सुनकर वह उन्हींमें अनुरक्त हो गई । और इसलिये उसने अपना दूत श्रीकृष्णके पास भेजा । दूतके वचनोंसे संतुष्ट होकर श्रीकृष्ण अपने भाई बलभद्रके साथ कुंडनपुर आये और वहां लड़ाईमें चन्देरीके राजा शिशुपालको मारकर रुक्मिणीको ले आये और एक वनमें उसके साथ स्वय विवाह करके उसे पट्टराणीका पद देकर द्वारिका में ले आये ।४०-४१। सो रुक्मिणी महाराणीके उदर से तू सम्पूर्ण अंग उपांगोंसे सुन्दर प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है । जब तू केवल छह दिन का था, तब रात को तेरा पूर्व जन्मका बैरी एक दैत्य तुझे हरणकर ले गया था ।४४३।

यह सुनकर प्रद्युम्नकुमारने विनय पूर्वक पूछा, हे भगवन् ! अब यह बतलाइये कि मुझे माता का वियोग अपने किस पापके उदयसे हुआ है ।४४। यति महाराज बोले, वत्स ! इसमें तेरा कोई भी पाप कारण नहीं है । तेरी माताके पूर्वजन्मके पाप ही से वियोग हुआ है ।४४५। जब वह धीवरीके जन्मसे पहले लक्ष्मीवती नामकी ब्राह्मणपुत्री थी, तब उसने किसी समय मोरके (मयूरके) बच्चोंको कौतुक

के वश उससे अलग कर दिया था। और उन्हें सोलह घड़ी तक मातासे सुखपूर्वक अलग रक्खा था। पश्चात् उन्हें उनकी माताको दे दिया था।४६-४७। इसी पापके फलसे—अर्थात् उसने जो मयूरनीके बच्चोंको मातासे अलग किया था, उस वियोगजनित पापसे रुक्मणी को यह तेरा वियोग हुआ है। पाप कहीं पर भी अच्छा नहीं होता है।४८। यहाँ तुझे सोलह वर्ष माताके उसी पापके फलसे बीते हैं। इसलिये किसीका भी वियोग नहीं करना चाहिये।४९। हे वत्स! इसप्रकार अपने चित्तमें धर्म और अधर्मका फल समझकर पापको दूर ही से छोड़ना चाहिये और धर्म करना चाहिये।५०। मुनि महाराजके वचन सुनकर और उनके चरणकमलोंको नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमार आनन्द के साथ कनकमाला माताके महलको गये।

कनकमालाके समीप जाकर प्रद्युम्न कुमार विना नमस्कार किये हुए ही बैठ गया। यह देख वह अपने मनमें सोचने लगी।५१-५२। अवश्य ही यह मेरे रूपके पाशमें बद्ध होकर आया है। इसीलिये इसने मुझे नमस्कार नहीं किया है। अपने हृदयमें से इसने मेरा माताभाव निकाल दिया है। इस समय मैं इससे जो कुछ कहूँगी, वह अवश्य करेगा। इसमें सन्देह नहीं है।५३। इसप्रकार चिंतवन करके वह प्रद्युम्नसे बोली, हे महाभाग कामदेव! मेरे मनोहर वचन सुनो।५४। यदि रमणीय और मनोहर वचनोंके अनुसार काम करोगे, तो मैं तुम्हें रोहिणी आदि समस्त मन्त्रगण सिखला दूँगी।५५। यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार कनकमालासे हँसकर बोला, आजतक क्या कभी मैंने तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन किया है? कृपा करके मुझे रोहणी आदि मत्रगण दे दो। और मुझे दो, चाहे मत दो, परन्तु तुम्हारी कही हुई बा। मैं अवश्य करूंगा।५६-५७। ऐसे वाक्योंसे संतुष्ट होकर वह कनकमाला रानी प्रद्युम्नसे बोली, लो, इन श्रेष्ठ मंत्रोंको विधिपूर्वक ग्रहण करो।५८। ऐसा कहकर उस कामसे आकुलव्याकुल हुई मूर्खाने बड़ी प्रसन्नता और प्रीतिसे प्रद्युम्नको वह मन्त्रोंका समूह दे दिया।४५९।

उसकी बताई हुई विद्याओंको विधिपूर्वक जान प्रद्युम्नकुमार अतिशय संतुष्ट हुआ और कनकमाला से बोला; ।६०। हे पुण्यरूपे ! अब मेरे मनोहर वचन सुन—जिस समय मुझे शत्रुने हरण करके पर्वतकी कन्दरामें जाके रक्खा था, उस समय न तो मेरे पिता शरण हुए थे और न माता। उस समय आप दोनों ही शरण हुए थे, दूसरा कोई नहीं। इस लिये आप दोनों ही मेरे माता पिता हैं। सो पुत्रके योग्य जो कोई कार्य हो, सो मुझसे कहो, मैं करनेके लिये तैयार हूँ ।६१-६२। उसके इस प्रकार वज्रपातके समान वचन सुनकर वह क्रोधसे कुछ कहना ही चाहती थी कि, प्रद्युम्नकुमार नमस्कार करके अपने महलको चला गया। तब वह अपनेको ठगी हुई समझकर चिंता करने लगी। मेरी आशा नष्ट होगई। हाय अब मैं क्या करूँ ? मुझे उस पापीने ठग ली। मेरी विद्यायें भी ले गया और मेरी इच्छा भी पूर्ण न कर गया ।६३-६६। अब तो मुझे ठगनेवाले इस दुष्ट पापीका जिस तरह निग्रह हो सके, वही उपाय करना चाहिये ।६७। इसप्रकार बहुत समय तक मनमें विचार करके उसने अपने हाथोंके नखोंसे अपने शरीरको तथा दोनों कुचोंको नोंच डाला ।६८। फिर वह बालोंको बिखराकर धूलमें लपेटकर तथा आँखोंका काजल मुँहमें लगाकर रोती हुई राजाके पास गई और दुःखसे गद्गद् तथा विनयसे नम्र होकर बोली ।६९-७०। हे महाभाग नाथ ! जिसे आपने विजन वनमें मुझे पालन करनेके लिये दिया था, देखो आज उसी पापीने यह मेरी क्या दशा की है ।७१। मैंने जिसे बाल्यावस्थामें पुत्रके समान पालकर बढ़ाया था और मेरे ही कहनेसे आपने जिसे युवराजपद दिया था ।७२। आज उसी पापात्माने मेरा यौवन भूषित रूप देखकर कामदेवके वशीभूत हो कुचेष्टा की है ।७३। वह दुष्टबुद्धि अवश्य ही नीच कुलका उत्पन्न हुआ है। यदि ऐसा न होता, तो माताके विषयमें ऐसी पापबुद्धि क्यों करता ? ।७४। उस दुर्जन और दुष्टबुद्धिने मेरे पास आकर अपने तीखे नखोंसे मेरा यह शरीर नोंच डाला है ।७५। आपके पुण्यके प्रभावसे कुलदेवीके प्रसादसे और अपने भाग्यके वशसे

मेरे शीलकी रक्षा हुई है ।७६। यदि पापके उदयसे कहीं मेरा शीलभंग हो जाता, तो आज अवश्य ही मेरा मरण हो जाता । क्योंकि कलङ्कयुक्त जीवनसे तो मरना ही अच्छा होता है ।७७। हे नाथ ! आप के निर्मल कुलमें यदि मैं कलङ्किनी हो जाती, तो तीनों वंशोंको कलंकित करनेवाले मेरे जीवनका क्या फल होता ? ।७८। किसी बड़े भारी पुण्यके योगसे मैंने उसके भुजपंजरसे धूलमें लिपटा हुआ अपना शरीर आकुल होकर निकाल पाया है ।७९। अब मैं तो जब उस दुष्टका मस्तक रक्तमें लथपथ हुआ पृथ्वीपर लोटता हुआ देखूँगी, तब ही अपने जीवनको सच्चा समझूँगी ।८०।

कनकमालाके वचन सुनकर राजा कालसंवरने अपने सम्पूर्ण पुत्रोंको बुलाकर एकान्तमें कहा कि, हे पुत्रों मेरे वचनोंको आदर पूर्वक सुनो,—इस पापी प्रद्युम्नको तुम जल्द ही मार डालो ।८१-८२। यह किसी नीच कुलमें उत्पन्न हुआ है । इसे मैं एक वनमेंसे ले आया था । नहीं जानता हूँ, यह किस का पुत्र है । मेरी कृपासे यह इतना बड़ा हुआ है ।८३। सो अब जवानी पाकर तुम्हारी कीर्तिका घात करनेवाला हो गया है । तुम सबके साथ वनमें जाकर आप तो रथमें बैठकर आया और तुम सब पैदल आये । जिस समय मैंने तुम्हें और उसे इस तरह देखा, उसी समयसे वह शठ चित्तसे उतर गया है ।८४-८५। इसलिये अब जिसमें कोई जान न पावे, इस तरहसे इसे मार डालना चाहिये । पिताके ऐसे वचन सुनकर वे सब पुत्र बहुत प्रसन्न हुए ।८६। उन्होंने अपने जीमें कहा, हम पहलेही से उस पापीको मारना चाहते थे, फिर अब तो पुण्यके योगसे पिताकी आज्ञा मिल गई है ।८७।

पिताको प्रणाम करके वे पांचसौ भ्राता वहांसे जल्दीही चले आये और पीछे किसी तरहका लोकापवाद नहीं होवे, इस विचारसे उन्होंने प्रद्युम्नकुमारसे कहा, हम लोग जलक्रीड़ा करनेके लिये वापिकाको (बावड़ीको जाते हैं इसलिये तुमसे कहनेके लिये आये हैं । क्योंकि तुमपर हमारा बड़ा भारी मोह है अर्थात् हम तुम्हें बहुत चाहते हैं और तुमसे प्यारा कोई नहीं है । भाइयोंके ऐसे मीठे

वचनोंसे सन्तुष्ट होकर प्रद्युम्न भी उनके साथ निकल पड़ा ।८८-९०। पश्चात् सबके सब नगरके बाहर जो जलकी वापिका थी, बड़े आनन्दके साथ उसके पास गये । वहां वे अपने सब वस्त्र उतारकर तथा दूसरे वस्त्र धारण करके वापिकामें कूदनेके लिये वृक्षोंपर चढ़ गये ।९१-९२। इतनेहीमें प्रद्युम्नकुमारके पुण्यके योगसे विद्याने आकर तथा उसके कानमें लग कर एक हितकारी बात कही ।९३। हे महाभाग वत्स ! मेरे कल्याणकारी वचनोंको सुन; ये सब पापी वैर भावके कारण तुझे मार डालना चाहते हैं । इसलिये मेरी बात मानकर वापिकाके जलमें इनके साथ कूदकर तू स्नान मत कर । मैं तेरा हित चाहनेवाली हूँ ।९४-९५। विद्याके ऐसे वचन सुनकर प्रद्युम्न चकित होरहा । तत्काल ही विद्याके बलसे अपने जैसा दूसरा रूप बनाया और आप अदृश्य होकर वापिकाके तटपर बैठ कौतुक देखने लगा । इतनेमें वृक्षके ऊपर जो प्रद्युम्नका विद्यामयी रूप चढ़ा हुआ था, वह वापिकाके जलमें झंपापात करके कूद पड़ा । यह देख वे सबके सब विद्याधरपुत्र, "चलो ! जल्दीसे कूदो ! और पापीको जल्दी मार डालो ! सब एक साथ कूदके इसे पिचल डालो ।" ऐसा कहकर कूद पड़े ।९७-९९। जब वे सबके सब एक कतार बांधकर बावड़ीमें पड़े, तब प्रद्युम्नको बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ । वे आश्चर्यचकित होकर विचारने लगे,—५००। ये लोग मुझे किस उद्देश्यसे मारनेके लिये तैयार हुए हैं ? और पिताकी आज्ञासे हुए हैं, या बिना आज्ञाके स्वयं ही हुए हैं ।१। जान पड़ता है, उस पापिनी माताने पिताके आगे विरूपक बनाकर झूठी सच्ची बातें कही हैं । और उसीके वाक्योंपर विश्वास करके पिताने कुपित हो इन्हें बुलाकर मुझे मारनेकी आज्ञा दी है ।२-३। इसीलिये ये दुराचारी मुझे मारनेके लिये आये हैं । अतएव अब मैं इन्हें निश्चयपूर्वक मारूँगा ।४। इस प्रकार मनमें सोचकर कुमार अपनी विद्याके प्रभावसे एक बड़ी भारी बावड़ीके बराबर शिलाको ले आये और उससे बावड़ीको ढक दी । फिर उन सबको नीचे सिर और ऊपर पैर करके उसीमें लटका दिये । केवल एकको

पिताके पास समाचार भेजनेके लिये छोड़ दिया। उससे प्रद्युम्नने कहा, कि तुम पिताके पास जाओ और मैंने जो कुछ किया है, उनसे ठीक २ कह दो। तब उस एक पुत्रने राजा कालसंवरके पास जाकर जैसाका तैसा हाल कह दिया।५-८।

अपने पुत्रोंको वापिकाके जलमें शिलासे ढके हुए जानकर कालसंवर क्रोधके मारे आग बबूला हो गया। वह तत्काल ही अपने हाथमें खड्ग लेकर प्रद्युम्नके मारनेके लिये चला। यह देख मन्त्रियोंने कहा हे नाथ! आपका अकेला जाना ठीक नहीं है। क्योंकि जिसने आपके पांचसौ पुत्रोंको बावड़ी में कैद कर रखे हैं और जिसे अनेक लाभ प्राप्त हुए हैं, वह आप अकेले से कैसे जीता जावेगा? इसलिए बड़ी भारी सेना लेकर जाना चाहिये।९-१२। मन्त्रियोंकी बात मानकर राजाने रण-भेरी बजवाई और बड़ी भारी सेना लेकर कूच किया।१३। उस समय प्रद्युम्नकुमार भाइयोंको उल्लंघन करके (?) वापिकाके दूसरे तट पर लज्जासे आकुल होकर नीचा मुँह किये हुए बैठ गया।१४। और चतुरंग सेनाके सहित अपने पिताको नगरसे निकला हुआ देखकर सोचने लगा, पिताकी मूर्खताका कुछ ठिकाना है उन्होंने उस रंडीकी बातोंमें आकर मेरे मारनेकी तैयारी की है। ५-१६। इधर प्रद्यु-म्नकुमार इसप्रकार चिन्ता कर रहा था, उधर राजा कालसंवर रथोंके चक्रोंसे मार्गके बड़े २ पर्वतोंको दलन करता हुआ घोड़ोंके पैरोंसे उठी हुई रजको मदोन्मत्त हाथियोंके मदजलसे शमन करता हुआ तथा पैदलोंके समूहसे सारी पृथ्वीको कम्पित करता हुआ बड़ी भारी सेनाके साथ नगरसे बाहर निकला।१७-१९। बाजोंके शब्दोंसे, हाथियों की गर्जनासे, रथोंके चीत्कारसे, घोड़ोंके हिनहिनाहटसे, धनुषोंकी भन्नाहट और शूरवीरोंके अट्टहाससे कानोंके छिद्र व्याप्त होगये—लोग बहरे हो गये।२०-२१। इसप्रकार दिशाओंको व्याप्त करने वाली बड़ी भारी सेनाको देखकर प्रद्युम्नने किंचित हास्य किया और अपने देवोंका स्मरण करके विद्याके प्रभावसे एक बड़ी भारी सेना बनाली। जिसमें हाथी घोड़े पैदल और

अच्छे २ रथ थे ।२२-२३। उसी समय वन्दीजनोंके तथा वादित्रोंके शब्द हुए। और दोनों क्रोधयुक्त सेनाओंके पैदल सिपाहियोंका संघट्ट होने लगा ।२४। हाथी हाथियोंके साथ, घोड़े घोड़ोंके साथ, रथोंके समूह रथोंके साथ और पैदल सिपाही पैदलोंके साथ भिड़ गये। इस प्रकार जब दोनोंही सेनाओं का कठिन युद्ध हुआ, तब नारदमुनि आकाश मार्गमें आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे ।२५-२६।

कालसंवरकी सेनाकी मारसे प्रद्युम्नकी सेना बहुत जल्दी त्रासित हो गई, इसलिये वह एकाएक भागने लगी अपनी भागती हुई सेनाको देखकर क्रोधित प्रद्युम्नकुमार अंजनगिरिके समान बड़े २ हाथियोंके समूहसहित सैन्यको लेकर सन्मुख गया और नानाप्रकारके शस्त्रोंकी वर्षाके समान वर्षा करके उसने कालसंवरकी सेनाको भंग करदी—तितर बितर कर दी। गजोंके समूह गजोंसे और घोड़ोंके घोड़ोंसे मार डाले, रथोंसे रथ तोड़ डाले, योद्धाओंसे योद्धाओंको धराशाई कर दिये ।२७-३१।

इस प्रकार जब प्रद्युम्नने सारी सेनाका पतन कर दिया तब राजा कालसंवरने अपने मनमें विचार किया, यह शत्रु बड़ा ही दुर्जय है। मेरे साम्हने खड़ा हुआ गरज रहा है। इस दुष्टको मैं कैसे जीतूँगा? इसका मैं क्या उपाय करूँ? इसप्रकार चिन्ता करते २ राजाको एक बुद्धि उत्पन्न हुई कि मेरी रानीके पास जो दो विद्यायें हैं उन्हें लाकर मैं इस दुर्जय शत्रुको भी जीत सकूँगा। इस प्रकार बहुत देर तक विचार करके उन्होंने मंत्रीसे कहा,—३२-३५। हे महाभाग! मेरे वचन सुनो। तुम थोड़ी देर तक इस बलवानके साथ लड़ाई करते रहो, तब तक मैं नगरमें जाकर अपनी रानी से दो विद्यायें लिये आता हूँ और उनसे शीघ्र ही शत्रुको जीतता हूँ ।३६-३७। मन्त्रीने कहा, महाराज, आप शीघ्र जावें, मैं तब तक प्रद्युम्नके साथ युद्ध करता हूँ। उस बलवानके साथ जो युद्ध होता था, उसमें मंत्रीको स्थापित करके अर्थात् लड़ाईका काम मन्त्रीको सौंपकर वह अल्पबुद्धि राजा कालसंवर जल्दी नगरमें गया और रात्रिके अन्तमें अर्थात् सबेरा होनेके पहले रानी से बोला, प्रिये! रोहिणी

और प्रज्ञप्ती नामकी जो दो विद्यायें तेरे पास हैं, उन्हें मुझे दे दे, जिससे उस मूर्ख शत्रुको मारकर तेरे मनोरथोंको पूर्ण करूं ।३९-४०। यह सुनकर रानी कनकमाला स्त्रीचरित्र बनाकर राजाके आगे रोने लगी। उसे रोती हुई देखकर राजाने अपने मनमें सोचा इस व्यभिचारिणी ने दोनों विद्यायें किसी को दे दी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। फिर कुछ विचार करके कहा, प्रिय तू रोती क्यों है ? मुझे वे विद्यायें शीघ्र ही दे दे। क्योंकि शत्रु बलवान है। उसे विद्याओंके प्रभावसे मैं क्षणभरमें मार डालूँगा ।४१-४३। तब वह मूढ़ा रोती हुई आंसू बहाती हुई गद् गद् कंठसे स्वामीसे बोली, हे नाथ ! उस पापीने मुझे एक ही बार नहीं अनेक बार ठगा है। इस दुष्टकी वार्ता भी कहने योग्य नहीं है ।४४-४५। मैंने एक दिन इस बालक को बोलते हुए देखकर मनमें विचार किया था कि, यह बालक वृद्धावस्था में हम दोनों की पालना करेगा ।४६। ऐसा विचार करके मोहके वशसे इस भोली ने उसे अपनी दोनों विद्यायें स्तनों में प्रवेश कराके पिला दी थीं। ४७। हे नाथ ! मुझ मूर्खाने उस समय यह नहीं जाना था कि, यह जवानीमें ऐसा पापी होगा ।४८। मैं तो यहांसे भ्रष्ट हुई और वहांसे भी भ्रष्ट हुई। अब क्या करूँ ? मेरी आशा नष्ट होगई उस निर्विवेकी पापीने मुझे कई बार ठगी है ।४९। ऐसा कहकर कनकमाला गला फाड़कर रोने लगी। ये ढोंग देख कर कालसंवरने उसके सारे दुश्चरित्र जान लिये। स्त्रीके कहे हुए वचन सुनकर उन्होंने सिर हिलाया और मनमें चिन्तवन किया कि ।५०-५१। अहो ! स्त्रियोंके चरित्रोंको कौन वर्णन कर सकता है ? इसने मेरी दोनों विद्यायें खो दीं और पुत्र भी खो दिया ।५२। ऐसी अवस्था में तो अब इस जीवनसे भी कुछ प्रयोजन नहीं है। उसके सन्मुख जाकर जल्द ही मर जाऊँगा। इसमें सन्देह नहीं है ऐसा विचार करके राजा ऊँची स्वास लेता हुआ महल से निकला और रणांगनमें जाकर प्रद्युम्न से बोला, तू अपने तरकशमें रखे हुए बाणोंको मुझपर शीघ्रतासे चला। मैं पहले ही तुझे

नहीं मारूँगा। क्योंकि एक तो तू बालक है और दूसरे युद्धविद्या मे अपरिचित तथा दुरात्मा है ।५४-५५। यह सुनकर प्रद्युम्न बोला, हे तात ! मेरी बात भी सुन लीजिये। स्त्री की बातोंमें तल्लीन हुए मूर्ख पिताको मैं भी नहीं मार सकता हूँ ।५६। इसलिये पहले तुम्हीं बाण चलाओ, पीछे मेरा दोष नहीं रहेगा। यह सुनकर राजा कालसंवर क्रोधसे दुःखी हो गया। उसने धनुष पर बाण स्थापित करके बड़े वेगसे मारना शुरू किया और फिर वे बलसे उद्धत हुए दोनों वीर देवोपनीत तथा सामान्य शस्त्रोंसे युद्ध करने लगे ।५७-५९। इतनेमें कालसंवरने एक बाण ऐसे वेगसे चलाया कि, उस से प्रद्युम्नकुमार का रथ टूट गया ।५८ अपने रथको टूटा देखकर प्रद्युम्नने भी एक वेगशाली बाण चलाकर पिताको अपने समान कर दिया अर्थात् उसका भी रथ तोड़ डाला ।६०। और तत्काल ही उस मुग्धचित्त पिताको नागपाशसे बांधकर, अपने समीप ला रक्खा। पश्चात वह लज्जाके कारण कुछेक नीचा मुँह करके चिंता करने लगा; युद्धमें मैंने इतनी सेनाको मायाके वशसे मूर्छित कर दिया है।६१-६२। अब कोई उत्तम पुरुष आकर मेरे पिताको छुड़ा देवे, तो अच्छा हो ! सच है, होनहार होता है, वह अन्यथा नहीं होता है ।६३। जिस समय वह इस प्रकार विचार कर रहा था उसी समय नारद महाशय आकाशरूपी आंगन में नृत्य करते हुए और हर्षित होते हुए आ पहुँचे ।६४। उन्होंने सोचा आज यह अच्छा हुआ, जो पिता ही के साथ पुत्रका बड़ा भारी विरोध हो गया। अब यह जरूर मेरे साथ चलनेको तैयार हो जावेगा ।६५। तब नारदजीने दर्शन देकर उत्तमोत्तम वचनोंसे आशीर्वाद दिया और जानते हुए भी पूछा कि, यहां यह युद्ध क्यों हुआ ? ।६६। उनके वचन सुनकर प्रद्युम्न बोले, हे नाथ ! हे महाभाग ! मेरे वचन सुनिये ।६७। माताके वचनों पर विश्वास करके पिताने मेरा बुरा चिन्तवन किया था। संसारमें बराबरीके लड़के को मारना बड़ा ही निन्दित है, परन्तु पिताने उसीके लिये तैयारी की थी ।६८। इसके पीछे प्रद्युम्नने माताका सारा दुश्चरित्र पिताके सुनते हुए नारदको

कह सुनाया ।६६। उसे सुनते हुए नाररजी अपने दोनों कानोंको बन्द करके मस्तक धुन करके और नेत्र बन्द करके बोले, हे वत्स ! इस लोकनिन्द्य चरचाको अब मत कह । नीच पुरुषोंके साथ गमन करने वाली और पाप चित्तवाली स्त्रियोंके चरित्रोंका वर्णन किससे हो सकता है ? ये दुष्ट नारकिनी कुपित होकर चक्रवाकके समान प्रीति करनेवाले अपने स्वामीको, प्राणप्यारे पिताको, पुत्रको, भाईको, तथा गुरुको मार डालती हैं, फिर दूसरे मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है ? ।७०-७३। नारदजीके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार बोले, महाराज सुनिये, मैं अब पिता रहित हो गया । मैं अब किसका होऊँगा और किसके पास जाऊँगा । हे महामति ! मेरे जीवनका उपाय अब आपही बतलावें ।७४-७५। ये कालसंवर महाराज निश्चयपूर्वक मेरे पिता हैं और मुझे दूध पिलानेवाली कनकमाला मेरी माता है ।७६। परन्तु इस समय इन्हीं दोनोंने मेरे साथ इसप्रकारका कर्म किया है । इसलिये अब बतलाइये कि मैं शरणरहित होकर कहां जाऊँ ? ।७७। प्रद्युम्नके वचन सुनकर नारदजी रमणीय वचन बोले कि, हे वत्स ! मेरा कथन सुन ।७८। अपने मनमें खेद मत कर कि, मेरे कोई बन्धु नहीं हैं। तेरे बहुत से बन्धु हैं, उनका वृत्तान्त मैं कहता हूँ ।७९। द्वारिकाके स्वामी श्रीकृष्ण नामके नारायण तेरे पिता हैं, जिनका जन्म हरिवंश नामके वंशमें हुआ है, और जो यादवोंके शिरोमणि हैं ।८०। और उनकी प्राणके समान प्यारी रूप तथा लावण्यसे युक्त सम्पूर्ण गुणोंकी पापरहित खानि रुक्मिणी नामकी पट्ट-रानी तेरी माता है ।८१। उसने मुझे बड़े आदरसे तेरे लानेके लिये भेजा है । उसके बुलानेका एक कारण है, सो अभी कहता हूँ ।८२।

हे प्रद्युम्न ! तेरी माताकी एक सत्यभामा नामकी सपत्नी (सौत) है उसके साथ उसका बड़ा भारी विरोध है। इसलिये मेरे साथ तेरा जाना बहुत उचित है । प्रद्युम्नकुमार अपने वंशकी सत्कथा सुनकर अतिशय प्रसन्न हुए और नारदके प्रति उन्हें प्रीतिबुद्धि उत्पन्न हुई । फिर वे नारदके पूर्वमें

कहे हुए वचनों को बारम्बार चिंतवन करने लगे ।८३-८५। सो ठीक ही है, अपने वंशकी योग्यता प्रधानता और बहुमूल्यता, सुनकर किसे सन्तोष नहीं होता है ?, ।८६। नारदके ही वचनसे उस पुण्यवान पापरहित कुमारने अपने पिता राजा कालसंवरको छोड़ दिया, और सारी सेनाको उठा दिया, चैतन्य कर दिया ।८७। तब वे सबके सब सेनाके योद्धा कठोर शब्द करते हुए उठे कि, इसे पकड़ो, इस दुर्जय शत्रुको मारो ।८८। उस समय नारदने कहा, हे शूरवीर योद्धाओं ! इस युद्धमें तुम सबका पराक्रम देख लिया ।८९। अब तुम कुशलता के साथ अपने नगरमें चले जाओ । तुम्हें प्रद्युम्नकुमार ने जीवन दान दिया ।९०। तब वे सुभट लड़ाईका सारा वृत्तांत जानकर और अपनी मूर्च्छा वगैरह का हाल समझकर चतुरंग सेनाके साथ अपने नगरको चले गये ।९१।

राजा कालसंवर लज्जाके मारे न तो कुछ नारदसे कह सकते थे और न प्रद्युम्नकुमारसे कहते थे ।८२। अन्तमें दीन और मलीनमुख होकर नगरको चले गये । वहां जाकर कनकमालासे बोले, तुम्हारा कुछ भी दूषण नहीं है ।९३। जो कर्म पूर्वमें कमाये हैं, उन्हींके फल प्राप्त होते हैं । इसलिये इसमें न तो दुःख करना चाहिये और न आनन्द मानना चाहिये ।९४। इस प्रकार जब राजा रानी अपने महलमें बैठे हुए चिन्ता कर रहे थे, तभी वे पांचसौ पुत्र भी गर्वरहित होकर दीनमुख किये हुए आगये उन्हें दयालुहृदय प्रद्युम्नने वापिकाके जलमेंसे निकालकर छोड़ दिया था ।९५-९६।

नगरनिवासियोंने कनकमाला रानीका ऊपर कहा हुआ सारा चरित्र जानलिया । इसलिये लोग कहते हैं कि, पाप छुपा नहीं रहता; सर्वत्र फैल जाता है ।९७। पापियोंकी जय कभी नहीं होती । धर्मात्माओंकी ही जय होती है । इसलिये भव्य पुरुषोंको चाहिये कि, दूरहीसे पापका त्याग करें ।९८। प्राणियोंको पुण्यके ही प्रभावसे मनुष्यलोक और स्वर्ग लोक सम्बन्धी सुख प्राप्त होता है, इसलिये भव्य पुरुषोंको निरन्तर धर्म करना चाहिये ।९०। और सर्वदा पापका त्याग करना चाहिये । क्योंकि

ऐसा कौनसा दुःख है जो पापसे उत्पन्न नहीं होता है ? अर्थात् सब ही दुःख पापके फलसे होते हैं। इसलिये सोम अर्थात् चन्द्रमाके समान सौम्यरूप पुण्य ही करनेके योग्य है। भव्यजीवोंको पुण्यसे ही सुख प्राप्त होता है।६००। शत्रुओंके साथ विदेश अर्थात् दूसरे भयंकर स्थानोंमें जाकर भी उत्तम फल के देनेवाले लाभ पाये, जगत प्रसिद्ध प्रज्ञप्ती और रोहणी विद्या पाई, भाईयोंको बांधकर टांग दिये, और रिपुओंको युद्धमें जीत लिया, इस प्रकारसे वह प्रद्युम्नकुमार पुण्यके फलसे सुर और मुनिके (नारदके) सहित शोभित होता हुआ।६०१।

इति श्रीसोमकीर्ति आचार्यविरचित प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें सोलह लाभोंकी और विद्याओंकी प्राप्ति, पिता, भाइयोंका विरोध, नारदका आगमन आदि वर्णनवाला नवमां सर्ग पूर्ण हुआ।

अत दशमः सर्गः।

अथानन्तर–नारदजीने प्रद्युम्नकुमारसे कहा, हे वत्स ! अब बिना विलम्बके द्वारिका नगरीको चलना चाहिये।१। तब कृतज्ञ कुमारने कहा कि माता पिताके पूछे बिना मेरा जाना ठीक नहीं है। इसलिये आप यहीं ठहरें, मैं नगरमें जाता हूँ और माता पितासे पूछकर अभी आपके पास आ जाता हूँ।२-३। ऐसा कहकर और नारदको वहीं छोड़कर प्रद्युम्नकुमार वहां गया, जहांपर राजा कालसंवर कनकमाला के साथ दुःखावस्थामें बैठे हुये थे।४। वहां जाकर और माता पिताको नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमारने कहा, हे महाभाग पिता ! मेरे वचन सुनिये।५। मैंने अज्ञानतासे जो अनिष्ट कर्म किया है, उसे कृपा करके क्षमा कीजिये।६। इससे अधिक मूर्खता मेरी और क्या कही जा सकती, जो मैंने अपनी माता के विषयमें (आपकी समझमें) ऐसा पाप विचारा।७। परन्तु जो दीन हैं, अनाथ हैं, तथा पराधीन हैं, सज्जन पुरुष उनके ऊपर कभी कोप नहीं करते।८। हे नाथ ! मैं आपका किंकर हूँ, क्योंकि मुझे आप हीने जिलाया है, पालकर बड़ा किया है और अबभी आपसे जीता हूँ। इसलिये मुझपर कृपाकरके मेरे पापों

को क्षमा करो। और हे माता ! तू भी मुझ बालकके पापकार्योंकी क्षमा कर ।१०। अब मैं आप दोनोंकी आज्ञासे अपने पिताके घर मिलने के लिये जाता हूँ। इसलिये मुझे आज्ञा दीजिये। मैं बिना आज्ञाके नहीं जाऊँगा ।११। मैं आपका बालक हूँ, इसलिये हे पिता ! मेरा निरन्तर स्मरण रखिये। वहां माता पितासे मिलकर मैं जल्द लौट आऊंगा।१२। हे नाथ आप मेरे विभागको सर्वदा सुरक्षित रक्खें। मैं निरन्तरके लिये यहीं आकर रहूँगा ।१३। और हे माता ! मुझ सेवकपर आपको भी सदा प्रसन्नदृष्टि रखनी चाहिये। क्यों कि पुत्र चाहे कुपुत्र हो जावें, परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती है। ऐसी संसारमें प्रसिद्धि है। और सो भी मेरे जैसे परतन्त्र पुत्रपर कौन कोप करेगा ? ।१४-१५। आपको ऐसा ही समझना चाहिये कि, यह मेरे उदरसे उत्पन्न हुआ है। कुछ भी अन्तर नहीं मानना चाहिये। मैं आपका पुत्र हूँ,। इसमें संशय नहीं है ।१६। प्रद्युम्नकी ये सब बातें वे दोनों लज्जाके मारे नीचा मुख किये हुए सुनते रहे। उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया। तौ भी वह विनयवान कुमार उन्हें बारंबार नमस्कार करके तथा अपने भाइयोंको, परिवारके लोगोंको, मंत्रियोंको फिर २ कर संतुष्ट करके तथा मोहयुक्त होकर प्रणाम करके उस नगरसे निकलकर चला। उस समय उसको लोग स्तुति करते थे ।१७-१९।

नारदके समीप पहुँचकर प्रद्युम्न विनयके साथ बोला, हे तात ! मुझे बतलाओ कि, यहांसे द्वारिका कितनी दूर है ।२०। तब नारदने कहा कि, यह तो विद्याधरोंका देश है, और वह द्वारिका नगरी मनुष्यों की है। इसलिये बहुत दूर है। कुमारने कहा; यदि वह नगरी दूर है, तो हे तात ! वहां तक कैसे चला जावेगा ।२१-२२। नारदजी बोले हे वत्स ! मैं तुम्हें शीघ्रगामी विमान पर बैठाकर बहुत वेगसे ले जाऊँगा। प्रद्युम्नने कहा, यदि ऐसा है तो उस वेगगामी विमानको जल्दी तैयार करो, जल्दी सजाओ।२३-२५। कुमारके वचनोंसे सन्तुष्ट होकर नारदजीने एक बड़ा भारी, सुन्दर, कल्याण-

कारी और शीघ्रगामी विमान बनाके तैयार कर दिया और कहा, हे वत्स यह विमान तुम्हारे योग्य बना है। सो इसपर जल्दी ही बैठ जाओ। जिससे हम तुम दोनों रुक्मिणीके पास पहुँच जावें ।२६। नारद के वचनोंसे प्रसन्न होकर कुमारने कहा, तात क्या आपका यह विमान मुझे बैठानेके लिये समर्थ है। ।२७। तब नारदजी मुस्कुराके बोले, हाँ तुम्हारे लिये तो बहुत मजबूत है। तुम शीघ्र ही बैठ जाओ। यह सुनकर कामदेवने उसपर बड़े ही जोरसे अपने पैर रख दिये। जिससे उसकी सब सन्धियाँ टूट गईं सैकड़ों छिद्र हो गये ।२८-२९। यह कौतुक करके नीति चतुर कुमार बोला, धन्य है! धन्य है! आप तो शिल्प विद्यामें बड़े ही प्रवीण हैं ।३०। हे विभो आपने यह विद्या किसके पास सीखी थी? सचमुच इस संसारमें आपके समान शिल्पकार न तो हुआ है, और न आगे होगा।३१। मैंने तो आज से अच्छी तरह जान लिया कि, जगत में नारद ऋषिके समान विद्याबलसहित विज्ञानी कोई भी नहीं ।३२। कुमारके इस परिहाससे लज्जित होकर बुद्धिमान नारद बोले, मैं तो वृद्ध हो गया हूँ। मेरी जरायुक्त देह में चतुराई कहां से आई? तुम तो सब विद्याओं में कुशल हो; सम्पूर्ण विज्ञानके ज्ञाता हो और नवीन यौवन सम्पन्न हो, तुम क्यों नहीं बनाते? ।३३-३४। हे वत्स! अब तुमही विमान बनाओ जिससे शीघ्रतासे चलें। व्यर्थ ही क्यों समय खो रहे हो? तुम्हारी माता तुम्हारे लिये बहुत दुःखी हो रही है ।३५। व्रतधारी नारदके कहनेसे प्रद्युम्नकुमारने अपने यशोराशिके समान (सफेद) एक विस्मयकारी विमान जल्द ही बना दिया ।३६। उस विमान में बड़े २ घंटे लटक रहे थे, अनेक ध्वजायें उड़ रही थीं, और पचरंगे उत्तमोत्तम रत्नोंसे बना हुआ उसका कूट (शिखर) शोभित होता था ।३७। उसका मध्यभाग (कटि) किनारे, सिंहासन सोनेके रचे गये थे। इसके सिवाय वह विमान बावड़ी, तालाब आदिके समूहोंसे शोभित किया गया था, हंस चक्रवाकादि पक्षियोंसे युक्त था, केला सुपारी ताड़ आदि वृक्षोंसे अलंकृत था; चँवरों छत्रों तथा नाना प्रकार के वादित्रों

से शोभित था, और किंकिणी की ध्वनिसे रमणीय था। उसकी खिड़कियों में तथा दूसरे स्थानोंमें मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं, और इन सब सामग्रियोंसे वह दूसरे स्वर्गलोकके समान मालूम होता था।३८-४१। इसप्रकार सुन्दर वेगगामी विमानको बनाकर सारभूत विज्ञानके जानने वाले प्रद्युम्नकुमारने नारदजीसे कहा, हे तात ! यदि यह आपके योग्य हो, तो इसपर बैठ जाओ। क्योंकि मैंने इसे बालबुद्धिसे बनाया है।४२-४३। ऐसा कहने पर नारदजी ने उस अतिशय सुन्दर विमानको देखा, जो कि पुण्यहीनोंको प्राप्त होना बहुत कठिन है। उससे उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ।४४। निदान जब वे विमान में बैठ गये, तब कुमारने उसे धीरे २ आकाश पर चढ़ाया। परन्तु आगे कुमारके कुटिल (हास्यरूप) आशययुक्त होनेसे जब विमानकी गति मन्द हो गई, और उस नारद ने देखा, तब वे बोले, तेरी माताका मुखकमल तेरे वियोगरूपी तुषारसे आक्रान्त होरहा है, सो तुझे सूर्यके समान जाकर उसे मुरझानेसे बचाना चाहिये।४५-४७। तुझे शीघ्रतासे जाकर अपनी दुःखी माताको धीरज बँधाना चाहिये। ऐसे समर्थ पुत्रके होते हुए क्या तेरी जननी को दुःख होना अच्छा है ?।४८। नारदके ऐसे वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार अपने विमानको अतिशय तेज गतिसे चलाने लगा।४९। उसकी इस क्रीड़ासे अर्थात् इतने जल्द चलानेसे नारदजी बहुत आकुल व्याकुल होगये। उनके जटा बिखर कर उड़ने लगे, शरीर कांपने लगा, हाथोंकी कुहनियोंमें, मुँहमें, और दांतोंमें लुढ़कने पुड़कने से चोटें लग गई और बोलते समय जीभ दांतोंके नीचे आकर कट गई।५०-५१। जेटके महीनेमें जैसे समुद्रमें जहाज आकुलित हो जाते हैं, उसी प्रकारसे आकुलित हो नारदजी बोले, बेटा ! तुझे इस विमानमें बिठाकर इतना आकुल व्याकुल क्यों कर रहा है तू आनन्दसे परिपूर्ण है, सो तु मुझे स्नेह के वशवर्ती हुए अपने माता पिताको जाकर उत्कंठित करना चाहिये।५२-५४। रुक्मिणी मेरी पुत्री है, वह मुझपर बड़ा वात्सल्य रखती है। इसी प्रकार तेरा पिता श्रीकृष्ण भी मेरी बड़ी भारी

भक्ति करता है ।५५। और भी जितने यादव हैं, वे सब मेरा निरंतर सत्कार करते हैं, फिर तू दयारहित होकर मुझे क्यों व्याकुल करता है ।५६। यह सुनकर कुमारने कहा, हे तात ! जान पड़ता है कि तुम्हारा चरित्र भी कुटिलतायुक्त हो गया है ।५७। इसीलिये मैं विमान को शीघ्रतासे चलाता हूँ, सो आपको नहीं रुचता है और धीरे २ चलाता हूँ, सो अच्छा नहीं लगता। तो लो अब मैं नहीं जाऊँगा आप जाओ।५८।ऐसा कहकर उसने आकाश में ही अपना विमान खड़ा कर दिया । तब क्रोधको मन में दबाकर नारदजी बोले, यह विद्याधरों का स्थान तुमसे छोड़ा नहीं जासकता है । इसलिये मेरे लिवाने को आनेसे तू जानेमें इतना विलम्ब कर रहा है ।५९-६०। तुझे मालूम नहीं है कि, यदि तेरी माता का पराभव होगया, और तू पीछेसे पहुँचा, तो फिर तेरे जानेसे भी कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा ।६१। और हे वत्स मैं और भी एक बात तुमसे कहता हूँ । यद्यपि उसका कहना तेरी माताको अभीष्ट नहीं था, तो भी मैं कहता हूँ ।६२। तेरे माता पिताने तेरे लिये बहुतसी सुन्दर २ कन्याओं की याचना की है । सो यदि तू नहीं पहुंचेगा, तो उन सब कन्याओं को तेरा छोटा भाई वरण लेगा ।६३। सो जब वे कन्या विवाही जा चुकेंगी, तब फिर जानेसे क्या लाभ होगा । नारद के इसप्रकार कानोंको प्यारे लगने वाले वाक्य सुन प्रद्युम्नने अपने विमानको फिर भी वायु वेगसे चलाना शुरू कर दिया उस विमानकी उड़ती हुई रमणीक ध्वजायें समुद्रमें उठती हुई चंचल तरंगों के समान जान पड़ती थी । जिस समय वह विमान आकाश में बड़े वेगसे जा रहा था, उस समय मार्गस्थ नगरों की स्त्रियोंके नेत्रोंको प्रसन्न करने वाला, और मुस्कुराते हुए नारदजीके कारण शोभित होने वाला जो रमणीय चरित्र हुआ, उसको हे श्रेणिक हम संक्षेपसे कहते हैं—।६४-६७।

विद्याधरोंके विजयार्द्ध पर्वतको जल्दही लांघकर प्रद्युम्न और नारदजीने भूमिगोचरियोंकी पृथ्वी देखी, जो अनेक वनोंसे, नगरोंसे समुद्रोंसे और पर्वतोंसे सघन हो रही थी । उसे क्रमक्रमसे

देखते हुए जब वे आकाशरूपी आंगनमें चले जा रहे थे, तब नारदजीने वृक्षोंके समूह से सघन हुई खदिरा नामकी अटवी देखी जो कि तक्षक नामके पर्वत पर थी और जिसमें बालक प्रद्युम्नको उसके वैरी दैत्यने बड़ी भारी शिलाके तले दबा दिया था, ।६८-७१। जिस समय नारदमुनिने उक्त अटवी प्रद्युम्नको दिखाई, उस समय वे बहुत आनन्दित हुए ।७२। पश्चात् वह विमान जो कि पृथ्वीपर अतिशय दुर्लभ था, वेगसे चलने लगा । थोड़ी देरमें नारदने कहा, हे कुमार ! अपने विमानके कर्ण-प्रिय घंटाओंके मधुर शब्द सुनकर देखो, ये हिरणियोंके समूह अपने चंचल बच्चों सहित ऊँचा मुख किये हुए खड़े हैं, मनोहर क्रीड़ा कर रहे हैं, कभी चलने लग जाते हैं, और कभी बैठ जाते हैं, बड़े ही सुन्दर हैं ।७३-७५। इन्हें इसप्रकारकी क्रीड़ा करते देखकर मन क्यों न हरा जाय ? प्रद्युम्नको उन्हें देखनेसे प्रसन्नता हुई ।७६। आगे चलकर नारदजीने कहा, हे कामदेव ! इस मनके चोरनेवाले प्रसन्न मुख, और रमणीय पंखें फैलाकर नृत्य करते हुए तथा मनोहर शब्द करते हुए आसक्त-चित्त मयूरको देखो, यह कैसा धीरे २ पैर रखता है । इसके साथ भौंरोंके झुण्ड भी गूंजते हुए ऐसे मालूम पड़ते हैं, जैसे गीत गा रहे हों । मयूरको देखकर कामकुमार बहुत प्रसन्न हुए ।७७-७९। तदनंतर उस शीघ्र-गामी विमानके द्वारा कुछ दूर आगे चलकर नारदने फिर कहा, प्रद्युम्न इस रौद्रमूर्ति किन्तु मनको हरण करनेवाले शार्दूलको (सिंहको) भी देखो, जो अपने विकट नादसे पर्वतको कम्पित कर रहा है, और अपनी पूंछको पीछेकी ओरसे मोड़कर ऊंची उठाये हुए है । यह अपनी दाढ़ोंसे तथा नखोंसे बड़े २ हाथियोंको विदारण करनेसे और उनका मांस भक्षण करने से कैसा भयंकर दिखता है ? सिंह को देखकर प्रद्युम्न हर्षित हुए । तब नारदजीने फिर कहा, हे महाबाहु ! और इन आगे खड़े हुए लीलायुक्त हाथियोंको भी देखो, जो पद पदपर लीला करते हैं ।८०-८४। सुगन्धित मद बहनेके कारण उनके कपोलोंपर भौंरोंके झुण्डके झुण्ड गुंजार कर रहे हैं, ताड़ के पत्रोंके समान उनके बड़े २ कान

हैं; पीठकी रीड (वंश) बड़ी ऊंची और पुष्ट है। ये पानी पीनेके लिये जलाशयोंके समीप आये हैं। हाथियों को देखकर कुमार बहुत सन्तुष्ट हुए ।८५-८६। थोड़ी दूर और चलकर नारदजीने कहा, हे कुमार ! तुम्हारे आगे यह एक विशाल शरीर (बड़ा) गुरुवंश (बड़े २ बांसों वाला) तथा ऊंचे कंधोंवाला (ऊंचे शिखरोंवाला) अनन्त खड्गियोंसे (गेंडोंसे) सेवित, स्थिररूप, उन्नतिशाली और भूधरोंका (पर्वतों का) पति महापर्वत शोभित हो रहा है। यह तुम्हारे समान आकृतिको धारण करने वाला है। अर्थात् जैसा वह पर्वत है, उसी प्रकारसे तुम भी विशाल शरीर, गुरुवंश (उच्चकुलसे उत्पन्न) उच्चकंध (स्थूल कंधवाले) अनेक खड्गी अर्थात् खड्ग धारण करने वाले शूरवीरोंसे सेवित, स्थिरचित्त, उन्नतिशील और भूधरों अर्थात् राजाओंके पति हो। प्रद्युम्नकुमार नारदके कहे अनुसार उस पर्वतको देखकर प्रसन्न हुये ।८७-८९। उसके पीछे थोड़ी दूर चलकर नारदजी बोले, देखो, यह एक नदी तुम्हारे साम्हने वह रही है ।९०। इसमें किनारेपर लगे हुए बड़े २ वृक्षोंके फूलोंसे जो परागकी धूल झड़ी है, उसकी सुगन्धिसे सुगन्धित हुआ जल बह रहा है। हंस और सारस पक्षियोंसे शोभित अथाह और मगरमच्छोंसे भरी हुई उस गंगानदीके समान नदीको देखकर प्रद्युम्नका चित्त प्रसन्न हुआ ।९१-९२। थोड़ी ही दूर चलनेपर गंगानदी भी दिखलाई दी। उसे देखकर नारदजीने कहा, हे मनोभव देखो, यह सम्पूर्ण पृथ्वीमें प्रसिद्ध गंगा नामकी नदी है। जिसका जल अतिशय निर्मल है, जो पवित्र और पाप को नाश करने वाली है। जिसके बड़े २ किनारों के पृष्ठ पर देवकन्यायें निवास करती हैं। और जो तटस्थित किन्नरियोंके मनोहर गीतोंसे तथा हंस और सारस पक्षियोंके शब्दोंसे तीनों लोकोंको वशीभूत करती है ।९३-९५। इसप्रकारकी सुविस्तृत गंगानदीको देखकर कामकुमारको बड़ी भारी प्रसन्नता हुई उन्होंने कहा कि—"अहो यह गंगानदी बड़ी ही रमणीक है" ।९६।

इस प्रकार बड़े भारी कौतुकके साथ उस आश्चर्ययुक्त उत्तम पृथ्वीको देखते हुए वे दोनों

कितनी ही दूर निकल गये।९७। इतने में उन्होंने एक जगह बड़ी भारी चतुरंग सेना देखी, जिसमें हजारों राजा अगनित घोड़े, रथ और पयादे थे, जो वादित्रोंके शब्दोंसे शब्दायमान हो रही थी। चक्रवर्तीको सेनाके समान उस सेनाको देखकर प्रद्युम्नकुमार बड़े आश्चर्यके साथ नारदजीसे बोले।९८-१००। हे नाथ! पृथ्वीतल पर यह किस राजाका शिविर पड़ा हुआ है? ऐसा शिविर तो मैंने कभी विद्याधरोंके देशमें नहीं देखा। तब नारदजी मुसकराते हुए बोले, तुम इसीके लिये यहां पर लाये गये हो। इसका विस्तृत वृत्तान्त इस प्रकार है कि, ।१-२।

इस समय हस्तिनापुरमें कुरुवंशी राजा दुर्योधन जो गुणोंका समुद्र है, राज्य करता है। आदिनाथ भगवानके समयमें जो दानकी परिपाटी चलानेवाला विख्यात और प्रजाका प्यारा श्रेयांस नामका राजा हुआ है, वह इसी वंशमें हुआ है।३-४। उस श्रेयांस राजाके वंशका भूषणस्वरूप एक कुरु नामका राजा हुआ, जिसके नामसे कुरुवंश पृथ्वीमें अतिशय विख्यात हुआ।५। उसके पीछे उस वंशमें क्रमसे हजारों राजा हुए। सो अनेक राजाओंके बीत जाने पर उस हस्तिनागपुर नगरमें पृथ्वी मडलमें विख्यात एक धृत नामका राजा हुआ। इस राजाके तीन रानियां थीं। पहली गुणरूपादियुक्त अम्बा, दूसरी अम्बिका और तीसरी अम्बालिका। उक्त तीनों रानियोंके उदरसे राजा धृतके क्रमसे तीन पुत्र हुए, पहला धृतराष्ट्र, दूसरा पाण्डु और तीसरा विदुर। ये तीनों ही बड़े ही कीर्तिवान हुए। इनमेंसे पहले धृतराष्ट्रको गांधारी नामकी प्यारी रानी प्राप्त हुई। दूसरे पाण्डुकी कथा पुराणोंमें भली भांति निरूपण की गई है, तो भी हे वत्स! मैं तुम्हें संक्षेपमें सुनाता हूँ।६-११।

पहले राजा धृतने पांडुकुमारके लिये सूर्यपुरके राजा अन्धकवृष्टिकी कन्या कुन्ती मांगी थी। परन्तु पीछेसे किसी पापीने उससे जाके कह दिया कि, पांडुकुमारका शरीर सफेद कोढ़से नष्ट हो गया है।१२-१३। राजाने जब यह सुना, तब उसने कन्या देनेसे इन्कार कर दिया। इस वृत्तांतको किसी

तरहसे सुनकर पांडुकुमार दुःखसे अतिशय पीड़ित हुआ। उसे नगरमें वनमें कहीं भी चैन नहीं रहा। रातदिन चिंतित रहने लगा।१४-१५। एक दिन वह अकेला वनमें गया हुआ था सो वहां उसे एक केलेके बगीचेमें फूलोंकी शय्या दिखलाई दी।१६। जो सम्भोग करनेके कारण किसी दम्पतिके (पुरुष स्त्रीके) द्वारा दली मली गई थी। उसे देखकर वह दुःखी पांडुकुमार सोचने लगा, अवश्य ही यहांपर किसी पुण्यवानने अपनी प्रियाके साथ रमण किया है। मैं बड़ा पुण्यहीन हूँ, जो मुझे मेरी प्यारी नहीं मिली। इस प्रकार एक ठंडी सांस लेकर वह वहीं पर बैठ गया; और उस शय्याको दुःखके साथ बारम्बार देखने लगा। जिससे उसे समीप ही पड़ी हुई एक मुद्रिका (मुंदरी) दिखायी दी। तब उसे उसने उठा कर अपनी उंगलीमें पहनली। और फिर वह उस निर्जन वनमें यहां वहां भ्रमण करने लगा।१७-२०। इतनेमें उस मुद्रिका का स्वामी विद्याधर व्यग्रचित्त हुआ उस शय्याके देखनेके लिये आया। परन्तु जब उसे शय्यापर कुछ भी दिखाई नहीं दिया, तब उसका मुंह मलिन पड़ गया! उसे चिंतित देखकर पांडुने पूछा, आपका मुँह काला क्यों पड़ गया है? तब उसने कहा, मेरी एक मुद्रिका खोगई है।२१-२३।यह सुनकर पांडुकुमारने अपनी अंगुलीमेंसे मुद्रिका निकालकर उसे दिखाई। विद्याधर बोला, यदि आप दे दें, तो यह मेरी ही है।२४। तब पांडुने वह उत्तम मुद्रिका तत्काल ही दे दी। उसके साहसको तथा सच्चेपनको देखकर विद्याधरने भी पूछा हे मित्र! तुम भी कहो कि, इस समय तुम्हारा मुख क्यों मलिन है? तब पांडुकुमारने अपनी सारी दुःख कथा उसे सुनादी।२५ २६। मित्रका दुःख सुनकर विद्याधरने वह मुद्रिका पांडुकुमारको ही दे दी, और कहा, मेरी यह मुद्रिका कामरूपदा है, अर्थात् इसके प्रभावसे इच्छानुसार रूप प्राप्त हो जाता है। सो इसके द्वारा तुम अपना कार्य कर लेना, अर्थात् अपने मनोरथको सफल कर लेना।२७-२८। फिर जब तुम्हारा कार्य सफल हो जावे, तब यह मुद्रिका मेरी मुझको दे देना। पांडुकुमारने वह मुद्रिका ले ली। उसे पाकर वह हर्षसे परिपूर्ण होगया।२९।

उसने उसी समय पारावतका (कबूतरका) रूप बनाया और शीघ्र ही उड़कर वहाँ पहुँचा, जहाँ वह श्रेष्ठ कन्या रहती थी। फिर गवाक्षमेंसे (खिड़कीमेंसे) महलके भीतर जाकर उसने रातको कामदेवका रूप धारण किया और वहां गया, जहां कुन्ती अकेली सो रही थी। उसकी निद्रा भंग करके जब वह मिला, तब कुन्ती अपने सम्मुख एक अपूर्व पुरुषको देखकर एकाएक कांप गई और बोली, तुम कौन हो जो रातको मेरे महलमें आये हो ? ।३०-३२। पांडुकुमार मुस्कराके बोले, प्यारी ! तुम व्यर्थ भय मत करो, मैं तुम्हारा प्यारा पांडुकुमार हूँ ।३३। तब वह उसके रूपको देखकर बोली, मैंने तो सुना है कि, पांडुकुमार कोढ़ी हैं। परन्तु तुम तो वैसे नहीं हो। पांडुने उत्तर दिया, वह बात झूठी है। किसी दुष्टने तुमसे व्यर्थ ही कह दी होगी। हे सुन्दरी ! मेरा ऐसा ही उत्कृष्ट शरीर है। यह सुनकर कुन्ती पांडुके रूपपाशमें उलझ गई। और तब पांडुकुमारने उस कल्याणरूपा कामिनीके साथ जिसका कि नवीन संगमके समय भयसे शरीर कम्पित होता था, संतुष्ट होकर रमण किया ।३४-३६। जिसके रूप और गुणोंसे पांडुकुमार मोहित हो गया। और इसीप्रकारसे वह कामयुक्त कामिनी भी पांडुके गुणोंसे बँध गई ।३७। उन दोनोंका ऐसा सघन स्नेह हो गया कि, पांडुकुमार वहां प्रेमपूरित होकर सात दिन तक रहा ।३८। आठवें दिन जब वह जानेकी इच्छा करने लगा, तब विचक्षणा कुन्ती विनय करके बोली, हे महाभाग आप तो जानेके लिये तैयार हैं और मैं आपसे कुछ कहना चाहती थी, सो लज्जा से व्याकुल होकर कह नहीं सकती हूं ।३९-४०। यह सुनकर पांडुने कहा, हे प्रिये ! जो कहना चाहती हो, सो कहो। अपने स्वामीसे क्या लज्जा ? तब वह अपने मनकी बात कहने लगी, हे नाथ जिसदिन आप यहां मुझपर कृपा करके आये थे, उस दिन मेरा स्त्रीधर्मका चौथा दिन था, अर्थात् रजस्वला होकर मैंने उस दिन चतुर्थस्नान किया था ।४१-४२। सो यदि कहीं मैं गर्भवती होगई तो बतलाइये क्या करूंगी। यह सुनकर पांडुकुमार उसे अपने हाथमेंका एक कड़ा (निशानी) देकर आनन्दके साथ

चले गये ।४३। और इस प्रकार कार्य सिद्ध हो जाने पर उन्होंने वहांसे जाते ही वह अंगूठी जिस विद्याधरसे ली थी, उसी को दे दी ।

इधर कुन्तीको बहुतसी सखियोंके साथ रहते हुए महीने बीतने लगे । जब छः महीने हो गये, और गर्भकी वृद्धि हो गई अर्थात् जब गर्भ दिखाई देने लगा, तब उन सखियोंने उसकी सब चेष्टायें मातासे जाकर कह दीं ।४४-४५। और माताने अपने पतिसे उसका वृत्तान्त कह दिया । तब राजाने लज्जित होकर रानीसे कहा, कि तू उससे जाकर पूछ कि; हे दुष्टा ! तूने यह गर्भ किसका धारण किया है ? रानीने जब लड़कीसे पूछा, तब उसने कहा "माता आप अपना मुख मलिन न करें, यहां स्वयं पांडुकुमार आये थे । और उन्होंने मेरे ही साथ सहवास किया था ।४६-४८। इस बातकी साक्षीस्वरूप एक कड़ा मेरे पास है ।" ऐसा कहकर कुन्तीने तत्काल ही कड़ा निकालकर दिखला दिया ।४८। रानी उस कड़ेको लेकर महाराजके पास चली गई । सो उन्होंने कड़ा देखा, और वृत्तान्त जान लिया, तब चिन्ता छोड़ दी । उन्हें जो दुःख हुआ था, वह नहीं रहा ।४९।

क्रमक्रमसे जब पूरे महीने हो गये, गर्भ पूर्ण हो गया, तब कुन्ती के एक सम्पूर्ण लक्षणोंवाला पुत्र उत्पन्न हुआ ।५०। परन्तु कलंकके भयसे उस राजाने उसे घरमें नहीं रक्खा । एक पेटीमें रखकर यमुनानदी में बहा दिया ।५१। और फिर नानाप्रकारके उत्सव करके अपनी वह पुत्री (कुन्ती) पांडुकुमार को ही ब्याह दी ।५२।

इसके पश्चात् उसके युधिष्ठिरादि तीन विचक्षण पुत्र हुए । और पहले जो पुत्र कन्यावस्थामें जना था, वह कर्ण नामसे प्रगट हुआ । वह पृथ्वीमें बहुत प्रसिद्ध हुआ ।५३। राजा धृतने कुछ समयके पीछे अपने धृतराष्ट्र और पांडुपुत्रको राज्य देकर जिनेन्द्र भगवानकी दीक्षा ले ली । उनके साथ उनके छोटे भाई विदुर भी मुनि हो गये । राजा धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि अतिशय विख्यात सौ

पुत्र पैदा हुए ।५४-५५।

राजा धृतराष्ट्र और पांडुने अपने पुत्रोंको यौवनयुक्त देखकर उनमेंसे दो बड़े पुत्रोंको अर्थात् दुर्योधन और युधिष्टिरको राज्य सौंप दिया । परन्तु दुर्योधनने थोड़े ही दिनमें अपनी बुद्धिकी चतुराई से पांडुके पुत्रोंसे राज्य छीन लिया और आप अकेला ही राज्य करने लगा । इस समय राजा दुर्योधन ही राज्य करता है । उसके एक उदधिकुमारी नामकी पुत्री है । वह रूपवती है, सच्चरित्रा है, गुणवती है, लावण्ययुक्त है, मधुर वचन बोलने वाली है, विद्यावती है और विनयवती है । उसके शरीरमें तथा नेत्रोंमें ऐसी आभा है कि उसका एक मण्डल सरीखा बना रहता है । उनका वृत्तांत तथा चरित्र लोकमें प्रसिद्ध तथा सुन्दर है । वह लीला से ललित है, और कलाओंके समूहसे युक्त है । उसकी प्रशंसा कौन कर सकता है ? बृहस्पतिसे भी नहीं हो सकती है ।५५-६०। वह उदधिकुमारी जब गर्भमें थी, और तुम उत्पन्न नहीं हुए थे तब ही राजा दुर्योधनने उसे तुम्हारे लिये देना कर दी थी परन्तु तुम्हें जब उत्पन्न होते ही वह असुर हरण कर ले गया । ६१-६२। और तुम्हारे जीते रहनेकी किंवदन्ती भी यहां कहीं सुनाई नहीं पड़ी, तब अब उस उदधिकुमारीको उसके पिताने तुम्हारे छोटे भाईको देनेके लिये भेजी है । उसीके साथमें यह चतुरंग सेना आई है ।६३।

नारदके इसप्रकारके वचनोंसे संतुष्ट होकर प्रद्युम्नकुमारने अपनी प्राणवल्लभाको देखनेकी इच्छा की। उसको देखनेकी उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई । वे नारदजीसे बोले हे तात ! मुझे इस बड़ी भारी सेना-को देखनेकी उत्कंठा है, सो आप आज्ञा देवें, तो मैं जाकर देख आऊँ । यह सुनकर नारदजी मुसकु-राके बोले; वत्स ! तुम बहुत चपल हो, वहां जाकर चपलता करोगे, इसलिये मैं नहीं जाने देता । वहां जानेसे कुछ न कुछ विघ्न खड़ा हो जावेगा ।६४-६७। प्रद्युम्नने कहा, मैं चपलता नहीं करूंगा, देख कर जल्दही आपके पास लौट आऊंगा ।६८। नारदजीने कहा "तो जाओ और कौतुकसे सेनाको देख

कर जल्द लौट आओ।" यह सुनते ही प्रद्युम्नकुमार अपने विमानको आकाशमें ही खड़ा करके पृथ्वी पर उतर पड़े।६९। और एक भीलका वेष धारण करके जल्द ही वहां पहुँचे जहां सारी सेना भोजनके लिये बैठी थी।७०। उस भीलका मुँह सूखासा था, दाँत बड़े २ थे, चौड़े ललाटसे और कपोलोंसे भय मालूम पड़ता था, सिरपरका जूट वल्लरीसे (बेलसे) लिपटा हुआ था, चपल तथा अतिशय लाल नेत्रोंसे वह कुरूप दिखता था, हाथीकी सूंडके समान उसकी प्रौढ़ और भीम भुजायें थीं, स्थूल जंघायें थीं, बड़ा भारी शरीर था, भौंहें और अलकें टेढ़ी थी, पीठ कटि और ग्रीवा भग्न थीं छाती विशाल थी और पेट बड़ा भारी था। इस प्रकारसे वह भील वीभत्स और रौद्ररूपका धारण करने वाला था ७१-७४। उसे देखकर दुर्योधनकी सेनाके सेवक, व यौवनपूर्ण राजकुमार हँसने लगे।७५। और बोले, अरे पापी! तू साम्हनेका मार्ग छोड़ दे, हम यहांसे आगे जाना चाहते हैं। हे दुमु ख! तू मार्गमें किसलिये खड़ा है। यह सुनकर भील वह कुपित होकर बोला, मैं यहां पर श्रीकृष्ण महाराजकी आज्ञासे कर लेनेके लिये रहता हूँ, सो तुम सब मुझे कर देकर यहांसे जाने पावोगे।७६-७८। श्रीकृष्णका नाम सुनकर उनकी प्रीतिसे सब सुभट इसप्रकार कोमल वचन बोले कि, हे भाई! तुम क्या लेना चाहते हो सो कहो।७९। हाथी, घोड़े, रथ, धन धान्य आदि सब प्रकारकी सामग्री हमारे पास है। उनमेंसे तुम्हें जो रुचै, वह ले लो।८०। तुम्हें इच्छित वस्तु देकर हम आगे चले जावेंगे, अब इसमें कुछ संशय नहीं है। जब तुम श्रीकृष्ण महाराजके अनुचर हो, तब हम तुम्हें किसलिये दुःख देंगे? हम आनन्द और कुशलताके साथ यहांसे जल्द ही जावेंगे,। यह सुनकर भील बोला, हे कौरवों! मुझे मालूम नहीं है कि, तुम्हारी सेनामें कौनसी वस्तु सर्वोत्तम है। इसलिये तुम्हारे यहां जो वस्तु अतिशय श्रेष्ठ हो, और जो तुम देना कहते हो, मुझे वही दे दो, और जाओ।८१-८३। क्योंकि मेरे सन्तोष करनेहीसे इस वनमें तुम्हारी कुशलता है। मैं सच कहता हूँ कि, मेरे योद्धा बुरे रास्तेमें

कुशल करने वाले हैं। अर्थात् भूले हुओंको रास्ता बताने और रक्षा करने वाले हैं। भीलके वचन सुनकर वे कौरव वीर मुसकुराके बोले, हे मूर्ख ! यदि तू सबसे उत्तम और सुखदाई वस्तु चाहता है, तो हमारे राजाकी गुणवती कन्याको ले ले क्योंकि इस सेनामें उत्तम और सुखदाई वस्तु वही है ।८४-८६। यह सुनकर भील हँसा और बोला,—यदि वह पुत्री ही तुम्हारी सेनामें अच्छी है, तो उसीको दे दो ।८७। हे शूरवीरों ! यदि तुम उसे देकर इस बनसे जाओगे, तो तुम्हें इस बनमें कुछ भी भय नहीं रहेगा। इसके सिवाय मुझे सन्तुष्ट करनेसे निश्चय समझो कि श्रीकृष्ण महाराज भी सन्तुष्ट हो जावेंगे। क्योंकि उन्होंने मुझे पूर्वमें ही वचन दे दिया है कि, सारे संसारकी वस्तुओंमें जो सारभूत वस्तु हो, वह तू ले लिया कर। उनकी इस आज्ञासे ही मैं इस वनमें रहता हूँ ।८८-९०। भीलके वेष में जब प्रद्युम्नने उपरोक्त बातें कहीं, तब वे सब सुभट क्रोधित होकर बोले,—अरे मूर्ख श्रीकृष्णजीने तुझसे ऐसा भी कह दिया तो क्या हुआ ? जो तू उदधिकुमारीको जबरदस्ती ले लेना चाहता है ।९१-९२। अरे पापी ! तू ऐसे पापरूप और निर्लज्जताके वचन क्यों कहता है ? तेरे सरीखे मूर्खको वह वैसे मिलना तो दूर रहा, विचारसे भी नहीं मिल सकती है ।९३। तेरे नेत्र लाल लाल और विकराल हैं, बाल कपिल रंगके हैं, दांत सफेद हैं, और शरीर काला है। इसप्रकारके कुरूप भीलके देने योग्य वह कन्या नहीं है। वह तो पुण्यवान पुरुषके योग्य है, तेरे जैसे पापीके योग्य नहीं है ।९४-९५। यदि तू उस लोकदुर्लभ बालाको पानेकी इच्छा करता है, तो शीघ्र ही जाकर किसी पर्वत परसे गिरकर मर जा ।९६। क्योंकि तेरी यह जाति व्रताचरणों की धारण करने वाली नहीं है, निन्दनीय है। अतएव इस जन्ममें तुझे नहीं मिलसकती है। हां दूसरे जन्ममें तुझे इसकेसमान कोई दूसरीकन्या प्राप्त हो जावेगी ।९७। इसीबीचमें कईएक योद्धा कुपितहोकर बोले, इस पागलके साथ बकवाद क्यों बढ़ा रहे हो ? चलो, इसे दूर करके ही चलें। यदि श्रीकृष्ण अपनेसे नाराज हो जावेंगे तो क्या कर लेंगे ।९८-९९। अपने

जैसे राजपुत्र ऐसे एक भीलको कर देदेवें, यह ठीक नहीं है। किसी योग्य पुरुषको ही कर देना चाहिये। यदि कोई राजपुत्र होता तो दे देते।२००। ऐसा कहकर वे सबके सब राजपुत्र उत्सुक होकर उस भीलको अपने सब तरफ फैले हुए धनुषसे रोकने लगे।१। तब भील भेषधारी बलवान प्रद्युम्नने भी सब सेनाको जल्दी ही अपने उसी धनुषसे वेष्टित करली। इस प्रकारसे वह भील इस सेनाको वेढ़ कर खूब जोरसे खिलखिलाकर हँसा, तथा कहने लगा, हे सुकुमार कुमारो तुम सब कुरु राजाकी पुत्री मुझे क्यों नहीं देते हो? मैं श्रीकृष्णका बड़ा लड़का हूँ, और इस वनमें निवास करनेवाले भीलोंका राजा हूँ। मैं सुन्दररूपका धारण करने वाला नहीं हूँ, क्या इसीलिये तुम सब मूर्ख मुझे उदधिकुमारी नहीं देते हो?।२-५। यदि तुम उस जगत्प्रसिद्ध कुमारीको मुझे दे दोगे, तो निश्चय समझो कि, श्री कृष्णनारायणको भी बहुत सन्तोष होगा।६। क्योंकि इस संसार में न तो उसके समान कोई कन्या है, और न मेरे समान मनुष्योंमें कोई उत्तम वर है।७। परन्तु यह सब कुछ भी न करके तुम सब कौरव यहां से जबर्दस्ती जाना चाहते हो, तो मुझसे जल्द कहदो, जो मैं तुम्हारे लिये कुछ यत्न करूँ।८। यह सुनकर वे बोले, तुझे जो यत्न करना हो, सो कर। हम अभी तुझ पापीको मारकर यहां से चले जावेंगे।९। उनके इसप्रकार कहने पर भीलका वेष धारण करने वाले प्रद्युम्नकुमारने अपनी विद्याओंका स्मरण किया और उन्हें अपने समान बलवान भील तैयार करने की आज्ञा दी*।१०। फिर क्या था वहांपर तत्काल ही भीलोंकी एक बड़ी भारी सेना प्रगट होगई, जिससे चारों दिशायें व्याप्त होगई।

कृष्णमूर्ति भीलोंकी सेना नानाप्रकारके आयुध और तीक्ष्ण बाण लिये हुये थी। लकड़ी, काठ, पत्थर, आदि परिग्रहकी भी उसके पास कमी नहीं थी।११-१३। उस समय कौरव योद्धाओंने देखा कि पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष कंदरा आदि सारा विश्व जहां तहां भीलोंमय ही हो रहा है।१४। करोड़ों भील

* इस श्लोकका अर्थ नहीं लगा-प्रकरण देखकर सम्बन्ध जोड़ दिया है।

इसप्रकार कहते हुए कौरवों पर टूट पड़े कि चलो ! पकड़ो ! बांधलो ! ये दुरात्मा भागकर कहां जावेंगे? ।१५। वे भयंकर भील लाल २ पत्तोंकी टोपियां लगाये हुए थे, नानाप्रकारके वृक्षोंकी फलोंकी कंठियां गलेमें पहने हुए, उनके सिरके बाल कपिल, रूखे और बिखरे हुए थे, वे मैले कपड़ोंके चिथड़ोंको पहने हुए थे और उनकी आंखें छोटी २ थीं। इस प्रकारके उन अगणित काले भीलोंने आकर सारा प्रदेश घेर लिया ।१६-१७।

जिस समय उन्होंने सेनाके सम्मुख होकर धावा किया, उस समय क्षणभरके लिये सारे कौरव व्याकुल हो गये ।१८। आखिर वे भी तलवार, बाण, भाला, गदा, शक्ति आदि अनेक प्रकारके शस्त्रोंको लेकर साम्हना करनेको तैयार हो गये ।१९। हाथी घोड़ों और रथोंपर चढ़े हुये शूरवीर तथा नाना-प्रकारके वाहनों पर चढ़े हुए राजा शीघ्र ही भीलोंके सन्मुख चल पड़े। राजा लोग अपने सुभटोंसे बोले इन भीलोंको शीघ्र पकड़लो, अपना समय जा रहा है ।२०-२१। राजाओं और भीलोंका परस्पर युद्ध होने लगा। भीलोंने पत्थरों और बाणोंकी वर्षासे राजाओं को इस तरह मारा कि उनके घोड़े अपने सवारोंको पटककर सेनामें भ्रमण करते हुए दूसरे लोगोंको कुचलने लगे ।२२-२३। हाथी मद-रहित होकर चिंघाड़ मारते हुए भयके मारे रणमें भागने लगे ।२४। बड़े २ रथ जर्जर होकर टूट गये और धराशायी हो गये। इसीप्रकार से जो रसदकी गाड़ियां थीं, वे भी टूट गईं। उनमें रखे हुए घीके कुप्पे गिर पड़े। गेहूँका आटा, मूंगकी दाल तथा चावल जमीनमें बिखर गये ।२५-२६। इसके सिवाय जितने शूरवीर थे, सबके सब वस्त्र तथा आभूषणोंसे रहित होकर गिर पड़े। यह देखकर भील लोग हँसने लगे। और शूरवीर अपनी दुर्दशा पर सोच करने लगे ।२७। उसी समय रस्सियां छूट जाने से बैल इधर उधर दौड़ने लगे, जिन्हें कौरव लोग भी पकड़कर नहीं थँभा सके ।२८। हाथियोंके बच्चे, घोड़े, गधे, बैल, ऊंट भीलोंकी मारसे करुणा उत्पन्न करनेवाली चिल्लाहट करने लगे। वे अपने

लोगोंका भार भी अपने ऊपर नहीं लादने देते थे । इसीसे कहते हैं कि जब दुःख आता है, तब दुःख ही दुःख आता है, और जब सुख आता है तब सुख ही सुख । अर्थात् दुखमें दुख और सुखमें सुख आता है ।२६-३०। अन्तमें भीलोंके समूहने कौरवोंकी सेनाको जीत ली । शूरवीरोंने रणभूमि को छोड़ दी ।३१।

उस समय नारदमुनिके देखते हुए किरात वेषधारी प्रद्युम्न उदधिकुमारीको अपनी दोनों भुजाओंसे उठाकर आकाशमें उड़ गया ।३२। भीलोंके भयसे कांपती हुई कुमारीको प्रद्युम्नकुमार अपने उत्कृष्ट विमानमें ले गया और नारदजीके समीप बिठाकर आप कौरवोंकी सेनाकी ओर मुँह करके बैठ गया । उस समय वह भीलके ही वेषमें था । उसके विकराल रूपको देखकर उदधिकुमारी थर थर कांपती हुई रोती हुई विलाप करती हुई और अपनी बारम्बार निन्दा करती हुई नादरजीसे बोली हे पिता ! आप मेरे पापकर्मके उदयको तो देखो । मेरे बुद्धिमान पिताने पहले मुझे रुक्मिणीके पुत्रको देनी कही थी सो मेरे पापके वशसे उन्हें तो कोई बैरी हरणकर लेगया । पीछे उन्होंने सत्यभामाके पुत्र भानुकुमारको देना विचारा सो कर्मके प्रभावसे मैं स्वयं ही इन भीलोंके द्वारा हरी गई ।३३-३८। इतना कहकर उदधि कुमारी अतिशय करुणा उत्पन्न करनेवाले वचन कहती हुई रोने लगी । हे पिता तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करते हो ? मुझे यह वनचर लिये जाता है । और हे माता ! मेरे भाग्यके वशसे तू मेरी रक्षा क्यों नहीं करती ? दुष्ट भीलके भयसे मैं व्याकुल हो रही हूँ ।३९-४०। और हे कुटुम्बीजनो ! तुम सब मुझ दुःखिनीकी ओर क्यों नहीं देखते हो, जल्द आकर मेरी इस भीलसे रक्षा करो ।४१।

विकराल भीलके दर्शनसे कांपती हुई, विलाप करती हुई, लम्बा २ सांस लेती हुई अपने अपने शिथिल वस्त्रोंको दुःखसे सम्हालती हुई, और मुख पर हाथ रखकर बारम्बार रोती हुई उदधिकुमारी बड़े अचरजसे बोली, "हे महाराज ! मेरी बात सुनकर कहिये कि, यह भील तो दुरात्मा है, फिर इसे

आकाशमें चलने की शक्ति कहांसे आ गई ? यह विकराल आकारका धारण करनेवाला कोई देव है, अथवा कोई दैत्य, राक्षस वा विद्याधरका पुत्र है। और यह भी तो बताइये कि, आप जैसे मुनिके साथ इस पापीका संग कैसे हो गया ? कहीं मेरे समान आपको भी तो इसने कैद नहीं करा है ? ।४२-४६। उसके इसप्रकार कहने पर जब नारदजीने देखा कि, अब यह मरनेका निश्चय कर चुकी है, तब वे बोले, बेटी ! तू हर्षके स्थानमें शोक क्यों करती है ? उदधिकुमारीने पूछा, हे तात ! कैसा हर्ष ? यहाँ काहे का हर्ष है ? नारदने उत्तर दिया, अपने माता पिताका पुण्यस्वरूप यह वही रुक्मिणीका पुत्र है, जो तेरा पति होने वाला था। विद्याधरोंके देशसे चलकर यह तेरे लिये ही यहां आया है। इसलिये हे बेटी अब तू शोक को छोड़दे, और पुण्यके फलसे प्राप्त हुए हर्षको धारण कर ।४७-५०। सुन्दरीको इसप्रकार आश्वासन देकर अर्थात् समझाकर नारदजी प्रद्युम्नकुमारसे बोले, क्रीड़ा हमेशा अच्छी नहीं लगती है, इसी प्रकारसे हँसीकरना भी सदा प्रशंसनीय नहीं होता है ।५१। इसलिये अब कौतुक और हँसीको छोड़कर अपने मनोहर रूपको दिखलाकर हे मनोभव ! इसके बहुत समयसे खेद-खिन्न हुए नेत्रोंको शांत कर—सफल कर ।५२।

नारदजीके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमारने सम्पूर्ण लोगोंके नेत्रोंको आनन्द करनेवाला अपना असली रूप धारण कर लिया ।५३। जो नानाप्रकारके रत्नोंके बने हुए मुकुटसे, और पुष्पमालासे, सुगन्धित वस्तुओंके लेपसे तथा देदीप्यमान सोनेके कुण्डलोंसे शोभित था ।५४। हार बाजूबन्द, कड़े आदि भूषणोंसे मंडित था और कमलके समान नेत्रोंसे मनोहर था। उनके उस रूपकी आभा ददीप्यमान सुवर्ण पर्वतके समान थी, वक्षस्थल कठोर था बड़ी २ भुजायें हाथीके समान हाथीकी सूंडके समान गोल और पुष्ट थी। भौंरोंकी राशिके समान काले और चिकने केश थे इसप्रकारसे कामकुमार सर्व लक्षणोंसे लक्षित और सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित, स्थिर, शान्तमुख, धीर भयरहित तथा संसार

के सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये दृष्टान्तस्वरूप रूपवाला होगया ।५५-५८। उसके ऐसे मनोहारी रूपको देखकर वह मृगनयनी प्रसन्नमुखी अतिशय प्रमुदित और संतुष्ट हुई । इसीप्रकार से उसके दर्शनमात्रमें कुमारका चित्त भी परम प्रीतिके वश होकर उसके रूपमें उलझ गया, बद्ध हो गया ५९-६०। परस्परके प्रेमसे उन दोनोंके हृदयमें जो अनुरागजन्य अपूर्वभाव उत्पन्न हुआ, उसका हम वर्णन नहीं कर सकते हैं ।६१। एक दूसरेके रूपको देखकर वे दोनों अनुरागयुक्त होगये । प्रेमसे उन दोनोंके मुख उल्लसित हो गये ।६२। परन्तु नारदजीकी लज्जाके कारण वे कुछेक वक्रदृष्टि किये रहे, जिसमें हृदयका भाव प्रगट न होने पावै । विमानमें बैठा हुआ वह जोड़ा नारदमुनिके साथ वहांसे प्रसन्नताके साथ चलने लगा ।६३।

अपनी भार्या और मुनिके सहित थोड़ी दूर चलकर प्रद्युम्नकुमारने नानाप्रकारकी उड़ती हुई ध्वजाओंसे शोभित एक रमणीय नगरी देखी ।६४। इसलिये नारदजीसे पूछा, हे नाथ ! यह कौन नगरी है तब तपरूपी धनको धारण करनेवाले नारदजीने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया कि;—हे वत्स पृथिवीमें अतिशय प्रसिद्ध द्वारिकानामकी नगरी यही है । मानों उत्तम पुरुषोंके रहनेके लिये इसे विधाताने स्वयं बनाई है ।६५-६६। अथवा इन्द्रने लोगोंके बचे हुए पुण्यसे यह स्वर्गका एक कान्तिमान खण्ड ही पृथ्वीमें लाकर रख दिया है ।६७। जिसमें श्रीकृष्णनारायण रहते हैं, जिनकी सब लोग प्रशंसा करते हैं, जिसके चारों ओर बड़ा भारी कोट है, जो गोपुरोंके समूहसे अर्थात् कोटके दरवाजोंसे शोभित है, जो एक विस्तृत खाईसे घिरी हुई है, जिसका कि जल स्नान करती हुई स्त्रियोंके कुचोंसे धुली केशरसे रंजित है, जहांके राजमार्ग मदोन्मत्त हाथियोंके कपोलोंसे बहे हुए मदजलसे कीचड़युक्त तथा दुर्गम हो रहे हैं, चूनेसे पुते हुए महलोंकी छतोंपर बैठी हुई स्त्रियोंके मुखचन्द्रसे जिस नगरीके लोगोंको दोनों पक्षोंमें शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें आश्चर्य हुआ करता है । अर्थात् कृष्णपक्षमें भी वे स्त्रियोंके मुखचन्द्रकी चन्द्रिकासे प्रकाशमान श्वेत महलोंको देखकर विस्मित हो जाते हैं कि, ये तो कृष्णपक्षसा

नहीं मालूम पड़ता और शुक्लपक्ष में सोचते हैं कि, आकाशके चन्द्रमाके सिवाय ये और चन्द्रमा उग रहे हैं, सो क्या हैं, जहांकी चौड़ी २ गलियोंका भी मार्ग लोगोंके आने जाने से निरन्तर दुःखदायी बना रहता है, जो मुक्ताफलोंमूंगों और शंखादि नानाप्रकारके रत्नोंसे भरपूर है, जहां जगह २ अच्छे अच्छे सुन्दर तथा रमणीय वृक्ष फूलोंसे लदे हुए और भौंरोंकी गुंजारसे वाचाल सरीखे होरहे हैं, जहांके तालाबों में कमलिनी खिल रही हैं, जिनपर भौंरे झूम रहे हैं, जहांकी वापिकायें नानाप्रकारकी मणिमय भीतोंसे बनी हुई हैं, जहांकी शोभाको देखकर स्वर्गके रहने वाले बड़े २ देव भी पृथ्वी में रहने के लिये स्वर्ग छोड़ देना चाहते हैं—अर्थात् जो नगरी स्वर्गपुरीसे भी रमणीय है और जिसे जिनेन्द्र भगवानकी परमभक्ति से तथा श्रीकृष्णनारायणकी शक्तिसे इन्द्रने बनवाई है, और कुबेर ने जिसे स्वयं बनाई है, उस द्वारिका पुरीका वर्णन मैं क्या कर सकता हूँ इतना ही कर सकता हूँ कि, तीनों लोकमें ऐसी कोई दूसरी नगरी नहीं है ।६८-७८।

ऐसा कहकर नारदजीने प्रद्युम्नकुमारको बड़े हर्षके साथ नगरीके घरोंकी पंक्तियां दिखलाई; जब कि उनका विमान द्वारिकाके ऊपर पहुँच गया था ।७९। नारदजीके वाक्य सुनकर नानाप्रकारके कौतुक करता हुआ प्रद्युम्नकुमार बोला;—हे नाथ आपकी आज्ञा लेकर मुझे द्वारिका नगरी देखनेकी इच्छा है, सो यदि आप कह देवें, तो मैं जाकर देख आऊँ ।८०-८१। नारदजी बोले, हे वत्स ! यादवों से भरी हुई नगरीमें तुम्हारा जाना योग्य नहीं है । क्योंकि तुम्हारी चपलता देखकर यादवगण भी उपद्रव करेंगे, यह बात निश्चित है । इसी समय कामकुमारको जानेके लिये उत्सुक देखकर उदधिकुमारीने नारदजीसे समस्याके द्वारा (इशारेसे) कहा हे नाथ ! आपको इन्हें नगरी देखनेके लिये नहीं जाने देना चाहिये । ये अतिशय चपल हैं इसलिये यादवोंके द्वारा इन्हें कुछ न कुछ पीड़ा पहुँचेगी,—इन्हें दुख होगा ।८२-८५। उसकी समस्या का अभिप्राय समझके नारदजी बोले, हे वत्स तुझे मैं अपने

बिना अकेला द्वारिकामें नहीं जाने दूंगा। मुझे एक बार चलकर तुझे तेरी माताको सौंप देने दे फिर जो कार्य तुझे अच्छे लगे सो करना ।८६-८७। उन दोनोंका अर्थात् उदधिकुमारीका और नारद जी का अभिप्राय समझके प्रद्युम्नने कहा, हे तात इस समय मैं कुछ भी चपलता नहीं करूंगा। यदि करूंगा तो सारे स्वजनजनों कुटुम्बी लोगोंसे मिलकर फिर मैं सारी द्वारिकापुरीको कैसे देख सकूंगा ? इसलिये क्षणभरमें जाकर द्वारिकापुरीको देखकर मैं अभी आपके समीप आ जाऊंगा, यह आप निश्चित समझलें ।८८-९०। ऐसा कहकर प्रद्युम्नने अपने विमानको आकाशमें स्थम्भित कर दिया। उसमें नारद और उदधिकुमारी बैठी रही।

ज्यों ही प्रद्युम्नकुमार उतरा, उसने द्वारिकाकी पृथ्वीपर पैर रक्खा त्योंही उसे भानुके (सूर्यके) समान भानुकुमारके दर्शन हुए ।९१-९२। छत्र चवरोंसे भूषित, नानाप्रकारकी विभूतिसे संयुक्त, और राजपुत्रोंसे सेवित, उस प्रतापशाली वीरको देखकर कामदेवको आश्चर्य हुआ। उसने तत्कालही अपनी विद्यासे पूछा, कि यह कौन है; मुझे बतला। तब विद्याने विनयपूर्वक कहा कि, हे महाभाग सुनिये यह घोड़े पर चढ़ा हुआ और अनेक राजाओंसे वेष्टित हुआ भानुकुमार तुम्हारी माता रुक्मिणी की सपत्नीका (सौतका) पुत्र है ।९३-९६। यह उदयैकनिवास अर्थात् बड़ा भारी प्रतापशाली है, तथा श्रेष्ठ पुरुषों के सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त है। हे महामते इसके विषयमें आपको जो रुचै, सो करो ।९७। विद्याके वचन सुनकर कामदेवने उसी समय प्रज्ञप्ती नामकी महाविद्याका स्मरण किया। और उसके प्रभावसे उसने तत्काल ही एक बड़े उदर और शरीरवाला, चंचल वेगगामी, सम्पूर्ण अवयवोंसे सुन्दर तथा उत्तम घोड़ेके सब लक्षणोंसे युक्त घोड़ा बना लिया और आप स्वयं बहुत ही बूढ़ा, बहुत ही मोटा, हाथ पैर मस्तक आदि सारे अंगोंसे कांपता हुआ, बड़ी २ भौंहोंसे जिसकी आंख ढँक गयी थीं, ऐसा घोड़ा बेचनेवाला बन गया ।९८-३०१। इस प्रकारका अपना रूप बनाकर वह सोनेकी जीनसे

कसे हुए उच्चैःश्रवाके समान घोड़ेको हाथसे पकड़े हुए वहां गया, जहां भानुकुमार अपने घोड़ोंको फिरा रहा था। भानुकुमारने इस घोड़े वालेको देखकर प्रसन्नतासे कहा, हे बुड्ढे यह घोड़ा किसका है, और तू इसे क्यों लिये है सब सच्चा सच्चा कह ।२-५। घोड़े वाला बोला, हे श्रीकृष्णपुत्र यह बहुत ही अच्छा घोड़ा है, यह मेरा है, यही देखकर इसे मैं बेचता हूँ। परंतु दूसरे लोग जो इसे चाहते हैं, नहीं ले लेवें, केवल तुम्हारे ही लिये मैं परदेशसे लेकर आया हूँ ।६-७। तुम सत्यभामाके पुत्र हो, अतएव यह घोड़ा तुम्हारे ही योग्य है। दूसरे लोगोंको ऐसा घोड़ा दुर्लभ है। अतएव यदि आवश्यकता हो तो स्वीकार करो। अर्थात् इसे ले लो ।८। यह सुनकर भानुकुमार ने कहा कि यदि तू घोड़ेको बेचना चाहता है तो मुझसे मूल्य कह दे क्या है ।९। घोड़े वाला बोला, मैं सत्य कहूँ, या असत्य, भानुकुमारने इस प्रश्नसे हँसकर कहा, जो तुम सरीखे उत्तम वृद्ध और सभ्य पुरुष होते हैं, उनके मुंहसे कभी असत्य वचन नहीं निकलते हैं ।१०-११। घोड़े वालेने यह सुनकर कहा कि, मैं घोड़ेका मूल्य एक करोड़ मुहर लूंगा। यह सुनकर भानुकुमारने कहा, क्या तुम मुझसे हँसी करते हो ? बुड्ढा बोला, हे वत्स ! तुम तो श्रीकृष्णनारायणके पुत्र हो तुम्हारे साथ मैं कैसे हँसी करूंगा ! और हास्य है, सो नीच पुरुषोंमें ही आदरकी वस्तु है। अर्थात् हँसी करना नीचोंका काम है ।१२ १३। और मैं हँसी क्यों करूंगा ? मेरा घोड़ा बड़ा शक्तिशाली है। आप इसकी अच्छी तरहसे परीक्षा कर लीजिये। क्योंकि जो वस्तु ली जाती है, लोग उसे सब जगह परीक्षा करते हैं ।१४। भानुकुमार बोला, यह बात तुम सच कहते हो। मैं ऐसा ही करूंगा अर्थात् परीक्षा करके लूंगा ।१५।

ऐसा कहके वह श्रीकृष्णका पुत्र मूढ़मति भानुकुमार एकाएक उठा, और चंचल घोड़ेपर सवार होकर उसे शीघ्रतासे फिराने लगा। सो वह लक्षणशाली घोड़ा भी अपनी लीलायुक्त उत्तम चालसे भ्रमण करने लगा। सीधे पैरोंसे और वक्र पैरोंसे चलकर उसने क्षणमात्रमें भानुकुमारका चित्त

रंजायमान कर दिया ।१६-१८। इसके थोड़ी ही देर पीछे उसने अपनी मनोहर गतिको वेगसंयुक्त बनाई अर्थात् जल्दी चलना शुरू कर दिया। इतनी जल्दी कि, भानुकुमारके सारे वस्त्र और आभरण पृथ्वी पर गिर पड़े और रोकने पर भी अर्थात् लगाम डांटने पर भी वह नहीं ठहरा। आखिर उसने अपने विलक्षण वेगसे उस राजकुमारको पृथ्वीपर पटक ही दिया ।१९-२०। और आप बड़ी विनयके साथ बुड्ढेके समीप जाकर खड़ा हो गया। उस समय उसमें जरा भी चंचलता नहीं मालूम पड़ती थी।२१। अनेक राजपुत्रोंसे सेवित राजकुमारको घोड़ा पटक आया, यह देखकर बुड्ढा खूब खिलखिलाकर हँसा। और ताली बजाकर बोला, हे कुमार ! मेरे मनोहर वचन सुनो ।२२ २३। पृथ्वीमंडलमें तुम्हारी घोड़े की शिक्षाके सम्बन्धमें जैसी विपुल कीर्ति फैल रही है, इस समय वैसी किसीकी भी नहीं है। अर्थात् घोड़ेकी सवारीमें जैसे आप प्रवीण हैं वैसा और कोई नहीं है। आपकी कीर्ति सुनकर मैं घोड़ा लेकर आपके पास आया था २४-२५। परन्तु अब तुम्हें देखकर मैंने जान लिया कि, घोड़े का चलाना तथा घोड़े पर सवार होना तुम जरा भी नहीं जानते हो। हे कृष्णपुत्र ! तुम अश्वसंचालनकी शिक्षामें बिलकुल मूर्ख हो। ऐसी निपुणतासे मैं सच कहता हूँ कि, तुम राज्यका उपभोग नहीं कर सकोगे ।२६-२७। किसी अश्वशिक्षाके जाननेवालेको रखकर तुम्हें उसके पास घोड़े चलानेकी सम्पूर्ण कलायें सीखना चाहिये ।२८। पहले मैंने लोगोंके मुँहसे सुना था कि, सत्यभामाका पुत्र घोड़े की शिक्षाको नहीं जानता है, सो अब निश्चय हो गया ।२९। राजपुत्रकी परीक्षा करते समय पहले उसकी अश्वकला ही देखी जाती है। फिर कहो, जो इस कलाको नहीं जानता है, उसकी निर्मल कीर्ति कैसे फैल सकती है ? ।३०। यह सुनकर वहां जितने लोग थे, वे सब मुँहको ढांक ढांक कर हँसने लगे। बुड्ढे ने भी ताली बजाकर उच्चहास्य किया। यह देख भानुकुमार अतिशय क्रोधित होकर बोला;—अरे मूर्ख बुड्ढे ! तू व्यर्थ क्यों हँसता है ? तू सर्व कर्मरहित है, अर्थात् तुझसे तो कुछ भी नहीं हो सकता है। तेरा

शरीर जरासे जर्जर और शिथिल हो रहा है ।३१-३३। यदि तू स्वयं घोड़े को चला सकता, तो दूसरोंपर हँसता । अन्यथा जब तू स्वयं असमर्थ है, तब क्यों हँसता है ? संसारमें दूसरोंको दोष लगानेवाले अनेक हैं, परन्तु जो स्वयं दोषको नष्ट करनेमें समर्थ हैं, ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं ।३४-३५। यह सुनकर बुड्ढा बोला, हे सत्यभामाके पुत्र ! इस समय मुझमें सचमुच घोड़ा चलानेकी सामर्थ्य नहीं है । यदि इस वृद्धावस्थामें भी मुझमें घोड़ा चलानेकी शक्ति होती, तो यह बहुमूल्य घोड़ा तुम्हें क्यों देना चाहता ।३६-३७। हां यदि तुम्हारे ये सब राजपुत्र दैवयोगसे मुझे अपनी भुजाओंसे उठाकर घोड़ेपर बैठा सकें, तो अवश्य ही मैं अपना सारा कौशल्य तुम्हारे आगे दिखला सकता हूँ और इस उत्तम घोड़ेको शीघ्रतासे चला सकता हूँ ।३८-३९। इतना ही नहीं अपनी अश्वकलासे मैं तुम्हें बल्कि तुम्हारे पिता श्रीकृष्णजीको भी पराजित कर सकता हूँ । इस विषयमें और अधिक कहनेसे क्या लाभ है ।४०। उसके इस प्रकार घमण्डसे भरे हुए वचन सुनकर भानुकुमार प्रसन्न होकर अपने सुभटोंसे इसप्रकार रमणीय वचन बोला कि हे शूरवीरो ! इस वृद्धको अपनी भुजाओंसे पकड़कर घोड़ेपर बैठा दो । मैं इसके घोड़े चलानेका कौतुक देखूंगा । आज्ञा पाते ही वे सब सुभट बुड्ढेके पास गये और उसे पृथ्वीपरसे उठाने लगे । ज्योंही उन्होंने उठाकर उसे घोड़ेपर रखना चाहा त्योंही मायासे अपना शरीर शिथिल (वजनदार) कर दिया । जिससे वह भारी शरीर वाला बुड्ढा सब शूरवीरोंका मर्दन करके और उनकी कुहनियोंको दांतोंको और मस्तकोंको चोट पहुँचाकरके जमीनपर गिर पड़ा ।४१-४५। उसकी इस लीलासे कितने ही सुभटोंकी चेष्टा बिगड़ गई, कितने ही मूर्च्छित हो गये, कितने ही कांपते हुए जमीनमें लोटने लगे, और कितने ही हाथोंपर मस्तक रख कर बैठ गये ।४६-४७। सुभटोंकी ऐसी दुर्दशा करके वह घोड़ेवाला स्वयं लम्बी २ सांसें लेने लगा और झूठमूठ ढोंग बनाकर रोने लगा । हाय ! मुझे इन विनयहीन, दुष्ट और मूर्खोंने पटक दिया । हाय ! मेरी तो कमर टूट गई ।

इसमें बड़ी ही व्यथा होती है। ४८-४९। और हे मूर्ख भानुकुमार ! तुम ऐसे दुष्टचित्तोंको धन और वस्त्रादिक क्यों देते हो ? ये इसके योग्य नहीं हैं ।५०। इसप्रकार विलाप करता हुआ वह बुड्ढा भानुकुमारसे फिर बोला, मैं अपने घोड़े चलानेकी चतुराई तुम्हें कैसे दिखलाऊं ? मैं फिर भी चाहता हूँ कि यदि तुम्हारे ये बेचारे सुभट मुझे दैवयोगसे घोड़ेपर सवार करा सकें, तो मैं अपना कौशल्य तुम्हारे आगे करके दिखाऊँ। ५१-५३। यह सुनकर भानुकुमारने अपने सुभटोंसे कहा, मेरे सामने जो शूरवीर हैं, उन सबको एकत्र होकर इस घमण्डी बुड्ढेको घोड़ेपर बिठा देना चाहिये। जिससे मैं इसकी अश्वकुशलता देख लूं ।५४-५५। भानुकुमारके वचन सुनकर जितने बलवान सुभट थे वे सबके सब वृद्धके पास फिर गये ।५६। और उसे उठाकर घोड़े पर रखने लगे। सो ऊपर जाकर उसी प्रकारसे वह फिर भी उन योद्धाओंके ऊपर गिर पड़ा। उसके बड़े भारी शरीरके पड़नेसे वे बेचारे फिर पिचल गए। तब आप पहलेकी तरह फिर जोर जोरसे चिल्लाकर कहने लगा, हे भानुकुमार तेरे ये शूरवीर झूठे हैं। इन नीचोंने मुझे घोड़ेपर आरोहण नहीं कराया। अब यदि तू स्वयं अपने सुभटोंके साथ मुझे घोड़ेपर चढ़ादे तो कौतुक दिखलाऊँ ।५७-६०।

इस वचनसे संतुष्ट होकर नारायणका पुत्र अपने राजपुत्रोंके साथ स्वयं उठा, और उस बुड्ढे को उठाने लगा सो उस समय तो वह बिल्कुल हलका होगया। परन्तु ज्योंही वे सब उसे घोड़े की जीन के पास ले गये, त्योंही खूब भारी होगया। इसलिये उन सबको नीचे गिराकर आप ऊपरसे पड़ गया। और उन सबको विशेषकर भानुकुमारको कुचल करके नानाप्रकारका प्रलाप करता हुआ उठ बैठा, और पड़े हुए भानुकुमारकी छातीपर पैर रखके तत्काल ही घोड़े पर चढ़कर उसे चलाने लगा ।६१-६५। हर्षसे पूरित होकर देखते हुए राजपुत्रोंके तथा भानुकुमारके आगे उस मनोहर घोड़े को वह एक क्षणभर मनोज्ञ गतिसे चलाकर तथा अपनी अश्वशिक्षाकी कुशलता दिखलाकर आकाशमें उड़ गया। और

वहां भी घोड़ेको सुन्दर गतिसे चलाने लगा। उस समय भानुकुमारादि राजपुत्र बड़े विनोदके साथ ऊपरको मुँह किये उसे देखते थे। परन्तु थोड़ीही देरमें वह मायावी बुड्ढा अर्थात् प्रद्युम्नकुमार अपने घोड़े समेत आकाशमें ही अदृश्य होगया।६६-६९।

इसप्रकारसे भानुकुमारादि सबको चमत्कृत करके और "यह दैत्य था, अथवा कोई विद्याधर था" ऐसी चिंता उत्पन्न करके तथा आश्चर्ययुक्त करके प्रद्युम्नकुमार वहांसे चल पड़ा। आगे उसे सत्यभामाका सुन्दर वन दिखलाई दिया।७०-७१। उसे देखकर प्रद्युम्नने कर्णपिशाचा विद्यासे पूछा, हे विद्या मुझे बतला कि यह वन किसका है? तब वह बोली, हे नाथ! यह सत्यभामा महाराणीका बगीचा है।७२-७३। यह जानकर प्रद्युम्नकुमार विद्याके प्रभावसे सोलह वर्षका युवा बन गया। और पाँच सात बड़े २ किन्तु दुर्बल घोड़ोंको लेकर घुड़सवारके रूपमें बगीचेके समीप जाकर वहांकी रखवारी करनेवालोंसे बोला; मैं इसी बगीचे की आशासे बहुत दूर देशसे आया हूँ। मेरे ये घोड़े थकावट से दुर्बल हो गये हैं। सो इन्हें तुम अपने इस सुन्दर वनमें कुछ देर तक इच्छानुसार चर लेने दो। जिससे ये कुछ सबल होकर बिकनेके योग्य हो जावें।७४-७७। उसकी बातें सुनकर वनकी रक्षा करने वाले बोले; तुझे वातरोग तो नहीं हो गया है? अथवा कोई पिशाच तो नहीं लग गया है? अथवा तू किसीके द्वारा लूटा, छला वा ठगाया तो नहीं गया है, जिससे विभ्रान्तचित्त होकर ऐसे प्राणघातक तथा निंदनीय वचन कहता है।७८-७९। क्या तू नहीं जानता है कि यह भानुकुमारकी माता सत्यभामा महाराणीका बगीचा है, पुण्यहीन प्राणियोंको जिसके दर्शन भी नहीं हो सकते हैं। जो वन नागबेलसे रमणीय और लता मंडपोंसे सुन्दर हो रहा है, और जहां सत्यभामाके प्रसादसे केवल उसका पुत्र रमण करनेके लिये आसकता है, दूसरा कोई नहीं आ सकता है, उसमें तू अपने घोड़ेको चरनेके लिये ले जानेकी इच्छा करता है।८०-८२। यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार बोले; हे वनपालको! यह तो

कहो कि तुम जो इतने निष्ठुर और विवेकहीन होगये हो, सो इसमें तुम्हारा ही दोष है, अथवा तुम्हारे देशका ही दोष है ? सौराष्ट्र देशके लोग निष्ठुर और दुष्टचित्त होते हैं, ऐसा जो कहते हैं सो यहां प्रत्यक्ष दिखलाई देता है ।८३-८५। जिन्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि ये पुरुष कैसा है, और ये दूसरा पुरुष भी कैसा है, तथा जो स्थान और मान सम्मानको नहीं जानते, उन मूर्ख पुरुषों के जीवनसे क्या, मेरे ये घोड़े केवल घास खाने वाले हैं । सो इन्हें यहां पर चर लेने दो। इस बगीचे में जो यह कृत्रिम छोटीसी नदी (सारणी) है, इसके चारों तरफ ही ये चरेंगे । यदि तुम्हारे चित्तमें विश्वास न हो, तो लो मैं अपनी रमणीय अंगूठी तुम्हें देता हूँ सो रख लो । मैंने इन घोड़ोंको पहले न्याय नीतिकी विधि सिखलाई है सो ये बगीचेके फल पुष्पादिकों को कदापि भक्षण न करेंगे ८६-८९। उसके वचन सुनकर और अंगूठी लेकर वे वनके रखवाले बोले; हे हयपालक ! तुम अपने घोड़ों को इस नदीके आस पास चरा लो परन्तु स्मरण रखो कि यदि इन्होंने बगीचेके फल पत्रादि भक्षण किये, तो तुम्हारी यह अंगूठी चली जावेगी । फिर नहीं मिलेगी ।९०-९१। इस बातको स्वीकार करके प्रद्युम्नने उन घोड़ोंको चरनेके लिये छोड़ दिया । सो जबतक वनके रक्षक देखते रहे तब तक वे न्याय मार्गसे अर्थात् जहां कहा था वहीं चरते रहे । परन्तु जब वनके रखवारे यह देखकर कि ये केवल घास ही चर रहे हैं, अंगूठी लेकर धीरे धीरे अपने घर खिसक गये, तब घोड़े स्वेच्छाचारी बनकर उस सारे वनको विद्याके योगसे भक्षण करने लगे । उन्होंने क्षणभरमें वृक्षोंको जड़से उखाड़कर नष्ट कर दिये, और वहांकी भूमिको ऐसी सपाट कर दी कि, मानों पहले वहां कोई बगीचा ही नहीं था ।९२-९५। प्रद्युम्नकुमारके घोड़ोंने उस नन्दनवनके समान वनको नष्ट करके मैदान कर दिया और उसमें जो वाटिका थी, उसको भी साफ करदी ।९६। इसके सिवाय वहां पर जो सत्यभामाके बनवाये हुए तालाब थे, उनको भी घोड़ोंने शोषण करके जलरहित मरुस्थलके समान कर दिय ।९७।

मायाका कार्य करनेमें अतिशय चतुर तथा बलवान वह प्रद्युम्नकुमार यह सब लीला करके आगे चला। सो वहां उसे एक नगरका बगीचा दिखाई दिया, जो कि नानाप्रकारके वृक्षोंसे सघन, तथा फल और पुष्पोंसे लदा हुआ था, तथा जहां पर नानाप्रकारके पक्षी रहकर विश्राम करते थे। पृथ्वीतल पर उसे देखकर कामदेवने ऐसा तर्क किया कि, यह क्या यहां स्वर्गलोकसे लाया गया है? मैंने तो ऐसा उत्तम बगीचा विद्याधरोंके नगरोंमें भी नहीं देखा था। इसप्रकार विचार करके और विस्मित होकर प्रद्युम्नने अपनी विद्यासे पूछा, मुझसे सत्य सत्य कहो कि, यह उपवन किसका है? उसने कहा, यह वन भी तुम्हारी मातासे सदा शत्रुता रखनेवाली श्रीकृष्णजीकी प्राणप्यारी और भानुकुमारकी माता सत्यभामा रानीका है। यह पृथ्वीतलमें बहुत प्रसिद्ध बगीचा है। अब आपको रुचता हो, सो करें। विद्याके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमारने उसी समय विद्याके बलसे एक सुन्दर बन्दर बना लिया, जिसकी बड़ी पूंछ, बड़ा शरीर, विकराल मुख, सफेद दांत, पतली कमर, चपल नेत्र, चंचल अंग, और असुहावनी आवाज थी, और आप चांडालका रूप धारण करके बन्दरको साथमें लिये हुए उस बगीचे के पास आये।९८-४०७। सो वहां आकर बगीचेके रक्षकोंसे बोले, मेरी एक बात सुनो;—मेरा यह बन्दरका बच्चा भूखके मारे बहुतही व्याकुल हो रहा है, और इस बनका एक फल खानेकी इच्छा करता है।८-९। इसलिये इसे उत्तम फल खानेके लिये दे दो। उसे खाकर यह संतुष्ट हो जायेगा। बल आ जानेसे मैं इसे इस श्रेष्ठ नगरमें ले जाऊँगा, और इसकी क्रीड़ासे सब लोगोंको रंजायमान करूंगा।१०-११। मेरी यही जीविका है, इसीसे मैं अपना पेट पालता हूँ। अतएव एक अच्छा फल इसे दे दो।१२। यह सुनकर वे वनपालबोले, क्या तुझे वातरोग होगया है, अथवा कोई पिशाच लग गया है जो बन्दरको फल खिलानेकी इच्छा करता है।१३। फल और पुष्पोंसे लदा हुआ यह बगीचा सत्यभामा महाराणी का है। इससे स्पष्ट है कि, पुण्यहीन अधम पुरुषोंके लिये यह

सर्वथा दुर्लभ है ।१४। फिर तू इस बगीचेके फलको पाकर बन्दरके खिलानेकी बात ही क्यों करता है ? हे मूर्ख ! अपने बन्दरको लेकर तू यहांसे जल्द ही चला जा ।१५। यदि कहीं तुझे श्रीकृष्णमहाराज के सेवक इस समय देख लेंगे, तो हे दुराशय ! तू बहुत कष्ट उठावेगा ।१६। हम तुझे पहले ही से सचेत किये देते हैं । फिर हमारा दोष नहीं समझना । यह सुनकर चांडाल बोला; हे बनपालको ! तुम किस कारणसे इतने निष्ठुर हो गये हो, जो मेरे बन्दरको एक फल भी नहीं दे सकते हो ।१७-१८। मैं कहे देता हूँ कि, यदि यह बन्दर तीव्र क्षुधाके कारण बलपूर्वक रस्सी तोड़कर बगीचेमें घुस जावेगा, तो मेरा दोष नहीं होगा ।१९। ऐसा कहकर उस चांडालने बन्दरको तत्काल ही छोड़ दिया और हँस करके कहा, अरे क्षुद्र वनपालको ! अब देखो, मेरे इस कुपित हुए बन्दरका और मेरा भी तुम्हारे श्रीकृष्ण अथवा सत्यभामा क्या करती हैं ।२०-२१। ऐसा कहकर वह चपल चांडाल भी वहांसे जल्द चला गया । तब वनकी रक्षा करने वाले बन्दरको मारनेके लिए तैयार हो गये । उन्होंने लकड़ी, तलवार, परशु (फरसा) पत्थर, बाण, तोमर (गुर्ज) तथा और अनेक हथियारोंसे बन्दरको रोका । परन्तु तो भी वह बगीचेकी ओर चला गया सारे वनपालोंको लांघकर बल पूर्वक भीतर घुस गया । उसके वहां पहुँचते ही हजारों बन्दर हो गये ।२२-२४। जिन्होंने क्रोधित होकर उस अच्छे २ वृक्षोंसे और लताओंसे परिपूरित वनको नष्ट भ्रष्ट कर दिया । ऐसा किया कि, वहां उसका नामनिशान भी नहीं रहने दिया । वृक्षोंको लताओंको तथा वाटिकाओंको उखाड़ उखाड़कर समुद्रमें फेंक दिया इसप्रकार सफायी करके और अपनेको कृत्य कृत्य समझकर कामदेवने चांडालका वेष छोड़कर नगरी की ओर गमन किया ।२५-२७।

द्वारिकापुरीमें प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि, साम्हनेसे एक स्वर्णरत्न जटित रमणीय रथ आ रहा है । जिसमें अनेक दिव्य तथा मंगलस्वरूप कलश रखे हुए हैं, जो अनेक स्त्रियों करके युक्त

है, अनेक दर्पणोंके कारण जिसमें उद्योत हो रहा है और जिसपर मनोहर पताकायें उड़ रही हैं उसे देखकर प्रद्युम्नकुमार विस्मित हो रहे। उन्होंने अपनी कर्णपिशाची विद्यासे पूछा कि, यह रथ किसका है? ।२८-३०। वह बोली, भानुकुमारके विवाहके मंगल कलशोंसे भरा हुआ और काहल, मृदंग, तथा भेरीके नादसे शब्दायमान होता हुआ यह उत्तम रथ कुम्भकारके (कुम्हारके) घरसे कलश लेकर स्त्रीजनोंके सहित सत्यभामाके घरपर जा रहा है, जो कि तुम्हारी माताकी सौत है। इसके विषयमें तुम्हारी इच्छा हो, सो करो।३१-३३। विद्याके वचनोंसे सब बातोंको विशेषतापूर्वक जानकर तथा रथकी स्वामिनीको अपनी माताकी वैरिणी समझकर प्रद्युम्नकुमारने तत्काल ही एक विकृत आकृति बनाई। अर्थात् विद्याके बलसे उन्होंने एक विचित्र रथ बनाकर जिसमें कि गधा और ऊंट जुते हुए थे, उसे सम्पूर्ण लोगोंको चोभित करते हुए और अगणित जनोंको हँसाते हुए सत्यभामाके रथकी ओर चलाया और देखते २ उस रथको चूर्ण कर डाला, कलशोंको पटक दिया और तोरण को तोड़ डाला। आगे वह रथ यहां वहां भागता हुआ भानुकुमारके नौकरोंको कुचलने लगा। उसने स्त्रियोंको गिराकर कान काट डाले, मुँहके दांत गिरा दिये, कुहनी छील डाली, पैरोंमें चोट पहुँचाई और कपड़े फाड़ डाले जिससे वे उघाड़ी होगई।३४-३८। उनके मुखमेंसे जहां गीत निकलते थे, वहां विलाप निकलने लगा। ऐसी लीला करके आगे प्रद्युम्नकुमार गधे और ऊंटोंसे हास्यकारी शब्द कराता हुआ, डाँस और मच्छरोंको छोड़ता हुआ, ऊँचा मुख किये हुए अपने रथको गली २ में फिराने लगा।३९-४०। उसे देखकर नगरीके मनुष्य परस्पर इस प्रकार बातचीत करने लगे,—यह कोई मनुष्य है, अथवा विद्याधर है? नागेन्द्र है, अथवा दैत्येन्द्र है? या कोई इन्द्रजाल ही है? हम यह स्वप्न देख रहे हैं, अथवा जागते हुए ही कोई माया देख रहे हैं।४१-४२। जो श्रीकृष्णमहाराजकी नगरीमें इसप्रकार निर्भय होकर क्रीड़ा करता फिरता है, अवश्य ही वह कोई अल्प स्वल्प शक्तिका धारक नहीं होगा।

।४३। इसप्रकार कहते हुए हँसते हुए और तालियां बजाते हुए वे सब फिर कहने लगे, भाई ! आज तक तो ऐसा दुर्लभ कौतुक कभी नहीं देखा था। यह कोई बड़ा महानुभाव है, जो निराकुलतासे नगरीमें भ्रमण कर रहा है।४४-४५। लोगोंकी इसप्रकार बातचीत सुनते हुए प्रद्युम्नने आनन्दके साथ कुछ समय तक भ्रमण किया।

इसके पश्चात् उन्होंने कुछ दूसराही वेष धारण कर लिया और नगरीमें आगे चलकर एक सुन्दर वापिका देखी; जो चमकते हुए सोनेकी बनी हुई थी और जिसकी सीढ़ियां रत्नमई थीं।४६-४७। उस वापिका की अनेक स्त्रियां रक्षा करती थीं; और उसमें निर्मल जल भरा हुआ था। उसे देखकर कुमारने विद्यासे पूछा, मुझे बतलाओ कि यह सुन्दर वापिका किसकी है ? वह बोली, यह भानुकुमारकी माता सत्यभामाकी मनोहर वापिका है। इसकी बहुतसी स्त्रियां रक्षा करती हैं। सामान्य लोगोंको यह अतिशय दुर्लभ है। विद्याके वचन सुनकर प्रद्युम्न प्रसन्न हुए और तत्काल ही एक विप्रका वेष बनाकर वापिकाके पास गये। यह बनावटी विप्र योगपट्ट छत्री, दंड कुंडी, और हरी दूर्वा लिये हुये था। श्रुति स्मृति और वेदका जाननेवाला था, और घुटनेतक लटकनेवाला सफेद वस्त्र पहने था, कोपीन भी पहने था, और बुढापेके कारण उसका विस्तृत तथा स्थूल शरीर कांपता था ! इसप्रकार विप्र वेदध्वनि करता हुआ वापिकाकी रखवाली करनेवाली स्त्रियोंसे बोला, हे पुत्रियों ! मेरे वचन सुनो, मैं तुमसे थोड़ीसी याचना करता हूँ। मुझे इस वापिकाके मनोहर जलमें स्नान कर लेने दो और इस कमंडलुको जलसे भर लेने दो। उस जलको मैं नगरीमें ले जाऊंगा और शांतिके लिये किसीको देकर उससे भोजनकी याचना करूँगा।४८-५७। विप्रके ऐसे विनय वचन सुनकर वे स्त्रियां बोली, अरे मूर्ख ! क्या तूने विष्णु की प्राणप्यारी पट्टरानी और भानुकुमारकी माता सुप्रसिद्ध सत्यभामाका नाम नहीं सुना है ? उसी सौभाग्यशालिनीकी यह वापिका है ! दूसरे लोगोंको इसके दर्शन भी नहीं हो सकते

हैं, फिर जलके स्पर्श करनेकी तो बात ही क्या है ? ।५८-६०। हे विप्र ! यह वापिका प्यारी स्त्रीके समान पापियोंको दुर्लभ है । जैसे स्त्रियोंके कुच होते हैं, वैसे इसके चक्रवाकरूपी कुच हैं, और जिस प्रकार स्त्रियोंका हंसके समान सुन्दर गमन होता है, उसी प्रकारसे इसमें सुन्दर हंस गमन कर रहे हैं ।६१। अगणित यादव स्वजनजन और नगरीके लोग जिसके चरणोंकी सेवा करते हैं ऐसे श्रीकृष्णजी यदि चाहें तो अपनी स्त्रियोंके साथ इसमें स्नान कर सकते हैं अथवा सत्यभामाका पुत्र श्रीमान भानु-कुमार मज्जन कर सकता है । परन्तु इन दोके सिवाय और कोई भी इसमें प्रवेश नहीं कर सकता है। फिर यहां तेरे सरीखे भिखारीकी कैसे पहुँच हो सकती है ? अतएव हे भद्र ! अब तू यहांसे जल्दही चला जा; नहीं तो विष्णुके सेवक तुझे मारेंगे ।६२-६४। स्त्रियोंकी वार्ता सुनकर विप्र वेषधारी बोला यदि कृष्णजीका पुत्र इस वापिकामें स्नान कर सकता है, तो फिर तुम मुझे क्यों स्नान नहीं करने देती हो ? क्योंकि मैं भी तो श्रीकृष्णजीका बड़ा पुत्र हूँ । यह बात मैं बिलकुल सच कहता हूँ । परन्तु यदि तुम्हें आश्चर्य होता है—कौतुक जान पड़ता है, तो मेरे वचन सुनो;—

हस्तिनापुरमें जो कौरव कुलमें उत्पन्न हुए सुयोधन (दुर्योधन) नामके प्रसिद्ध राजा हैं उन्होंने अपनी रूपवान और गुणवान कन्याको जिसका कि नाम उदधिकुमारी है, अपनी बहुतसी सेनाके साथ भानुकुमारके साथ विवाह करनेके लिये भेजी थी । सो उसे मार्गमें कौरवोंके बचाने पर भी बहुत से भील हरण करके अपने स्वामीके पास ले गये । उसे देखकर भिल्लराजने मनमें सोचा कि, यह रूप-वती तथा यौवन भूषित कन्या क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुयी है । अतएव यह मेरे योग्य नहीं है राज पूतके ही योग्य है ऐसा विचार करके भिल्लराजने उस प्रसिद्ध कन्याको वहीं अपनी रक्षामें रक्खा । इतनेमें अचानक ही पृथ्वीमें भ्रमण करता हुआ मैं उसी मार्गसे उसी जगह जा पहुँचा । सो मुझे रूपवान तथा यौवनभूषित देखकर भिल्लराजने सोचा कि, यह कन्या इसीके योग्य है। अतएव निःशंक

होकर इसीको दे देना चाहिये ऐसा विचार करके उसने भक्तिपूर्वक चरणप्रक्षालन करके उस रूपवती गुणवती कन्याको मुझे समर्पण कर दी उस कुमारीके समान न तो कोई युवती जगतमें है और न होगी इसीप्रकारसे न मेरे समान कोई वर है, और न होगा ।६५-७६। अब तुम ही सोचो कि कृष्णजी के पुत्रके लिये जो उत्तम कन्या भेजी गयी थी, वही जब मुझे समर्पण करदी गई तब मैं कृष्णपुत्र हुआ कि नहीं ? फिर मुझे वापिकामें क्यों स्नान नहीं करने देती हो ? ब्राह्मणकी विनोदयुक्त बातें सुनकर वे स्त्रियां बोलीं, हे विप्र तू वृद्ध होगया है, रूप और यौवनका तुझमें नाम नहीं है, तो भी तू राजकन्यासे विवाह करनेका मनोरथ करता है ! यह नहीं समझता है कि, कहां तो यह तेरा निन्दनीय रूप और कहां वह रूप और गुणकी खानि उदधिकुमारी ।७७-७९। इस वृद्धावस्थामें भी तू जवानीमें उत्पन्न होने वाली कुटिलता तथा हँसीको नहीं छोड़ता है, यह एक बड़े भारी आश्चर्यकी बात है ।८०। हे ब्राह्मण ! तूने जो कुछ अभी कहा, क्या वह सब घटित हो जाता है? अरे जरा विचार तो कर कि, कहां तो जरा से जर्जर तू और कहाँ वह कुरु राजाकी यौवनवती सुन्दर कन्या और कहां राजपुत्रोंकी रक्षामेंसे उसका भीलोंके द्वारा हरा जाना इसप्रकार असत्य वचन तू बुढ़ापेमें क्यों बोलता है, इसप्रकार हँसीके वचनोंसे रोकने पर भी आखिर वह ब्राह्मण धीरे धीरे वापिकाके जलमें पैठ गया ।८१-८३। यह देखकर वह बावड़ीकी रक्षा करनेवाली स्त्रियां कुपित होकर उस ब्राह्मणको मारने लगीं । परन्तु ज्योंही उनके हाथ उस वृद्ध विप्रके शरीरमें लगे, त्योंही उसके स्पर्श मात्रसे वे सबकी सब जो रूपरहित कुरूपा थीं, और रूपवती गुणवती बन गईं ।८४-८५। जब उन्होंने परस्पर अपना रूप देखा, तब वे अपकार के बदले भी विप्रके उपकार करनेके बर्तावकी प्रशंसा करती हुई कहने लगी, हे द्विजराज ! कुपिताओं पर भी तुमने उपकार किया है । अतएव दुनियांमें तुम सरीखा दयालु और गुणी कोई नहीं है ।८६-८७। इसके पीछे वे सब स्त्रियां अपना रूप देखनेके लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ वापिकामेंसे बाहर

निकल आयीं। देखा तो जो कर्णविहीन थी, वह कानोंवाली होगई। जिसके एक आंख थी, वह दोनों दिव्य नेत्रोंवाली होगई। जो गूंगी थी, वह वाचाल होगई, जिसके कुच तुचके हुए थे, वह पीनस्तनी हो गई। जो कुरूपा थी, वह रूपवती होगई, और जो जामुनके रंग जैसी अतिशय काली थी, वह गौरवर्ण हो गयी।८८-९१। इसप्रकार जब तक वे एक दूसरेका रूप देखती हुई बाहर ठहरीं तब तक विप्रने जल्दीसे अपना कमंडलु वापिकामें डालकर उसका सबका सब जल भर लिया। और फिर वह बाहर निकलकर उन सबके देखते हुए चलने लगा।९२-९३। उस समय वे एक दूसरेको देखती हुई परस्परके रूप कांति तथा गुणोंकी प्रशंसा करनेमें लगी हुई थीं।९४। एक बोली, तेरा रूप बहुत सुन्दर हो गया है। दूसरी बोली, और तेरा कान क्या कम सुन्दर हुआ है ? तीसरी बोली, सखी, तेरे शरीरमें तो आज जवानी आ गयी है, चौथी बोली, तेरे नेत्र तो बड़े ही कटीले और सुन्दर हो गये हैं। पांचवीं बोली, आली ! तेरे सिकुड़े हुए कुच तो बड़े कठोर हो गये हैं। और जो एक सुन्दर स्त्री थी, वह बोली, बहिन तेरा स्थूल उदर तो बहुत ही कृश होगया है—कमर बहुत पतली हो गयी है।९५-९७। इसप्रकार वे सब विनोदके साथ परस्पर बातचीत कर रही थीं इतनेमें एक स्त्री प्यास लगनेसे जल पीनेके लिये बावड़ीमें गई। परन्तु वहां जाकर देखा, तो बावड़ी सूखी जलरहित पतिता (सीढ़ियां दीवालें वगैरह पड़ी हुई) और सूखी घाससे आच्छादित थी। उसे इस प्रकार जीर्ण शीर्ण देखकर वह बाहर निकल आयी और साथकी अन्य स्त्रियोंसे सब वृत्तांत कहकर बोली, आज उस विप्रने अपने सबको ठग लिया। वह दुरात्मा छुप करके वापिकाका सब जल कमंडलुमें भर ले गया। यह सुनकर वे सब स्त्रियां अपनी शंका मिटानेके लिये स्वयं वापिका देखने को गयीं। देखते ही वे सब क्रोधके मारे लाल नेत्र करके गाली देती हुईं और इसप्रकार कहती हुईं कि "अरे पापी, बोल अब तू कहां जाता है ?" विप्रके पीछे २ दौड़ीं। परन्तु जब तक वे दौड़ीं तब तक वह नगरीमें पैठकर

नानाप्रकारकी चेष्टायें करने लगा ।९८-३। नगरीके बाजारकी सारी शोभाको हरण करने लगा। वहां जो नानाप्रकारके मणि थे, और रत्नोंके आभूषण थे, तथा जो हथियार, कपड़े, सुगन्धित पदार्थ, कपूर, नमक धान्यादि थे, वह उन सबको अपनी मायासे अदल बदल करता हुआ फिरने लगा। हाथी, घोड़े आदि वाहनों तथा गाय भैंसादि पशुओंमें भी उसने हाथके छूनेमात्रसे व्यत्यय कर दिया। अर्थात् हाथीसे घोड़ा बना दिया, गायकी भैंस बना दी, किसीका घोड़ा किसीकी दुकान पर खड़ा कर दिया और किसी की गाय किसीके यहां कर दी। इसप्रकार चेष्टा करता हुआ जब वह विप्र ऊपरको मुख किये चला जा रहा था, तब तक कुपिता स्त्रियां हजारों गालियां और सैकड़ों शाप देती हुई आ पहुँचीं। और शीघ्र ही उस विप्रको चारों ओरसे घेर कर बकने लगीं, अरे दुष्ट, तू बावड़ीका सारा जल क्यों लेकर भाग आया ।४९। उनके इसप्रकार बकते ही विप्र महाशयने अपने कमंडलुको तत्काल ही पृथ्वीपर पटककर फोड़ डाला, और उसमेंसे सारा जल जो बावड़ीमेंसे अपनी विद्याके बलसे भर लिया था, क्रोधके कारण छोड़ दिया। सो उसके प्रवाहसे बाजारका चौरास्ता बहने लगा। ऐसा मालूम होने लगा कि यह किसी महानदीका पूर आगया है अथवा कोई समुद्र ही यहां चलकर आगया है ।१०-१२। उस प्रवाहका जल दुकानोंमेंसे बहने लगा, जिससे मोती, तथा सोना रत्न आदि बहने लगे नगरके मध्यमें दुकानें, घर, बगीचा, घोड़ा आदि वाहन जो कुछ थे, वे सब उस जलके प्रवाहमें बहे जाने लगे ।१३-१४। उस समय लोगोंने समझा कि यह प्रलयकाल आगया है, जिसमें पृथ्वी जलमग्न हो जाती है। अन्यथा समुद्र अपनी मर्यादा को क्यों छोड़ देता अर्थात् उन्होंने समझा कि, यह समुद्र ही नगरमें बढ़ आया है। यह देखकर वे बावड़ीकी रक्षा करनेवाली स्त्रियां प्रलाप करती हुई अपने स्थान को चली गईं और प्रद्युम्नकुमार कौतुक करके लुप्त हो गया ।१५-१६।

इसके पश्चात् वह विनोदी कुमार एक दूसरे जवान विप्रका वेष धारण करके उस नगरीमें आगे

को चल पड़ा एक चोरस्ते पर उसने देखा कि, बहुतसे माली नानाप्रकार फूलोंको गुह रहे हैं। फूलोंका वहां बड़ा भारी समूह देखकर प्रद्युम्नको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। अतएव उसने उन फूलोंके विषयमें अपनी विद्यासे पूछा। उसने कहा कि सत्यभामाके पुत्र भानुकुमारके लिये ये सब फूल इकट्ठे किये गये हैं। यह सुनकर वह उन मालियोंके पास जाकर बोला;—। १७-२०। तुम इन फूलोंमेंसे मुझे थोड़ेसे सुन्दर सुन्दर फूल दे दो, जिन्हें लेकर मैं सत्यभामाके मन्दिरको जाऊँ ।२१। और वहां उन्हें आशीष देकर भोजनकी याचना करूं और जो मैं चाहता हूँ, सो पाऊँ इस समय मुझे भूख बहुत लग रही है, अतएव फूल जल्दीसे दे दो। वहां इस समय भानुकुमारके विवाहका उत्सव भी हो रहा है, इससे मेरा मनोरथ जरूर सफल होगा उसकी बात सुनकर माली बोले, हे विप्र ! हमारे हितकारी वचन सुन। ये सब फूल सत्यभामा महारानीके पुत्रके विवाहके लिये रक्खे हुए हैं और विवाहके लिये ही हम इन्हें गुह रहे हैं। इनमेंसे हम एक पुष्प की पँखुड़ी भी नहीं दे सकते हैं। तुम यहां से जल्दी ही चले जाओ उनकी बातें सुनकर प्रद्युम्नकुमार बोले;—मालूम पड़ता है मूर्खिणी सत्यभामाके सबही नौकर चाकर मूर्ख हैं। ऐसा कहकर उन्होंने उन पुष्पोंको अपने हाथसे छू दिया। बस उनके छूते ही वे सब मन्दार, कुमुद, चम्पा, शतपत्र (कमल) नागकेशर, जाही, जुही, आदि के पुष्प आकके पुष्प होगये।

यह कौतुक करके प्रद्युम्नकुमार लीला करता हुआ आगे चला और बाजारमें पहुँचकर दुकानों की वस्तुएं उलटी सीधी करने लगा। वहां जितने प्रकारके सुगंधित पदार्थ थे, तथा जितने प्रकारके अनाज रक्खे हुए थे उन सबको उसने कहींके कहीं बहुमूल्यके स्थानमें थोड़े मूलयवाले, थोड़े मूल्य-वालोंके स्थानमें बहुमूल्यवाले, बुरेके स्थानमें भले और भलेके स्थानमें बुरे इस प्रकार गटपट करदिये ।३०-३२। हाथीके स्थानमें गधे करदिये, घोड़ेके खच्चर करदिये, कस्तूरीके स्थानमें हींग और हींगके स्थानमें उत्तम कस्तूरी करदी। जहां नमक था, वहां कपूर और जहां कपूर था, वहां नमक करदिया।

जितने हाथीके उपकरण हौदा वगैरह थे, वे सब गधेके उपकरण हो गये और जितने गधेके थे, वे हाथी के होगये । पीतल सोना होगया और सोना पीतल होगया । रत्न कांचके टुकड़े और काचखंड उत्तम रत्न होगया । यौगंधरीय (ज्वार) मोती और मोती यौगन्धरीय होगये घी तैल होगया और तैल घी हो गया । कम्बल पट्टकूल (रेशमी कपड़े ?) और पट्टकूल कम्बल होगये ।३३-३७। इसप्रकार नानाप्रकारकी अदलबदल करनेकी क्रीड़ा करते हुये प्रद्युम्नकुमार धीरे २ उस सुन्दर राजमार्गपर पहुँच गये, जो मदोन्मत्त हाथियोंके झरते हुए मदजलसे कीचड़मय और दुर्गम दिखलायी पड़ता था ।३८-३९।

राजमार्गपर चलते हुए कुमारने एक सुन्दर मन्दिर (महल) देखा । उसे देखकर उन्हें बड़ा भारी अचरज हुआ । अतएव अपनी विद्यासे पूछा कि यह मनको हरनेवाला महल किसका है । विद्याने कहा, हे नाथ ! यह स्वर्गके महलोंसे भी विशेष सुन्दर आपके पिता श्रीकृष्णके पिता वसुदेव महाराज का है ।४०-४२। यह सुनकर प्रद्युम्नने फिर पूछा कि इन्हें किस बातपर अधिक प्रेम है अर्थात् इन्हें क्या प्यारा लगता है ? विद्याने कहा, इन्हें मेंढा (मेष) लड़ाना—मेंढ़ोंकी लड़ाई देखनेका बड़ा शौक है । इसपर उनकी बहुत प्रीति है ।४३। विद्याके वचन सुनकर कुमार उसी समय एक विद्यामयी मेंढ़ा बनाकर वसुदेवके महलकी ओर ले चले । थोड़ी ही देरमें उन्होंने सोनेके तोरणों तथा धुजा पताकाओंसे शोभायमान, मणियों तथा दर्पणोंसे अलंकृत, कलश तथा झारियोंसे युक्त सिंह, व्याघ्र, रीछ, अष्टापद, चीता आदि जानवरोंसे भय उत्पन्न करनेवाले उस महलमें प्रवेश किया ।४४-४६। और फाटकके आगे थोड़ी दूर गलीमें जाकर सभाके बीच सिंहासन पर बैठे हुए अपने पिताके पिताको शस्त्रकलामें प्रवीण हुए अनेक राजपुत्रोंके सहित देखा ।४७-४८। उनका शरीर चमकते हुए सोनेके समान था, मुख पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुन्दर था, भुजायें दिग्गजोंकी सूंडके समान लम्बी और बड़ी थी, छाती पर्वतके पसवाड़ेके समान विस्तीर्ण थी, बाल इन्द्रमणिके समान काले तथा

घुंघराले थे, कण्ठ शंखके समान था, नाभि सुन्दर थी, अधर लाल तथा शोभायमान थे इसीप्रकारसे चरण और हाथकी हथेली भी लाल और शोभायुक्त थी और दांत कुन्द की कलियोंके समान मनोहर थे। ऐसे सर्वांग सुन्दर दादाको देखकर प्रद्युम्नकुमारको बहुत सन्तोष हुआ। हाथी और घोड़े चलानेकी विद्यामें तथा शस्त्रविद्यामें प्रारंगत हुए उस स्वभावसे ही सौम्य तथा सुन्दर पितामहको देखकर कुमारने आनन्दके साथ दूरसे ही प्रणाम किया। वसुदेवजी भी उस युवा पुरुषको तथा उसके मेढ़ेको देखकर प्रसन्न हुए। उस मेढ़का शरीर सुडौल तथा गोल था, सींग टेढ़े तथा सूखे थे, उसके कंठमें सुन्दर घुंघरू पहनायी गयी थीं, तथा वह बड़ा बलवान और शोभायमान था।४९।५५। उसे देखकर शौरी अर्थात् वसुदेवजीने स्वयं आदरके साथ पूछा, यह सुन्दर मेढ़ा किसका है, और किस लिये यहां लाया गया है युवा पुरुषने कहा, यह मेढ़ा मेरा है। यह बड़ा ही विषम तथा दुर्जय है। इस विषयमें मैं कुछ हंसी नहीं करता हूँ। सचमुच ही यह बड़ा बलवान है। पहले इसने बहुतसे युद्ध करके बहुतसे मेढ़ोंको जीते हैं।५६-५७। आपको मेढ़ोंकी लड़ाइका शौकीन तथा चतुर सुनकर मैं यहां तक आया हूं। इनका युद्ध देखनेके ही योग्य होता है। सो यदि देखना हो, तो आप ही इसका युद्ध देखें। क्योंकि पृथ्वीमें इसके युद्धकी परीक्षा करने वाला चतुर पुरुष आपके सिवाय और कोई दूसरा नहीं है।५८-५९। मेढ़ेवालेकी बात सुनकर वसुदेवजी बोले, यदि यह मेढ़ा दुर्जय है अर्थात् कोई इसे नहीं जीत सकता है, तो मेरी जांघपर टक्कर लगानेको छोड़दे।६०। यदि यह मेरी जांघको तोड़ डालेगा, तो समझ लिया जावेगा कि, इसके समान बलवान मेढ़ा पृथ्वीमें और कोई नहीं है।६१। यह सुनकर मेढ़े वाला बोला नहीं मैं अपने मेढ़ेको आप पर नहीं छोड़ सकता हूँ। क्योंकि यह बहुत चपल, बलवान और मजबूत है। यदि मैं जान करके भी आप पर इसे छोड़ दूंगा, तो आपके सेवकगण मुझे मारे बिना नहीं रहेंगे। क्योंकि आप श्रीकृष्ण महाराजके पिता हैं

।६२-६३। अतएव इसे आप वैसे ही ले लीजिये। यदि आप मुझे बलमें गिराकर इसे लेना चाहते हों तो कैसे ले सकते हैं? अर्थात् हराकर नहीं ले सकते हैं।६४। हे नाथ! मेरा यह मेढ़ा बहुत ही शक्तिशाली है। यह मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ। फिर कहिये कि, इसे आपकी जांघके सन्मुख कैसे छोड़ दूं? ।६५। यदि बलवान मेढ़ा आप जैसे पूज्य पुरुषोंको पृथ्वी पर गिरा देगा, तो ये यादवगण मेरा क्या नहीं करेंगे? अर्थात् ये मेरी खूब ही दुर्दशा करेंगे।६६। उसके उक्त वचन सुनकर वसुदेवजीने हँस करके कहा, अपने मेढ़ेको मेरी जांघपर छोड़ दो। इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं समझा जावेगा।६७। उनका उत्तर सुनकर मेढ़ेवालेने सब यादवोंसे तथा सेवकगणोंसे कहा यह देखो यदि यह महाराजको गिरा देगा, तो उसमें मेरा रंचमात्र भी दोष नहीं होगा।६८। यह सुनकर वे सब बोले; अरे मूर्ख! यह विचारा मेढ़ा बलवान वसुदेव महाराजको कैसे गिरा सकता है? ।६९।

उन सबके वचन सुनकर मेढ़ेवालेने उस वज्रके समान कठोर मस्तकवाले मेढ़ेको जल्द ही छोड़ दिया, और कहा, हे पूज्यवर! यदि आप समर्थ हैं, प्रधान पुरुष हैं, तो देखो यह अतिशय दुर्जय मेढ़ा आ रहा है, इसकी चोटको सहन करो।७० ७१ इसके इसप्रकार कहते ही उस मेढ़ेने दौड़करके वसुदेवजीके उस जांघमें खूब जोरसे चोट लगाई, जो उन्होंने टक्करके लिये साम्हने उठा रक्खी थी।७२। ठोकरके लगते ही वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े वसुदेवजीको गिरा देखकर यादवगण चारों ओरसे दौड़ आये, और मलय अगुरु चन्दनादिसे उनका शीतोपचार करने लगे।७३-७४। वहां जब तक यादव लोग वसुदेवजीको सचेत करनेमें लगे, तब मेढ़ेवालेने अपने मेढ़ेको लेकर वहांसे कूच कर दिया।७५।

इसप्रकार अपने पितामहको (दादाको) गर्वरहित करके प्रद्युम्नकुमार हँसता हुआ वहांसे निकल पड़ा। रास्तेमें चलते हुए उसने एक मनोहर घर देखा, जिसमें पुत्रविवाहका बड़ा भारी जलसा हो रहा

था, और जिसमें धुजा पताका तोरण आदि भूषित हुए अनेक मंडप शोभित हो रहे थे ।७६-७८। उसे देखकर प्रद्युम्नने अपनी कर्णपिशाची विद्यासे पूछा, हे विद्या ! यह सुन्दर मन्दिर (घर) किसका है, जो इस भुवनमें सबसे श्रेष्ठ जान पड़ता है । विद्याने उत्तर दिया, यह लोकप्रसिद्ध मन्दिर श्रीसत्यभामा महाराणीका है । विद्याकी बात सुनकर कुमार बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने यह विचार करके कि, अपनी माताकी सौतका यह श्रेष्ठ घर देखना चाहिये, तत्काल ही सम्पूर्ण विद्याओंके जाननेवाले एक चौदह वर्षके ब्राह्मण बालकका रूप बना लिया ।७९-८१। उसके नेत्र बड़े २ थे, शरीर पीला था, और स्वभाव बहुत चपल था । वह बहुत बोलता था, और वादविवाद करनेमें चतुर था । खूब जोर जोरसे वेदका पाठ करता हुआ वह सत्यभामाके महलमें भोजनके लिये गया । और सत्यभामाको सिंहासनपर बैठी हुई देखकर बोला, हे नारायणके मानसरोवररूप हृदयमें वास करनेवाली राजहंसनी ! तथा हे विस्तृत पुण्यकी धारण करनेवाली सत्यभामादेवी स्वस्त्यस्तु; अर्थात् तेरा कल्याण हो । यह सम्पूर्ण शास्त्ररूपी समुद्रके पार पहुँचा हुआ श्रेष्ठ ब्राह्मण भूखसे व्याकुल हुआ तुझसे भोजन पानेकी इच्छा करता है । अतएव हे माता, तुझे जितनी मेरी इच्छा है, उतना भोजन करा दे । उसकी बातें सुनकर सत्यभामा मुसकुराने लगी ।८२-८६। उसे हँसती देखकर ब्राह्मण बोला, हे शुभे ! तू हँसती है, सो क्या भोजन करानेकी इच्छा नहीं है ।८७। उसदिन द्वारिकाके रहनेवाले सम्पूर्ण ब्राह्मणोंका भी सत्यभामाने पुत्रके विवाहकी खुशीमें निमंत्रण किया था । सो जब सत्यभामासे वह विप्र भोजनकी याचना कर रहा था, उसी समय वे सब मिलकर वहाँ पहुँच गये । उन्होंने प्रद्युम्नकी बात सुनकर कहा, हे अभागे विप्र ! तू भोजन ही क्यों मांगता है ।८८-९०। सत्यभामा महाराणी जिसको अपनी नजरसे देख लेती हैं, वही भाग्यवान हो जाता है । भला श्रीकृष्णजीकी महारानी संतुष्ट होकर किसको कृतार्थ नहीं करती हैं अतएव हाथी, घोड़ा, नानाप्रकारके रत्न, सोना, रेशमी वस्त्र, गोधन, नगर, धन, देशादि

और स्त्रियोंके समूहकी याचना क्यों नहीं करता है, तू बड़ाही भाग्यहीन है जो केवल भोजन मांगता है। अथवा इसमें तेरा ही दोष क्या है, भाग्यके अनुसार ही लोगोंके मुंहसे शब्द निकला करते हैं। जो लोग पुण्यहीन होते हैं, उनके मुंहसे शब्द भी वैसे ही निकलते हैं, जिनसे कुछ प्राप्ति न हो ।६१-६४। इसके उत्तरमें चतुर कुमार बोला, अरे विप्रों, हाथी घोड़ा आदि जो कुछ मांगा जाता है, सो सब अन्नके लिये—भोजनके लिये मांगा जाता है ।९५। अतएव मैं महाराणीसे उसी भोजनकी याचना करता हूँ। हे सत्यभामा अपने पुत्रकी मंगलकामनाके लिये मुझे बहुतसा भरपेट और स्वादिष्ट भोजन शीघ्र दे मेरे सन्तुष्ट होनेसे सारा जगत सन्तुष्ट हो जावेगा, और मेरे भोजन करनेसे सारे विप्र भोजन कर चुकेंगे ।६६-६७। अतएव हे माता मुझे विधिपूर्वक इच्छानुसार भोजन करादे। भूखे विप्रकी बातें सुनकर सत्यभामा प्रसन्न हुई। उसने अपने सेवकोंसे कहा इस भूखसे व्याकुल हुए विप्रको रसोईघरमें ले जाओ और जितना यह खावे, उतना खिला दो यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला बड़ा भारी विवेकी विप्र है। अतएव इसको आदर सत्कारसे भोजन कराना ।६८-४००। अपने सेवकोंसे इसप्रकार कहकर रानीने विप्रसे कहा, हे द्विजोत्तम, मेरे सेवक आपको यथेष्ठ भोजन करावेंगे, अतएव तुम उनके साथ रसोईघरमें जाओ ।१। सत्यभामाके वचन सुनकर विप्र वेषधारी बोला, मैं इन मूर्ख तथा अधम विप्रोंके साथ भोजन नहीं करूंगा ।२। हे माता, जो पाखंडी हैं, कुशील हैं, स्त्री पुत्रादिमें उलझे हुए हैं, सन्ध्यादि क्रिया कर्म नहीं करते हैं, व्रत आचरण नहीं करते हैं वेद और वेदके अंग (स्मृति श्रुति आदि) नहीं जानते हैं केवल नाममात्रके विप्र हैं, विप्रोंकी समाजमें घुसते हैं परन्तु ब्रह्मकर्म नहीं करते हैं और सच बोलना तो जानते ही नहीं हैं ऐसे द्विजोंके साथ में कैसे भोजन करूंगा अतएव इन विप्रोंको भोजन देना चाहते हो तो अलग दे दो, मेरे साथ इनका भोजन न बनेगा ।३-५। हे देवी! ये तो सब पतित हैं—पापी हैं। विप्रोंके सम्पूर्ण लक्षणोंसे रहित और केवल

धन लेने की इच्छा करनेवाले इन विप्रोंसे तेरे अभिप्रायकी सिद्धि क्या होगी, अर्थात् तुझे क्या फल मिलेगा ? कुछ भी नहीं ।६। विप्रोंके सब लक्षणोंके धारण करनेवाले और सम्पूर्ण विद्याओंके जाननेवाले विप्रको ही दोनोंलोकोंमें सुखकादेनेवाला समझकर मुझको भोजन करादेना चाहिये । मेरे तृप्त होजानेसे गो विप्र आदि सब तृप्त हो जावेंगे, और जो तूने यहां दिया है, वह सब परलोकमें पुण्यके लिये हो जावेगा ।७-८। अतएव सम्पूर्ण पदार्थोंको जाननेवाले मुझ विप्रको ही भोजनदान देनेका प्रयत्न कर । क्यों कि मैं स्वयं तिरनेवाला और दूसरोंको तारनेवाला पात्र हूँ । इन करोड़ों विप्रोंके खिलानेसे क्या होगा ? जो वेद शास्त्रोंके ज्ञानसे रहित हैं, व्रत और शीलोंसे परांगमुख हैं, और अधम अर्थात् नीच हैं ।९-१०। चपल विप्रकी बात सुनकर सत्यभामाने विस्मित होते हुए तथा हर्षित होते हुए अपने सेवकोंसे कहा हे सेवकों ! इस वेदके पार पहुँचे हुए विप्रको खूब आदरके साथ विशेषताके साथ भोजन करा दो ।११-१२। सेवक लोग "ऐसा ही होगा" कहकर उसे भोजनके लिये लिवा ले गये वहां पहुँचकर उसने मुस्कराते हुए विप्रोंके लिये जो बहुतसे पाट (चौकी) रखे हुए थे उन सबके आगेके पाटपर धोनेके लिये अपने पैर रख दिये । यह देखकर विप्रगण बड़े ही कुपित हुए और परस्पर इस प्रकार बातचीत करने लगे यह सम्पूर्ण विप्रोंसे नीच पापी तथा जातिहीन है । इसे कुछ भी विवेक नहीं है, इसीलिये सबके आगेके पाटपर बैठ गया है ।१३-१६। उन विप्रोंमें जो कुछ वृद्ध थे, वे बोले–इस मूर्खको बैठ जाने दो । अधम तथा निन्दनीय पुरुषसे कलह नहीं करना चाहिये ।१७। जब तक इनकी इसप्रकार बातचीत हुई तब तक वह कलिका प्यारा विप्र अपना पांव प्रक्षालन करके मुख्य आसनपर जा बैठा। जब दूसरे विप्र पांव प्रक्षालन करके पीछेसे आये, तब इसे मुख्य आसनपर बैठे हुए देखके बड़े ही कुपित हुए और घमंडसे हँसते हुए बोले,यह बड़ा पापी है और बड़ा कलहप्रिय है। न तो इसकी जाति मालूम है, और न कुल मालूम है । गोत्र, वेद, प्रवर आदि भी इस शाखाहीन तथा अधम विप्रके मालूम नहीं

पड़ते हैं उमर भी इसकी बहुत थोड़ी है। फिर इसके नीचे बैठकर कैसे भोजन किया जावे ? तब और और लोग बोले भाई इसके साथ कलह करनेसे क्या लाभ होगा ? चलो, इस मूर्ख पापीको यहां अकेला छोड़कर चलें और दूसरे रसोईघरमें जाकर आनन्दके साथ भोजन करें। ऐसा कहकरके वे सबके सब विप्र मनमें लज्जित और क्रोधित होते हुए दूसरे घरमें चले गये। परन्तु जाकर देखा तो वहां पर भी मुख्य आसनपर वही विप्र बैठा हुआ है उसे वहां भी देखकर वे विप्रगण और भी क्रोधित हुए और बोले; यह जातिहीन छोकरा बड़ा ही दुष्ट है। यद्यपि सत्यभामा महाराणीकी इसपर दृष्टि पड़ गई है, अर्थात् उनकी इस पर कृपा हो गई है, तथापि यह बड़ा कलहप्रिय है। इसीप्रकार से यद्यपि यह विप्र का वेष धारण किये है, तथापि विप्रोंसे द्वेष करता है, नीच है, वेदकी सम्पूर्ण विधियोंके जाननेवाले स्मृतिशास्त्रोंके पार पहुँचे हुए उत्तम जाति वंश तथा कुलवाले, सर्वविद्याविशारद, त्रिपाठी (तिवारी), चतुर्वेदी (चौबे), द्विवेदी (दुबे) और याज्ञिक विप्रोंका तिरस्कार करता है। बड़ा दुष्ट है। इस पापीको अब अवश्य ही मारना चाहिये। क्योंकि विप्रद्वेषी पापीके मारनेमें पाप नहीं होता है। विप्रोंको इस प्रकार बातचीत करते हुए देखकर विप्रवेषधारी प्रद्युम्नकुमार हँसके बोला, हे विप्रो सुनो–।१८-३०। तुम सब जहां शास्त्रोंके सहित वेदोंको जानने वाले हो; ऐसा जो कहते हो सो इसमें क्या प्रमाण है ? क्योंकि तुम आचारहीन भ्रष्ट हो। यदि वेदज्ञ होते, तो आचारहीन नहीं होते।३१-३२। और मनुष्यके लक्षणमें विप्रत्व, होनेका क्या प्रमाण है क्योंकि विप्रत्वका लक्षण जो दया है, सो तुम लोगोंमें दुष्प्राप्य है अर्थात् मुश्किलसे भी तुममें दया लक्षण नहीं मिल सकता है। जिन लोगोंमें यज्ञमें घोड़ा, मनुष्य, राजा, और माता पिता भी हवन किये जाते हैं, वे कैसे समीचीन हो सकते हैं तथा जिसमें जीवोंको मारनेमें पुण्य कहा है, अथवा जो लोग जीववधको पुण्य कहते हैं, वे वेदशास्त्र तथा मनुष्य कैसे प्रमाणभूत हो सकते हैं जिसमें मधु, मद्य (शराब) और मांसको खाने योग्य बतलाया है, यदि

उसमें धर्म कहा जावे, तो वह विलकुल असत्य होगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।३३ ३६। जिसमें नहीं गमन करने योग्य स्त्रियोंमें गमन (सहवास) करने योग्य बतलाया है, दासी आदिका दान देना कहा है, और नहीं पीने योग्य वस्तुओंको पीने योग्य बतलाया है वह धर्म कैसे हो सकता है? इत्यादि नानाप्रकारके विरोधी वाक्य जिस वेदमें कहे हैं, हे विप्र ! कहो कि उसे कैसे प्रमाण मानेंगे ।३७-३८। विप्रकुमार के उक्त वचन सुनकर वे सब विप्र अतिशय कुपित हुए और इस प्रकार कहते हुए मारनेके लिये तैयार हो गये, कि इस श्रुतिस्मृतिशास्त्रोंसे परांगमुख हुए पापीको मार डालो। यह विप्रों की निन्दा करनेवाला दुष्ट है। इसके मारनेमें जरा भी दोष नहीं है ।३९-४०। ऐसा कहकर वे अपनी भौंहोंके मध्यभाग को क्रोधसे कम्पित करते हुए मारनेको झपटे। विप्रकुमारने जब विप्रोंको एकाएक मारनेके लिये उद्यत देखा, तब अपनी विद्याको छोड़कर उसने उन विप्रोंको आपसमें ही लड़ाना शुरू कर दिया। क्रोधित हो होकर वे एक दूसरेके शरीरपर घात करने लगे ।४१-४२। भुजाओं तथा मुक्कियोंके घातसे और मस्तक मस्तकोंके भिड़नेसे थोड़ी हो देरमें उनका शरीर पसीनामय हो गया ।४३। परस्परकी लड़ाईमें वे गिरने लगे, खिसकने लगे, क्रोधित होकर दौड़ने लगे, और लोहू लुहान होकर रोने लगे। इसप्रकार मुष्टिघात से अतिशय भयंकर युद्ध करके वे सबके सब विप्र विस्मित और खेद खिन्न हो गये। कितने ही तो मूर्च्छायुक्त होकर पृथ्वीपर सो गये ।४४-४६।

यह कौतुक देखकर सत्यभामा हँसती हुई बोली, अरे विप्रों ! तुम व्यर्थ ही क्यों लड़ रहे हो? मैं तुम सबको ही भोजन दूंगी,फिर मेरे ही साम्हने तुम क्यों युद्ध करते हो? इसके पश्चात् सत्यभामा उसी प्रकार हँसती हुई उस विप्रकुमारसे बोली, और हे बटुक ! तू भी इन विप्रोंसे क्यों लड़ता है ।४७ ४८। यह सुनते ही बटुक अपने आसनसे उठकर समीप आ गया, और बोला, सत्यभामा ! बस, अब मैंने तेरे मनका दुष्ट विचार जान लिया। मैं यहां अकेला हूँ और ये अगणित विप्र मुझे मारनेको उद्यत

हुए हैं। फिर बतला, तू इन्हें क्यों नहीं रोकती है ? जान पड़ता है, तूने ही इन मूर्ख विप्रोंको मुझे मारनेके लिये उठाया है। नहीं तो मुझ विप्रके मारनेका इन्हें क्या अधिकार है ? ।५०-५२। तब सत्यभामाने कहा, मैंने सब चरित्र जान लिया है। और मैंने यह भी अच्छी तरह जान लिया है कि किसने किसको मारा है ।५३। हे द्विजनायक ! अब तुम मेरे साम्हने ही भोजन करलो। अरे सेवकों ! इन्हें यहां मेरे साम्हने जल्द ही भोजन करा दो ।५४। यह सुनते ही नौकर लोगोंने तत्काल ही बड़े आदरके साथ वहां पर आसन स्थापित कर दिया और उसपर सोनेके उत्तमोतम बर्तन रख दिये जब तक विप्रकुमार वेष धारण करनेवाला प्रद्युम्न हाथ धोकरके आसनपर बैठा तब तक परोसनेवालोंने नाना-प्रकारके पक्वान्न और स्वादिष्ट फल आदि लाकर परोस दिये। उस समय सत्यभामाने कहा, हे, द्विज ! अमृत करो अर्थात् भोजन करो ।५५-५७। प्रद्युम्न बोला हे विचक्षण माता ! जब तक मेरी तृप्ति न हो, तब तक मुझे भोजन परोसना चाहिये। अर्थात् ऐसा न हो कि, मेरा पेट भरने न पावै और तू भोजन देना बन्द करदे ।५८। सत्यभामाने कहा हे द्विजोत्तम ! भोजन करो मैं इस समय तुम्हारी आकंठ तृप्ति न होने तक अर्थात् जबतक तुम्हारा पेट गलेतक न भर जावे तब तक परोसाऊँगी ।५९। ऐसा सुनते ही प्रद्युम्न जिस तरह भूखा हाथी खाता है, उस तरह बड़े बड़े कवल जल्दी २ बेसिल-सिले खाने लगा। क्षुधा की आकुलतासे "लाओ ! लाओ ! परोसो ! परोसो" कहकर जो कुछ बर्तन में परोसा जाता था, वह उसे झट निगल जाता था, बर्तनमें रह ही नहीं पाता था ।६०-६१। इधर सेवक लोग सन्तुष्ट होकर उत्कृष्ट पात्रमें नाना प्रकारके भोजन ला लाकर परोसते जाते थे। उनके परोसने का कोई क्रम नहीं था। आगे पीछे एक साथ जो पक्वान्न उनके हाथमें पड़ता था, वह परोस जाते थे ।६२। उस समय भानुकुमारके विवाहमें यादवोंकी स्त्रियां निमन्त्रणमें आई थीं, वे भी कौतुकके वशसे नानाप्रकारका भोजन ला लाकर विप्रकुमारको विनोदके साथ परोसने लगीं। सो

विप्रदेव उसे भी शीघ्रतासे गिलंकृत करने लगे ।६३-६४। अनेकप्रकारके भूषणोंसे लदी हुई, चलते समय नूपुरोंका मनोहर शब्द करती हुयीं, तथा एक दूसरेके नितम्बादि अंगोंको छीलती हुयीं वे यौवनवती स्त्रियां विप्रकुमारको बड़े कौतुक से मंडक (फुलका) लड्डू, पूवे, बड़े, घेवर, फैनी, खीर, प्रचुर (चूरमा ?), खाजा, लापसी, भात, मूंगकी दाल, नानाप्रकारके शाक, घी, तेल, दूध, दही, तक्र (छाछ) आदि अच्छे २ पदार्थ परोसने लगीं। सत्यभामाके घरमें जितना पक्वान्न था, उन स्त्रियोंने वह सब परोस दिया, और विप्रने वह सब पेटमें रख लिया ।६५-६९। आखिर सत्यभामाके घरमें जो चीजें पूरी तैयार नहीं हुई, थीं, तथा जो पकी हुई नहीं थी, जैसे मूंग, चांवल, आटा, धान, जौ, गेहूँ, उड़द की दाल, आदि वे भी सब परोस दी गई, और महाराज उन्हें भक्षण कर गये ।७०-७१। इसके पश्चात् हाथी घोड़ोंके लिये जो यवागू (दलिया) बनाई गयी थी, वह भी परोसी गयी। सो उस भूखसे विकल हुए विप्रने वह भी उदरस्थ करली ।७२।

सत्यभामाके घरमें इस बातका बड़ा भारी कोलाहल मच गया कि, एक कोई बड़ा भारी प्रेत विप्रका रूप धारण करके आया है। सत्यभामाके घर पुत्रके विवाहके लिये जितना भोजन तैयार हुआ था, वह सबका सब भक्षण कर गया है। न जाने हररोज वह क्या खाकर जीता होगा ।७३-७४। इस प्रकार कहती हुई अनेक स्त्रियां एक दूसरेके शरीरको छीलती हुयीं तथा नितम्बों और स्तनोंको पीड़ित करती हुयीं कौतुक देखनेके लिये दौड़ी आयीं और उसे बड़ी उत्कंठासे देखने लगीं। तब तक वह विप्र जो कुछ परोसा गया था, उसको भी भक्षण करके, 'मुझे जल्द भोजन लाओ,' इस प्रकार जोर जोरसे बोलने लगा। ये लोग मेरी थालीमें अन्न क्यों नहीं परोसते हैं। अथवा इसमें तुम्हारा क्या दोष है। सत्यभामा ही बड़ी दरिद्रा और कंजूस है ।७५-७७। हे सत्यभामा मेरे मनोहर वचन सुन। देख भानुकुमार सरीखा तेरा पुत्र है, नारायण तेरा पति है, विद्याधरोंका राजा तेरा पिता है और समस्त स्त्रियों

की स्वामिनी-पट्टरानी है। इतने पर भी तू इतनी कृपणता क्यों करती है ? मैं एक स्वल्पभोजी अर्थात् बहुत कम खानेवाला ही जब तुझसे तृप्त न हुआ, तो हे दुष्टनी ! दूसरे लोग तेरेसे कैसे प्रीतिको प्राप्त होंगे।७०-८०। मैं समझता हूँ कि तेरे जैसी कृपणाका अन्न मेरे उदरमें ठहरेगा ही नहीं, अतएव हे पापिनी मूर्खा ! अपना यह सब अन्न तू ले।८१। ऐसा कहकर उस विचित्र विप्रने अपना पेटका सब का सब अन्न सत्यभामा आदिके सामने वमन कर दिया, जिससे सारा आँगन और घर भरगया। उसमें सत्यभामा, सबके सब विप्र और सारी स्त्रियां डूब गयीं। चित्रसारी, चित्राम, वस्त्रोंके रखनेकी पेटियां शीतकी रक्षा करने वाले वस्त्र, रूईके गद्दे, और अधिक क्या कहा जावे, सारा घरका घर विप्रके वमन में (उल्टीमें) मग्न हो गया।८२-८५। तत्पश्चात् सब जल हरण करके अर्थात् पीकरके प्रद्युम्नकुमार वहां से निकल पड़ा। सो गलीके बाहर आकर चिन्ता करने लगा कि अब मैं कहां जाऊँ ? फिर सोचा, चलो, यह मार्ग जहां को गया हो वहीं चलें।

थोड़ी दूर आगे चलकर प्रद्युम्नकुमारने एक सुन्दर मन्दिर देखा, जो हाथी, घोड़ों और मनुष्योंसे खचा खच भरा था तथा जिसमें बड़ा भारी उत्सव हो रहा था। उसे देखकर उसने अपनी विद्या से पूछा कि यह सुन्दर महल किसका है, सो मुझे बतला। विद्याने कहा, हे नाथ ! यह तुम्हारी माता रुक्मिणीका उत्सव पूर्ण मन्दिर है। यह सुनकर कामकुमार बहुत प्रसन्न हुआ।८६-६०। उसने उसी समय एक क्षुल्लकका वेष धारण कर लिया, जिसका शरीर दुबला पतला तथा अतिशय कुरूप था, मुंह दुर्गन्धयुक्त था, दांत सफेद थे सिर छोटा था नेत्र बुरे थे शरीर सूखा हुआ था जो कुलक्षणी था जिसके पैर बड़े थे हाथ छोटे थे जो बहुत ही काला था, नाक तथा अंगुलियां टेढ़ी मेढ़ी थीं जांघें सूखी हुई देखनेमें बुरी मालूम होती थीं स्फिच अर्थात् कमरके मांसपिंड (कूले) तुचके हुए थे पीठ और जानु भग्न थीं पेट बड़ा था जो हाथमें दंड और नारियलकी खोपरी लिये हुए था लंगोटी लगाये था कपड़े

का एक छोटासा अंगोछा भिक्षापात्र तथा कमंडलु लिये हुए था दीन था और जिसके पैर तथा हाथों की अंगुलियाँ फैली हुई थीं। इसप्रकारके ब्रह्मचारी क्षुल्लकका रूप बनाकर वह अपनी माताके महलमें घुसा।६१-६५। वह महल जहां तहां नानाप्रकारकी मणियोंसे जड़ा हुआ बड़ा ही सुन्दर था। भेरी दुंदुभी शंख मृदंग पटह वीणा वाँसुरी ताल झल्लरी पणव (ढोल) आदि बाजोंके नादसे सब ओरसे शब्दायमान हो रहा था।६६-६७। चन्दन तथा कालागुरुकी धूपके धूंएसे व्याप्त होकर सारे नगर और आकाशको सुगंधित कर रहा था। ऐसे महलमें प्रवेश करके क्षुल्लकने जिनमंदिरके आगे एक उत्तम कुशासनपर बैठी हुई रुक्मिणी देवीको देखा, जिसे चारों ओरसे अनेक स्त्रियां घेरे हुए थीं जो अनेक व्यापारोंमें लगी हुई थी जो सम्पूर्ण गुणोंवाली थी नील कमलके समान सुन्दर शरीरको धारण करती थी जिसका मुख पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान सुन्दर था बन्धूकके (दुपहरियाके) फूल तथा पकी हुई कुन्दरूके समान जिसके होठ थे फूले हुए कुन्दके समान जिसके दंतोंकी पंक्ति थी, कमलके समान जिसके हाथ तथा पैर थे, और जो चमकते हुये सुवर्ण तथा रत्नोंके मनोहर आभूषण पहने थी। इस प्रकार सम्पूर्ण लक्षणोंकी धारण करने वाली और सम्पूर्ण अवयवों से सुन्दर उस महाराणीको देखकर प्रद्युम्नकुमार सोचने लगा क्या यह इन्द्राणी है? अथवा कीर्ति, सरस्वती, सूर्यकी स्त्री, महादेवकी पार्वती, धरणेन्द्रकी इन्द्राणी, इनमेंसे कोई है? मैं तो समझता हूं जितनी देवांगनायें हैं, वे सब इसके रूपसे जीती गई हैं? अथवा ब्रह्माजी ने सारे जगतकी स्त्रियों के रूपका सार लेकर श्रीकृष्णजीके सन्तोष के लिये यह दिव्य मूर्ति बनाई है। ऐसा मैं निश्चयपूर्वक समझता हूँ।९८-७०६। रुक्मिणी माता को जिनेन्द्र भगवानके मन्दिरके आगे मंडपके नीचे विराजमान देखकर प्रद्युम्नकुमारने संतुष्टचित्त होकर मन ही मन नमस्कार किया। सो ठीक ही है, उत्तम तथा पूज्य वंशमें उत्पन्न हुआ ऐसा कौन है, जो पूज्य पुरुषोंमें विनयवान होकर प्रीति नहीं करता है अर्थात् सभी करते हैं।७-८।

क्षुल्लक वेष धारण करनेवाले उस पुरुषको आता हुआ देखकर जिनधर्मकी प्रभावना करनेवाली रुक्मिणी अपने आसन से उठ बैठी, और सन्मुख जाकर उसने पृथ्वीपर मस्तक टेककर उसके चरण कमलको नमस्कार किया–तथा इच्छाकार किया। उसकी महान विनयको देखकर ब्रह्मचारी क्षुल्लकने कहा, हे माता ! भवभवमें तुझे दर्शनकी शुद्धि प्राप्त हो।६-११। इसके पश्चात् वह मूर्ख क्षुल्लक रुक्मणीके दिये हुए सिंहासनपर जो कि अपने रत्नोंकी किरणोंसे पृथ्वीको उद्योतरूप कर रहा था, बैठ गया।१२। रुक्मिणी खड़ी रही ! ऊंचे तथा विशाल स्तनोंके भारसे उसकी क्षीण कटि पीड़ित हो रही थी। उसे बड़ी देर तक खड़ी रहनेसे दुःखी देखकर क्षुल्लकने इसप्रकार मनोहर वचन कहे कि, माता ! यहां मेरे आगे बैठ जा।१३-१४। उसके इसप्रकार कहनेपर धर्मके स्नेहसे परिपूरित रुक्मिणी बैठ गयी और सम्यक्त्वसम्बन्धी चर्चा करने लगी।१५। एक दूसरेपर प्रीति करनेवाले, जिनशासनकी भावना भानेवाले, मीठीवाणी बोलनेवाले, चतुर, तथा सब प्रकारकी विकारदृष्टिसे रहित वे दोनों कुछ समय तक धर्मसम्बन्धी वार्तालाप करते रहे। इतनेमें क्षुल्लक वेषधारीने प्रीतिपूर्वक कहा, उत्कृष्ट आशयकी धारण करनेवाली हे रुक्मणी देवी ! मैं अनेक तीर्थ करके और बहुतसे देशोंको देखकरके सम्यक्त्वके विषयमें तेरी सुप्रसिद्धि सुनकर यहां आया हूँ, परन्तु पहले जैसी तेरी प्रशंसा सुनी थी वैसी तू इससमय नहीं दिखती है।१६-१६। मैं रास्ता चलनेके श्रमसे बहुत ही थक गया हूँ, दुःखी हूँ, परंतु तूने पांव धोनेके लिये जरासा गरम पानी भी नहीं दिया !।२०। और न भोजनकी ही कुछ चिंता की। विवेकसे रहित होकर तूने धर्मचर्चा करना शुरू कर दी है।२१। क्षुल्लकका वचन सुनकर रुक्मिणी विचारने लगी, सचमुच ही मैं विवेक रहित हो गयी हूं। ये महाराज जो कहते हैं, सो सर्वथा सच है।२२। यह सोचकर उसने अपने सेवकोंसे कहा, जल्दी थोड़ा गरम जल ले आओ, जिससे महाराजके चरणोंको धो दूं।२३। सुनते ही सेवक लोग जल लेनेको गये, परन्तु वहां प्रद्युम्नने अपनी विद्याकी मायासे अग्निको स्तंभित

कर दी थी; जिससे पानी ठंडा हो गया, और अग्नि जली नहीं। फिर क्षुल्लकजी ने कहा, गरम पानी नहीं है, तो न सही, परन्तु मैं भूखसे पीड़ित हूँ। इससे यदि तेरे यहां भोजन है, तो ला जल्दीसे करादे। मैं क्षणभर नहीं बैठ सकता हूँ। बोल, मैं भूखके मारे क्या करूं ? ।२४-२६। मैं प्राणहीन हुआ जाता हूँ। ला ! मुझे जल्द ही भोजन दे दे। यह सुनकर रुक्मिणी स्वयं ही शीघ्रता से उठी, और अपने हाथसे अग्नि चैतन्य करनेमें तत्पर हुई। परन्तु वह तो स्तम्भित कर दी गई थी, कैसे जले ? रुक्मिणी धुएं के मारे आकुल व्याकुल हो गई, बाल बिखर गये, पर आग नहीं जली। इतना होनेपर भी हृदयमें जिनधर्मकी वासना होनेके कारण रुक्मिणी का चित्त जरा भी मैला न हुआ।२७-२६। उसे आग चैतन्य करनेमें व्याकुल देखकर क्षुल्लक महाराजने कहा, माता अब गरम जलका प्रपंच रहने दे। यदि तेरे घरमें कुछ बनाया पक्वान्न हो, तो वही मुझे दे दे। क्योंकि भूखके कारण मर जाने पर तेरे दिये हुए भोजनसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? इस प्रकार भूखसे व्याकुल होकर वह चिल्लाने लगा ।३०-३२। उसे सुनकर जिन बर्तनमें पक्वान्न रक्खा हुआ था, रुक्मिणी उन्हें देखने लगी। परन्तु कुछ भी प्राप्त न हुआ। प्रद्युम्नने अपनी विद्याके प्रभावसे सब कुछ लोप कर दिया था ।३३। सब जगह देख चुकनेपर रुक्मिणीको एक बर्तनमें दश लड्डू मिल गये, जो श्रीकृष्णमहाराजके लिये रक्खे हुये थे। उन्हें कृष्णजी बड़ी कठिनाईसे एक खा सकते थे। लड्डू देखकर रुक्मिणी चिंता करने लगी कि, इस दुबले पतले ब्रह्मचारीको यदि ये मोदक दे देती हूँ, तो यह अवश्य ही मर जावेगा, और हत्या मुझे लगेगी। और घरमें दूसरा कोई भोजनका पदार्थ दिखता नहीं है, तथा ये भूखसे मरा जा रहा है, सो यदि लड्डू नहीं देती हूँ, तो यह गालियाँ देगा ।३४-३७। यह सोचकर उसने डरते २ क्षुल्लकके आसनपर एक थाली रख दी और उनके हाथ धुलवाये। क्षुल्लक शीघ्रतासे हाथ धोकर बोले,—लाओ, जल्दी परोसो मैं ठहर नहीं सकता हूँ ।३८-३९। रुक्मिणी एक और चिन्ता में पड़ी

कि, यदि आधा लड्डू परोसती हूँ तो ये क्रोधित होंगे और पूरा परोसती हूँ, तो ये पचा नहीं सकेंगे।४०। उसे इस प्रकार उलझनमें पड़ी देखकर ब्रह्मचारी क्रोधसे लाल पीले होकर बोले, माता! तू कंजूसीके कारण लड्डू नहीं परोसती है। इसमें जराभी सन्देह नहीं है कि, तू कंजूस है। आखिर रुक्मिणीने एक लड्डू परोस दिया। परोसनेकी देर थी कि, वे उसे खा गये और "परोस! परोस!" इस प्रकार कहकर और मांगने लगे। रुक्मिणीने दूसरा लड्डू भी परोस दिया, सो ब्रह्मचारीने उसको भी खाकर तीसरे के लिये चिल्लाना शुरू कर दिया। इस प्रकार रुक्मिणीने वे सबके सब मोदक परोस दिये और वह उन सबको भक्षण करके "और लाओ और लाओ!" कहता गया। तब रुक्मिणी दशों लड्डू खिलाकर दूसरे घरमें भोजन ढूंढनेके लिये गई परन्तु जब कुछ न मिला, और व्याकुल होने लगी तब उसको बोला, हे माता बस, मैं सन्तुष्ट हो गया, अब रहने दे।४१-४३। ऐसा कह कर तथा आचमन करके उठ आया और बाहर जहां रुक्मिणीने आसन बिछा दिया था, वहां आ बैठा।४४। इस प्रकार प्रद्युम्नकुमार अपनी माताके धर्मानुरागकी परीक्षा करके बहुत प्रसन्न हुआ।४५।

रुक्मिणी महाराणी जिस समय उसके आगे बैठी हुई सम्यक्त्वसम्बन्धी चर्चा वार्ता कर रही थी, उस समय श्रीसीमन्धर भगवानने प्रद्युम्नकुमारके आगमनके समयके सूचित करने वाले जो चिह्न बतलाये थे वे सब प्रगट हो गये।४६-४७। महलके आगे जो सूखा हुआ अशोकका वृक्ष लगा था, वह पुष्पों और फलोंके गुच्छोंसे लद गया, गूंगे आदमी बोलने लगे, कुरूपवान सुरूपवान हो गये, कुबड़े सुडौल हो गये और अन्धे सूझते हो गये।४८-४९। सूखी हुई बावड़ी जलसे भर गई और उसमें कमल खिल गये; बगीचोंमें कोयल और मयूरोंके मनोहर शब्द होने लगे।५०। बिना समयके बसंतऋतु आ गई। पुष्प और फलोंसे लदे हुए वृक्षोंपर भौंरोंका झंकार सुन पड़ने लगा।५१। ये सब बातें रुक्मिणीके चित्तको बड़ी ही प्यारी मालूम होने लगी। हर्षित होकर उसने सोचा, ये सब लक्षण

मेरे पुत्रके आगमनके सूचक हैं, परन्तु पुत्र नहीं दिखलाई देता है, इसका क्या कारण है? ।५२ ५३। मेरे शरीरमें रोंगटे खड़े हो रहे हैं; मन में प्रसन्नता हो रही है, स्तनोंसे दूध झरता है और दिशायें निर्मल दिख रही हैं परन्तु मेरा पुत्र नहीं दिखता है। कहीं यह ब्रह्मचारी ही मेरा पुत्र न हो। यदि यह निन्दित और कुत्सितरूपवाला ही मेरा पुत्र हुआ, तो सत्यभामाको मैं अपना मुँह कैसे दिखलाऊँगी? वह बुरे आशयकी धारण करनेवाली घमंडिनी अवश्य ही मेरी हँसी करेगी।५४-५६। मैं बड़ी ही पुण्यहीन हूँ। मेरा बड़ा भारी अपमान होगा। इस प्रकार चिन्ता करते २ रुक्मिणीको एक दूसरी चिन्ता यह हुई कि मेरी कूंख में श्रीकृष्णनारायणका पुत्र ऐसा कैसे हो सकता है? क्योंकि बीज तो क्षेत्र के सम्बन्धसे अच्छा बुरा होता है। अर्थात् बुरे खेतमें पड़कर बीज बुरा हो जाता है, और अच्छे खेतमें पड़कर अच्छा होता है।५७-५८। अतएव मेरे गर्भसे जिसकी उत्पत्ति हुई, वह पुत्र तो बलवान, रूपवान, विद्यावान, गुणी, कीर्तिवान, प्रसिद्ध और श्रेष्ठ होना चाहिये। ।५९। अथवा क्षेत्र की प्रमाणताका भी क्या निश्चय हो सकता है? अर्थात् यह भी तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि अच्छे खेत से अच्छा ही फल होता है। जीवधारी पुण्य और पापके प्रभावसे रूपवान तथा कुरूप होते हैं।६०। यदि प्राणियोंके रूप कुरूप होनेमें क्षेत्रकी ही प्रमाणता हो तो भोगभूमिके उत्तम क्षेत्रमें हरिण, ऊँट, सिंह, हाथी आदि जानवर क्यों उत्पन्न होते हैं।६१। अथवा मैं यह विकल्प ही क्यों कर रही हूँ? पहले मैंने नारदजीके मुँहसे सुना था कि मेघकूट नगरमें विद्याधरके यहां तेरा पुत्र वृद्धिको प्राप्त हो रहा है।६२। वह सम्पूर्ण विद्याओं का कलाओंका तथा विद्याधरोंका प्रभु होगा, इसमें संशय नहीं है। क्या आश्चर्य है कि वह ही विद्याके प्रभावसे मनोहर माया करके मेरे चित्तकी परीक्षा करनेके लिये यहां आया हो।६३-६४। परन्तु सोलह लाभोंको प्राप्त करनेवाला, दो विद्याओंसे विभूषित और शत्रुओंका जीतनेवाला वह यह

क्षुल्लक कैसे हो सकता है ।६५। इस प्रकार बहुत समय तक सोच विचार करके रुक्मिणी महाराणी शीलरूपी भूषणको धारण करनेवाले क्षुल्लकसे बड़ी विनयके साथ रमणीय वचन बोली—महाराज ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ । कृपा करके आप अपने माता पिता तथा भाइयोंकी कथा कहकर मेरे कानोंको सुखी करो ।६६-६७। रुक्मिणीके वचन सुनकर ब्रह्मचारी वेषधारी बोला, हे उत्तम श्राविके ! जिन्होंने अपने घरको छोड़ दिया है, यतियोंका व्रत धारण किया है, सम्पूर्ण इच्छायें छोड़ दी हैं और रागद्वेष को तज दिया है वे समतासे शोभित होने वाले मुनि यति तथा ब्रह्मचारी अपनी जाति कुल तथा भाई बन्धुओंकी कथा कैसे कह सकते हैं ? ।६८-६९। और हे माता ! तू तो सम्यक्त्व की धारण करने वाली है तुझे मुनियोंसे कुल जाति सम्बन्धी कुशलता का प्रश्न नहीं करना चाहिये ।७०। क्या तूने कभी जिन धर्म में जाति तथा कुलसे हीन पुरुष हुए सुने हैं, जो हे माता मुझसे ऐसा प्रश्न करती है ।७१। यदि मैं ऊंचे कुलका हुआ तो तू क्या करेगी और नीचेका हुआ, तो तू क्या करेगी, नीच और ऊंच होनेसे तेरा क्या उपकार अपकार होगा ।७२। इतने पर भी हे रुक्मिणी तू मूढ़ताके वश व्यर्थही मुझसे पूछती है, तो सुन—हमारा श्रीकृष्ण नारायण तो पिता है और तू माता है ।७३। क्योंकि श्रावक ही यति मुनियोंके माता पिता कहे गये हैं । अतएव अब कह कि यति मुनियोंके भाई बन्धुओंकी कथा क्या पूछती है ।७४।

इस प्रकार सन्तुष्टचित्त होकर जब रुक्मिणी और क्षुल्लकवेषधारी प्रद्युम्न बातचीत कर रहे थे, उस समय सत्यभामाको पूर्वमें की हुई उस प्रतिज्ञाकी याद आई, जो पहले रुक्मिणी और सत्यभामा के बीचमें हुई थी, और जिसे सब लोग जानते थे । इसलिये उसने जल्दी ही नाईके सहित बहुतसी दासियोंको रुक्मिणीके घर उसकी चोटी लेनेके लिये भेजा, सो वे मणियोंकी थाली वगैरह लिये हुए गाती हुईं आईं । जब वे सब रुक्मिणीके महलकी गलीमें आकर पहुँची, तब उन्हें एकाएक आई

देखकर रुक्मिणी अतिशय दुःखी हुई और उसके उद्वेगसे वह आंसू बहाने लगी। उसकी ऐसी चेष्टा देखकर क्षुल्लकने पूछा, तुझे एकाएक शोकका उद्वेग कैसे हो गया इसका कारण मुझे जल्द ही बतला।७५-८०। क्षुल्लकका प्रश्न सुनकर रुक्मिणी गद्‌गद्‌वाणीसे बोली हे महाराज इसका कारण मैं आपसे कहती हूँ। आप एकचित्त होकर सुनें।८१। आप जैसे यतियोंसे दुःखका कारण निवेदन करनेसे दयाधर्मके प्रभावसे वह दुःख नष्ट हो जावेगा;—।८२।

"मेरे पतिकी सत्यभामा नामकी एक पहली रानी है, जो विद्याधरकी पुत्री है, कलावती गुणवती और पापरहित है।८३। और मैं यद्यपि भूमिगोचरी राजा भीष्मकी पुत्री हूँ, तो भी मुझपर किसी पूर्व पुण्यके प्रभावसे मेरे पति (श्रीकृष्ण) प्रसन्न रहते हैं।८५। हम दोनोंने पहले एकबार घमंडमें आकर अच्छे २ साक्षियोंके साम्हने एक प्रतिज्ञा की थी कि, हम दोनोंमेंसे जिसके पहले पुत्र होगा, उसीके पुत्रका पहले विवाह होगा। और विवाह के समय जिसके पुत्र नहीं होगा, वह अपनी चोटीके बालोंसे पुत्रवतीके पैर पूजेगी।८५-८७। हम दोनोंने पूर्वमें अतिशय गर्वसे यह प्रतिज्ञा की थी, सो पहले सम्पूर्ण लक्षणोंवाले पुत्रका जन्म मेरी कूंखसे हुआ और उसके पीछे उसी दिन सत्यभामाके भी कमलोंके समान नेत्रवाला भानुकुमार नामका विचक्षण पुत्र हुआ।८८-८९। परन्तु मैं ऐसी पुण्यहीन निकली कि कोई पूर्वभवका वैरी दुष्ट दैत्य मेरे बालकको हर ले गया। और सत्यभामाके पुण्यसे भानुकुमार क्रम क्रमसे बढ़ने लगा। सो ठीक ही है, सब सुख पुण्यसे प्राप्त होते हैं। भानुकुमार अब विवाहके योग्य हो गया है। और हस्तिनापुरके राजा दुर्योधनकी उदधिकुमारी नामकी गुणवती कन्या अपने पिताकी भेजी हुई उस अनुरागी भानुकुमारको वरणके लिये आई है। आज उन दोनोंका विवाह होनेवाला है। सो प्रतिज्ञाके अनुसार मुझ पुण्यहीनाके मस्तकके बाल लेनेके लिये सत्यभामा की दासियां नाईको लेकर आई हैं।९०-९४।

मेरे सिरके बाल लिये जावेंगे, इस भयसे मैं पहले ही नगरके बाहर मरने लिये जाना चाहती थी। परन्तु उसी समय नारदजीने आकर पुत्रके आगमनका शुभ समाचार कहकर मुझे तृप्त कर दिया था। इससे मैंने अपने मरनेकी इच्छा आनन्दके साथ छोड़ दी थी।९५-९६। श्रीसीमंधर भगवानने पहले नारदजीसे पुत्रके आगमन समयके जो जो सुन्दर चिह्न कहे थे, वे सब इस समय मेरे घरपर हो रहे हैं, परन्तु मेरा पुत्र अभी तक नहीं आया। हाय! मेरी आशा नष्ट हो गई। अब मैं क्या करूं।९७-९८। नारदने मेरे साथ बड़ी शत्रुता की, जो वे मेरे मरनेमें आड़ हो गये। मैं मरना चाहती थी, सो उन्होंने नहीं मरने दिया। न मेरा पुत्र ही आया, और न मैं मर ही पाई। हाय! मैं दोनों ओरसे भ्रष्ट हो गई। अब क्या करूं।९९। इस प्रकार ब्रह्मचारी क्षुल्लकको अपने दुःखका कारण निवेदन करके रुक्मिणी आंसू बहाने लगी। यह देखकर प्रद्युम्नने कहा, हे माता! व्यर्थ ही शोक मत कर। मेरी बात सुन,-तेरा पुत्र जो कार्य करता, क्या वह मैं नहीं कर सकता हूं।८००-८०१। प्रद्युम्नकुमार माताको इसप्रकार समझाकर सत्यभामाकी दासियोंके आगे जो उसने केश लेनेके लिये भेजी थीं, इस प्रकारकी विक्रिया करने लगे।२।

उन्होंने एक मायामई नई रुक्मिणी बनाई जो सब प्रकारके आभरणोंसे सुसज्जित थी, दिव्य थी, और सिंहासन पर विराजमान थी। और असली रुक्मिणीको लुप्त करके आप स्वयं कंचुकीका रूप धारण करके सिंहासनके आगे खड़ा हो गया।३-४। इतनेमें सत्यभामाकी सब दासियां नाईके साथ रुक्मिणीके समीप आयीं, और बड़ी नम्रतासे डरती २ इसप्रकार बोलीं; हे माता! हमारा इसमें कुछ भी दोष नहीं है। हम तो नीच सेविका हैं। स्वामिनीने हमको भेजा है। हम स्वामिनीकी आज्ञासे यहां आई हैं। यदि दूषण है, तो सत्यभामाका है, जिसने हमको भेजा है।५-७। यह सुनकर मायामई रुक्-मिणी बोली, तुम अब आयीं, सो अच्छा किया। अब बतलाओ कि, तुम किसलिये आई हो? अपने

आनेका कारण निवेदन करो ।८। तब वे सब बोलीं, आपने पहले सभाके बीचमें बलदेवजीकी साक्षीपूर्वक कोई प्रण किया था । सो आज उसीका स्मरण करके सत्यभामाने हमको भेजा है । हम आपकी चोटी लेनेके लिये आई हैं । आप देवें या न देवें, इसमें आपकी इच्छा है । हमारा जरा भी दोष नहीं है ।९-१०। रुक्मिणीने यह सुनकर कहा, अच्छा किया, जो तुम आईं । लो, चोटी ले जाओ । हे नाई ! तू इधर आ, व्यर्थ भय मत कर । हे स्त्रियोंसे घिरे हुए नाई ! ले मेरी मनोहर वेणी काट ले ।११-१२। यह सुनकर स्त्रियोंने हर्षित होकर दही, दूर्वा, अक्षत आदि मंगलीक पदार्थों से युक्त चौकीको आगे रख दी और नाई अपना छुरा निकाल कर समीप आया । सो बड़े आनन्दके साथ रुक्मिणीके आगे बैठा ।१३-१४। यह देख मायामई रुक्मिणी अपना मस्तक उघाड़ कर बोली, लो इसमेंसे जितने केश चाहिये, लो । डरो मत ।१५। नाई बोला, माता ! इसमें मेरा दोष नहीं है । मुझे लाचार होकर यह करना पड़ता है । रुक्मिणी बोली, सच है–तेरा जरा भी दोष नहीं है । तू निर्भय होकर मेरी सारी अलकोंको मूड़कर ले ले । यह सुनते ही नाऊ रुक्मिणीके सिरपर शीघ्रतासे छुरा चलाने लगा और स्त्रियां चौकीको ले करके गीत गाने लगीं, तथा बड़ा भारी उत्सव मनाने लगीं । उसी समय ऐसी लीला हुई कि, नाऊने अपनी नाक काटली ।१६-१८। फिर अपनी हाथकी अंगुलियां कान, वेणी तथा इसी प्रकारसे दूसरी स्त्रियोंकी भी नाक अंगुली आदि काट लीं । प्रद्युम्नकी मायासे वे सब एक दूसरेकी ओर कौतुकसे देखती थीं, परन्तु उनके चित्तपर ऐसी मूर्खता छा गई थी कि, न तो वे स्त्रियां जानतीं थीं कि, हमारे नाक कट गये हैं, और न वह नाऊ ही जानता था ।१९-२०।

इसके पश्चात् वे सब स्त्रियां तथा नाई वगैरह पुरुष आपसमें रुक्मिणीको प्रशंसा करने लगे कि अहा ! इसके वचनोंमें कितनी कोमलता है, कैसी सुजनता है और कैसी सुन्दर वाक्यता है। सचमुच ही यह गुणोंकी पवित्र घर है। रुक्मिणीके समान न तो कोई स्त्री हुई है और न होगी ।२१-

२२। इसप्रकारसे गुणोंका गान करती हुईं वे स्त्रियां नाईके साथ चौराहे पर चलने लगीं। सो उन्हें देख देखकर नगरके लोग हँसने लगे ।२३। वे अपने चित्तमें समझती थीं कि ये हमारा मनोहर रूप देखकर और उसमें मोहित होकर हँसते हैं, परन्तु लोग उनके नाक कान कटे हुए विचित्र रूपको देख कर हँसते थे ।२४।

हर्षसे परिपूरित हुयीं वे सब स्त्रियां नाऊके सहित नाचतीं गातीं कुछ समयमें सत्यभामाके घर पहुँच गयीं। उन्हें अपने आगे खड़े २ रुक्मिणीके गुणोंका वर्णन करती देखकर सत्यभामा बोली; तुम सब आनन्दसे हँसती हुई यहां किसका स्तवन कर रही हो और क्यों करती हो। यह सुनकर नाऊ बोला; हे देवी ! हम सर्वगुणसम्पन्ना रुक्मिणीकी सच्ची स्तुति करते हैं। वह कृष्णकी प्यारी बड़ी ही प्रियवादिनी है। उसने हमको अपने केश बड़ी विनयके साथ हर्षपूर्वक ले लेने दिये। यह सुनकर सत्यभामा बोली, हे युवतियों ! मुझसे कहो कि तुम्हें ऐसी विलक्षण रूपवाली किसने कर दी है ? और हे नाऊ ! यह तेरी नाक भी बतला किसने काट डाली है ? और सबोंके कान, नाक, सिरके बाल तथा अंगुलियां किस पापीने काट डाली हैं ।२५-३१।

सत्यभामाके वचन सुनकर नाऊ और वे सब स्त्रियां अपने २ हाथोंसे अपने अपने सिर, कान, नाक टटोलने लगीं। जब जाना कि सचमुच ही नाक कानोंकी सफाई हो गई है, तब सब अपने २ अंगोंको ढँकने लगीं और लज्जासे आकुल व्याकुल हो गईं। कटे अंगोंमें रक्तके गिरनेसे बड़ी भारी वेदना होने लगी, जिसके दुःखसे पीड़ित होकर वे सब जोर जोरसे चिल्लाने लगीं ।३२-३४।

यह दुर्दशा देखकर सत्यभामा क्रोधसे लाल २ आंखें करके बोली, बतलाओ किस पापीने यह उपद्रव किया है ? तब उन सबने रोते २ जवाब दिया कि हम सब कुछ नहीं जानते हैं। रुक्मिणी ने तो हमको सन्तोषके साथ अपने सिरके बाल ले लेने दिये थे। उसके केशोंको देखकर हमारी बुद्धि

आनन्दमें मग्न हो गई थी। यह तो हमने आपके वचनोंसे जाना है, नहीं तो हमको कुछ भी सन्देह नहीं था ।३५-३८। उसके यह वचन सुनकर सत्यभामाको बड़ा भारी क्रोध आया । क्योंकि सेवक लोगों के पराभव होनेमें स्वामीका ही पराभव समझा जाता है ।३९। वह बोली इसमें रुक्मिणीका कुछ दोष नहीं है । विवेक रहित कृष्ण गोपालकी (ग्वालाकी) ही यह करतूत होगी ।४०। स्वामीकी आज्ञा पाकर ही रुक्मिणीने यह उपद्रव किया होगा । कहावत है कि बिना यमराजकी आज्ञाके बालक भी नहीं मरते हैं (?) ।४१। यदि वह अपनी बेणीके बाल नहीं देना चाहती थी, तो न देती । मेरी दासियोंकी विडम्बना-दुर्दशा उसने क्यों की ।४२। यह तो मैं जानती हूँ कि रुक्मिणी श्रीकृष्णजीकी वल्लभा है । तथापि मेरे लोगोंकी तो उन्हें दुर्दशा नहीं करानी थी ।४३। ऐसा कहकर सत्यभामा अपने मन्त्रियोंसे बोली कि श्रीकृष्णजीकी सभामें मेरी इन दासियोंको तथा नाऊको ले जाकर बलदेवजीके समक्ष में रुक्मिणीका यह चरित्र कहो ।४४-४५। सत्यभामाकी आज्ञानुसार मन्त्रिगण दासी आदिको लेकर शीघ्रतासे यदुवंशियोंकी सभाकी ओर रवाना हुए । इतनेमें कृष्णजीकी दृष्टि सत्यभामाकी दासियों पर पड़ी । उनकी नाक कानकी विडम्बना देखकर वे सारी सभाके सहित खूब जोरसे हँस पड़े ।४६-४७। उन्हें हँसते हुए देखकर मंत्रियोंने अपने मनमें विचार किया कि अवश्य इन्होंने रुक्मिणीको सिखलाकर उपद्रव कराया है । अतएव इनके आगे जो पुकार की जावेगी, वृथा जावेगी, ऐसा निश्चय है । हाँ ! बलदेवजी से बेधड़क होकर कहना चाहिये ।४८-४९। ऐसा विचारकर मंत्रियोंने सभामें उपस्थित होकर रुक्मिणीके द्वारा पहले की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार वेणी लेनेके लिये गई हुई सत्यभामाकी दासियों की तथा नाऊकी जो दुर्दशा हुई उसका सब वृत्तान्त कह सुनाया । उसे सुनकर कृष्णजीने पूछा कि उसने इन सबके कान नाक और बाल कैसे काट लिये ? ये तो दासियां वगैरह बहुतसी दिखती हैं ? उस अकेली ने इन सबकी विडम्बना कैसे की ? कृष्णजीके ऐसे वचन सुनकर बलदेवजी क्रोधित होकर

बोले, ।५०-५३। मेरी जामिन देकर और सम्पूर्ण यादवोंकी साची (गवाह) बनाकर अब रुक्मिणी जो इस प्रकार उपद्रव करती है, सो किसकी शक्तिसे करती है ।५४। उसके घमण्डको मैं क्षणभर में दूर कर दूंगा । मन्त्रियों ! तुम निश्चिन्त होकर अपने घर जाओ, मैं पापिनी रुक्मिणीको उसके अन्याय रूपी वृक्षका फल शीघ्र ही दिखलाऊँगा ।५५-५६। ऐसा कहकर उन्होंने मन्त्रियोंको अपने २ घर भेज दिया । सो वे सेवक जनोंके साथ सन्तुष्ट चित्त होकर चले गये । इसके पीछे क्रोधयुक्त बलदेवजीने अपने नौकरोंको रुक्मिणीका घर लूटनेके लिये भेजा ।५७-५८।

उधर रुक्मिणी और प्रद्युम्नकुमारका जो कुछ वृत्तान्त हुआ सो कहा जाता है । भव्य जनों को आदरपूर्वक सुनना चाहिये । सत्यभामाकी स्त्रियोंकी विडम्बना हो चुकने पर और उनके चले जाने पर प्रद्युम्नने कंचुकीका रूप बदलकर फिर क्षुल्लकका रूप धारण कर लिया । उसे फिरसे पूर्वरूपमें देखकर रुक्मिणी बोली, जो विद्याधरके गृहमें वृद्धिको प्राप्त हुआ है, तू वही मेरा प्यारा पुत्र है । और नारदजी ही तुझे ले आये हैं; अब इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा है । क्योंकि विद्याके बल बिना दूसरेकी ऐसी गति नहीं हो सकती है ।५९-६२। अब तुझे अपनी माताके साथ हास्य नहीं करना चाहिये । हे बेटा, अपनी मायाको समेटकर अब तू प्रगट हो जा ।६३। तूने बालकपनमें सम्पूर्ण विद्याधर राजाओंको अपने वशमें किये हैं, तुझे सोलह लाभ प्राप्त हुए हैं, तू सब विद्याओंका स्वामी है, और सुना है कि पूर्वमें विद्याधर तथा किन्नरोंने तेरा हित किया है । मैंने तेरे लेनेके लिये नारदमुनिको भेजा था ।६४-६५।

माताके यह वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार बोले, नारदजीके साथ तो मैं ही आया हूँ । परंतु जब मैं ऐसा कुरूप और सर्व लक्षणों से रहित हूँ, तब हे माता ! मुझ सरीखे पुत्रसे तेरा क्या कार्य सिद्ध होगा ? ।६६-६७। कुपूत पुत्रसे माता को लज्जित होना पड़ता है, यह बात निश्चित है । अतएव हे माता ! मुझे जाने दे । मैं कहीं दूसरी जगह चला जाऊँगा ।६८। ब्रह्मचारीके वचन सुनकर रुक्मिणी

बोली, बेटा ! तू जैसा है, तैसा ही सही। अब मेरे घर से मत जा; मैं नहीं जाने दूंगी, तू यहीं ठहर।६९।

मताके इसप्रकार कहते ही प्रद्युम्नकुमारने ब्रह्मचारी क्षुल्लकका रूप छोड़कर अपना उत्कृष्ट रूप धारण कर लिया। जिसका शरीर तपाये हुये सोनेके समान अतिशय शोभनीक था, फूले हुए कमलके समान जिसके नेत्र थे, पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान जिसका सुन्दर मुख था, जो सब प्रकारके आभरण तथा उत्तमोत्तम लक्षणोंसे युक्त था, नवयौवन वाला था, शंखके समान कण्ठ तथा विशाल वक्षस्थल था और जो नरनारियोंके चितको चुराने वाला था, ऐसा असली रूप धारण करके प्रद्युम्नने बड़ी भारी विनय के साथ माताके चरणको नमस्कार किया।७०-७३।

कामकुमारको इस प्रकार प्रणाम करते देखकर माता रुक्मिणीने हर्षित होकर उसे जल्द ही ऊपर उठा लिया और छातीसे लगा लिया। वह मोहके वश चिरकाल तक उसका आलिंगन करके और मुख तथा मस्तकका चुम्बन करके हर्षके वेगसे आँसू बहाने लगी।७४-७५। फिर बारम्बार आलिंगन करके वे दोनों माँ बेटे प्रसन्न चित्तसे अपने सुख दुःखकी बात करने लगे।७६। उस समय अपने विद्याविभूषित पुत्रके रूपातिशयको देख देखकर तृप्ति न पानेके कारण माता बोली, हे बेटा मुझ अभागिनीने तेरे जैसे पुत्रकी सबके मनको हरण करनेवाली बाल्यावस्था नहीं देख पाई। वह राजा कालसंवरकी रानी कनकमाला धन्य है, जिसने तेरा मनोहर बाल्यकाल देखा, और तुझे पुण्य के प्रभावसे पालकर बड़ा किया।७७-७९। मुझ अभागिनी पुण्यहीनाने तो तुझे कष्टपूर्वक नव महीने गर्भमें धारण करके बड़े दुःखसे जन्म दिया। मैं तेरी बाललीला देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकी। अथवा इसमें किसीका दोष ही क्या है ? सब मेरे कर्मोंका दोष है, कहा भी है, "भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्" अर्थात् सब कामोंमें भाग्य ही फल देता है। न विद्या काम आती है और न पुरुषार्थ काम आता है।८०-८१।

माता के दु:खसे भरे हुए वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार जिसको कि प्रेमकी लालसा लग रही थी, विनयपूर्वक बोला, माता यदि तुझे मेरे बालकपनके कौतुक देखनेकी इच्छा है, तो मैं उन्हें दिखला सकता हूँ। मुझे कोई भी काम दुर्लभ नहीं है। मैं सब कुछ कर सकता हूँ।८२-८४। "लो मेरा बालकपन जो दूसरे लोगोंके लिये दुर्लभ है, देखो।" ऐसा कहकर कामकुमार क्षणभरमें छोटासा बालक बन गया, जिसके अङ्ग उपांग उत्तम थे, आकार सुन्दर था, जो सब लक्षणोंवाला था, ऊपरको पैर और मुंह करके सोता था, भोला था, फूले हुए कमलके समान मुख था, चंचल हाथ पैरोंको हिलाता था, मुट्ठी बँधी हुई रखता था और लीला करता हुआ तथा थोड़ा थोड़ा मुस्कराता हुआ जमीनपर सरकता था।८४-८६*। इसप्रकारके बालकको देख माता बड़ी प्रसन्न हुई और उसे जल्द ही अपने हाथोंसे उठाकर दूध पिलाने लगी।८७। वह नाना प्रकारकी क्रीड़ा करनेमें चतुर बालक अपने आप धरती में बैठने लगा, खड़ा होने लगा, घुटनों तथा पैरों के बल से थोड़ा थोड़ा चलने लगा, माताके आगे उठ उठकर पड़ने लगा, हाथ पकड़के चलने लगा और फिर पृथ्वी पर गिरने लगा। इसके पश्चात् मणियोंके फर्श पर माताके हाथके आसरेसे पांवकी पैजनियोंका 'रुम झुम रुम झुम' शब्द करता हुआ चलने लगा। तोतली बोली बोलता हुआ माताका मन हरण करने लगा और क्षणक्षणमें बालकोंके योग्य नानाप्रकारके आभूषणोंसे शोभित होने लगा।८८-९१। धूलसे भरे हुए स्थानमें बहुत समय तक खेलने पर जब माताने बुलाया, तब बालक सारे शरीर को धूलसे भरे हुए तथा मुट्ठियों में भी धूल लिये हुए दौड़ा जाकर गले से लिपट गया और माताको अपूर्व सुख प्रदान करने लगा।९२-९३।

इसप्रकारसे यादवोंकी लक्ष्मीसे विभूषित कुमार बहुत समय बालक्रीड़ा करके और फिर दूसरे

---

* मूल प्रतिमें यहां श्लोक संख्यामें गलती हो गई है। ८६ और ८७ के अङ्क दो बार लिख गये हैं।

कारणका विचार करके नानाप्रकारके भोजन मांगने लगे, क्रोधित होकर भोजन लेकर फेंकने लगे, बारम्बार रोने लगे और जो कुछ माता देती थी, उसको न लेकर दूसरी २ भोजनकी चीजें मांगने लगे। उन्हें चीजें न मिलनेसे रोते देखकर माताने कहा, बेटा ! तू रो मत। मैं तेरा रोना सहन नहीं कर सकती हूँ।६४ ६६। माताके ये वचन सुनकर कामदेव हँसकरके बोले, माता ! मेरा रोना वह कनकमाला विद्याधरी तो सह लेती थी। ऐसा कहकर प्रद्युम्नकुमार तत्काल ही यौवनभूषित युवा होकर बड़े भारी हर्षसे माताके चरण कमलोंमें पड़ गये। यह देखकर उस विद्याविभूषित पुत्रका आलिंगन करके और मुख चूम करके माता रुक्मिणीने अतिशय सुख प्राप्त किया।९७-९९। पुत्रके अङ्ग स्पर्शसे किसको सुख नहीं होता है ? उन दोनों माँ बेटोंने उस समय इस बातको देखा, सुना और अनुभव कर लिया।१००। इसके पश्चात् रुक्मिणी और प्रद्युम्नबैठे हुए परस्पर वार्तालाप करने लगे। और इतनेहीमें बलदेवके भेजे हुए सेवक हथियार उठाये हुए आ पहुँचे।१।

उन्हें गलीमेंसे आते हुए देखकर प्रद्युम्नने अपनी माताके चरण कमलोंकी भक्तिपूर्वक वन्दना करके पूछा, हे माता ! यह सेवकलोग किसके हैं, जो शस्त्र उठाये हुए आ रहे हैं ? इनकी चेष्टा भव्य नहीं दिखती है। इसलिये मुझे जल्दी बतलाओ कि, ये कौन हैं ? ।२-३। रुक्मिणी बोली, बेटा ! तेरे पिताके बड़े भाई बलदेवजीने मुझ पर क्रोधित होकर इन लोगोंको भेजा है। सत्यभामाकी दासियोंकी जो तूने यहां पर विडम्बना की थी—नाक कान वगैरह काट लिये थे, उसे देखकर वे क्रोधित हुए होंगे क्योंकि उस काममें अर्थात् मेरी और सत्यभामाकी जो प्रतिज्ञा हुई थी, उसमें वे जामिन (प्रतिभू) थे यह सेवकोंका समूह उन्हींने मुझपर भेजा है।४-६। यह सुनकर प्रद्युम्नने कहा, माता तू यहां बैठी रह और मेरा कर्तव्य देख। रुक्मिणी बोली, बेटा, यह बलदेवजीके सिपाही तुझसे नहीं जीते जावेंगे। क्योंकि इन्हें दूसरे बड़े २ रणपंडित भी नहीं जीत सकते हैं। यह सुनकर प्रद्युम्न अपनी प्रेमाभिला-

षिणी मातासे बोले, हे गुणोंकी खानि माता, तू इस झगड़ेमें मत पड़। यहां पर थोड़ी देर चुपचाप बैठी रह।७-९। ऐसा कहकर प्रद्युम्नकुमारने अपनी विद्याको भेजी। सो उसने गलीमें जाकर एक विप्रका रूप धारण कर लिया, जिसके कि सारे अङ्ग मिहनतसे थक रहे थे, और पेट स्थूल हो रहा था। सत्यभामाके महलसे भोजन करके वह निःसहात्मा अर्थात् अपने शरीरके बोझको भी नहीं सह सकने वाला वहां आया और दरवाजेपर फिसलकर गिर पड़ा। इतनेमें ही वहांपर बलदेवजीके सिपाही जा पहुँचे।१०-१२। सो उन सबको ही विप्रने स्तंभित–कीलित कर दिया। केवल एकको खबर देनेके लिये छोड़ दिया। उसने सभामें जाकर सब वृत्तान्त बलदेवजीसे कह दिया। जिसे सुनकर बलदेवजी रुक्मिणीपर और भी क्रोधित हो गये।१३-१४। और हँसी करके बोले, रुक्मिणी अब सामान्य स्त्री नहीं रही है। वह मांत्रिका अर्थात् मंत्रविद्याकी जानने वाली हो गई है। श्रीकृष्णको उसने मन्त्र हीसे वशमें कर रक्खा है।१५। अब मैं उसके मन्त्रोंका महात्म्य जाकर देखता हूँ जिनसे उसने मेरे सेवकोंको कील दिया है।१६।

ऐसा कहकर वे उठे और क्रोधयुक्त शरीर से रुक्मिणीके महलकी ओर जल्दीसे चल पड़े। महलकी गलीमें पहुँचकर उन्होंने देखा कि एक विप्र पेटको फुलाये हुये लम्बा हो रहा है। और रास्तेको रोककर सोरहा है। उसे इसतरह पड़ा देखकर बलदेवजीने मीठे २ शब्दोंमें कहा कि, द्विजराज; यहाँसे उठ बैठो, और रास्ता छोड़ दो। मुझे इसी रास्तेसे जानेका काम है और वह बहुत जरूरी है यदि तुम नहीं उठते हो तो बताओ मैं तुम्हारे ऊपरसे कैसे जाऊं यह सुनकर विप्र महाराज बोले, हे क्षत्रियराज; मैं सत्यभामाके घर भोजन करके अभी आया हूँ। एक तो मेरा शरीर बहुत स्थूल है और दूसरे मैं बारम्बार होड़ लगाकर भोजन भी बहुत ज्यादा कर आया हूं, इसलिये मैं उठ नहीं सकता हूँ। आप पीछे लौटकर दूसरे मार्गसे चले जावें। यह सुनकर बलभद्र बोले, अरे नीच विप्र मेरा इसी मार्गसे बड़ा भारी

कार्य है। अतएव मैं निश्चयपूर्वक यहीं से जाऊंगा। तू पराये घर खाकर और मार्ग रोककर पड़ रहा है।१७-२४। बर्तन दूसरेके थे, परन्तु पेट तो दूसरोंका नहीं था ? कुछ कसर रख छोड़ी होती, ? सच है ब्राह्मणोंमें भोजन की लोलुपता स्वभावसे ही अधिक होती है।२५। यह सुनकर विप्र वेषधारी बोला यदि तुम इसप्रकार जानते हो, तो फिर क्यों बकवाद करते हो।२६। बलभद्रजी फिर बोले, अरे अधम वृथा क्यों बक रहा है ? यहांसे उठ और मुझे रास्ता दे।२७। विप्र बोला, अरे अधम क्षत्रिय, व्यर्थ ही गालियां क्यों देता है ? तुझे जाना है, तो मेरे ऊपरसे क्यों नहीं चला जाता।२८।

यह सुनकर बलभद्र विप्रके पैर पकड़कर नगरके द्वार तक ले गये और वहांसे छोड़कर ज्योंही लौटकर पीछे देखते हैं, त्योंही उस विप्रका शरीर जहां था, वहांका वहीं पड़ा हुआ मालूम पड़ता है। यह देखकर वे रुक्मिणीसे बहुत ही क्रोधित हुए। बोले, आज वह वधूटिका (छोटे भाईकी बहु) मेरे ही ऊपर मायाचलानेको उतारू होगई है। जानपड़ता है कि अब वह सामान्य रुक्मिणी नहीं रही है। अवश्य ही कोई शाकिनी डाकिनी है,।२६-३१। ऐसा कहकर क्रोधसे व्याकुल हुए बलभद्रजी फिर दरवाजेपर आये उन्हें देखकर प्रद्युम्नकुमारने मातासे पूछा, यह भारी सूर पुरुष कौन है। और इसके आनेका क्या कारण है ? मुझसे जल्द कहो। युद्धकी इच्छा करनेवाला भौहें और मुख टेडा किये हुए आता है। सो यह भी ऐसा ही (युद्धार्थी) मालूम पड़ता है।३२-३४। यह सुनकर रुक्मिणी बोली, बेटा ! यह बलदेव नामके बड़े भारी योद्धा तेरे पितृव्य अर्थात् बड़े काका हैं। ये बड़े भारी पराक्रमी हैं, तेरे पिताके प्राणोंके समान हैं शत्रु समूहके घात करनेवाले हैं, पुरुषोंमें अग्रगामी हैं और यादवोंके पूज्य हैं। पृथ्वीमें इनके समान कोई नहीं है। संसारमें ऐसा कोई वीर नहीं है, जो इनके साथ युद्ध कर सके।।३५-३७। प्रद्युम्नकुमार बोले, हे माता ! इन्हें क्या प्यारा लगता है और किसके साथ युद्ध करनेकी इन्हें इच्छा रहती है।।३८। माता बोली, ये युद्धकी रंगभूमिमें बड़े २ भयंकर सिंहोंके साथ लीला करके

शान्त होते हैं, अर्थात् इन्हें सिंहयुद्ध ही प्यारा लगता है ।३६। माताके वचन सुनकर कुमार बोले, अच्छा तो मैं क्षणभरमें इनके बलको देखता हूँ ।४०। माता बोली, तुझे ऐसा नहीं करना चाहिये। बलदेवजी बड़ेभारी बलवान हैं। भला उन्हें कौन जीत सकता है ? बेटा ! यदि तुझे जीवित रहनेकी इच्छा हो, तो जल्द ही जाकर और उनके चरणोंमें पड़कर उन्हें सन्तोष कर ।४१-४२। माताके इस-प्रकार वचन सुनकर कुमार बोले, तुम क्षणभरके लिये यहां चुपचाप बैठी रहो और मेरा पराक्रम देखो ।४३।

वहां जब तक बलदेवजी कोपाग्निसे प्रज्वलित होकर बड़े पेटवाले विप्रके साथ युद्ध करनेके लिये गलीमें आये, तब तक यहां प्रद्युम्नकुमारने अपनी उस मायाको समेट करके अर्थात् ब्राह्मणको लोप करके अपना वेष बदल लिया और सिंहका रूप धारण कर लिया ।४४-४५। उस सिंहकी दाढ़ें दोयजके चन्द्रमाके समान टेढ़ी और सफेद थीं, उसका आकार चंड अर्थात् भयङ्कर था और केशरके समान केशरका (बालोंका) समूह उसकी गर्दनपर चंचल होता हुआ शोभित हो रहा था। सिरपर रखी हुई पूंछसे वह बहुत अच्छा मालूम होता था। जँभाई लेता हुआ समस्त दिशाओंकी ओर भयङ्कर दृष्टिसे देखता था ।४६-४७। उसे घरके भीतरसे गर्जना करते हुए आते देखकर बलभद्रजीको अचरज मालूम हुआ। यहां राजमहलके भीतर जो यह सिंह दिखलाई देता है, सो अवश्य ही कुछ रुक्मिणीकी माया जान पड़ती है। अब तो रुक्मिणी श्रीकृष्णजीके योग्य नहीं रही, ऐसा विचार करके अपने बायें हाथ को सुन्दर उत्तरीय वस्त्रसे अर्थात् दुपट्टे से लपेट करके और उसे आगे करके क्रोधपूरित बलदेवजी सिंह पर झपट पड़े ।४८-५०। तब एक दूसरेका घात प्रतिघात करनेमें, ताड़नेमें, उछलनेमें तर्जना करनेमें और अतिशय चतुर वे दोनों शूरवीर अपनी इच्छानुसार युद्धक्रीड़ा करने लगे। बहुत समय तक उनकी लड़ाई होती रही, परन्तु न तो किसीने हार खाई और न किसीने जीत पाई। आखिर सिंहवेषधारी प्रद्युम्नने छलांग मारके एक पंजेकी थप्पड़से बलदेवजीको धराशायी कर दिया ।५१-५३। और अपना असलीरूप

धारण करके माताके पास जाकर उसके चरणोंको विनयपूर्वक नमस्कार किया।

इस बीचमें अचरजसे व्याकुल हुई रुक्मिणी महापराक्रमके धारण करनेवाले पुत्रको देखकर बोली हे पुत्र ! तू मुझसे नारदमुनिकी बात कह कि, वे मेरे बिना कारणके बन्धु कहां चले गये ? कुमारने कहा, माता ! नारदजी विद्याधरोंके पर्वतसे अर्थात् विजयार्धगिरीसे मेरे ही साथ आये हैं और इससमय द्वारिकानगरीके बाहिर आकाशमें विमानपर विराजमान होरहे हैं। उनके साथ तुम्हारी मृग नयनी बहु भी है जिसे मैं उनके पास छोड़ आया हूँ।५४-५८। यह सुनकर रुक्मिणी अपने गुणवान पुत्रसे बोली, बेटा ! तूने बहू कहांसे पा ली सो भी तो मुझसे कह।५९। पूछने पर कामकुमार अपनी माता को सुखी करनेके लिये बोला, माता ! मैं इसका वृत्तांत तुम्हारे साम्हने संक्षेपसे कहता हूँ;—।६०। दुर्योधन राजाने श्रीकृष्णमहाराजकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये अपनी उदधिकुमारी नामकी कन्याको भानुकुमारसे विवाह करनेको भेजी थी, सो उसे मैंने मार्गमें ही भिल्लका रूप धारण करके हरण कर लिया है। वही उदधिकुमारी सुन्दरी नारदजीके साथ विमानमें बैठी है। इसके पश्चात् कुमारने भानु-कुमारका तिरस्कार, सत्यभामाके बगीचेका तथा वनका विनाश, रथका तोड़ना, बावड़ीका शोषण कर लेना, सुगन्धित पुष्पोंको आकके पुष्प बना देना, मेंढ़ेसे वसुदेवजीकी टांग तुड़ाना, और भोजन वमन करके सत्यभामाकी विडम्बना, आदि सब लीलायें भी अपनी माताको सुना दी। पुत्रको सुन्दरी बहू मिलनेकी तथा शत्रुका (सत्यभामाका) खूब तिरस्कार होनेकी सब बात सुनकर रुक्मिणी बहुत प्रसन्न हुई। और पुत्रसे बोली, बेटा मुझे नारदमुनिके देखनेकी बहुत इच्छा है, अतएव उन अकारण बन्धु मुनिको जल्द ही दिखलादे, अर्थात् बुलादे।६१-६५। यह सुनकर प्रद्युम्नने कहा, मैं उन्हें कैसे ले आऊँ क्योंकि मैं अभी तक कुटुम्बी जनोंसे नहीं मिला हूँ। जबतक मैं सबसे नहीं मिला हूँ, तबतक उनके पास नहीं जाऊँगा।६६। रुक्मिणी बोली, यदि ऐसा है तो अपने पितासे जाकर मिल आ।

कुमारने कहा, माता ! इस तरह जाकर कैसे मिल आऊँ ।६७। माता बोली, यादवोंसे परिवेष्टित (घिरे) हुए तेरे पिता राजसभामें बैठे हुए होंगे, सो उन्हें जाकर प्रणाम करके मिल आ ।६८। प्रद्युम्नकुमार फिर बोले कि, जो उत्तम कुलमें उत्पन्न होते हैं, चिरकालमें आकर मिलते हैं, और गुणवान तथा पराक्रमी होते हैं वे अपनी शक्तिका वर्णन नहीं करते हैं, और न अपने नामका कीर्तन करते हैं। अतएव हे माता मैं स्वयं ऐसा जाके कैसे कहूँ कि मैं "तुम्हारा पुत्र हूँ !" ।६९-७०। सो माता मैं पहले पिता और बन्धुओंसे युद्ध करके, नानाप्रकारके वाक्योंसे उनकी तर्जना करके, और अपने पराक्रमको दिखला करके अपने नामको प्रगट करूँगा—अर्थात् वे सब लोग स्वयं ही मेरा नाम जान जावेंगे। ऐसा किये बिना अर्थात् जबतक वे स्वयं मुझे न जानने लगें तब तक मेरा मिलना उचित नहीं होगा ।७१-७२। घर घर जाकर अपने आनेकी वार्ता सबसे कहता फिरे, यह बात इस तेरे पुत्र के योग्य नहीं है ।७३। रुक्मिणीने कहा, तुझे ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि यादवलोग बड़े ही बलवान हैं। हे बेटा ! वे तुझसे कैसे जीते जावेंगे। यादुवंशी भोजवंशी और प्रचण्ड तेजके धारण करनेवाले पांडव रण विजयी हैं। उन्होंने अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त की है। उन्हें तू कभी नहीं जीत सकेगा ।७४-७५। प्रद्युम्न बोले, माता इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या है, श्रीनेमिनाथ भगवानको छोड़कर तू अभी देखेगी कि अन्य सब कैसे बलवान हैं ।७६। ऐसा कहकर और थोड़ी देर ठहरकर कुमारने मातासे कहा कि मैं तुमसे कुछ मांगता हूँ, सो मुझे देनेकी प्रतिज्ञा करो ।७७। पुत्रके वचन सुनकर माता बोली, बेटा मांगो मांगो ? क्या मागते हो, मैं, जो मांगोगे, सो दूंगी ।७८। कुमारने कहा माता तू मेरे साथ विमानमें बैठनेके लिये चल, जिसमें कि नारदमुनि तेरी बहूके साथ बैठे हुए हैं, और जो लोकमें अतिशय सुन्दर है। मुझपर कृपा करके जल्द चल। वहां तुझे छोड़कर फिर मैं अपनी इच्छानुसार कार्य करूंगा। बस तुझसे मैं यही याचना करता हूँ ।७९-८०।

पुत्रकी याचना सुनकर रुक्मिणी विचार करने लगी कि यदि मैं अपने पतिसे (श्रीकृष्णसे) बिना पूछे, इसके साथ जाती हूँ, तो पतिव्रता कैसी और नहीं जाती हूँ, तो यह क्रोधित हो जावेगा, और रूस करके निश्चय है कि, फिर विद्याधरोंके देशमें चला जावेगा ।८१-८२। अथवा मैं इतना विकल्प क्यों करती हूँ । मेरे स्वामी मुझपर कभी क्रोधित नहीं होंगे । अतएव अब तो पुत्रकी ही बात मानती हूँ । इसमें पीछे भला ही होगा ।८३। ऐसा विचार करके रुक्मिणी ने कहा, अच्छा चलो; मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ । स्वीकारता सुनते ही प्रद्युम्नकुमार हर्षित होकर अपनी माताको उसी समय हाथोंसे आकाशमें ले गया । रुक्मिणीके आभूषणोंकी प्रभा के तेज से दिशायें कपिल रंगकी पीली पीली हो गई ।८४-८५।

रुक्मिणीको हाथसे पकड़े हुए प्रद्युम्नकुमार यादवोंकी राज सभाके ऊपर ठहर गया और बलदेवजी तथा कृष्णजीके समक्षमें बोला, हे यादवों ! हे भोजवंशियों ! हे पांडवों ! और जो २ शूरवीर तथा सुभट हों, वे सब यदि तुम अच्छे कुलसे उत्पन्न हुए हो, और यदि लड़ाईमें विजय पाई, तो सावधान होकर मेरे वचन सुनो । भीष्मराजकी पुत्री और श्रीकृष्णजीकी प्यारी साध्वी स्त्रीको जो कि रुक्मिणीके नामसे सारी पृथ्वीमें प्रसिद्ध है, जिसे श्रीकृष्ण तथा बलदेवने बेचारे दीन दमघोषके पुत्रको अर्थात् शिशुपालको लड़ाईमें मारकर ले आये थे, और जिसके नीलकमलके समान नेत्र हैं, मैं विद्याधर का वीर पुत्र तुम लोगोंके साम्हने लिये जाता हूँ ।८६-९१। यदि मैं अकेला वीर रुक्मिणीको हर ले जाऊँ तो, फिर तुम सबके जीवनसे क्या प्रयोजन है ? अर्थात् तुम्हारा जीना निरर्थक है ।९२। यदि तुम सब लोगोंमें कुछ अद्भुत शक्ति हो, तो मेरे पंजेमें फँसी हुई रुक्मिणीको छुड़ाओ । हे उत्तम शूरवीरों तुम सब इकट्ठे होकर प्रयत्न करो निश्चय समझो कि तुमसे युद्ध किये बिना मैं नहीं जाऊंगा ।९३-९४। जब पहले तुम्हारे साथ युद्ध कर लूँगा, तब श्रीकृष्णजीकी भामिनीको विद्याधरोंके नगरमें ले

जाऊँगा ।९५। परन्तु मैं चोर नहीं हूँ और विट अर्थात् व्यभिचारी भी नहीं हूं—अपने शक्तिके जोर से लिये जाता हूँ ।९६।

उसके वचन सुनकर शूरवीर लोगोंसे भरी हुई यादवोंकी सभा एकाएक क्षोभित हो गयी ।९७। और वायुके प्रचण्ड आघातसे जैसे समुद्रकी तरंग उछलती हैं उस प्रकारसे उछलने लगी। अथवा जैसे समुद्रमें बड़वानलों की पंक्ति प्रज्वलित होती है, उस प्रकारसे प्रज्वलित हो उठी ।९८। बलदेवजी मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। सारे यादवगण उनके चारों ओर घेरकर बैठ गये। परन्तु थोड़ी ही देरमें वे उसी प्रद्युम्नके जोशीले वाक्य सुननेसे सचेत हो गये। मूर्च्छा निवृत्ति हो गई शूरवीरोंको बड़ा क्रोध आया। वे यद्यपि गौरवर्ण के थे, तो भी उस समय क्रोधसे लाल लाल हो गये।९९-१०००। उनकी भौंहें ललाटपर चढ़ गयीं और शरीर कांपने लगा। सो ठीक ही है, ऐसा कौन मनुष्य है जो भय तथा क्रोधके उत्पन्न होने पर अपने स्वभावसे च्युत न हो जाता हो। अर्थात् भय तथा क्रोध होने पर सभी लोग विकारयुक्त हो जाते हैं ।१।

जिस समय भीम अर्जुन आदि पांडव क्रोधित होकर अपने २ आसनोंसे उठकर चलने लगे; उस समय उन्हें युधिष्ठिरने इशारेसे समझाया कि, शत्रुका साम्हना होने पर युद्धमें ही तुम्हारी वीरता देखी जावेगी! इस समय व्यर्थ ही कोप करनेसे क्या लाभ है? स्थिरता रखनी चाहिये ।२-४। कितने ही शूरवीर जिनका कि शरीर क्रोधसे आच्छन्न हो रहा था—भर रहा था, हाथोंसे छाती ठोकते हुए, कठोर तथा दुष्ट वचन बोलने लगे ।५। कितने ही अतिशय क्रोधी योद्धा होठोंको डसते हुए अपने भुजबन्धन तथा मणियोंसे प्रकाशमान भुज तटोंको हाथोंके अग्रभागसे पीटने लगे अर्थात् ताल ठोकने लगे ।६। कितने ही राजपुत्र वीर क्रोधित होकर युद्धकी इच्छा करते हुए और अङ्गोंको चलायमान करते हुए बड़े भारी घमंड तथा मानके साथ हँसने लगे ।७। कितने ही शूर राजा जिनका कि मान ही एक धन

था, क्रोधके मारे अन्धे सरीखे होकर भ्रमण करने लगे। कितने ही लाल २ आंखें करके ही मुखको कम्पित करने लगे। कितने ही क्रोधसे विह्वल होकर पाषाणमयी खम्भोंको तोड़ने फोड़ने लगे और कितने ही म्यानसे तलवार निकालकर खड़े होगये।८-९।

इन सब क्षुभित हुए शूरोंसे कई लोग इस प्रकार अच्छे वचन बोले कि, तुम सरीखे थोड़ी शक्तिवाले थोड़ेसे लोगोंसे यह नहीं जीता जावेगा। अतएव शूरवीरोंके सचेत करनेमें—प्रतिबोधित करनेमें जो पण्डिता होती है, उस संग्राम भेरीको बजाओ, उससे सबको मालूम होजावेगा।१०-११। आखिर रणभेरी बजाई गई। उसका नाद सुनते ही सबके सब श्रेष्ठ शूरवीर अपने हाथका आधा किया हुआ काम जैसाका तैसा छोड़कर निकल पड़े।१२। कईएक कुलवान शीलवान और बलवान शूरवीर अपनी अपनी स्त्रियोंको जो भेरीके शब्दसे तत्काल भयभीत हुई थीं, एकान्तमें समझाकर आश्वासन देकर निकले और कईएक गर्वशाली मानी बली वीर अपने शरीर कवच (जिरहबख्तर) धारण करके निकले।१३-१४। वे आगे होनेवाले संग्रामके हर्षसे ऐसे प्रफुल्लित हुए—इतने फूले कि उनके शरीरके कवच टूट गये—।१५।

वीरगण हाथी घोड़ों और रथोंपर चढ़े हुए धनुषबाण आदि उत्तमोत्तम आयुध धारण किये हुए, शंख भेरी आदिके नादसे दशों दिशाओं को पूरित करते हुए—राजाके आंगनमें आकर एकत्र हुए। उनमें कोई कोई योद्धा तो छत्र लगाये हुए थे और किसी किसीके मस्तकपर चँवर ढुलते थे।१६-१७। राजांगणसे सेनाका कूच हुआ। उसके साथ बड़े २ भारी हाथी चलने लगे। वे ऐसे जान पड़ते थे, जैसे प्रलय कालकी हवाके चलाये हुए बादल ही चल रहे हों। जिस प्रकार हाथी भयङ्कर, ऊंचे षष्ठिहायिन अर्थात् छह वर्षकी उमरके कुथभासरुचो अर्थात् झूलसे शोभित होनेवाले और मद जलकी वर्षासे पृथ्वीको कीचड़मय करनेवाले थे, उसी प्रकारसे बादल भी भयंकर, काले काले, ऊंचे,

'षष्ठिहायिन' अर्थात् धान्यको पकानेवाले 'कुथप्राप्तरुचो' अर्थात् दूबको हरी भरी शोभा युक्त करनेवाले, और अपने मदरूप जलकी वर्षा से पृथ्वीतलको कोचड़युक्त करनेवाले होते हैं।१८-१९। तीखे खुरोंके अग्रभागसे सारी पृथ्वीको खोदते हुए, अपने समूहसे धराको व्याप्त करते हुए, तथा अपने आच्छादनों से सजे हुए शीघ्रगामी घोड़े अपनी हिनहिनाहटसे शत्रुके घोड़ोंको बुलाते हुए, चलने लगे।२० २१। शस्त्रों (हथियारों) और दिव्य अस्त्रोंसे जिनके मध्य भाग पूर्ण मनोहर थे, तथा जिनके पहियोंके शब्दोंसे संसार वधिर (बहिरा) हो रहा था, ऐसे रथोंके समूह भी पृथ्वीको व्याप्त करते हुए तथा हवासे उड़ती हुई धुजाओंसे पर-शत्रुको बुलाते हुए चल पड़े।२२-२३। इसी प्रकारसे ढाल तलवार बांधे हुए तथा कवचसे शरीरको ढके हुए पैदल सारी धरतीको आच्छादित करते हुए निकल पड़े।२४।

शत्रुकी हारके प्रतिबंधक अनेक अशुभ निमित मार्गमें दिखलाई दिये, अर्थात् शत्रुकी हार नहीं होगी, इसके प्रगट करनेवाले अनेक अशुभ शकुन मार्गमें हुए, तौ भी सारे यादव, भोजक, और पांडवादि उत्तमोत्तम शूरवीर क्रोधसे भरे हुए योग्य अयोग्यका विचार किये बिना ही चलने लगे।२५-२६।

उधर प्रद्युम्नकुमारने भी अपनी माताको उस विमानमें जाकर बिठा दी, जो नारदमुनि और उदधिकुमारीसे शोभित हो रहा था। वहां माताने नारदजीको विनयपूर्वक नमस्कार किया और बहूने सासको प्रणाम किया इस प्रकार विमानमें नारद और वधूके सहित गुणवती रुक्मिणीको छोड़कर कामकुमार पृथ्वीपर उतरा और वहां लम्बे चौड़े मैदानको पाकर उसने एक हाथी; घोड़ों, रथों तथा पैदलोंसे भरी हुई अचरजकारी सेना बनाई।२७-३०। जिस प्रकारसे श्रीकृष्णजीकी सेनामें केशव आदि नामके धारण करनेवाले राजा थे, उसी प्रकारसे प्रद्युम्नकी सेनामें भी वे ही सब राजा हो गये। जिस प्रकारके चिह्न कृष्णजीकी सेनामें थे, उसी प्रकारके सब चिह्न (ध्वजा आदिके) यहां हो गये। वेष तथा रूप भी दोनों तरफके एकसे हो गये। बाजोंके शब्द भी एकसे होने लगे, बन्दीजन भी एकसी

विरद गाने लगे ।३१-३२। हाथी घोड़ा रथ भी उसी आकारके धारण करनेवाले हो गये । और तो क्या इसकी सेनाके सैनिकोंके नाम भी वही काम, कृष्ण, बलदेव आदि हो गये ।३३। इसप्रकारसे लड़ाईके लिये उत्सुक हुई और सब लक्षणोंसे लक्षित तथा हर्षित दोनों ओरकी सेनाको देखकर उस नगरकी स्त्रियां परस्पर इसप्रकार वार्तालाप करने लगीं ।३३।

पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुखवाली जो एक स्त्री महलकी छत पर खड़ी थी, वह बोली, यदि यह लड़ाई यहीं शांत हो जावे, तो निश्चयपूर्वक मैं धन्य होऊँ ।३५। कोई दूसरी बोली, हे माता ! हृदय में तो ऐसा निश्चयपूर्वक प्रतिभासित होता है कि यह श्रीकृष्ण तो ग्रहग्रस्त हो गया है, जो अपनी एक स्त्रीके लिये अच्छे २ वंशोंमें उत्पन्न हुए शूरवीरों तथा राजाओंको नष्ट करनेके लिये तैयार हुआ है ।३६-३७। कोई तीसरी स्त्री कहने लगी, यह उत्कृष्ट रथमें बैठा हुआ और चँवरों तथा भाले से युक्त मेरा उत्साही पति है ।३८। कोई चौथी स्त्री अपनी सखीसे बोली, और यह शूरवीर पति मेरा है, जिसके मस्तकपर मुकुट शोभायमान हो रहा है और जो बड़ी शीघ्रतावाला है ।३९। और कोई सुन्दरी अपनी सखीसे कहने लगी, यह योद्धा, जिसके ऊपर चँवर ढुरते हैं और जिसकी बन्दीजन स्तुति करते हैं मेरा प्राणप्यारा है ।४०।

नारियोंके इसप्रकार शुभ वचन सुनते हुए वे शूरवीर जल्द ही आगे चले । सो उनमेंसे कितने ही सिंहसरीखे शूरपुरुष तो वीरोंकी लीला करते हुये शत्रुकी सेनाके समीप जा पहुँचे, कितने ही नगरी की गलीको प्राप्त हो गये ।४१-४२। और कितने ही लड़ाईके लिये उत्सुक हुए योद्धा दौड़कर शत्रुकी सेना में घुस गये । उनके साथ और भी दूसरे योद्धा प्रवेश कर गये ।४३। यह देख प्रतिहारी अर्थात् पहरेदार राजाकी आज्ञासे उन प्रचंड बलके धारण करनेवाले योद्धावोंको रोकने लगे ।४४।

दोनों सेनाओंके हाथियोंके मनोहर घन्टा तथा काहलके उच्च शब्दोंसे चारों ओर कोलाहल

मच गया। और भेरी दुंदुभी तथा तुरही आदि बाजोंके शब्दोंने दशों दिशायें व्याप्त कर डालीं ।४५-४६। उस समय सेनाओंके आगे धूल इतनी उड़ी कि सारी पृथ्वी व्याप्त हो गई। वहां कुछ भी दिखाई नहीं देने लगा। हमारी समझमें वह धूल श्रीकृष्णजीको रोकने के लिये ही उठी थी कि यह तुम्हारा शत्रु नहीं, किन्तु पुत्र है। इसके ऊपर यह निरर्थक क्रोध क्यों करते हो ।४७-४८। धूलका विस्तार देखकर उसे हाथियोंके मदजलने क्रोधयुक्त हो अपनी वर्षासे जल्द ही निवारण कर दिया अर्थात् धूल बैठा दी। सो मानों मदजलने उसे इस अभिप्रायसे बैठा दी कि यह धूल इस सेनाको लड़नेसे रोकनेके लिये क्यों उड़ी है ? क्योंकि इसमें प्राणियोंका बध बिलकुल नहीं होगा। यह तो एक प्रकारका विनोद है। इसे नहीं रोकना चाहिये ।४९-५०।

इसप्रकार जब श्रीकृष्ण और प्रद्युम्नकी महायोद्धाओंसे निकट हुई औरबलवानोंसेयुक्तहुईसेनाठहरी हुई थी, उससमय देव और दैत्य आकाशमें आ आकर कौतुक देखने लगे। वे प्रद्युम्नकी सेनाको अधिक देखकर भयभीत होकर बोले, हम नहीं जानते है कि, क्या होगा ? इस संग्राममें किसकी विजय होगी ? इसप्रकार कौतुकसंयुक्त हुए वे देव और दैत्य आकाशरूपी आंगनमें स्थिर हो रहे ।५१-५३।

श्रीप्रद्युम्नकुमार ने भानुकुमारकी छातीपर पैर रखके उसका मर्दन किया, सत्यभामाके सुन्दर वन उपवनों को क्षण भरमें नष्ट भ्रष्ट कर दिये और अपनी माताके अनेक प्रकारके कार्य किये, सो सब जैनधर्मके प्रभावसे किये हैं। अतएव प्राणियोंको निरन्तर उसी कल्याणकारी धर्मका ध्यान करना चाहिये ।५४। धर्मसे ही सम्पूर्ण मंगल होते हैं, धर्म ही से स्वजन और बंधुओंका संगम होता है, अतएव हे भव्यजनों ! सोम अर्थात् चन्द्रमाके समान निर्मल और मनोहर धर्मका सेवन करो ।१०५५।

इति श्री सोमकीर्ति आचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें प्रद्युम्नका माताके मिलने और सैन्यके तैयार होनेका वर्णनवाला दसवां सर्ग समाप्त हुआ।

अथ एकादशमः सर्गः ।

अब श्रीकृष्ण और प्रद्युम्नकी सेनाके उस संगममें जो २ वृत्त हुए उन सबका यहां वर्णन करते हैं,–१

उन दोनों प्रलयकालके समुद्र जैसी प्रचण्ड सेनाओंके योद्धाओंका बहुत जल्दी बीचमें ही संघट्ट हो गया। सो गर्जना करते हुए उन धीर वीर सुभटोंका देव और दैत्योंको भी भयका उत्पन्न करनेवाला बड़ा भारी संग्राम हुआ।२-३।

हाथीसवार हाथीसवारोंके साथ जुट गये, घुड़सवार घुड़सवारोंसे लड़ने लगे, पैदल पैदलोंके साथ भिड़ गये और रथवाले रथवालोंके साथ अड़ गये। इस प्रकार सबके सब शूरवीर संग्राम करने लगे। परन्तु यथार्थमें उन सबका वैर बिना हेतुका था, और वह संग्राम बिना निमित्तका था।४-५। बड़े बड़े योद्धा बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीपर पड़ गये, हाथी हाथियोंके मारे हुए रणभूमिमें गिर पड़े, रथ रथोंकी चोटसे धराशायी हो गये, और घोड़े घोड़ोंके घातसे लोट गये। इस प्रकारसे उस रणांगन में बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ।६-७।

ढाल तलवार वाले योद्धा ढाल तलवार वालोंसे उलझ गये। और जिनके पास कुछ नहीं था, केवल वृक्ष ही हथियार था, वे वृक्षवालोंसे भिड़ गये। कोई २ केशाकेशी तथा मुष्टामुष्टि ही करने लगे, अर्थात् एक दूसरेके बाल खींचकर तथा एक दूसरेको मार मारकर संग्राम करने लगे। और भाले वाले भालेवालोंके साथ विकट लड़ाई लड़ने लगे।८-९।

किसी शूरवीरने जबतक एक हाथीके हौदेको छेदा, तब तक हाथीके स्वामी अर्थात् महावतने दूसरा हौदा ला दिया। इतने ही में उसने बड़े जोरसे एक शीघ्रगामी बाण ऐसा मारा क, हाथीके मस्तकपर जो कलगी थी वह छिद करके गिर गयी।१०-११। तब बड़े २ हाथी सूंड़ोंसे सूंड और खीसोंसे (दांतोंसे) खींस भिड़ाकर तथा आगेके पैर संकुचित करके धरनीको कम्पायमान करते हुए

संग्राम करने लगे। वे अपनी लीलासे बड़े ही शोभायमान दिखते थे ।१२-१३। उनके सिवाय और भी जो हाथी हथियारोंसे घायल हो रहे थे, वे उस रणभूमिमें रुधिरकी धारा बहाने लगे। तथा धातुरूपी जलसे पर्वतोंकी उत्कृष्ट शोभाको धारण करते हुए निश्चल हो रहे अर्थात् जीव रहित हो गये ।१४-१५। अनेक सूरवीरों के हाथ पैर चक्रमें कट गये थे तौ भी वे उन्हें किसी तरह धारण किये हुए उनके काटनेवाले शत्रुओं पर जा पड़े और उन्हें मारकर आप भी उनके साथ धरती पर सो गये। सो ठीक ही है, जिनका चित्त कीर्ति पानेका लोभी होता है और जो स्वामीका कार्य करनेमें तत्पर होते हैं, अपनी निःसार देहमें जरा भी ममत्व नहीं करते हैं। शत्रुको मारकर ही मरते हैं ।१६-१७।

इस प्रकारके उस महा संग्राममें यादवोंकी सेनाने प्रद्युम्नकुमारकी सेनाको जल्द ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया ।१८। यह देख प्रद्युम्नके बलवान वीरोंने श्रीकृष्णजीकी प्रचण्ड सेनाको भी बातकी बातमें तितर बितर कर दी ।१९। उस समय अपनी सेनाको भागते हुए देखकर श्रीकृष्णजीने पांडवादि शूर-वीरोंको बलदेवजीके साथ भेजे। सो वे भी प्रद्युम्नकुमारकी सेनाको ध्वंस करने लगे। जब कुमारने अपने बलको नष्ट होते देखा, उसने भी बलभद्र पांडवादि बड़े २ मायामयी शूरवीर बनाकर भेज दिये, सो वे कृष्णकी सेनाके साथ संग्राम करने लगे। वे शूरवीर अपने २ नामके धारण करनेवाले शूरवीरों को बुलाकर—अर्थात् मायामयी बलभद्र पांडवादि सच्चे बलभद्रादिको बुला बुलाकर परस्परमें लड़ने लगे ।२०-२३।

उस युद्धमें हाथियोंकी चिंघाड़से घोड़ोंके हींसनेसे, बाजोंके नादसे, धनुषोंकी टङ्कारसे, शूर-वीरोंके सिंहनादसे और हथियारोंके परस्पर भिड़नेके शब्दोंसे धरती और आकाश दो होने की इच्छा करते थे, अर्थात् फटे जाते थे ।२४-२५। और अर्धचन्द्र चक्रोंसे तथा बाणोंसे जब राजाओंके छत्रोंके दंड मूलसे कट जाते थे और हवाके जोरसे आकाशमें उड़ने लगते थे, तब उन्हें देखकर ऐसी शंका

होती थी कि, बहुतसे चन्द्रमाओंके बिम्ब कौतुकके वश इस मनोहर संग्रामरूपी यज्ञको देखनेके लिये आये हैं ।२६-२७।

उस संग्राममें कोई एक वीर दूसरेसे बोला, तू व्यर्थ शंका मत कर । यह जो तुझे भय हो रहा है, तथा कँपकँपी छूट रही है, मो छोड़ दे और मुझपर खूब जोरसे प्रहार कर, तेरे केश बिखर रहे हैं तथा कपड़े धरतीपर पड़ रहे हैं, सो इन्हें सम्भाल ले, और हथियार धारण कर ले तब मैं संग्राम करूंगा, एक और कोई सुभट दूसरेसे बोला, हे वीर ! संग्राम करनेसे न तो स्वर्ग प्राप्त होता है, और न मोक्ष मिलता है । यदि तुम्हें यशके साधनेकी इच्छा हो, तो मुझसे सचसच कहो । मेरी समझमें तो तुम अपनी चन्द्रमुखी स्त्रीको छोड़कर सग्राममें व्यर्थ ही मत पड़ो ।३०-३१। इस प्रकार उन परस्पर वार्तालाप करनेमें चतुर तथा मानी घमंडी राजाओंने प्रद्युम्नके मायामयी योद्धाओंके साथ बड़ा भयंकर संग्राम किया । उसमें उन धीर मानी और सजावट करनेमें चतुर वीरोंने विचित्र विचित्र प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे अपने शत्रुओंको शीघ्र ही नष्ट कर डाला ।३२-३३। बड़े बड़े पहाड़ोंके समान हाथियों के पड़नेसे–धराशायी होनेसे तथा बड़े २ रथोंके टूटकर पड़जानेसे उस रणभूमिमें चलने फिरनेके लिये मार्ग नहीं रहा । वहां लोग बड़े कष्टसे संचार कर सकते थे ।३४। रीछोंकी आवाजसे, और आंतोंके भूषण पहिनकर नाचते हुए बेतालोंसे वह रण बड़ा ही रौद्र और भयंकर हो गया ।३५।

आखिर इस महायुद्धमें प्रद्युम्नने अपनी मायासे पांडवादि सूरवीरोंको बलदेवादि सहित मार डाला ।३६। यह सुनकर तथा देखकर श्रीकृष्णजी बड़े क्रोधित हुए और हाथीको छोड़कर रथपर सवार हो रणभूमिके सन्मुख हुए ।३७। और अपने बाणोंसे लोकको आच्छादित करते हुए शत्रुकी ओर चल पड़े । स्त्री और बन्धुजनोंके वियोगसे उत्तेजित होकर वे अपने शत्रुको बलपूर्वक नष्ट करनेकी इच्छा करने लगे ।३८। पिताको विलक्षण क्रोध भावसे आता हुआ देखकर विनयवान प्रद्युम्नकुमार अपने रथ

को उनकी ओर धीरे धीरे चलाने लगा ।३६। उसी समय श्रीकृष्णजी की दाहिनी आंख और दाहिनी भुजा फड़कने लगी, जो यथार्थमें इष्ट मिलापकी सूचना करनेवाली थी ।४०। इससे उन्होंने अपने सारथीसे कहा कि सम्पूर्ण सेनाके क्षीण हो जाने पर, बन्धुजनोंके नष्ट हो जाने पर और संग्राममें चतुर शत्रुके सम्मुख उपस्थित होने पर यह मेरी आंख और भुजा क्यों फड़कती है ? हे भाई, अब भला और क्या भद्र दिखलाई देगा ? भला अब और क्या आशा है । सारथी बोला, हे नाथ ! इसका फल यही है कि आप शत्रु को जीतकर और जय कीर्तिको प्राप्त करके अपनी प्यारी महाराणी रुक्मिणीको पावेंगे । इस विषयमें अब व्यर्थ ही विषाद न करें ।४१-४४। इस प्रकार श्रीकृष्ण और सारथी सन्तुष्ट चित्तसे परस्पर वार्तालाप करते हुए शत्रु के समीप पहुँच गये ।४५। अपने शत्रु को बड़े भारी आडम्बर सहित देखकर श्रीकृष्णजीका हृदय स्नेहसे भर आया । अतएव वे उससे अतिशय मनोहर वचन बोले, हे विचक्षण शत्रु ! मेरे वचन सुन, तू मेरी स्त्रीका हरण करने वाला बन्धुओंको मारनेवाला तथा और भी अनेक दुष्कर्मोंका करनेवाला है, तो भी किया क्या जावे, तुझपर मेरा अन्तरंग स्नेह बढ़ता है । अतएव तू मेरी गुणवती भार्याको शीघ्र ही सौंप दे और मेरे आगेसे जीता हुआ कुशलपूर्वक चला जा ।४६-४६। यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार हँसकर बोला, हे सुभटशिरोमणि ! यह कौनसा स्नेहका अवसर है । यह तो मारने काटनेका समय है ।५०। मैं तुम्हारे बन्धुओंका हंता और तुम्हारी स्त्रीका हर्ता हूँ, ऐसे शत्रु पर भी यदि तुम स्नेह करते हो तो तुम्हारा शत्रु और कैसा होगा ।५१। यदि तुम युद्ध नहीं कर सकते हो, तो मुझसे कहो कि 'हे धीर वीर' ! मुझे स्त्रीकी भिक्षा प्रदान करो, अर्थात् मेरी भार्या सौंप दो ।५२। ऐसे चुभनेवाले वचन सुनकर श्रीकृष्णजी क्रोधसे लाल पीले होगये । और धनुषको खींचकर अपने मदसे उद्धत हुए शत्रु पर टूट पड़े ।५३। बाणोंके समूहसे उन्होंने धरती, आकाश तथा दिशाओंको आच्छादित कर दिया ।५४। यह देखकर प्रद्युम्नकुमारने अपने अर्द्ध चन्द्र चक्रसे श्रीकृष्ण

जीका धनुष तोड़ डाला। इससे क्रोधित होकर उन्होंने जब तक दूसरा धनुष धारण किया और बाण चलानेका उद्योग किया, तब तक प्रद्युम्न उस धनुषको भी नष्ट करके बोला, आपने ऐसी अच्छी धनुषविद्याकी चतुराई कहांसे पाई ? पृथ्वीमें जितने यदुवंशी भोजवंशी तथा पांडव आदि शूरवीर प्रसिद्ध हैं, आप तो उन सबके स्वामी और शस्त्रविद्याके पण्डित हैं ! इस युद्धकार्यमें आपका धनुर्धरपना देख लिया गया, जो आप अपने धनुषकी भी रक्षा नहीं कर सके ! ।५५-५९। जो राजाका वेश धारण करता है और संग्राम करना नहीं जानता है, वह स्वेच्छाचारी होकर कैसे जीता रह सकता है ? ।६०। अथवा तुम्हें अपने मरे हुए बन्धुओंसे क्या प्रयोजन है ? और भार्याका भी क्या करोगे ? मेरे आगेसे जीते हुए चले जाओ, और अपने घर जाकर खूब सुख भोगो ६१। जब प्रद्युम्नकुमारने इस प्रकारकी हँसीकी बातोंसे नारायणकी खूब ताड़ना की, तब वे भी तीसरा धनुष लेकर प्रद्युम्नपर मर्मस्थलोंको छेद डालने वाले अतिशय तीखे वाण चलाने लगे, जिनके मारे मायावी प्रद्युम्नकी सारी सेना छिन्न भिन्न होगई ।६२-६३। अबकी बार उन्होंने कामकुमारका छत्र गिरा दिया, ध्वजा गिरा दी, सारथीको औंधा कर दिया, और घोड़ेको तथा परिजनोंको धराशायी कर दिया ।६४। यह देख प्रद्युम्नकुमार जल्द ही दूसरे रथ पर चढ़ आया और उसने तत्काल ही अपने पिताको भी अपने समान कर दिया. अर्थात् उनके छत्र, धुजा, सारथी तथा घोड़ेको भी गिरा, रथरहित कर दिया। ठीक ही है, मायाके बलसे क्या नहीं हो सकता है ? ।६५। तब यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णजीने भी दूसरे दिव्य रथपर सवार होकर और क्रोधसे अपनी उत्कृष्ट विद्याको बुलाकर अग्निबाण चलाया। सो प्रलयकालकी अग्निके समान उस देवोपनीत बाणने कामदेवकी सेनाको चारों ओरसे घेरकर जलाना शुरू कर दिया। वह अग्नि कहीं तो अपनी दहन शक्तिसे धांय धांय करने लगी, कहीं फक फक करती हुई बड़े २ फुलिंगे उड़ाकर दिशाओंको आच्छादित करने लगी। उस स्फुरायमान अग्निकी दीप्ति

कटकके अन्त तक पहुँच गई, यह देखकर शराशनके धारण करने वाले प्रद्युम्नकुमारने अपने वारुण बाणका स्मरण करके शत्रु के उसे ऊपर चलाया। सो उस महा मेघबाणने जो कि इन्द्रधनुष करके युक्त था, तथा जो बिजली सहित गरजता था, आकाशसे वज्र गिराते हुए मूसलाधार जलधारा बरसाते हुए थोड़ी ही देरमें अग्निबाणको नष्ट कर दिया।६६-७२। मधुसूदनने अर्थात् श्रीकृष्णजीने अपने अग्निबाणको इसतरह नष्ट हुआ देखकर महावेगका धारण करनेवाला वायु बाण चलाया।७३। सो उसके चलनेसे क्षण ही भरमें मनुष्य, घोड़े, हाथी, रथ आदि अपने छत्र केतु और धुजाओंके साथ पत्तों सरीखे बहुत दूर तक उड़ गये।७४। इसके पश्चात् कामकुमारने मोहन करनेवाला तामस बाण चलाया, जो भ्रमरोंके तथा कज्जलके समान काला और यहां वहांसे चंचल था।७५। उसने एक ही साथ सब पृथ्वीको खल वृत्तिवाला बना दिया। किसीको कुछ भी नहीं सूझ पड़ने लगा। सो ठीक ही है, अन्धकारकी वृत्ति स्वभावसे ही व्यामोहकी उत्पन्न करने वाली होती है।७६। उन दोनोंने इसप्रकारके और भी अतिशय प्रचंड दिव्य अस्त्र एक दूसरे पर चलाये, जो विद्याधरों और देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले थे।७७। श्रीकृष्णजीने प्रद्युम्नकुमारके ऊपर जो २ अस्त्र चलाये, वे यद्यपि अमोघ थे, अर्थात् कभी खाली जानेवाले नहीं थे, परन्तु व्यर्थ ही गये।७८। क्योंकि यह एक नियम है कि, जितने देवोपनीत बाण हैं, वे अपने कुलके ऊपर कभी नहीं चलते हैं।७९। अपने बाणोंके व्यर्थ जानेसे श्रीकृष्णजीको प्रद्युम्नकी शक्तिके विषयमें बड़ा भारी अचरज हुआ। अपने बाण व्यर्थ होनेसे और सेनाके नष्ट हो जानेसे वे चिन्ता करने लगे कि, बिना मल्लयुद्ध किए यह दुर्जन शत्रु नहीं जीता जा सकता है, अतएव अब मैं मल्लयुद्ध ही करूंगा। ऐसा निश्चय करके और बद्ध परिकर होकर बलवान नारायण बाहुयुद्ध करनेकी इच्छासे रथसे पृथ्वीपर कूद पड़े। उनके चरणोंके प्रहारसे धरतीमें गड्ढे हो गये, और पर्वतोंकी संधियां शिथिल पड़ गयीं।८०-८३। फूले हुये कमलके समान दिव्य शरीरवाले

क्रोधित, और उग्रवचन बोलनेवाले श्रीकृष्णजीने शत्रुपर लाल लाल दृष्टि डाली। अर्थात् बड़े क्रोधसे अपने शत्रुकी ओर देखा ।८४। प्रद्युम्नकुमार भी पिताको तैयार देखकर रथसे उतर पड़ा और शीघ्रतासे साम्हनेकी ओर चला ।८५। उन दो हाथियोंके समान दोनों योद्धाओंको मल्लयुद्धके लिये तैयार देखकर विमानमें बैठी हुई रुक्मिणी और उदधिकुमारीने नारदजीसे कहा, हे महाराज ! अब आप विलम्ब न करें, जल्द ही इन दोनोंको रोक दें। हे पिता ! इन बाप बेटोंकी लड़ाई से अब हमारी सर्वथा हानि है ।८६-८८। रुक्मिणी और उदधिकुमारीके भेजे हुए नारदजी जल्द ही उन लड़नेको तैयार हुए शूरवीरोंके बीचमें आ खड़े हुए और बोले, हे माधव ! तुमने इससमय अपने पुत्रके ही साथ यह क्या कार्य प्रारभ कर रक्खा है ? यह वही प्रद्युम्नकुमार अपने पितासे हर्षपूर्वक मिलने आया है, जो राजा कालसंवरके घरमें वृद्धिको प्राप्त हुआ है, जिसे सोलह लाभ हुए हैं, और जो गुणोंका घर है। यह तो सोलह वर्षके पीछे मिलनेको आया है, और आपने इससे संग्राम ठान रक्खा है। हे जनार्दन ! अपने बेटेके साथ संग्राम करना, आपके लिये योग्य नहीं है ।८९-९२। श्रीकृष्णजीको इसप्रकार उलहना देकर नारदजी प्रद्युम्नकुमारसे बोले कि, हे कामकुमार ! और तुम भी अपने पिताके साथ यह क्या कर रहे हो ? ।९३। अब तुम्हें इन जगत्के पूज्य और स्नेहके गृहस्वरूप पिताके साथ दूसरी सब चेष्टायें छोड़कर जो पुत्रका उत्तम कर्तव्य होता है, वह करना चाहिए ।९४। नारदमुनिके वचन सुनकर श्रीकृष्णजी मल्लोंकी चेष्टाको छोड़कर स्नेहके वश प्रद्युम्न की ओरको मिलने के लिये चले। चलते समय पुत्रके आनेके आनन्दसे और सेनाके नष्ट होनेके शोकसे उनकी गतिमें शीघ्रता और मन्दता दोनों ही दिखलाई देती थी ।९५-९६। समीप पहुँचकर उन्होंने कहा, हे बेटा ! अब जल्द आओ, और मुझे अपनी भुजाओंके गाढ़ आलिंगनका सुख प्रदान करो ।९७। पिताके स्नेहसे भरे हुए, कानोंको सुख देनेवाले और रमणीय वचन सुनकर कुमारका चित्त आनन्दसे खिल उठा

।६८। वह जल्द ही अपने वेषको बदलकर विनयसे मस्तक झुकाये हुये पिताके चरण कमलोंमें पड़ गया ।६६। पिताने भी उसे तत्काल ही अपनी भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया और संयोगसुख में मग्न होकर नेत्र बन्द कर लिये ।१००। दोनोंके शरीर अन्तरंगके आनन्दको सूचित करनेवाले चिह्न से चिह्नित हो गये अर्थात् दोनोंके शरीर कंटकित हो गये और उसी प्रकार मिले हुये निश्चल हो रहे । उन्हें बहुत देर तक इसी अवस्थामें देखकर नारदजी आनन्दसे पूरित हो हँसते हुए इसप्रकार सन्तोषदायक वचन बोले, हे वीरों ! यहांपर बिना कामके क्यों बैठे हुए हो ? अब द्वारिकाको क्यों नहीं चलते हो ? ।१-३। नगरीके सारे स्त्री पुरुष उत्सुक हो रहे होंगे, अतएव बड़े भारी उत्सवके साथ अपनी उत्कृष्ट नगरीमें प्रवेश करो ।४। नारदजीकी नगर प्रवेशकी बात सुनकर श्रीकृष्णजी एक लम्बी सांस लेकर और दुःखसे गद्‌गद् होकर बोले, महाराज मैं सेनासे रहित होगया हूँ, अर्थात् मेरी सारी सेना संग्राममें मारी जा चुकी है। इससमय यह जो मेरा पुत्र मिल गया, सो हो अच्छा हुआ ।५-६। सारी नगरीमें बन्धुओं और सेनाओंसे रहित होकर केवल दो ही जने शेष रह गये हैं । एक मैं दूसरे, भगवान नेमिनाथ तीर्थङ्कर । अथवा मैं और प्रद्युम्न । अतएव हे मुनिनायक बतलाओ, नगर प्रवेशके समय अब मैं क्या शोभा कराऊं और इससमय किसके ऊपर छत्र धारण किया जावेगा अर्थात् जब प्रजा ही नहीं है, सेना ही नहीं है, तब छत्र किसका ?

श्रीकृष्णजीके मुंहसे इसप्रकार दीनताके वचन सुनकर नारदजी उनका दुःख निवारण करते हुये हँस करके बोले, कुमारने इस संग्राममें किसी एक जोवको भी नहीं मारा है और न हाथी घोड़ों और पैदलोंको किसीको कुछ पीड़ा पहुँचाई है ।७-१०। जो कामकुमार अपने शत्रुओंको भी नहीं मारता है, हे विष्णुमहाराज ! वह अपने पिता की सेनाको कैसे मारेगा ? आप सेना के नष्ट होनेका व्यर्थ दुःख न करें । सेना मरी नहीं है । यह सुनकर नारायणने पूछा, "तो क्या हुआ है ?" नारदजी

इस प्रश्नका उत्तर कुछ भी न देकर प्रद्युम्नकुमारसे बोले, ! क्यों कुमार तुम अभीतक अपने पिता के साथ ऐसी चेष्टायें करना नहीं छोड़ते हो, जिनका आदर केवल बालकोंमें ही होता है। देखो, बहुत समयकी हँसी भी अच्छी नहीं लगतो है। योग्यता और अयोग्यता के जाननेवाले लोगोंकी हँसी चण भरके लिये होती है। इसलिये अब तुम हँसी छोड़कर मनोहर चेष्टायें करो।११-१४। और इस सारी सेनाको उठाकर कृष्णजीको हर्षसे पूरित करो। नारदजीके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमारने वैसा ही किया। हाथी घोड़ों और पैदलोंसे भरी हुई सारी सेनाको लीलामात्रमें उठा दी, उस समय ऐसा मालूम पड़ता था कि सब लोग सोकरके एक ही साथ उठ रहे हैं।१५-१६। सेनाके वीर उठते हुए 'मारो ! मारो ! इस पापी शत्रुको जल्द ही पकड़लो !' इस प्रकार शब्द करते थे।१७। अपने वीरोंको इसप्रकार युद्ध करनेके अभिलाषी देखकर श्रीकृष्णजी हँसते हुए बोले, 'बस रहने दो, बहुत हो गया। सुभटों ! तुम्हारी सारी शूरवीरता देखली गई, मेरे अकेले एक पुत्र प्रद्युम्नकुमारने तुम सबको मार डाला था।' ।१८। नारायणके यह मनोहर वचन सुनकर यादव पांडवादि सबको बड़ा भारी अचरज हुआ।१९। उनके विस्मित होनेपर श्रीकृष्णजी फिर बोले, यह मेरा पुत्र विद्याधरोंका स्वामी सम्पूर्ण विद्याओंका निधान और अपनी मायासे सारे जगतको जीतनेमें शूरवीर है। इस समय मुझसे मिलने के लिये आया है।२०-२१। नारायणके ये वचन सुनते ही भीम अर्जुन आदि सुभट हाथी घोड़ों और रथोंसे उतर पड़े और प्रद्युम्नकुमारसे स्नेहपूर्वक मिले। कुमारने भी सब बांधवोंको यथायोग्य रीतिसे नमस्कार किया। समुद्रविजय तथा बलभद्र आदि जो गुरुजन थे, उन्हें मस्तकको धरतोमें लगाकर प्रणाम किया और जो अगणित राजा नमीभूत हुए थे। उनको हृदयसे लगाकर तथा कुशलप्रश्न पूछकर संतुष्ट किया। प्रद्युम्नकुमारको देखकर सम्पूर्ण बन्धुजनोंको बहुत ही प्रसन्नता हुई। ठीक ही है अपने योग्य स्वजनोंको देखकर किसे सन्तोष नहीं होता है सभीको होता है।२२-२७।

जिस समय यहांपर यह मेल मिलाप हो रहा था, उसी समय भानुकुमार सेनामेंसे निकलकर शीघ्र ही अपने घर गया और मातासे प्रद्युम्नकुमारका सब चरित्र कहने लगा ।२८। जब तक भानु कुमारने प्रद्युम्नका आगमन वृतांत कहा तब तक इन दोनोंके और जो नौकर चाकर तथा सहायक लोग थे वे भी सब सुननेके लिये आ गये। अपने बगीचेका, वनका, रथका, वापिकाका और फूलोंके ढेरका सत्यानाश करना तथा उदधिकुमारीका हरण करना सुनकर सत्यभामा अपने पुत्रके सहित अतिशय दुःखित हुई। उसके दुःखका वर्णन केवलीके बिना और कौन कर सकता है ।२९-३१।

वहां प्रेमपूरित श्रीकृष्णजी प्रद्युम्नकुमारसे बोले, बेटा ! अब तुम अपनी माताको यहां ले आओ। यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार नीचेको दृष्टि करके कुछ सोचने लगे। उत्तर न पाकर पिताने फिर कहा कि तुम अपनी माताको क्यों नहीं लाते हो, नीचा सिर करके क्या सोचते हो ? तब नारदजी बोले, पृथ्वीमें अपनी अपनी स्त्री सबको प्यारी होती है, तुमने इसप्रकारसे क्यों नहीं कहा कि अपनी माता और स्त्रीको ले आओ। यह इसीलिये नीचेको दृष्टि करके सोचता होगा कि अकेली माताको कैसे ले आऊँ और स्त्रीको लानेकी पिता आज्ञा नहीं देते हैं ।३२-३६। यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले, महाराज ! इसे बहु कहांसे प्राप्त हो गई ? मुझे तो उसके विषयमें कुछ ज्ञान भी नहीं है। नारदजी कहने लगे, हे जनार्दन ! दुर्योधनने अपनी जो उदधिकुमारी नामकी पुत्री भानुकुमारके साथ विवाह करनेके लिये भेजी थी, उसे इसने भीलका वेष धारण करके और कौरवोंको जीतकर हरण कर ली थी वह इस समय विमानमें रुक्मिणीके साथ बैठी है ।३७-३९। यह सुनकर श्रीकृष्णजी सन्तुष्ट हुए और प्रद्युम्नसे बोले, वत्स ! जल्द जाओ और अपनी माता तथा बहूको ले आओ ।४०। पिताकी आज्ञानुसार कुमारने विमानको जल्द धरतीपर उतार लिया। उसमें उसकी माता और भार्या दोनों बैठी हुई थीं ।४१। उस विमानको देखकर सबके सब यादव बहुत प्रसन्न हुए। क्योंकि वह एक अपूर्व

वस्तु थी ।४२।

रुक्मिणीने अपनी वधूके साथ आकाशरूपी आंगनसे उतरकर विनय और भक्तिके सहित श्रीकृष्णजीके चरणोंको नमस्कार किया ।४३। उन्हें देखकर नारायण बहुत प्रसन्न हुए और रुक्मिणी से बोले, तुम अपने मंत्रियोंके साथ जाकर नगरीको उत्सवयुक्त तथा शोभायुक्त करो ।४४। तब रुक्मिणी प्रसन्न होकर मन्त्रियोंके साथ गई और पुत्रके आगमनका सूचक महोत्सव करने लगी । सारी नगरी शृङ्गारित की गई, चन्दनके पानीसे छिड़की गई और सुन्दर २ फूलोंसे गुल्फपर्यन्त अर्थात् पैर की गांठोंतक पूर दी गई ।४५-४६। ध्वजा पताका तोरणों और नानाप्रकारके वेषोंसे सजाकर बाजारों की शोभा की गई ।४७।

नगरीकी सजावट हो चुकने पर मंत्रियोंने श्रीकृष्ण महाराजको विनयसे मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक सूचित किया कि हे नाथ! नगरीका शृङ्गार हो चुका ।४८। उनके वचन सुनकर नारायण बड़े प्रसन्न हुए और तेज बजनेवाले नगारा आदि नानाप्रकारके वादित्रों और नृत्य करती हुई गणिकाओं के साथ बड़े भारी उत्सवसे नगरीकी ओर चले । उनके साथ महाराज समुद्रविजय आदि बहुतसे राजा थे । नगरमें प्रवेश करते समय अगणित स्त्री और पुरुष देखनेके लिये आये, स्त्रियोंने तो देखने की उतावलीमें अपने रूपकी चेष्टायें विपरीत प्रकारकी कर लीं ।४९-५१। मुंहमें काजल लपेट लिया, आंखोंमें केसर आंज ली, कानोंमें बिछुए और पैरोंमें कर्णफूल पहिन लिये ।५२। इसप्रकार उस नगरी की स्त्रियां नाना प्रकारकी चेष्टायें करती हुई और हाथोंमेंका अधूरा किया हुआ काम छोड़कर बाहर आ गयीं ।५३। बहुतसी स्त्रियां कामदेवका रूप देखकर और अपने चित्तमें सन्तुष्ट होकर आपसमें इस प्रकार बातचीत करने लगीं—।५४।

एक बोली, यदि कामदेवके समान सुन्दर रूपवाला पति नहीं मिला, तो अन्य काठके समान

पुरुषोंसे क्या प्रयोजन है ? दूसरी प्रौढ़ अवस्था की स्त्री बोली, यदि मेरे पुत्र हो, तो कामदेव सरीखा हो नहीं तो पुत्रका न होना ही अच्छा है ।५५-५६। उस रुक्मिणीको धन्य है, जिसने इसे अपने उदर में धारण किया है और इस श्रीकृष्णको धन्य है, जिसके घरमें ऐसे पुत्रका जन्म हुआ है ।५७। कोई तीसरी कामिनी बोली, उस कनकमाला विद्याधरीको धन्य है, जिसने इसे लालन पालन करके तथा दूध पिलाकर बढ़ाया है ।५८। यादवोंके कुलका यह एक जगत्प्रसिद्ध पुण्य ही है, जिसमें इसका अवतार हुआ है, और द्वारिका नगरीका बड़ा भारी भाग्य है, जिसमें यह विचरण करेगा ।५६। और सबसे अधिक प्रशंसाके योग्य तो उदधिकुमारीका पुण्य है, जो इसके अङ्कमें आरूढ़ होकर रमण करेगी ।६०।

और एक कामिनी अपनी संगवालीसे बोली, हे सखी ! देख देख, यह प्रद्युम्नकुमार आया। यह श्रीकृष्णजीका वही पुत्र है, जिसे छोटेपन में कोई शत्रु हर ले गया था और खदिरा अटवीमें शिलाके नीचे ढँक गया था। तथा जिसे एक विद्याधरोंका राजा अपनी विद्याके बलसे निकाल ले गया था और घर ले जाकर उसने लालन पालनकर बड़ा किया था, तथा विद्याओंसे भूषित किया था ।६१-६३। अब यह सोलह प्रकारके लाभ और विद्याधरोंकी विद्याओंको लेकर रुक्मिणीके पूर्वपुण्यके प्रभावसे अपने पिताके घर आया है ।६४। इसके पुण्यके योग से शत्रु भी परम बन्धु हो गये हैं। कहां तो इसके सोलह प्रकारके लाभ, कहां इसकी आकाशचारिणी गति, कहां इसकी प्रीति और कहां पृथ्वीमें फैली हुई कीर्ति, द्वारिकापुरीमें अच्छे कुलसे उत्पन्न हुए बहुतसे यदुवंशी हैं, परन्तु उनमेंसे किसी एकका भी नाम किसीको (इतना) ज्ञात नहीं है ।६५-६७। यह सुनकर एक और स्त्री बोली, अरी मूर्खा तू इस प्रकार बारम्बार क्या प्रशंसा करती है, विद्या धन, कोष, और यश सब पुण्यसे प्राप्त होते हैं ।६८। इसने पूर्व जन्ममें दुर्धर तप किया है, सत्पात्रोंको भावपूर्वक उत्कृष्ट दान दिया है, भाव लगाकर श्रीजिनेन्द्रचन्द्रकी पूजा की है, और निर्मल चारित्र धारण किया है।

अतएव यह कामदेवका जन्म पाया है, नहीं तो कहां था! इसप्रकारकी पापरहित विद्या, शूरवीरता, मनोहरता, गुरुजनोंके चरणोंमें भक्ति और रमणीय लक्ष्मी इसे कैसे मिलती? ।६९-७१।

इसप्रकार स्त्रियोंकी नानाप्रकारकी बातें सुनते हुए प्रद्युम्नकुमार जो कि हाथीपर आरूढ़ थे, जिनके मस्तकपर सफेद छत्र था, चमर ढुर रहे थे, और जो स्त्रियोंके नेत्ररूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिये चन्द्रमाके समान थे, अपने पिताके साथ अपनी माताके उत्सवयुक्त महलमें पहुँचे ।७२-७३। अपने सर्व लक्षणोंसे लक्षित पुत्रको आया हुआ देखकर माताने अर्घपाद्य आदि लेकर मंगल क्रिया की ।७४। उस समय कामकुमारके आनेपर एक सत्यभामा और भानुकुमारको छोड़के सारी द्वारिकाके लोगोंने उत्सव मनाया। सत्यभामाके यहां उत्सवके स्थानमें शोक हुआ ।७५।

बलदेव, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न तथा और भी अनेक राजा कितने ही दिन रुक्मिणीके महलमें आनन्दपूवक ठहरे। एक दिन नारायणने अपने मन्त्रियोंसे कहा कि, अब प्रद्युम्नका विवाह बड़े भारी उत्सवके साथ करना चाहिये। यह सुनकर कुमारने विनयपूर्वक कहा कि, महाराज कालसंवर और रानी कनकमालाके समक्षमें मेरा विवाह होगा, नहीं तो मैं विवाह नहीं करूँगा। वे मेरे पालन करनेवाले सच्चे माता पिता हैं ।७६-७९। कुमारका उचित विचार सुनकर नारायणने उसी समय एक दूत कालसंवर महाराजके पास भेजा। उसने निकट जाकर प्रद्युम्नकी प्रतिज्ञा सुनाई कि, आपके उपस्थित हुए बिना वे अपना विवाह नहीं करेंगे। उसे सुनकर विद्याधरपति अपनी रानीके साथ विचार करके चलनेको तैयार होगया। परन्तु उसका हृदय अपनी पूर्वकृतिपर लज्जासे व्याकुल होने लगा ।८०-८१। आखिर वह बड़ी भारी सेनाके साथ बहुतसी कन्याओंको और रतिकुमारीको उसके पिताके साथ लेकर द्वारिकामें जा पहुँचा ।८२। विद्याधरोंके राजाको आया सुनकर प्रद्युम्नकुमार अपने पिताके सहित बड़ी भारी सेना लेकर सन्मुख गया। और वहां उसने बड़े भारी स्नेहसे कालसंवर और कनकमालाके

चरणोंको नमस्कार किया। श्रीकृष्णजीभी उनसे बड़ी प्रसन्नतासे मिले।८३-८४। उसी समय मोहके वश रुक्मिणीने भी वनमें आकर रानी कनकमालासे विनयपूर्वक भेंट की।८५। उसके पश्चात् श्रीकृष्ण जीने आगन्तुकोंका बड़े भारी उत्सवके साथ नगर प्रवेश कराया और भक्तिसे उन्हें खूब सन्तुष्ट किया।८६।

नगरीमें उससमय बजते हुए बाजोंसे मनोहर, और नृत्य करती हुई स्त्रियोंके रमणीय गीतोंसे बड़ा भारी सुन्दर उत्सव हुआ।८७। कहीं तो मनुष्योंके बजाये हुये बाजोंका शब्द सुन पड़ता था, कहीं स्त्रियोंका किया हुआ नृत्य दिखलाई देता था, ।८८। कहीं पताकायें उड़ती थीं, कहीं रत्नोंके तोरण लटकते थे और कहीं घोड़ोंके समूह, हाथियोंके झुण्ड, रथोंके थोक तथा छत्रवृन्द दिखलाई देते थे। इस प्रकार नाना भांतिके उत्सवोंसे वह नगरी सुशोभित हो रही थी।८९-९०।

इसप्रकार चिंतित विभूतिके उपस्थित होनेपर प्रद्युम्नकुमार श्रीजिनेन्द्रदेवकी आठ प्रकार पूजा करके सब राजाओंके समीप गया। उनसे मिलने पर उसने कहा कि, मुझे सत्यभामा महाराणीके सिरकी वेणी मँगा दो, मैं उस पर पैर रखकर घोड़े पर चढ़ूंगा। क्योंकि इस बातकी प्रतिज्ञा श्रीबलदेवजी महाराज के समक्षमें हो चुकी है। सत्यभामाने यह बात स्वीकार की थी।९१-९३। लोगोंके मुंहसे यह बात सुनकर कि प्रद्युम्नकुमार राजाओंके साम्हने वेणी मांगनेके लिये कह रहा है, रुक्मिणी महाराणी स्वयं आकर बोली, बेटा तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिये। श्रेष्ठपुरुषोंका यह काम नहीं है। तू वेणी ही क्या माँगता है? तेरे द्वारिकामें आते ही सत्यभामाका तो सिरमुण्डन हो चुका, और वह सौ बार गधे पर चढ़ चुकी। अब प्रगट हुई बातको और क्या प्रगट करना है? ।९४-९५।

माताके रोकनेसे प्रद्युम्न चुप हो रहा, और घोड़ेपर चढ़कर याचकोंकी इच्छाओंको कल्पवृक्षके समान पूर्ण करता हुआ, कालसंवर बलदेव और श्रीकृष्णजीके साथ नानाप्रकारके उत्सवोंसहित, वनमें गया।९६-९७। सो उसी सुन्दरवनमें कामदेव (प्रद्युम्न) और रतिका विवाह हुआ। जिससे स्वजनजनोंको

अतिसय आनन्द हुआ।१८। उसीसमय उदधिकुमारी आदि पांचसौ आठ कन्यायें भी जो देवांगनाओं के समान रूपवती गुणवती थीं, प्रद्युम्नकुमारको ब्याही गयीं।६६। उन्हें विवाह करके उसने बड़ी भारी विभूतिके साथ नगरी में प्रवेश किया। श्रीकृष्णजी के कहने से विद्याधरोंने ही प्रद्युम्नका विवाह विहित किया।२००।

विद्याधर लोग स्वजनों और परिजनोंसे भली भांति आदर सत्कार पाते हुए कितने ही दिन द्वारिकामें रहे। एक दिन कालसंवर महाराजने बड़ी भारी विनयसे हाथ जोड़कर कहा कि, विष्णुमहाराज! यदि आप मुझे कृपा करके आज्ञा देवें, तो मैं अपने स्वजन परिजनोंके साथ अपने नगरको जाऊं।१-३। विद्याधरनरेशको जानेके लिये उत्सुक देखकर श्रीकृष्णजी अपने बन्धुजनोंके सहित अतिशय स्नेह प्रगट करके बोले, हे मित्र! आपने प्रद्युम्नको अपने मन्दिरमें ले जाकर वृद्धिको प्राप्त किया है, इसलिये यह पहिले आपका ही पुत्र है, पीछे मेरा है।४-५। ऐसा विचार करके हे विद्याधरपति! आपको भी इस पुत्रके विषयमें जैसा उचित हो, वैसा करना चाहिये। श्रीकृष्णजीके पश्चात् रुक्मिणी ने भी ऐसा ही कहा कि, इसे आपको अपना पुत्र समझना चाहिये। और कनकमाला को विधिपूर्वक नाना भांतिके वस्त्र आभरण आदि देकर संतुष्ट किया।६-७। फिर श्रीकृष्णजीने सम्पूर्ण विद्याधरोंको आदरपूर्वक संतुष्ट करके कालसंवरको अपने नगरीकी ओर विदा किया। उन्हें पहुँचाकर श्रीकृष्णजी तो रुक्मिणी के सहित विद्याधरोंकी चर्चा करते हुए अपने महलको लौट आये, परन्तु प्रद्युम्नकुमार मोहके मारे अपने उन माता पिताओंके साथ चला गया। सो कुछ दूर जाकर उनके चरण कमलोंको नमस्कार करके—उन्हें अपनी विनयसे सन्तुष्ट करके लौट पड़ा और यादवोंसे भरी हुई नगरी में आ पहुँचा।८-११।

प्रद्युम्नकुमार का विवाहदेखकर यदुवंशी भोजवंशी आदि सब ही शुभचिन्तक सुखी हुए।

माता पिताके सुखका तो कहना ही क्या है ? रुक्मिणीको प्रसन्नचित्त देखकर और अपना मनोरथ, सफल हुआ समझकर नारदजी भी सुखी हुए ।१२-१३। सत्यभामाके दुःखको देखकर तो उन्हें और भी अधिक संतोष हुआ ! विवाहादि कार्य होजानेपर वे प्रसन्नतासे अपने इच्छित स्थानको चले गये ।१४।

इसके पश्चात् पिताकी भक्तिके भारसे नम्र, सुखसागरके मध्यमें विराजमान, देवोंद्वारा सेवनीय देवपूजा गुरुसेवा आदि छह कर्मोंमें तत्पर और स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंपर भ्रमरोंके समान गुंजार करनेवाला प्रद्युम्नकुमार आनन्दयुक्त रहकर अपने जाते हुए समयको नहीं जान सका। अर्थात् सुख ही सुखमें उसे नहीं मालूम हुआ कि कितना समय बीत गया ।१५-१६।

तदनन्तर सत्यभामाने जो कि, प्रद्युम्नकुमारके विवाहको देखकर दुःखसे बहुत आकुल हुई थी–दुःखके समुद्रमें डूब रही थी, सुन्दर रूप गुण आदि सब लक्षणोंवाली अनेक कन्याओंको मंगनी करके बुलवायीं और उनका भानुकुमारके साथ विवाह कर दिया । सो माताका परमभक्त तथा गुणवान भानुकुमार भी उन स्त्रियोंके साथ उत्कृष्ट सुख भोगने लगा ।१७-१९।

सारी पृथ्वीमें प्रद्युम्नकी कीर्ति फैल गई । नगरमें, चौराहेमें जहां तहां प्रद्युम्नकी कथा सुनाई पड़ती थी ।२०। यह कीर्ति उस बलवानने अपने पुण्यके प्रभावसे प्राप्त की थी । क्योंकि संसार में जो कुछ चिन्तनीय तथा अमूल्य पदार्थ हैं, वे सब पुण्य हेतुज हैं, अर्थात् पुण्यसे ही प्राप्त होते हैं ।२१। स्वजनोंसे मिलाप होना, चिन्तित पापरहित तथा उत्तम अर्थकी प्राप्ति होना, और रात दिन देव तथा मनुष्योंसे सेवित होना, ये सब पुण्यरूप वृक्षके फल हैं ।२२। धर्मसे अनेक प्रकारके पवित्र सुख मिलते हैं, धर्मसे निर्मल कीर्ति होती है, धर्मसे ही स्वजनोंकी सज्जनता, रिपुओंका क्षय, विद्या विवेकादि प्राप्त होते हैं, और धर्म ही संसारके क्लेश आदि तापोंके हरण करनेके लिये सोम अर्थात चन्द्रमाके समान सौम्य है, इसलिये हे बुद्धिमानों ! जिन भगवानके कहे हुए अतिशय कल्याणरूप

धर्मकी सेवा करो ।२२३।

इति श्रीसोमकीर्ति आचार्यकृत प्रद्युम्न चरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें प्रद्युम्नका युद्ध, स्वजनोंका मिलाप, तथा विवाहोत्सवके वर्णनवाला ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

द्वादशम: सर्ग:।

प्रद्युम्नकुमार द्वारिकानगरीमें सुखसागरमें निमग्न हो रहे थे। ऐसा पूर्वमें कहा जा चुका है। अब उसके अनन्तर कीर्तिशाली शम्बुकुमारका दिव्य चरित्र वर्णन करते हैं–।१।

प्रद्युम्नकुमारका पूर्व भवका छोटा भाई कैटभ सोलहवें स्वर्गमें इन्द्र हुआ था। उसकी अनेक देव सेवा करते थे। एक दिन निर्मल विमानमें बैठे हुए उस महामतिको ऐसी मति हुई कि, जिनेश्वर भगवानकी वन्दना करना चाहिये ।२-३। इसप्रकारके शुभभावोंके वशवर्ती होकर बड़ी भारी भक्तिसे सुमेरुपर्वतकी पूर्व दिशामें जो विदेह क्षेत्र है, उसकी पुण्डरीकिनी नामक प्रसिद्ध नगरीमें गया। उस नगरीको पद्मनाभि नामके राजा पालन करते थे। वहां जाकर उसने श्रीजिनेन्द्रदेवके चरण कमलोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और उनके कहे हुए दुःखके नाश करनेवाले धर्मका स्वरूप सुना ४-६। इसके पश्चात् उस इन्द्रने अवसर पाकर और फिर नमस्कार करके अपने पूर्वभवोंका वृत्तान्त पूछा कि, हे विश्वनाथ ! हे जगत्पालक ! हे विश्ववल्लभ ! और हे गुणाकर ! कृपाकरके मेरे भवान्तरोंका चरित्र कहिये ।७-८। यह सुनकर जिनेन्द्रभगवानने कहा, हे देवेन्द्र ! सुनो, तुम्हारे पूर्वभवोंका वर्णन संक्षेप से करते हैं। निदान भगवानने ब्राह्मणके भवसे लेकर इन्द्रके भवतकका सब वृतान्त कहा, जिसप्रकार कि पूर्वमें नारदजीसे कहा था ।९-१०।

अपने पूर्वभवका वर्णन सुनकर वह देवोंका स्वामी बोला, हे जिनराज ! यह बतलाइये कि, मेरे भाई मधुका जीव कहां है ? जिन भगवानने कहा कि, इससमय वह द्वारिकानगरीमें श्रीकृष्णनारायणका

रुक्मिणी महाराणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र प्रद्युम्नकुमार है ।११-१२। देवराजने फिर पूछा कि, मेरा उससे मिलाप होगा या नहीं ? भगवानने प्रत्युत्तर दिया कि, तुम दोनोंका अवश्य वहाँ ही संयोग होगा ।१३-१४। क्योंकि तुम भी श्रीकृष्णके पुत्र होवोगे । इसमें सन्देह नहीं है । जिनदेवके वचन सुन कर देवराज बड़ा प्रसन्न हुआ और तीर्थंकरको उत्कृष्ट भक्तिसे बारम्बार नमस्कार करके वहांसे द्वारिका नगरीको चल पड़ा ।१५-१६।

श्रीकृष्णकी सभामें पहुँचकरके उसने अपने कमलके समान नेत्रोंको प्रफुल्लित किये हुए उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और कहा, हे प्रभो ! मेरे वचन सावधानीके साथ सुनो । मैं थोड़े ही दिनों में मनुष्योंको कामदेवके समान प्यारा और स्त्रियोंके चित्तको चुराने वाला तुम्हारा पुत्र होऊँगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है । सो तुम अमुक पक्षमें अमुक दिन महाराणीके साथ शयन करना ।१७-१९। इसके पश्चात् उसने श्रीकृष्णजीको एक मणियोंका हार दिया, जो अतिशय दैदीप्यमान था, जिसकी करोड़ सूर्यों सरीखी प्रभा थी । और कहा कि, यह मनोहर हार जो कि अन्य मनुष्योंको दुर्लभ है, उसी मुहूर्तमें मेरी माताको देना ।२० २१। ऐसा कहकर वह देवराज बड़े आनन्दसे अपने विमानमें बैठकर चला गया ।

उसके चले जाने पर श्रीकृष्णजी हर्षित हुए और उस कार्यके विषयमें चिन्ता करने लगे कि, इस प्रद्युम्नके छोटे भाईको जो कि गुणोंका सागर है, जिसके गर्भमें अवतरण करूँ । विचार करते करते उन्हें एक बुद्धि उत्पन्न हुई कि, प्रद्युम्नकुमारका और सत्यभामाका परस्पर बड़ा भारी द्वेष रहता है । अतएव यदि सत्यभामाके उदरसे ही इसका अवतार कराया जावेगा, तो छोटे भाईके सम्बन्धसे प्रद्युम्नकी और सत्यभामाकी उत्कृष्ट प्रीति हो जावेगी । यह विचार उन्होंने अपने मनमें ही पक्का कर लिया । प्रद्युम्नकुमारके भयसे यह गुप्त विचार उन्होंने किसी से भी नहीं कहा ।२२-२६। परन्तु

दैवयोगसे यह बात छुपी नहीं रही। प्रद्युम्नकुमारको भाईके उत्पन्न होनेकी तथा हार देने आदिकी सब बातें मालूम हो गयी।२७।

तब प्रद्युम्नने उत्सवमें मोहित होनेवाली अपनी माताके महलमें जाकर उससे एकान्तमें बड़ी विनयसे निवेदन कियाकि, हे माता! मेरा भाई कैटभ जो सात भवसे मेरे साथ भ्रमण कर रहा है, इस समय सोलहवें स्वर्गमें देवोंका स्वामी इन्द्र है। और थोड़े ही दिनमें मेरे पिता श्रीकृष्ण महाराजके यहां पुत्र रूपमें अवतार लेगा। यह बात जिनेन्द्रभगवानकी कही हुई है, सो झूठ नहीं हो सकती है। यद्यपि मेरे पिता वह पुत्र सत्यभामा महारानीको देना चाहते हैं।२८-३१। परन्तु यदि उसी सब गुणोंकी खानि पुत्रके पानेको तुझे इच्छा हो तो मैं तेरे उदरमें ही उसका अवतरण करा सकता हूं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।३२। यह सुनकर रुक्मणी बोली, यह तुझसे कैसे होगा? क्योंकि यह कार्य तेरे अधिकारमें कदापि नहीं है।३३। प्रद्युम्न, बोला, नहीं मेरे अधिकारमें है। जिस दिन सत्यभामाके संयोगका दिन होगा, उसदिन मैं तुझे ही कृत्रिम सत्यभामा बनाकर पिताके समीप भेजदूँगा जिससे सब कार्य सिद्ध हो जावेगा।३४। रुक्मिणी पुत्रके वचनसे संतुष्ट होकर मुस्कराती हुई बोली; बेटा! अब मैं अन्य कष्टरूप पुत्रोंको नहीं चाहती हूँ, मुझे तू ही बहुत है। संसारमें तेरे समान तू ही है। सूर्यके समान दूसरा कौन हो सकता है?।३५-३६। हां यदि तू मेरा पुत्र है, तो जो मैं कहती हूँ सो कर। यह जाम्बुवती रानी मेरी सौत है, तो भी मुझको प्यारी है। इसका तेरे पिताके साथ बड़ा भारी विरोध है। वे इसको नहीं चाहते हैं अतएव तू उस देवका अवतार इसके उदरमें करानेका प्रयत्न कर। उत्तम पुरुषोंकी विभूति पराये उपकार करनेके लिये समर्थ होती है। अतएव जिस तरह हो, उस तरहसे इसका दुःख निवारण कर।३७-३९। "माताके सब वचन मानूँगा और निश्चयसे उन्हींके अनुसार काम करूंगा" ऐसा कहकर और नमस्कार करके प्रद्युम्न जांबुवतीके महलमें गया।४०।

वहां जाकर उसने अपनी मातासे जो बात कही थी, वही एकान्तमें जांबुवतीसे कह दी, वह बोली, तुम्हारे पितासे मेरा विरोध है। फिर मेरे उदरसे पुत्र कैसे हो सकता है ? मेरे तो तू ही पुत्र है। यह सुनकर प्रद्युम्नने अपनी विद्यासे रूप बदल देने आदिका सब विचार कह दिया।४१-४२। उसे सुनकर जांबुवतीको बहुत सन्तोष हुआ। वह बोली, बेटा ! तू उत्तम है, बुद्धिमान है जैसा तुझे रुचता हो, वैसा कर। ।४३। इसप्रकार स्वीकारताका उत्तर सुनकर प्रद्युम्न प्रसन्न होकर अपने महलको चला गया। वहां जांबुवती उस सुखसमयकी एक चित्तसे प्रतीक्षा करती हुई रहने लगी।४४।

इसी बीचमें संसारके प्यारे वसन्त ऋतुका आगमन हुआ। आमोंके बगीचे मौर गये। उनपर कोयलें कुहू कुहू शब्द करने लगीं। संयोगियोंके चित्तोंके समान टेसू फूल गये। मानिनी स्त्रियोंका मान भंजन करनेवाली भ्रमरोंकी झंकार सुनायी पड़ने लगी।४५। चैतके महिनेकी सुदी दशवींका दिन आया श्रीकृष्णजी अपनी पूर्व इच्छाके अनुसार सत्यभामासे आनेका निवेदन करके वनक्रीड़ा करनेके लिये गये।४६-४७। सो रैवतक (गिरनार) पर्वतपर फूलोंका गृह बनाकर वहां पुत्रकी वांछासे तीन दिन तक रहे।४८। उस समय सत्यभामा अतिशय आनन्दित हुयी। तीन दिन बीते जानकर वह भी बनक्रीड़ाके लिये जानेके लिये उद्यत हुयी।४९।

यहां प्रद्युम्नकुमारने भी जांबुवतीके घर जाकर उसका रूप बदलनेवाली देवोपनीत मुद्रिका (अंगूठी) दे दी, जिसके प्रभावसे उसने अपना रूप बदलकरके सत्यभामाका अचरज करनेवाला रूप धारण कर लिया। उस रूपको दर्पणमें देखकर और आपको ठीक सत्यभामाकी आकृति जानकर वह बहुत प्रसन्न हुयी। प्रद्युम्नकुमारको भी सन्तोष हुआ। वह बोला, हे माता ! जिस समय तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जावे, उस समय अपना प्रकृतरूप धारण कर लेना।५०-५३। ऐसा कहकर कुमारने उसे पालकीमें बिठाई और थोड़ेसे सेवकोंके साथ वनमें भेज दी, जहां कि श्रीकृष्णनारायण पुष्पगृह

बनाये हुए विराजमान थे। जांबुवती उनसे जाकर मिली, और चरणकमलोंको नमस्कार करके खड़ी हो रही ।५४-५५। उसे देखकर नारायण बहुत प्रसन्न हुए और सत्यभामा समझकर उससे मुसकुराते हुए बोले, हे देवी ! तुमने बहुत अच्छा किया, जो यहां आगयीं। निश्चय समझो कि अब प्रद्युम्नका छोटा भाई तुम्हारे ही उदरमें अवतार लेगा ।५६-५७। प्रद्युम्नने तुम्हारे इस वनमें आनेका वृत्तांत नहीं जाना होगा। उसने सोलहवें स्वर्गके उस देवके (इन्द्रके) आनेका वृत्तांत भी नहीं जाना था यह अच्छा ही हुआ। नहीं तो उसकी मायाका बड़ा डर था ।५८। ऐसा कहकर नारायण उस सत्यभामाके साथ रतिक्रीड़ा करने लगे। और वह भी अपने हाव भाव विभ्रमविलासोंसे मोहित करके रमण करने लगी।५९। सो सुरतके अन्तमें वही सोलहवें स्वर्गका देव चयकर जांबुवतीके गर्भमें स्थित हो गया। ठीक ही है, पुण्यसे ऐसा कौनसा पदार्थ है, जो प्राप्त हो नहीं सके ? ।६०। इसके पश्चात् श्रीकृष्णजीने दूसरेको नहीं मिल सके, ऐसा वह हार जो कि देव दे गया था, उस बनावटी सत्यभामाको समर्पण कर दिया। सो उसने उसे प्रसन्नतासे अपने कण्ठमें धारण कर लिया। हार पहिन चुकने के पीछे उसने अपनी अंगुलीसे मुद्रिका उतार ली और अपना असली रूप प्रगट कर दिया ।६१-६२।

जांबुवतीका रूप देखकर कृष्णजी बड़े विस्मित हुए। और बारम्बार विचार करने लगे कि, यह क्या कौतुक हुआ ? आखिर जांबुवतीसे पूछा, क्या तुझको प्रद्युम्नकुमार मिल गया था, जिसने अपनी विद्याके प्रभावसे यह सत्यभामाका रूप बना दिया था ? ।६३-६४। जांबुवती नारायणके चरण कमलोंको नमस्कार करके बोली, हे कृपाधार ! मुझ पर कृपा करो, और पुराने क्रोधको छोड़ दो ।६५। उन्होंने भी प्रसन्न होकर उत्तर दिया, प्रिये ! तुम पर जो क्रोध था, वह नष्ट हो गया। आज से तुम मेरे प्राणोंसे भी अतिशय प्यारी रानी हुई ।६६। मैंने यह पुत्र जो अब तेरे गर्भमें आया है, सत्यभामाको देनेका निश्चय किया था। परन्तु दैवने (भाग्यने) क्षणभरमें कुछका कुछ कर दिया। जब

कर्मों की प्रेरणा होती है, तब बुद्धिमान पुरुष भी क्या कर सकता है ? उसका दैव उसकी सब क्रियाओं को बलपूर्वक व्यर्थ कर डालता है ।६७-६८। अब तेरे पुण्यके प्रभावसे वह देवोंका राजा तेरे ही गर्भ से जन्म लेगा। वह शंबुकुमार नामका विख्यात और जगद्वन्द्य पुत्र होगा ।६९। ऐसा कहकर और सन्तुष्ट करके श्रीकृष्णजीने जांबुवतीको जल्द ही उसके महलोंको भेज दी । वे इस भयसे व्याकुल हो रहे थे कि यदि इस समय सत्यभामा आ जावेगी तो कठिनाई होगी ।७०।

उधर प्रमोदको धारण करती हुई सत्यभामाने बड़े घमंडसे स्नान मज्जन आदि करके अपना शृङ्गार किया । शेखर आदि आभूषणोंसे अपनेको यथाशक्ति विभूषित किया, और सुन्दर पालकीमें बैठकर वह बहुतसे नौकर चाकरोंके साथ बनकी ओर चली ।७१-७२। आगे चलकर उसे मार्गमें ही जाम्बुवती आती हुई मिल गई ।७३। सत्यभामाने अपने सेवकोंसे पूछा कि यह पालकीमें आरूढ़ हुई मेरे आगेसे कौन आ रही है ? उन्होंने उत्तर दिया कि, जांबुवती महारानी हैं । सत्यभामाने कहा, अरे यह विना नामकी कहां गई थी ? ।७४-७५। फिर जाम्बुवतीसे कहा, हे पापिनी ! मेरी बांयी तरफसे जा ! उसने उत्तर दिया, हे घमंडिनी ! जब भरे हुयेको रीता हुआ साम्हने मिलता है, तब जो रीता होता है वह एक ओरको हट जाता है, वह अपने स्थान ही पर रहता है । तात्पर्य यह है कि, तू खाली आई है सो एक ओरको तू जा, मैं नहीं हटूँगी, मैं भरी हुई हूँ ।७६-७७।

व्यर्थ समय खोनेके भयसे सत्यभामाने अधिक विवाद नहीं बढ़ाया । जाम्बुवतीको छोड़कर वह अपने पतिके समीप रवाना होगई । जिस समय श्रीकृष्णजी रतिगृहमें बैठे हुये बाट देख रहे थे, उसी समय सत्यभामा बहुतसे नौकर चाकरोंके साथ पहुँच गई ।७८-७९। सो वह भी फूलोंकी दिव्य शय्यापर अपने मनोहर वचनालापसे, रतिकूंजनसे, मणियोंके आभूषणोंके मधुर २ शब्दोंसे, कामविकार, युक्त सी सी शब्दसे, और थकावटकी श्वाससे, पतिको रिझाती हुई इन्द्र और इन्द्राणीके समान संभोग-

क्रीड़ा करने लगी। सुरतके समय उसके नेत्र मधुपानके मदसे लाल हो रहे थे, और शरीर पसीनेके बिन्दुओंसे सराबोर हो रहा था। ठण्डी २ हवासे उसकी थकावट मिट जाती थी।८०-८२।

इसप्रकार सुरत लीला समाप्त होनेपर पुण्यके योगसे उसीसमय कोई देव स्वर्गसे चयकर सत्यभामाके गर्भमें आगया। फिर श्रीकृष्णजीने कोई एक दूसरा सुन्दर हार सत्यभामाको दिया। सो उसको लेकर और गलेमें पहिनकर वह बहुत सन्तुष्ट हुई।८३। सो ठीक ही है, भाग्यके अनुसार ही सब कुछ मिलता है। जाम्बुवतीको वह देवका दिया हुआ हार मिला और सत्यभामाको उसके बदले एक दूसरा साधारण हार मिला। इसके अनन्तर श्रीकृष्णजी सत्यभामाके सहित द्वारावतीमें आ गये। इनके नगर प्रवेशके समय बड़ा भारी उत्सव किया गया।८४। श्रीकृष्णजीकी उन दोनों प्यारी रानियोंके बढ़ते हुए गर्भ सम्पूर्ण यदुवंशियोंके मनको हरण करने वाले हुए। अर्थात् उनसे सबका चित्त प्रसन्न हुआ।८५। सत्यभामा और जांबुवतीको गर्भवृद्धिसे जो अनेक प्रकारके मनोरथ (दोहले) होते थे, उन्हें भानुकुमार और प्रद्युम्नकुमार पूर्ण करते थे।८६। उनके गर्भोंकी बढ़तीके साथ साथ यादवोंके महलोंमें विभूतिकी भी अतिशय बढ़ती होने लगी। धनधान्य सुख शान्ति आदि सब कुछ वृद्धिको प्राप्त होने लगे।८७-८८।

जब सत्यभामाने सुना कि, जांबुवती भी गर्भवती है, तब उसने घमंडसे सोचा कि, उसके गर्भमें आया होगा कोई! मुझे उससे क्या? जो सोलहवें स्वर्गसे च्युत हुआ है, वह तो निश्चयपूर्वक मेरे ही गर्भमें आया है। फिर किसी दूसरे सामान्य पुत्रोंसे क्या प्रयोजन है?।८९-९०। उसने यह भी सोचा कि, जब मेरे गर्भमें प्रद्युम्नकुमारका पूर्वभवका छोटा भाई आया है, तब वह मेरी भक्ति क्यों नहीं करेगा अर्थात् अपने छोटे भाईके सम्बन्धसे प्रद्युम्न भी मेरा भक्त हो जावेगा।९१। इधर सत्यभामा इसप्रकारके विचार कर रही थी, उधर जांबुवतीके गर्भके नो महीने पूरे हो गये।९२। अतएव उसने शुभमुहूर्त, शुभयोग, शुभलग्न और शुभदिनमें एक मनोहर कल्याणरूप पुत्र जना।९३। उस सुन्दर बालकका

आकार प्रकाशमान मणिके समान था, शरीर सांवला था और अंगोपांग बड़े ही सुन्दर थे। जिससमय वह सम्पूर्ण शुभलक्षणोंसे युक्त बालक हुआ, ठीक उसी समय कृष्णमहाराजके सारथी पद्मनाभिके सुदारुक नामका पुत्र हुआ, वीरनामके महामंत्रीके बुद्धिसेन नामका पुत्र हुआ और गरुड़केतु नामके सेनापतिके जयसेन नामका पुत्र हुआ। इसप्रकार जांबुवतीके पुत्रके साथ ही तीन पुत्र और हुए, जिनके साथ वह कुमार वृद्धिको प्राप्त होने लगा। इसके लिये खूब जलसा किये गये। दान किया गया, जिनमन्दिरोंमें पूजा की गयी, और कैदी छोड़ दिये गये। सम्पूर्ण स्वजन जनोंने इस बालकका नाम शम्बुकुमार रख दिया।६४-६६। इसके पश्चात् सत्यभामाने भी एक शुभ लक्षण वाले पुत्रको जना। उसका नाम जितभानु रक्खा गया।१००।

सब लोगोंके प्यारे, सुन्दर वेषके धारण करनेवाले, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाले, कमलोंके समान नेत्र वाले और नेत्र तथा चित्तको हरण करनेवाले वे दोनों बालक सारी यदुवंशियोंकी स्त्रियोंके करकमलों पर निवास करनेवाले भ्रमरोंके समान दिखायी देने लगे।१-२। निरन्तर एक हाथसे दूसरे हाथ पर संचार करने वाले, सुन्दर लक्षणोंवाले, प्रद्युम्न तथा भानुकुमारके दिये नाना प्रकारके भूषणोंसे शोभित, रुम झुम रुम झुम बजती हुई पैजनियों तथा किंकणियोंसे युक्त, सुन्दर कोमल पैर रखनेके लिये तैयार वे दोनों कुमार क्रमक्रमसे बढ़ने लगे।

प्रद्युम्नकुमार अपने छोटे भ्राता शंबुकुमारको प्रति दिन पढ़ाने लगा और भानुकुमार सुभानुकुमारको अपनी विद्या कला कौशल्यादि सिखाने लगा।३-६। जिससे दोनों ही कुमार विद्याकलाओंमें कुशल हो गये तथा कुछ समयमें सुन्दर बाल्यावस्था पारकर युवावस्थामें प्रवेश करने लगे।

एक दिनकी बात है कि वे अपने साथमें पैदा हुए मित्रोंसे वेष्टित होकर क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णजीकी सभामें आये, जो चित्र विचित्र पुष्पमालायें पहने अनेक राजाओंसे परिपूर्ण थी और

बलदेव पांडव आदि शूरवीरोंसे शोभित हो रही थी।७-९। श्रीकृष्णजीके और दूसरे पूज्य पुरुषोंके चरणोंको नमस्कार करके वे दोनों चतुर कुमार यथोचित स्थानपरजाके बैठगये।१०। एक तो प्रद्युम्न-कुमारके निकट बैठा और दूसरा भानुकुमारके निकट। उन्हें सर्व सभाजनोंने प्रसन्नताके साथ देखा।११।

उस समय बलदेवजी पांडवोंके साथ द्यूतक्रीड़ा कर रहे थे अर्थात् जूआ खेल रहे थे और श्रीकृष्णजी देख रहे थे। उन सुन्दर राजकुमारोंको देखकर पांडवोंने तथा बलदेवजीने कहा कि हे कुमारों, आओ तुम भी खेलो।१२-१३। बालकोंने नमस्कार करके कहा, आप जैसे पूज्य पुरुषोंके खेलते हुए हम लोगोंकी योग्यता नहीं है कि खेल सकें।१४। तत्पश्चात् जब उन लोगोंने बहुत आग्रह किया, तब दोनों कुमार प्रद्युम्न और भानुकुमारके मुंहकी ओर देखने लगे। इस अभिप्रायसे कि इनकी क्या इच्छा है।१५। जब उन्होंने आज्ञा दे दी, तब वे सब यदुवंशियोंके साथ श्रीकृष्णजीके साम्हने खेलने लगे।१६। पहले उन्होंने एक करोड़ मुहरकी बाजी लगाई, सो शंबुकुमारने जीत ली। सुभानुकुमार हार गया।१७। उस समय प्रद्युम्नकुमारने कहा कि द्रव्य ले आओ और फिर खेलो। क्योंकि जूआका यह नियत मार्ग है कि द्रव्य लेकरके फिर खेलते हैं।१८। यह सुनकर भानुकुमारने सत्यभामाके पाससे तत्काल ही एक करोड़ मुहरें लाकर दे दी।१९। करोड़ मुहरें गईं यह देखकर सत्यभामा लज्जित हुई। उसने बड़े भारी घमंडसे अपना एक मुर्गा सभामें भेजा और कहला भेजा कि यदि शंबुकुमार मेरे इस मुर्गेको जीत लेगा, तो मैं दो करोड़ मुहरें दूंगी।२०-२१। उस समय शंबुकुमारने अपने बड़े भाईके मुंहकी ओर देखा। अभिप्राय समझकर प्रद्युम्नकुमार एक विद्यामयी मुर्गा बनाकर ले आये।२२। सत्यभामाका मुर्गा मुर्गीके विरहसे व्याकुल हो रहा था। सभाके साम्हने ही उसके साथमें शंबुकुमारके मुर्गेकी लड़ाई होने लगी। सो अन्तमें उसके मुर्गेने ही सत्यभामाके मुर्गेको हरा दिया। उसने दो करोड़ मुहरें जीतीं और उन्हें लेकर प्रद्युम्नकी आज्ञासे तत्काल ही याचकोंको—भिक्षुकोंको

बांट दी ।२३-२५। अबकी बार विस्मित हुई सत्यभामाने सुन्दर सुगन्धित तथा दुर्लभ फल भेजा और कहा कि यदि वह इस फलको जीत सकेगा, तो मैं चार करोड़ मुहरें दूंगी ।२६-२८। कुमारने प्रद्युम्न-कुमार की सहायतासे इस फलको भी जल्द ही जीत लिया और चार करोड़ स्वर्णमुद्रा उसी समय लोगों को बांट दीं ।२८। सत्यभामाने आश्चर्ययुक्त होकर फिर दो वस्त्र भेजे और इनके जीतनेपर आठ करोड़ मुहरें दूंगी, ऐसा वचन दिया ।२९। शंबुकुमारने कामकुमारके मुंहकी ओर देखा, तब उन्होंने भी दो सुन्दर वस्त्र दिये, जिनके तंतु सुवर्णके थे और जो अग्निकुण्डमें डाले जा चुके थे । इनसे सत्यभामाके वस्त्र जीत लिये गये ।३०-३१। इस बाजीमें सत्यभामासे आठ करोड़ स्वर्ण मुद्रायें (मुहरें) मिलीं, वे भी कुमारने लोगोंको बांट दीं ।३२। सत्यभामाने इसके पीछे एक हार भेजा और सोलह करोड़ मुहरें देना कहीं । सो कामकुमारके प्रसादसे एक दूसरे हारसे कुमारने उसे भी जीत लिया ।३३। तदनन्तर सत्यभामाने बत्तीस करोड़ मुहरोंके साथ दो कुण्डल भेजे । सो कुमारने उन्हें भी जीत लिये । और जो धन मिला, उसका दान कर दिया ।३४-३५। कुण्डलोंके जीते जानेपर सत्यभामाने सभामें एक कौस्तु-भमणि भेजा और उसके साथ ही चौसठ करोड़ मुहरें भी पहुँचा दीं । कामकुमारके बुद्धिबलसे उन्होंने वह बाजी भी जीती और धन मिला, उसे भी कीर्तिकी इच्छासे लोगोंमें वितरण कर दिया । ३६-३७। इस उदारतासे शम्बुकुमार सब लोगोंको प्यारा होगया । भला इस जगतमें दाता किसको प्यारा नहीं होता है ? सभीको होता है ।३८। कौस्तुभके पश्चात् सत्यभामाने सभामें एक सुन्दर घोड़ा दूने धनके साथ–अर्थात् १२८ करोड़ मुहरोंके साथ सबकी साक्षीसे भेजा ।३९। यह देखकर प्रद्युम्नकुमार अपनी विद्याके बलसे एक सम्पूर्ण सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मनोहर घोड़ा ले आये । सो इस घोड़ेसे सत्यभामाका घोड़ा जीत लिया गया, और उसका सारा धन शम्बुकुमारको दिया गया ।४०-४१। इसके अनन्तर सत्यभामाने अपना दूत भेजकर सभामें बैठे हुए प्रद्युम्नकुमारसे कहलाया कि; अब शम्बुकुमारको मेरी

मायामयी सेना भी जीतना चाहिये। यह सुनकर शम्बुकुमारका मुख कुछ मलीन होगया। यह देखकर प्रद्युम्नकुमारने उसे अपनी श्रेष्ठ विद्या दे दी। इसके अनन्तर शम्बुकुमार और सुभानुकुमार दोनों ही सेनाके देखनेके लिये नगरीसे बाहिर गये। उनके साथ और भी बहुतसे लोग थे। वहां सुभानुकी मायामयी सेनाको देखकर जो कि पहलेहीसे तैयार थी, शम्बुकुमारने भी वैसीही एक सेना बनायी। ४२ ४५। जिसका विस्तार इतना होगया कि, हाथी घोड़ों और रथोंका कहीं अन्त नहीं दिखायी देता था। शूरवीरोंकी और विमानोंकी गिनती नहीं हो सकती थी।४६। और सुभानुकी सेना उसमें ऐसी डूब गई थी कि—जान नहीं पड़ती थी।

इसके पीछे दोनों सेनाओंमें मायामयी जीवोंका क्षय करनेवाला घनघोर युद्ध हुआ।४७। हाथी सवारोंने हाथीसवारोंके साथ, घुड़सवारोंने घुड़सवारोंके साथ, रथियोंने रथियोंके साथ और पैदल सुभटोंने पैदल सुभटोंके साथ खूब युद्ध किया। आखिर सुभानुकी बनाई हुई सेनाको शम्बुकुमारने जीत ली; इसमें जब कोई सन्देह नहीं रहा।४८-४९। तब प्रद्युम्नकी आज्ञानुसार पहले जीती हुयी मुहरोंकी अपेक्षा दूनी मुहरें अर्थात २५६ करोड़ मुहरें सत्यभामासे मंगायी गयीं और लोगोंने वे सब शम्बुकुमारको दे दीं।५०। इसप्रकार जब सारा धन हारकर सत्यभामा बैठ रही। और गांव नगर तथा वनमें जहां तहां शम्बुकुमारके दानकी कथा सुनायी पड़ने लगी। क्योंकि इस सत्यभामाके विवादमें उसने जो कुछ जीता था, वह सबका सब दान कर दिया था। तब उस सब लोगोंके प्यारे और दातार शम्बुकुमारने सत्यभामासे कहा, क्या तुम्हारे पास अब भी और कुछ धन है? प्रश्न सुनकर सत्यभामा चुप हो रही! क्या करे! हार और जीत पाप और पुण्यके उदयके अनुसार होती है। इसप्रकार प्रद्युम्नकुमारके प्रसादसे शम्बुकुमारकी खूब शोभा हुयी। उसकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी।५१-५३। तदनन्तर बलभद्र, युधिष्ठिर तथा भीमादि सब राजाओंने मिलकर श्रीकृष्णजीको समझाया

कि हे जनार्दन ! शम्बुकुमारने बड़े २ अमानुषिक कृत्य किये हैं' अर्थात् ऐसे कार्य किये हैं, जो मनुष्योंसे नहीं हो सकते हैं। अतएव कृपा करके अब इसको प्रौढ़ बनाइये। और अपने समान इसको भी सुख प्रदान कीजिये। सबके इस आग्रहको सुनकर श्रीकृष्णजी विचार करने लगे कि, इसको क्या देना चाहिये ? यह सब कुछ कर सकता है। अन्तमें निश्चय करके उन्होंने शम्बुकुमारको एक महीनेके लिये अपना राज्य सौंप दिया ।५४-५७।

दूसरे दिन शम्बुकुमार संपूर्ण राजाओंके सहित राज्यसभामें आया और आनन्दके साथ सिंहासन पर विराजमान हुआ। बलभद्र कामदेव, पांडव, आदि सब राजाओंने तथा भानु सुभानुने उसे नमस्कार किया। इसप्रकार वह तीन खण्ड पृथ्वीका स्वामी होकर राज्य करने लगा ।५८-५६।

आगे वह अपने साथ ही जन्मे हुए मित्रोंके साथ दूसरोंको अतिशय दुर्लभ ऐसे इन्द्रियजन्य सुख भोगता हुआ एक पापकार्यमें प्रवृत्त होगया। अपने मित्रोंके साथ कुलस्त्रियोंके घरोंमें जाकर उनका बलात्कारसे शील भंग करने लगा।६०-६१। आदमियोंको भेजकर, और उनके द्वारा स्त्रियोंका अच्छा बुरा रूप निर्णय कराके वह पापी रातको घरोंमें जाता था और स्त्रियोंका शील नष्ट करता था ।६२। इसप्रकारके दुराचरणसे नगरमें रहनेवाले सब ही लोग अतिशय दुखी होगये। स्त्रियोंका शील-भंग होना, इससे बड़ा और क्या दुःख हो सकता है ? ।६३। निदान सब लोग एकत्र होकर राजमहलको गये। और श्रीकृष्ण महाराजसे नमस्कार करके इसप्रकार कहने लगे कि हे नाथ ! शम्बुकुमारने जो करतूत की है, सो सुनिये। वे अब कुल स्त्रियोंका बलपूर्वक शील हरण करने लगे हैं। अतएव अब हम द्वारिकाको छोड़कर कहीं अन्यत्र जाकर रहेंगे। जिस समय आपको राज्य प्राप्त हो जावेगा उस समय फिर लौट आवेंगे ।६४ ६६। नारायणने कहा, हे महाजनों ! थोड़े दिन और ठहरो। जबतक मैंने अपने वचनसे दिया हुआ राज्य फिर नहीं पा लिया है, तब तक तुम लोग अपने घरोंमें खूब

बन्दोबस्तके साथ रहो । जब मैं राजसभामें जानेलगूँगा, तब तुम्हारा सबका कल्याण होगा । आश्वासनके वचन सुनकर लोग अपने घर जाकर प्रबन्धके साथ रहने लगे ।

जब एक महीना हो चुका, तब श्रीकृष्णजी राजसभामें पहुँचे और अपना राज्य प्राप्त करके शंबुकुमारसे बोले, हे पापी ! तुझे मेरे राज्यमें क्षणभर भी नहीं ठहरना चाहिये । तुझे ऐसी जगह चला जाना चाहिये, जहांसे तेरा नाम भी नहीं सुनायी देवे ।७०-७१। ऐसा कहकर नारायणने ताम्बूल के तीन बीड़े दिये । शंबुकुमार उन्हें लेकर और सभासे निकल कर चला गया ।७२। उसी समय प्रद्युम्नने पूछा हे तात ! शंबुकुमारका आगमन किसी भी समय हो सकेगा, या नहीं ? पिताने उत्तर दिया, हां ! यदि सत्यभामा हथिनीपर बैठकर, उसके सन्मुख जावेगी, औरभक्तिपूर्वक गाजे बाजेके साथ ले आवेगी, तो मेरे सम्मुख आ सकेगा, नहीं तो नहीं ।७३-७५। शंबुकुमार राजसभासे निकलकर अपनी माताके पास गया और उसे नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमारके आदेशके अनुसार सत्यभामाके वनमें गया । वहां जाकर उसने एक युवती स्त्रीका रूप बनाया जो संपूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त थीं, रूपवती तथा सौभाग्यवती थी, नवीन यौवनसे भूषित थी सुडौल थी, और सब प्रकारके आभूषणोंसे शोभायमान थी ।७६-७८। इस प्रकारका सुन्दर रूप बनाकर शंबुकुमार उस निर्जन वनमें जा बैठा । उसके बैठते ही वहां सत्यभामा भी पहुँच गई । इस अनोखी स्त्रीको देखकर उसे बड़ा भारी अचरज हुआ । अतएव वह समीप आकर बोली, हे बेटी ! मुझे बतला कि, तू ऐसे निर्जनवनमें अकेली क्यों बैठी है ? तू तो देवकन्याके समान सुन्दरी कन्या है ।७९-८१। यह सुनकर युवती बोली, हे माता ! मैं एक राजाकी पुत्री हूँ । सो अपने मामाके घर रहती थी । वहां मुझे यौवनावस्था प्राप्त हो गयी थी, अतएव मेरे पिता मुझे विवाह करनेके हेतु लिवानेके लिये गये थे ।८२-८३। सो वे मुझे वहांसे पालकी में आरूढ़ कराके चले थे, और बड़ी भारी सेनाके साथ आज रात्रिको इसी स्थानमें आकर ठहरे थे ।८४। रातको निद्रा

में व्याकुल होकर सब लोग सो गये, परन्तु मामाकी याद आनेसे निद्रा चली गई। जब मुझे नींद नहीं आई, तब मैं पालकीमेंसे उतरकर धरतीपर लेट गई। सो पिछली रातमें जब मेरी आंख लग गई, तब विश्राम कर चुकने पर मेरे पिता अपनी सेनाके साथ न जाने कब चले गये। उन्होंने यह नहीं जाना कि, मैं पालकीमेंसे उतरकर धरतीमें पड़ी हूँ। अब इस निर्जनवनमें अकेली रह गयी हूँ। मैं यह भी नहीं जानती हूँ, कि, वे किस मार्ग से गये हैं। अतएव हे माता ! लाचार होकर मैं यहां बैठी हूँ अभी तक मैं अनूढा ही हूँ। अर्थात् मेरा विवाह नहीं हुआ है।८५-८८।

उस अनूढा कन्याको रूपवती और लक्षणवती देखकर सत्यभामा समीप बैठ गयी और इस प्रकार मीठे वचन बोली, हे अनघे ! यदि तू मेरे सुभानुकुमारके साथ विवाह करना स्वीकार करै, तो मैं अपने महलमें ले जाकर तेरी खूब भक्ति करूं।८९-९०। इसके उत्तरमें कन्याने लज्जित होकर इस प्रकार वचन कहे कि, यह तो निश्चय है कि मेरे पिता भी मुझे कहीं न कहीं देते। फिर जब आप श्रीकृष्ण नारायणकी पट्टरानी हैं, तब आपके पुत्रके साथ मेरा विवाह होनेमें क्या दोष है ?।९१-९२। कन्याके वचन सुनकर सत्यभामा उसे अपने महलमें ले आयी, और उसकी दिनोंदिन अधिकाधिक सुश्रूषा करने लगी।९३। आसन, शयन, भोजन, विलेपन आदिके सम्पूर्ण सुखोंसे उसे इस तरह रक्खा कि उसने अपना जाता हुआ समय नहीं जाना।९४।

कितने ही दिन बीतने पर पृथ्वीमें कामीजनोंके हृदयमें कामके बढ़ानेवाले वसन्तऋतुका आगमन हुआ।९५। वसन्तके उत्सवमें कामकी प्रबलता हो गई। आमोंमें मौर आ गये। टेसू फलोंसे लद गये। भौंरोंकी झंकार और कोयलोंकी कूकसे वियोगिनी स्त्रियोंको विरह दुःख निरंकुश होकर सताने लगा। मलयकी मधुर हवा मानो वियोगियोंके तापको शान्त करनेके लिये ही चलने लगी। कामाग्निके प्रज्वलित होनेसे लोगोंकी लज्जा चली गयी। सब उन्मत्त हो गये।९६-९८।

जब वसन्तऋतुका इसप्रकार राज्य हो रहा था, तब सुभानुकुमार अपने मित्रोंके साथ सवारी सहित वनक्रीड़ा करनेके लिये गया। बन्दी उसकी स्तुति करते थे। वसन्तका वैभव देखनेके लिये ज्यों ही वह वनमें जाकर बैठा, त्योंहो वहांपर बहुतसी स्त्रियोंने झूलोंमें बैठकर कामोद्दीपक गीतोंका गाना प्रारम्भ कर दिया। नानाप्रकारके विकारोंसे युक्त, ऊंचे और बारीक आवाजसे मनोहर और मानी नायक नायिकाओंके मानको खण्डन करनेवाले, उन स्त्रियोंके मुखसे निकले हुये मनोहर गीतों को सुनकर सुभानुकुमार कामके बाणोंसे घायल हो गया ।९९-२०३। उसका चित्त चुरा लिया गया—छल लिया गया। जब वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, तब सेवक लोग उसे सत्यभामाके महलमें ले गये। और वहां उन्होंने उसका सब वृतान्त कह दिया। उसे अचेतन देखकर सत्यभामाने भी जान लिया कि, मेरा पुत्र अब विवाहके योग्य हो गया है ।४-५। निदान अपने मनमें बहुत देरतक सोच विचार करके उसने अपने मन्त्रियोंसे कहा कि, तुम एक कपट-लीला इस तरह की रचो कि, कन्याकी याचना करनेके लिये जाओ, और इस तरह से आ जाओ, जिसमें कोई भी न जानने पावै। आज्ञानुसार मंत्रिलोग गये और कार्य सिद्ध करके आ गये ।६-७। उनके आ जाने पर सब लोगोंने जाना कि, सत्यभामाके पुत्रका विवाह ठीक हो गया है। मंत्री लोग कन्याकी याचना करनेको गये थे, सो ले आये हैं। सुभानुकुमार बड़ा पुण्यवान है ।८। तदनन्तर नगर के बाहर एक स्थानमें उस श्रेष्ठ कन्याको गुप्तरूपसे पहुँचा दी और आप स्वयं हथिनीपर बैठकर उसके लेनेके लिये गई। उसे भय था कि कहीं यह बात प्रद्युम्नको मालूम न हो जावे। निदान उस कन्या को अपनी गोदमें बैठाकर वह बड़े भारी उत्सवके साथ चौराहे से होती हुई अपने महलमें ले आई। गलीमेंसे होकर महलके भीतर ले गई। लग्नका समय हो गया था, अतएव सुभानुकुमार तोरणके लिये गया। वहां दासियोंने उस कन्याकी जो जो मांगलिक क्रिया होती हैं, सो कीं। उस समय तक

तो वह कन्या जैसी चाहिये वैसी थी। परन्तु ज्यों ही पाणिग्रहणका समय आया, त्योंही, उसने व्याघ्र का (बाघका) रूप धारण कर लिया।१०-१२। और सुभानुकुमारको पंजेके आघातसे ऐसा पटका कि, वह मूर्छित होकर धरतीमें गिर पड़ा। और जितने लोग वहां थे, वे सब भयभीत होकर गिरते पड़ते भागे। यह कौतुक करके व्याघ्रवेषधारी शम्बुकुमार हँसता हुआ श्रीकृष्णकी सभामें जा पहुँचा।१३-१४। उसे देखकर श्रीकृष्णजीको अचरज हुआ। पीछे उन्होंने प्रद्युम्नकुमारकी लीला समझकर उसे प्रसन्नताके साथ आश्वासन देकर बिठाया।१५। इस चरित्रसे शम्बुकुमारकी माता बड़ी आनन्दित हुई और सत्यभामा मदरहित होगई लज्जाके मारे उसका मुखकमल कुम्हला गया।१६। सत्यभामाने इस घटनासे दुःखी होकर एक दूतको अपने पिताके पास भेजा, और यहांका सब समाचार कहला भेजा। उसे सुनकर सत्यभामाके पिताने जो कि विद्याधरोंके राजा थे, सौ सुन्दर कन्यायें भेज दीं। सो उनके साथ सुभानुकुमार का विवाह कर दिया गया। विवाह बड़े उत्सव और धूमधामके साथ हुआ। सौ स्त्रियोंको पाकर सुभानुकुमारको बड़ा भारी गर्व हुआ। उनके साथ वह रातदिन आनन्द-क्रीड़ा करने लगा॥१७-१९॥

सुभानुकुमारको विवाहित देखकर प्रद्युम्नकुमारने शम्बुकुमारके लिये अपने मामाकी कन्याओं की याचना की। क्योंकि लोगोंके मुंहसे सुना था कि वे बड़ी ही सुन्दरी हैं। परन्तु मामाने कन्या देनेसे इन्कार कर दिया।२०। इससे प्रद्युम्नकुमार रुक्मणनरेश अर्थात रूप्यकुमार पर बहुत क्रोधित हुए। दोनों भाई चांडालका वेष धारण करके कुण्डनपुरको गये और रुक्मणमहाराजकी सभामें पहुँचे। दोनोंका रूप बहुत ही सुन्दर था। दोनोंने पिनाकी (?) बजाते हुए गीत गाना प्रारम्भ किये, सो जल्द ही सम्पूर्ण लोगोंको मोहित कर लिये। राजा रूप्यकुमार तो ऐसा प्रसन्न हुआ कि, उन्हें मन-माना दान देनेतो तैयार हो गया। जिससमय लोग इसप्रकार रंजायमान होकर तन्मय हो रहे थे,

उसी समय प्रद्युम्नकुमारने राजाके अन्तःपुरमें अपनी विद्याको भेजी, और उसके द्वारा उन कन्याओं का हरण करा लिया। पीछेसे आप सभामेंसे निकलकर और उन कन्याओंको आकाशमें ले जाकर बोले, हे भीष्मपुत्र रूप्यकुमार! सुनो ये तुम्हारी कन्यायें हैं। इनका मैंने हरण किया है। मैं द्वारिकाधीश श्रीकृष्णनारायणका पुत्र हूँ। तुमने मांगने पर मुझे ये कन्यायें नहीं दी थीं, अतएव मैंने इन्हें हरा है। अब तुम्हें अपनी सेनासहित आकर इन्हें मेरे पाससे छुड़ा लेना चाहिये।२१-२६।

यह सुनते ही रूप्यकुमार सारी सेना लेकर युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा। परन्तु मंत्री तथा दूसरे वृद्ध लोग उसे समझा बुझाकर नगरमें लौटा लाये। युद्ध नहीं करने दिया। इधर प्रद्युम्न और शम्बुकुमार उन कन्याओंको लेकर द्वारिकामें आ गये।३०-३१। द्वारिकामें पहुँचकर प्रद्युम्नकुमारने भी बड़ा भारी उत्सव करके उन दो सौ कन्याओंका विवाह शंबुकुमारके साथ कर दिया। भाईका विवाह विधिपूर्वक कर चुकनेपर प्रद्युम्नकुमार बहुत सुखी हुआ। होना ही चाहिये। कार्यके सिद्ध होने पर सब ही को सुख होता है।३२-३३। सम्पूर्ण लोगोंके चित्तको हरण करता हुआ और दर्शनमात्रसे ही स्त्रियोंको सन्तुष्ट करता हुआ प्रद्युम्नकुमार सब लोगोंका प्राणप्यारा बन गया। कुछ दिनोंमें उसके रति नामकी स्त्रीसे एक अनुरुद्ध नामका पुत्र हुआ, जो अतिशय सुन्दर था समस्त विद्याओंसे शोभित होकर वह क्रम क्रमसे यौवन अवस्थाको प्राप्त होगया।३४-३६। इधर शंबुकुमारके भी सौ पुत्र उत्पन्न हुए। सो कामदेव उनके साथ और अपने पुत्रोंके साथ इच्छानुसार सुख भोगने लगे।३७। वे नदी, नद, तालाब और वन आदि अनेक स्थानोंमें अपनी स्त्रियोंके साथ जाते थे और वहां चिन्ता करते ही उपस्थित होने वाले श्रेष्ठ सुखोंको भोगते थे।३८-३९।

हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरदऋतुओंमें वे यथाक्रमसे यथायोग्य चिन्तित सुखों का अनुभव करते थे। रति समयमें कामिनियोंके चित्तको चुरानेवाले प्रद्युम्नकुमार जब हेमन्त ऋतु

आती थी, खूब जाड़ा पड़ता था, तब ऐसे उत्तम स्थानमें जहां कि हवा नहीं आती थी, शीत नहीं होता था, कालागुरु, कपूर और धूपका गरम धुआँ व्याप्त रहता था,अपनी स्त्रियोंके साथ आनन्दक्रीड़ा करते और दूसरे लोगोंको पुण्यका फल दिखलाते थे ।४०-४३। जब शिशिरऋतु आती थी, तब रुई भरे हुए वस्त्रोंसे, उष्ण भोजनोंसे, सुगन्धित वस्तुओंसे, अग्निके तापसे और रूपयौवनसे उन्मत्त हुई तथा कामवाणोंसे घायल हुई स्त्रियोंके निरन्तर सेवनसे शीतका निवारण करके जवानीके सुख भोगते थे। मानों वे प्राणियोंको बतलाते थे कि ये सब सुख पुण्यसे प्राप्त होते हैं ।४४-४६। जब मानिनी स्त्रियोंका मान भंजन करनेवाला वसन्त उत्तमोत्तम फूलोंकी भेंट लेकर प्रद्युम्नकी सेवामें उपस्थित होता था, अर्थात् जब वसन्तऋतु आती थी, तब मौलसिरी, कमल, चम्पा, अशोक, टेसू आदि अनेक वृत्तों से भूषित हुए मनोहर वनमें जाकर सुगन्धित जलसे भरी हुई वापिकाओंमें अपनी प्यारी स्त्रियोंके साथ जलविहार करते थे ।४७-४६। ग्रीष्मऋतुमें शीतल ईंटोंके बने हुए महलोंमें चन्दन, केशर, बारीक वस्त्र, मनोहर शीतल भोजन, पान, ताड़के पंखे और नानाप्रकारके सुगन्धित पदार्थोंका सेवन करते हुए अपनी कामिनियोंके साथ उत्कृष्ट भोग भोगते थे ।५०-५१। और जब वर्षा ऋतु प्राप्त होती थी, तब जहां वायुका वेग नहीं होता था, ऐसे रमणीय तथा विशाल भवनोंमें नृत्य करती हुई स्त्रियोंके मनोहर गीत सुनते हुए पुण्यका फल भोगते थे ।५२-५३। इसीप्रकारसे शरदऋतुमें अनेक स्त्रियाँ जिसकी सेवा करती थीं, ऐसा प्रद्युम्न ऊँचे २ महलोंमें रहकर गन्ना, धान्य, मूंग, तालाबोंका जल और रात को चन्द्रमा की चांदनीका सेवन करते हुए लोगोंको पुण्यका फल दिखलाते थे ।५४-५५। सारांश यह है कि प्रद्युम्नकुमार छहों ऋतुओंमें इच्छानुसार सुख भोगते थे।

प्रद्युम्नकुमारके मस्तकपर श्वेत छत्र रहता था और मनोहर चंवर ढुरते थे। विद्वान लोग, देवोंके समूह, विद्याधर और भूमिगोचरी राजा स्नेहके भारसे वशवर्ती हुये उनकी सेवा करते थे। बंदी-

जन "जय जय" आदि मांगलिक शब्दों और स्तुतिमयी वाक्योंसे प्रभाव प्रगट करते थे और सितार सारंगी बीणा आदि बाजे उन्हें प्रसन्न करते थे ।५६-५८।

हे भव्यजनों ! तुम्हें इन सब सुखोंको पुण्यके फल समझकर पापकार्य करना छोड़ देना चाहिये, और धर्मका संग्रह करना चाहिये ।५६। प्रद्युम्नकुमारने अपनी कामवती स्त्रियोंके साथ बहुतसे धनका बहुतसे वैभवका और बहुतसे भाई बन्धुओंका सुख उपभोग किया । संसारमें जितने भी सारभूत सुख थे, वे सब उन्हें प्राप्त हो गये । क्योंकि उनका पुण्य बहुत प्रबल था । और तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो पुण्यसे प्राप्त न हो सकता हो ।६०-६१। तथा पापसे, कोई दुःख नहीं हैं जो नहीं भोगने पड़ते हों । ऐसे लोग पाप करने ही से होते हैं, जो अपना पेट भरनेके लिये ही रातदिन चिंतित रहते हैं, वस्त्र और भोजनके बिना धरतीमें पड़े रहते हैं, शरीर छिल जाता है, दूसरोंके घर नौकरीचाकरी करते हैं, रूप लावण्यरहित होते हैं, दीन होते हैं, बिन बान्धवोंके होते हैं, धूप और वायुकी सर्दी गर्मी सहा करते हैं, भाई बन्धुओंकी निंदा और जगह २ तिरस्कार सहते हैं ।६२-६४।

इसप्रकार प्रद्युम्नकुमार पूर्वपुण्यके फलसे प्राप्त हुए नानाप्रकारके पंचेन्द्रियजन्य सुखोंका अनुभव करते थे । उन्होंने जो सुख भोगे, उनका वर्णन करनेके लिये बृहस्पतिके समान ऐसा कौन विद्वान है जो समर्थ हो ?❀ धर्मसे सुख, निर्मल सज्जनता और सौम्यता प्राप्त होती है, ऐसा समझकर भव्यजनोंको निरन्तर ही जिन धर्मका सेवन करना चाहिये ।६५-२६७।

इति श्रीसोमकीर्ति आचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें प्रद्युम्नके पुण्यफलका वर्णन करने वाला बारहवां सर्ग समाप्त हुआ ।

❀ दूसरी मूल प्रतिमें यह श्लोक नहीं है, और बारहवें सर्गकी समाप्ति भी यहां नहीं है । पहली प्रतिमें जहां तेरहवां सर्ग समाप्त हुआ है वहां दूसरीमें बारहवां समाप्त हुआ है । इस तरह एक सर्गका अन्तर पड़ गया है ।

अथ त्रयोदशः सर्गः ।

श्रीकृष्णनारायण, विद्याधर और मनुष्य जिनकी सेवा करते थे ऐसे जरासंध राजाको युद्धमें मारकर और सुदर्शन चक्र प्राप्त करके निष्कंटक राज्य करने लगे । कौरवपांडवोंका भारत युद्ध भी हो चुका । उसमें कौरवों का क्षय होगया । इसके पश्चात् श्रीकृष्णमहाराजके राज्यकालमें जो कुछ वृत्तांत हुआ, सो सब यहां पर वर्णन करते हैं;—।१-३।

एक दिन श्रीकृष्णजी बलदेव तथा प्रद्युम्नकुमार आदिके साथ सभामें विराजमान थे, सभा भर रही थी, इतनेमें श्रीनेमिनाथ भगवान अपने मित्रोंके साथ जो कि उनके साथ एक ही समयमें उत्पन्न हुए थे, आ पहुँचे, उन्हें देखते ही जिनभगवानकी भक्ति करने वाले सारे सुभट उठ खड़े हुए । श्रीकृष्णजीने बैठनेके लिये उत्कृष्ट सिंहासन दिया, सो जिनभगवान बड़े भारी हर्षसे बैठ गये । सिंहासन नारायणके बिलकुल समीप रखा हुआ था । जब सब राजा लोग यथाक्रमसे बैठ गये, तब शूरवीरोंके बलकी चर्चा चलने लगी ।४-७।

कई एक सुभट बोले, महाराज वसुदेव बड़ी भारी शक्तिके धारण करनेवाले हैं । कोई पांडवों के बलका वर्णन करने लगा । कोई कहने लगा, यह प्रद्युम्नकुमार निश्चयसे बड़ा बलवान है । किसीने शम्बुकुमारकी प्रशंसा की और कोई भानुकुमारकी कीर्ति गाने लगा । किसीने कहा, नहीं; श्रीकृष्णजी बड़े बलवान हैं । उनके समान पृथ्वीपर न कोई वीर हुआ है और न होगा । और किसीने बलभद्रजी के बलकी प्रशंसा की । सारांश यह कि, जिसके चित्तमें जिसकी शूरवीरता जमी हुई थी, सभामें उसने उसकी प्रशंसा की ।८-११। सबकी कीर्ति सुनकर बलदेवजी मस्तक हिलाते हुए बोले, अरे मूर्खों ! तुम दूसरे शूरवीरोंकी क्या प्रशंसा कर रहे हो ? जहां श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर स्वयं विराजमान हैं वहां दूसरे शूरवीरोंकी प्रशंसा करना योग्य नहीं है । मेरुपर्वत और सरसोंके दानोंमें जितना अन्तर होता

है, ठीक उतना ही अन्तर श्रीनेमिनाथमें और संपूर्ण शूरवीरोंमें है ! जब संसारमें उनके समान शूरवीर तथा श्रेष्ठ सुभट दूसरा कोई है ही नहीं, तब हम, श्रीकृष्ण अथवा दूसरे तो किस गिनतीमें हैं ? ।१२-१५। इसप्रकार जब बलदेवजीने बारम्बार प्रशंसा की, तब श्रीनेमिनाथजी लज्जासे नीचेकी ओर देखने लगे ।१६। उस समय श्रीकृष्णजीने नेमिनाथजीसे मुसकराते हुए कहा, आओ, हम और आप यहीं पर मल्लयुद्ध करें । ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी धोतीकी कांछ कड़ी बांधकर खड़े होगये। यह देख कर नेमिकुमार बोले, यह कार्य सज्जनोंके योग्य नहीं है । हां ! यह मेरा पैर जो सिंहासनपर रक्खा हुआ है, यदि आप उठाकर अलग कर देवें, तो हे जनार्दन ! समझ लेना कि, मैं आपसे सब युद्धोंमें हार चुका ।१७-१९। जिनेन्द्रकुमारके ये वचन सुनकर श्रीकृष्णजी कमर कसकर उठे, और बड़े भारी वेगसे अपनी सारी शक्ति लगाकर उस वीरशिरोमणिका पैर हटाने लगे; परन्तु जीत नहीं सके । पैर नहीं हटा, तब बलवान श्रीकृष्णजीने क्रोधित होकर फिरसे प्रयत्न किया, परन्तु इसबार भी उनका पैर जरा भी न टसका । इससे वे बड़े ही व्याकुल हुए । भाईको खेदखिन्न देखकर नेमिकुमारने कहा, हे जनार्दन ! पैरको जाने दो, यह मेरे बाँयें हाथकी कनिष्ठिका (छोटी उंगली) है, इसीको चलाओ। तब श्रीकृष्णजी फिर भी सारी शक्ति लगाकर अपने दोनों हाथोंसे उस उंगलीपर झूम गये । परन्तु कुछ फल नहीं हुआ । नेमिकुमारने विनोदसे ऊंचा हाथ उठा कर उन्हें झूला झुला दिया ।२०-२७। श्रीकृष्णजी इस लीलासे खेद खिन्न तो हो गये थे, उन्हें क्रोध भी आया था । परन्तु उस समय वे उसे दबाकर हँसते हुए बोले, "हमारे भाईका प्रचण्ड बल देखो ! इनके बलका क्या पार है ? और फिर अपने महलोंमें चले गये । नेमिकुमार भी स्वजन मित्रोंके साथ अपने स्थानको चले गये ।२८-२९।

श्रीकृष्णजी चले तो आये, परन्तु उनका खेद दूर नहीं हुआ । उन्हें चिंता हुई कि श्रीनेमिकुमार बहुत बलवान हैं । वे मेरा राज्य छीन लेंगे । तत्काल ही एक निमित्त शास्त्र जाननेवाला ज्योतिषी

बुलाया गया। श्रीकृष्ण और बलदेवजीने एकान्तमें लेजाकर उससे श्रीनेमिकुमारका सब वृत्तांत पूछा। उसने कहा हे नारायण ! व्यर्थ ही चिंता मत करो। श्रीनेमिकुमार राज्य नहीं करेंगे। वे जल्दी ही दीक्षा लेंगे। जीवोंका विनाश देखकर वे राज्य और परिच्छेदको छोड़ देंगे और गिरनार पर्वतपर जाकर मोक्ष प्राप्त करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।३० ३३। वसन्त ऋतुका उत्तम समय आ पहुँचा। अमराई मौर गई। कोकिलाओंके शब्द सुनायी पड़ने लगे। नगारोंके शब्दसे सब लोगोंकी वसन्तके आगमनकी सूचना देकर श्रीकृष्णजी वनक्रीड़ाके लिये जानेको उत्सुक हुए। पहले उन्होंने अपनी रानियोंके पास जाकर उन्हें श्रीनेमिनाथके विषयमें कुछ इशारेसे समझाया और फिर हाथीपर चढ़कर बहुतसे सेवकोंको लेकर वनको गमन किया।३४-३६।

उनके चले जानेपर श्रीकृष्णकी सत्यभामा रुक्मिणी आदि रानियोंने श्रीनेमिकुमारके समीप जाकर कहा, हे जिनराज ! उठो, इस वसन्तके समयमें तुम्हें रमण करनेके लिये वनको चलना चाहिये। तुम्हारे भाई (श्रीकृष्ण) तो कभीके चले गये हैं। सुनकर उन्होंने कहा, मेरा जाना उचित नहीं है, मैं नहीं जाऊंगा। परन्तु रुक्मिणी आदि रानियोंने नहीं माना, वे उन्हें जबर्दस्ती वनमें लिवा ले गईं।३७-३९। श्रीकृष्णजी उस वन में पहले ही से पहुँच गये थे। गोपियोंके साथ बहुत समय तक क्रीड़ा करते २ जब उन्होंने नेमिकुमारके आनेका समय निकट समझा, तब किसी दूसरे वनको चले गये और जाते समय श्रीनेमिनाथ के विषयमें गोपियोंको कुछ सिखावन दे गये। उनके चले जाने पर गोपियां नेमिकुमारके साथ मनोहर क्रीड़ा करने लगीं। कोई केशर उलीचने लगी, कोई चन्दन डालने लगी, कोई पिचकारी मारने लगी, और प्रेमके भारसे उन्मत्त हुई अनेक सुन्दरियां वृक्षके फूल तोड़नेके मिससे नेमिनाथको अपने कुचोंके आघातसे ताड़ित करने लगीं।४०-४२।

इसप्रकार श्रीकृष्णजीकी गोपियोंने और रानियोंने अपने देवरके साथ लज्जारहित होकर बहुत

समय तक हास्य किया और हावभावपूर्वक जल क्रीड़ा आदि लीलायें कीं। अन्तमें श्रीनेमिकुमारने वापिकासे निकलकर अपनी जलसे भीगी हुई धोती उतार दी और जाम्बुवती से कहा, हे देवी! तुम यह मेरी धोती निचोड़ दो। इससे जांबुवती बड़ी रुष्ट हुई। वह बोली, तुम बड़े मूर्ख हो, तुम्हें मुझ पर ऐसी आज्ञा नहीं चलाना चाहिये क्योंकि मैं श्रीकृष्णमहाराजकी रानी हूँ। यदि इसप्रकार आदेश करनेकी तुम्हारी इच्छा रहती है, तो किसी उत्तम कन्याकी मँगनी करके विवाह क्यों नहीं कर लेते हो! ऐसा काम करनेकी आज्ञा तो मुझे मेरे स्वामी भी कभी नहीं देते हैं जो तीन खण्डके स्वामी हैं, और सुदर्शन नामक चक्रको हाथसे फिरा सकनेमें समर्थ हैं तथा जिन्होंने सारंग नामक धनुषको खींचकर गोलाकार कर दिया था और नागशय्यापर आरूढ़ होकर पांचजन्य नामक शखको बजाया था। जांबुवतीके ये उद्धतताके वचन सुनकर नेमिनाथ रुष्ट हो गये।४३-५०। रुक्मिणीने उसको रोका कि, अरी दुष्टनी! ऐसा मत कह। इस सचराचर तीन लोकमें इनके समान कोई बलवान नहीं है। ऐसा कहकर रुक्मिणीने उस धोतीको लेकर स्वयं निचोड़ दी। परन्तु नेमिकुमार शान्त नहीं हुए। वे जांबुवतीका गर्व जानकर आयुधशालामें पहुँचे। बड़े क्रोधसे उसका दरवाजा खोलकर भीतर गये और चक्र तथा धनुष लेकर नागशय्या पर चढ़ गये। फिर उन्होंने उस धनुषको गोलाकार करके सर्पोंका मर्दन करके और चक्रको फिरा करके शंखको अपनी नासिकाके सुरसे बजाया। उसके प्रचंड शब्दोंको सुनकर श्रीकृष्ण जी दौड़े हुये आये और श्रीनेमकुमारको उक्त अवस्थामें देखकर बोले, हे जिनेश्वर! आपने न कुछ स्त्रीके वाक्यसे रुष्ट होकर यह क्या करना प्रारम्भ किया है? उठो और क्रोधको छोड़ दो। ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी भगवानको वहांसे उठाकर भली भाँति सन्तुष्ट करके अपने महलोंमें ले गये, और वहां बड़े आदर से उन्हें भोजनादि कराके चिन्ता करने लगे कि अब क्या करना चाहिये।५१-५७। फिर सब कारण समझ करके वे शिवा देवीके महलमें गये और उन्हें नमस्कार करके विनयपूर्वक

बोले, हे माता ! श्रीनेमिकुमारजी जवान हो गये हैं, विवाहके योग्य हो गये हैं, तुम अभी तक उनका विवाह क्यों नहीं करती हो ? इसका क्या कारण है ? शिवादेवीने उत्तर दिया, हे जनार्दन हमारे वंश में तो तुम्हीं सबसे प्रधान हो, फिर इस विषयमें मुझसे क्या पूछते हो ? यह सब कर्तव्य तो तुम्हारा ही है । यह सुनकर नारायण अपने महलको लौट आये ।५८-६१।

महलमें आकर श्रीकृष्णजीने पहले बलदेवजीके साथ इस विषयमें विचार किया और राजा उग्रसेनके यहां जाकर उनसे उनकी श्रेष्ठ कन्याकी मँगनी की । फिर वहांपर कुछ कपट रचकर वे अपने नगरको लौट आये, तथा नेमिनाथ भगवानके विवाहका उत्सव करने लगे । उसी समय उन्होंने समस्त यदुवंशी और भोजवंशी आदि राजाओंको बुलवाया, सो वे सब अपनी अपनी स्त्रियों के सहित द्वारावती नगरी में आ पहुँचे ।६२-६४। जगह जगह यादवोंकी स्त्रियां नृत्य करने लगीं, तब वितत आदि बाजों के समूह जगह २ बजने लगे, घर घर विचित्र २ प्रकारके बंधनवारे बँध गये और मंडप खड़े होगये । ऐसा कोई भी घर नहीं दीखता था, जिसमें कुछ उत्सव न होता हो । श्रीनेमिकुमार का मर्दन उबटन करके स्नान कराया गया और फिर स्त्रियोंने उन्हें नाना प्रकारके शृंगार कराये, और मंगलगीत गाये ।६५-६७। वहां उग्रसेन महाराजके घर भी खूब उत्सव होने लगे । उन्होंने भी अपने स्वजनबन्धुओंको बुलाये, सो वे सब जूनागढ़में आ पहुँचे । इस तरह दोनों ओर आनन्द ही आनन्द दिखने लगा । जिसमें श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर सरीखे वर और त्रैलोक्यसुन्दरी राजीमती सरीखी कन्या है, उस विवाहके उत्सवकी और अधिक प्रशंसा क्या की जावे ? ।६८-६९।

तदनन्तर उग्रसेनने वरको लिवानेके लिये उत्तम २ सवारियां लेकर अपने बहुतसे अच्छे २ सेवकोंको उत्तमोत्तम भूषणोंसे सज धज करके भेजे । सो वे सब आनन्दके साथ समुद्रविजयके घरपर पहुँचे । उनका यादवोंने खूब सत्कार किया और यादवोंकी स्त्रियोंने उन्हें गायन भोजनादिसे प्रसन्न

किया। इसके पश्चात् वे नानाप्रकारके वाहनोंके सहित बारातकेसाथ हो लिये। शिवादेवी, देवकी, रोहिणी, सत्यभामा, रुक्मिणी, आदि सब रानियोंने द्वारिकामें ही सब मंगल विधान किये अर्थात् वे बरातके साथ नहीं चलीं। जिस समय मंगल आरती उतारी जारही थी, उससमय शिवादेवीकी ओढ़नी दीपकसे लगकर जलने लगी मानो सबको रोकनेके लिये ही वह जलने लगी कि, यह महोत्सव मत करो।७०-७४। इसी प्रकारसे जब श्रीनेमिकुमार रथपर आरूढ़ हुए तब बिल्ली रास्ता काटकरके आगे चली गई। परन्तु यह अपशकुन जानकर भी वे ठहरे नहीं, चल पड़े। चलते समय बाजोंके घोषसे, बन्दी जनोंके जय २ शब्द से और सुहागिन स्त्रियोंके मंगल गीतोंसे बड़ा हो कोलाहल हुआ। वरके साथ साथ समुद्र विजय, वसुदेव, बलदेव, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, भानु, सुभानु आदि अनेक राजा चलने लगे। जब तोरण के समीप पहुँचे, तब नेमिकुमार याचकजनोंको यथेच्छ दान देने लगे। उस समय झरोखेमें बैठी हुई राजी मतीने उन्हें देखा। उसकी सखियोंने बतलाया कि, जिनके ऊपर छत्र चमर ढुर रहे हैं वे ही श्रीनेमिकुमार हैं।७५-७६।

तोरणके दाहिने और बांयें औरके स्थानोंमें अनेक पशु बंध रहे थे। वे अतिशय दीनतासे भरे हुए शब्द करते थे। नेमिकुमारको भी उनके शब्द सुन पड़े। उसीसमय बहुतसी स्त्रियां उग्रसेनके महलसे मंगल कलश लिये हुए कोई उचित क्रिया करनेके लिये आई थीं। जीवोंके शब्द सुनकर दया-मूर्ति नेमिकुमारने यहां वहां देखकर सारथीसे पूछा, राजाने यह जीवोंका समूह किस कारण बांध रक्खा है? मुझे शीघ्र बतलाओ। सारथी बोला हे नाथ! सुनो ये सब पशु आपके लिये तथा आपके विवाहके लिये इकट्ठे किये गये हैं! आज आधी रातको ये सब मारे जावेंगे। और सबेरे आपके सत्कारके लिये इनका भोजन तैयार किया जावेगा, जिसको सब यादव लोग खावेंगे। ये सब श्रीकृष्ण जीकी आज्ञासे बांधे गये हैं।८०-८५। सारथीके वाक्य सुनकर श्रीनेमिकुमार अपने हृदयमें चिन्तवन

करने लगे कि 'यह गृहबन्धन-गृहस्थमार्ग पापका कारण है। ये जीवोंके घात करनेवाले दुष्ट लोग इस हिंसा कर्मसे उस नरकमें पड़ेंगे, जहां कि बड़ी भारी वेदना होती है। इस निरपराधी पशुओंको जो बेचारे जंगलोंमें रहते हैं, और घास खाकर अपना समय व्यतीत करते हैं, ये क्यों मारते हैं। जो शूरवीर कांटे न लग जावे, इस भयसे पैरोंकी रक्षाके लिये जूते पहनते हैं, वे ही पापी दयारहित होकर अपने बाणोंसे जीवोंको कैसे मारते हैं, ? इस उत्सवसे जान लिया कि, विवाहका फल संसार बढ़ाना है। पापोंके आरंभ करनेवाले असार संसारको धिक्कार है।८६ ९०।' ऐसा विचार करके श्रीनेमिकुमारने रथको चलाया और जितनेपशु बाड़ेमें घिरे हुए थे, जाकर उन सबको ही छोड़ दिया। श्रीनेमिनाथको जाते हुए देखकर लोग बहुत आकुल हुए।

श्रीनेमिनाथ वहांसे चलकर लौकान्तिक देवोंके साथ द्वारिकामें पहुँच गये अर्थात् उसी समय लौकान्तिक देव भी अपने नियोगकी पूर्तिके लिए आ गये। भगवानको चलते समय श्रीकृष्णजी ने बहुत रोका कि, हे महाबल ! ठहरो, और विवाह करो ! जिसमें मेरा कलंक मिट जावे। माता पिता ने भी इसीप्रकारसे बारम्बार रोका। परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। भगवान उन सबको सम्बोधित करके सिंहासनपर विराजमान होगये।९१-९४। भगवानके वैराग्यसे इन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ इसलिये वे भी जिनभक्तिके प्रेरित हुए द्वारिकामें आये और उन्होंने बड़े भारी उत्सवके साथ भगवानका अभिषेक किया, सुगन्धित मलयागर चन्दनसे अनुलेपन किया, कल्पवृक्षोंके पारिजातादि फूलोंसे पूजन किया, और सैकड़ों स्तुतियोंसे स्तवन किया। इसके पश्चात् सोलह प्रकारके आभरणोंसे शोभायमान श्री जिनेन्द्रभगवान स्वयं चलकर शिविकामें (पालकीमें) आरूढ़ हुए। उस पालकीको पहले तो सात पैंड तक राजा लेकर चले और फिर देवगण आकाशमार्ग से ले गये द्वारावतीके लोग तथा और भी जो विद्याधर तथा भूमिगोचरी थे, वे सब शिविकाके पीछे पीछे रैवतक पर्वत अर्थात् गिरनार पर्वतकी

ओर चले। इधर जब राजमतीने सुना, तब वह भी पदपद पर नानाप्रकारसे आक्रन्दन करती हुई—विलाप करती हुई पीछे २ चली।९५-१००।

जिन भगवानने रैवतक पर्वतपर पहुँचकर उसे सब ओरसे देखा, फिर सहस्रास्रवनमें जाकर उन्होंने महान साहस किया। अर्थात् मस्तकके सारे केशोंको उन्होंने पांच मुट्ठियोंसे लोंचकर उखाड़ लिया और "नमः सिद्धेभ्याः" ऐसा कहकर सम्पूर्ण आभरणादिक छोड़ दिये। सुर असुरगण धन्य २ कहकर स्तुति करने लगे। इसप्रकार जिनेन्द्रदेव मुनींद्र हो गये, और ध्यान लगाकर एक स्थानमें स्थिर हो रहे। उनके साथमें एक हजार राजाओंने भी दिक्षा ले ली। वे भी सब मुनि होकर तप करने लगे।१-३। भगवानने जो मस्तकके केश उखाड़े थे, उन्हें इन्द्रने क्षीरसागरमें ले जाकर गिराये। इस प्रकार तीसरा तपकल्याणक करके इन्द्र अपने स्थानको चला गया।४।

जिन भगवानने तीसरे दिन ध्यानसे उठकर और द्वारिकामें आकर ब्रह्मदत्तके यहां पारणा किया। खीरके भोजनसे विधिपूर्वक पारणा हो जानेसे देवोंने ब्रह्मदत्तके घर यथाक्रमसे पांच आश्चर्यों की वर्षा की। इसके पश्चात् योगिराज भगवान रैवतकपर्वतपर लौट आये और फिर घातिया कर्मों का क्षय करनेके लिये ध्यान लगाकर विराजमान हुए।५-७। उधर विलाप करती हुई और नेमिनाथका ध्यान करती हुई राजीमती अपने घरको लौटी! जब वह देख चुकी कि, भगवान दीक्षित हो गये, तब उसने भी अपने मनमें संयम लेनेका स्पष्ट निश्चय कर लिया। घर आनेपर उसे पिताने समझाया कि, बेटा! अब तू दुःख मत कर। मैं किसी दूसरे राजाके साथ तेरा पाणिग्रहण करा दूंगा। परन्तु राजीमती बोली, पिता! मैं श्रीनेमिकुमारको छोड़कर दूसरे पुरुषको आपके समान समझती हूँ अर्थात् और सब मेरे पिताके तुल्य हैं। नेमिकुमारके सिवाय मेरा कोई पति नहीं हो सकता। यह सुनकर उग्रसेन दुःखी होकर रह गये। राजीमति भी नेमिनाथका ध्यान करती हुई दिन व्यतीत करने लगी।८-११। उधर

श्रीनेमिनाथ योगी ध्यानमें स्थिर हो रहे। उन्होंने आत्मामें आत्माका ध्यान करते हुए क्षपकश्रेणी पर आरोहण किया। और उस ध्यानके प्रभावसे जल्द ही घातिया कर्मोंको नष्ट कर दिया। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय कर्मोंका विनाश होते ही लोक और अलोकका प्रकाश करने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। यह ध्यानस्थ होनेके ५६ दिन पीछे हुआ ।१२-१३।

केवलज्ञानके प्रभावसे इन्द्रोंके आसन कम्पायमान हुए। उससे उन्होंने जान लिया कि, श्रीनेमिनाथ भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। अतएव वे विमानोंपर तथा नानाप्रकारके बाहनोंपर आरोहण करके दुन्दुभीके शब्दोंसे दशोंदिशाओंको पूरित करते हुए, फूलोंकी वर्षा करते हुए और देवांगनाओंका नृत्य कराते हुए रैवतक पर्वत पर आये ।१४-१६। तब तक इन्द्रकी आज्ञासे कुवेरने सर्व लक्षणोंसे लक्षित और मनके हरण करनेवाले समवसरणकी रचना की। पहले पृथ्वीसे पांच हजार धनुष ऊपर एक लम्बी चौड़ी पीठिका बनायी जिसकी भूमिका वज्रकी बनी हुई थी, और जिसके चारों ओर बीस हजार सीढ़ियां थी। इस पीठिकाके ऊपर रत्न सुवर्ण आदिसे बने हुए तीन प्राकार अर्थात् कोट थे, और चार मानस्तम्भ थे। इनके सिवाय खाई, पुष्पवाटिका (बागीचा) नाटकशाला, वन, वेदिका, भवन और निर्मल जलसे भरे हुए सरोवर थे पीठिकाके ठीक बीचमें एक तीन सिंहासनोंवाला कल्याणरूप सिंहासन था, जिसके चारों ओर अशोकवृक्ष आदि आठों प्रतिहार्य थे। निर्ग्रन्थमुनि तथा श्रावक आदिसे भरे हुए बारह कोठे थे। और बहुतसे स्तूप थे वहांकी सब पृथिवी रत्नमयी थी। सिंहासन के ऊपर जिनेन्द्र भगवान विराजमान थे। उनके ऊपर ६४ चँवर ढुरते थे और मस्तकपर तीन छत्र शोभायमान थे। सुर और असुर उनकी वन्दना करते थे और उनके ब्रह्मदत्त आदि ग्यारह गणधर थे। इसप्रकार इन्द्रकी आज्ञासे समवसरण की रचना हुई ।१७-२५।

श्री जिनभगवानको केवलज्ञान हुआ है, ऐसा सुनकर द्वारावतीके समस्त लोग वन्दनाके लिये आये।

कृष्ण, समुद्रविजय, आदि यादव शिवादेवी, देवकी देवी, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि रानियां और उग्रसेनादि अन्य सब राजा लोग भी आये। समवसरणको देखकर सबको बड़ा अचरज हुआ। सब लोग तीन प्रदक्षिणा देकर, भावपूर्वक स्तुति करके, नमस्कार करके, और विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्योंके कोठेमें यथास्थान बैठ गये। राजीमती भी पांचहजार स्त्रियोंके साथ समवसरण में आई और भगवान को नमस्कार करके दीक्षित हो गई। जितनी स्त्रियां आर्यिका हुई थीं, राजीमती उन सबकी महत्तरा अर्थात् स्वामिनी हो गई।२६-३१।

इसके पश्चात् सुननेकी इच्छा करनेवाले लोगोंके लिये श्रीवरदत्त गणधर जिनभवानसे बोले; प्रभो ! भव्यरूपी चातकोंको सन्तुष्ट करनेके लिये धर्मरूपी मेघको प्रगट करो। ये प्राणी अनादिकाल से मिथ्यात्वको तृषासे अतिशय पीड़ित हो रहे हैं। तब मेघके स्वरूपको धारण करने वाले जिनेन्द्र-देव भव्यरूपी चातकोंके लिये सप्तभंगमयी, अतिशय गम्भीर और मधुर वाणी बोले। उस वाणीमें चारों अनुयोग, बारहों अंग, रत्नत्रय और सातों तत्वोंका सार तथा स्वरूप था।३२-३५।

भगवान बोले, संसारके भ्रमणका नष्ट करनेवाला धर्म दो प्रकारका है, एक मुनियोंका और दूसरा गृहस्थों का। जिसमेंसे दिगम्बर मुनियोंका चारित्र तेरह प्रकारका है। पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति। इसके सिवाय मुनियोंके अट्ठाईस मूलगुण, हजारों (८४ लाख) उत्तरगुण, और प्रतिदिनके करने योग्य छह छह आवश्यक कर्म हैं। मुनि इस प्रकारके निर्मल चारित्रका पालन करके मोक्षके शाश्वत सुखको प्राप्त करते हैं।३६-४०। और गृहस्थोंका चारित्र बारह प्रकारका है। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रत। श्रावकोंके यही बारह व्रत कहलाते हैं। भव्यजनों को ये उत्तम श्रावकोंके आचार सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयके सहित निरन्तर पालना चाहिये। मुनियोंके समान गृहस्थोंके भी मूलगुण होते हैं। वे ये हैं;—मद्य, मांस, मधु, और

पांचप्रकारके उदुम्बर फलोंका त्याग। इनके सिवाय गृहस्थोंको बिना जाने हुए बर्तनमें भोजन नहीं करना चाहिये, बुरे फल, बुरे फूल, बाजारका आटा तथा कन्दमूलादि त्याग करना चाहिये। मक्खन सर्वथा छोड़ने योग्य है। ऐसा अन्न जिसपर फूल फफूंदा आ गया हो, तथा जो द्विदल हो, अर्थात् गोरससे (दूध दही तथा छाछसे) मिला हुआ दो दालोंवाला हो, नहीं खाना चाहिये, क्योंकि वह अनन्तकाय होता है अर्थात् उसमें अनन्त जीवोंकी राशि होती है।४१-४५। कांजी, तक्र (छाछ-मठा) और पका हुआ शाक ये दो दिनके रक्खे हुए नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इनसे अहिंसाव्रतमें अतीचार लगता है। विवेकी श्रावकोंको चमड़ेके बर्तनमें (कुप्पे वगैरहमें) रक्खे हुए घी तेल, और जलको ग्रहण नहीं करना चाहिये। क्योंकि इनके ग्रहण करनेसे मांसका दोष लगता है।४६-४७। तत्कालका गाला हुआ दोष रहित प्रासुक जल पीना चाहिये। बिना जाना हुआ फल भी नहीं खाना चाहिये। मिथ्यात्वको और सातों व्यसनोंको दूरहीसे त्याग कर देना चाहिये। रातका भोजन और दिनका मैथुन त्याज्य है। कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र और कुधर्म जो संसारके बढ़ानेवाले होते हैं, उनका कभी मनमें भी चिन्तवन नहीं करना चाहिये। बुद्धिमानोंको देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, और दान ये छह कर्म प्रतिदिन करना चाहिये। तीन लोकमें सबसे दुर्लभ पदार्थ जिनदेवका कहा हुआ धर्म है।।४८-५१। जिनेन्द्रभगवानका यह धर्मोपदेश सुनकर वहां जितने मनुष्य तथा देव थे, अतिशय सन्तुष्ट होकर भगवानको नमस्कार करने लगे। वादित्रोंका घोष, और गीतोंकी मधुर ध्वनि होने लगी। वाणीको सुनकर कितने ही भव्योंने दीक्षा ले ली, कइयोंने जिनेन्द्रकी पूजा की तथा कइयोंने मौन आदिका नियम धारण किया, किसीने सम्यक्त्व और किसीने अणुव्रत ग्रहण किये। इस तरह अपने २ भावोंके अनुसार भगवानके वाक्योंकी प्रेरणासे अनेक भव्योंने अनेक प्रकारके नियम लिये।५२-५५।

इस उपदेशसे करोड़ों मनुष्य, देव, और असुर संबोधित होगये और नमस्कार करके अपने २

स्थानको चले गये । इसीप्रकारसे सब यदुवंशी भी जिनभगवानको प्रणाम करके द्वारिका नगरीको लौट गये और जिनधर्ममें रत हो गये । जिनभगवानकी चर्चा करते हुए अगणित भव्यजीव प्रतिदिन आते थे और उन्हें नमस्कार करते थे ।५६-५८। इसके अनन्तर श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर रैवतक पर्वतसे विहार करनेके लिये उतरे । उनके साथ देव और असुरोंका समूह भी चला । जिस समय भगवान चलते थे, उस समय उनकी भक्तिकी प्रेरणासे वायुकुमार आगे २ तृण तथा कांटोंको उड़ाते जाते थे और मेघकुमार गन्धोदककी वर्षा करते थे । जहां जहां भगवानके चरण पड़ते थे वहां २ देवगण सोनेके कमलों की रचना करते थे । जिस स्थानमें भगवान गमन करते थे, उसके चारों ओर आठसौ कोशतक सुभिक्ष रहता था, अर्थात् कहीं अकाल नहीं पड़ता था । किसी जीवका घात नहीं होता था । शीत, आताप, पीड़ा, छोटे छोटे उपद्रव आदि कुछ भी नहीं होते थे । जहां जहां जिनेन्द्रदेव चलते थे, देवगण आगे आगे जय जय शब्द करते जाते थे । शालि आदि धान्योंसे पृथ्वी खूब हरी भरी सोहती थी, सब दिशायें निर्मल रहती थीं । मन्द सुगन्ध पवन चलती थी इन्द्रकी आज्ञासे देवगण सम्पूर्ण लोगोंको जिनेश्वरकी वन्दनाके लिये बुलाते थे । आगे २ पापका क्षय करनेवाला, जिनधर्मका प्रभाव प्रगट करनेवाला और मिथ्यात्वको नष्ट करनेवाला धर्मचक्र चलता था ।५६-६७।

इस प्रकारसे जिनेन्द्रदेवका सारी पृथ्वीमें विहार हुआ । जहां २ उनका गमन होता था, वहां वहां वे कल्याणकारी उपदेश देते थे । महाराष्ट्र, तैलंग, कर्णाटक, द्रविड़, अंग, बग (बंगाल), कलिंग, सूरसेन, मगध (बिहार), कनूज (कन्नोज), कुंकण (कोंकण), सौराष्ट्र (सोरठ), उत्तर, मालवा, गुजरात, पांचाल (पंजाब) और महेश्वर आदि अनेक देशोंको संबोधित करके वे भद्दिलपुर नगरमें पधारे वहां अलकाके घरमें वसुदेव महाराजके तीन युगल (जोड़ी) अर्थात् छह लड़के थे, जिन्हें कंसके उपद्रवके मारे देव रख आये थे । भगवानके वहां पहुँचनेपर वे भी समवसरणमें आये । ये छहों लड़के युवा

थे और प्रत्येकने बत्तीस २ श्रेष्ठ स्त्रियां विवाही थीं। भगवानका उपदेश सुनकर उक्त युवाओंको ऐसा वैराग्य हुआ कि सबोंने तत्काल ही जिनदीक्षा ले ली । पठन पाठन ध्यान, योग, पारणा, प्रोषध आदि सब ही कार्य वे छहों भाई एक साथ करने लगे ।६८-७५।

उनको संबोधित करके जिन भगवान फिर रैवतक पर्वतपर आगये । साथ ही श्रीकृष्ण आदि यदुवंशी पुरुष और उनकी सत्यभामा आदि स्त्रियां भी समवसरणमें आईं । भगवानको नमस्कार करके और भक्तिपूर्वक पूजा करके वे सब मनुष्य देव असुर आदि अपने २ कोठोंमें यथास्थान बैठ गये । उस समय जिनराजने भव्यरूपी प्यासे चातकोंके लिये धर्मके स्वरूपका निरूपण किया, जिसे सुनकर सब ही लोग सन्तुष्ट हुए । अवसर पाकर देवकी महाराणीने जो कि एक घटनासे विस्मित हो रही थीं, बड़ी विनयके साथ पूछा, हे भगवन् ! आज मेरे घर दो मुनि आये थे, सो उन्होंने विधिपूर्वक कई बार आहार लिया । वे दोनों मुनि एक ही दिन मेरे घर तीन बार भोजनके लिये आये और मैंने उन्हें पुत्रके मोहसे भक्तिके साथ तीन ही बार भोजन करा दिया । सो जिनभगवानके शासनमें जो दिगम्बर मुनि हो जाते हैं, क्या वे एक ही दिनमें कई बार आहार लेते हैं ? इसके जवाबमें भगवानने कहा कि दिगम्बर मुनि बार बार भोजन नहीं करते हैं, यह ठीक है, परन्तु तुम्हारे यहां जो तीन बार भोजन को आये, वे जुदे जुदे तीन युगल मुनि थे। और यथार्थ में वे छहों भाई हैं, जिनकी जन्मके समय देवोंने ले जाकर उनकी रक्षा की थी। भगवानकी वाणी सुनकर देवकी महाराणीने कुटुम्ब सहित उठकर छह मुनियोंको नमस्कार किया ।७६-८६। भगवानकी वाणीसे मुनियोंका सब सन्देह दूर हो गया । माता और छहों बेटे परस्पर अपनी २ वार्ता करने लगे । श्रीकृष्णजीके सगे भाइयोंको (मुनियोंको) देखकर सम्पूर्ण यादव प्रसन्न हुए । उस संगममें बड़ा भारी हर्ष हुआ ।८७-८८।

तत्पश्चात् सत्यभामा आदि आठों पटरानियोंने अपने २ पूर्वभवोंका वृत्तांत पूछा और तदनुसार

जिनभगवानने उन सबके भवोंका वर्णन किया। उन्हें सुनकर सब यादव लोग सन्तुष्ट हुए और फिर अपने २ घर चले गये जिनेन्द्र भगवान भी फिरसे विहार करनेके लिये निकले। और अनेक देशोंको सम्बोधित करनेमें तथा भव्यजीवोंको मोक्ष प्राप्तिके लिये जिनदीक्षा देनेमें तत्पर हुए।८६-९१।

जो भव्यजीव जिनेश्वर भगवानका यह पवित्र चरित्र आदरपूर्वक सुनते हैं, जिसमें कि विवाहादि महोत्सवोंकी चर्चा की है, और निर्मल वैराग्य, दीक्षा, ध्यान, केवलज्ञान तथा देशना (उपदेश) आदिका वर्णन है उनके घरमें निरन्तर ही सोमता, विद्वत्ता चतुराई निवास करती है।१९२।

इति श्रीसोमकीर्ति आचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें श्रीनेमिनाथका विवाह, वैराग्य, दीक्षा, ज्ञान, समवसरण, देशना, विहारादिका वर्णनवाला तेरहवां सर्ग समाप्त हुआ।

अथ चतुर्दशः सर्गः।

श्रीनेमिनाथ भगवान पल्लव देशमें विहार करके उज्जयन्तगिरी अर्थात् गिरनारपर्वतपर फिर पधारे। सुर और असुर जिनको नमस्कार करते थे, उन तीर्थंकर देवके आने पर कुबेरने इन्द्रकी आज्ञासे समवसरणकी फिर रचना की। सर्वज्ञ भगवान वहां विराजमान हो गये हैं, ऐसा जानकरके भक्तिके भारसे झुका हुवा और मस्तकपर हाथ रखके नमस्कार करता हुआ इन्द्र तत्काल ही वहाँ पहुँच गया। इसी प्रकारसे उन्हें आया हुआ जानकर श्रीकृष्णजी भी बन्दनाके लिये चले। अपने नगरमें उन्होंने इस बातकी घोषणा करा दी कि, भगवान आये हैं। उनके साथ प्रद्युम्नकुमार शम्बुकुमार भानुकुमार आदि बहुतसे यदुवंशी राजा चले, तथा सत्यभामा आदि सब रानियां भी अपनी अपनी पालकियोंमें बैठकर चलीं।१-५।

तुरही के शब्दोंसे दिशाओंको गुंजायमान करते हुए, हाथियोंके मदजलसे पृथ्वीको प्लावित करते हुए घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलको सब दिशाओंमें उड़ाते हुए, छत्रोंसे संसारके सघन आताप

को शोषण करते हुये, क्षण क्षणमें ढुरनेवाले अगणित चँवरोंसे दिशाओंको ढँकते हुए, बन्दीजनों की विरदध्वनि से सारी दिशाओंको व्याप्त करते हुए, पैदल सेवकोंसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए और अपनी विभूतिसे जगतको तिनकाके समान दिखलाते हुए उस तीन खण्डके स्वामी श्रीकृष्ण-नारायणने दूर ही से गिरनार पर्वतको देखा ।६-६। वह रमणीय पर्वत मदोन्मत्त कोयलोंकी कूकसे ऐसा मालूम पड़ता था, मानों आलाप ही कर रहा है, और फलोंसे लदे हुए वहांके वृक्ष ऐसे जान पड़ते थे, मानों उसे भक्तिपूर्वक नमस्कार ही करते हैं। निरन्तर आकाशमें भ्रमण करते हुए, सूर्यके घोड़े जिस पर्वतके शिखरपर थक कर विश्राम लेते थे, और जो आलवालोंसे आकुल था अर्थात् जहांके वृक्षोंके चारों ओर जल भरनेके खन्दक बने हुए थे। ऐसे गिरनार पर्वतपर श्रीकृष्णजी पहुँचे। यह पर्वत उन्हींके समान था अर्थात् जिस प्रकार वह पर्वत, उन्नतवंशवाला अर्थात् बड़े २ बांसोंवाला, सौम्य बहुतसे सत्त्व अर्थात् जीवोंसे भरा हुआ और अनेक पत्रोंसे सघन था, उसी प्रकार श्रीकृष्णजी भी उन्नतवंशवाले (कुलीन), सौम्य, बहुसत्वसमाकुल अर्थात् पराक्रमी और अनेक पत्रसंकीर्ण अर्थात् हाथी घोड़ा रथ आदि बाहनों से सघन थे ।१०-१२। श्रीकृष्णनारायण छत्र चमर हाथी घोड़ा रथ आदि राजचिह्नोंको दूरहीसे छोड़कर कितने ही श्रेष्ठ राजाओंके साथ जो विनीत और विस्मित हो रहे थे, भगवानके समवसरणमें पहुँचे। मानस्थभों, सरोवरों, नाट्यशालाओं, चँदोवों, छत्रों, झारियों, पुष्प-मालाओं, सिंह आदिके चिह्नोंवाली धुजाओं और अनेक महोत्सवोंसे उक्त समवसरण शोभायमान हो रहा था ।१३-१६। वहां सिंहासन पर बैठे हुए और तीन छत्रों तथा ढुरते हुए चँवरोंसे युक्त नेमिनाथ भगवानको देखकर नारायणने तीन प्रदक्षिणा दीं, विधिपूर्वक पूजा की और उत्कृष्ट भक्तिसे नमस्कार करके इसप्रकार स्तुति की;—हे भगवन् ! आप तीन जगतके स्वामी हैं, ज्ञानवान हैं, तृष्णारहित हैं, क्षमा श्री ह्री धृति कीर्ति आदिसे निरंतर शोभित हैं, विद्याधर भूमिगोचरीदेव आदि आपके चरणकमलोंको

सदा नमस्कार करते हैं और प्रतिदिन भक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं। हे नाथ! हम भक्तिहीन आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? परन्तु स्वार्थकी सिद्धिके कारण अर्थात् अपने कल्याणकी इच्छासे लज्जित नहीं होते हैं स्तुति करते हैं।१७-२१। आपने जगतके बन्धनको नष्ट करके निर्मल केवलज्ञान प्राप्त किया है, राजीमती आदि प्रिय जनोंको तथा राज्यको आपने दूरहीसे छोड़ दिया है, माया मोह काम क्रोध और लोभादि शत्रुओंको हे प्रभो! आपने ध्यानके योगसे जीत लिया है। आप सारे लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाले सूर्य हैं और निर्दोष जड़तारहित, धीर तथा निष्कलंक चन्द्रमा हैं। आपने आत्मा और शरीरको पृथक् चिन्तवन करके आत्मतत्त्वको जाना है और इसी उत्कृष्ट तत्त्वको आपने सप्त भंगी वाणीमें वर्णन किया है।२२-२५। अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे हुए पुरुषोंके चक्षुओंको आप ज्ञानरूपी अंजनकी सलाईसे उघाड़नेवाले सूझने करनेवाले और भव्योंको जगतरूपी समुद्रसे तारनेवाले हो। इसप्रकार अनेक गुणोंके धारनेवाले हे नेमिनाथ! हे तीन लोकके गुरु आपको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।२६-२७। इस प्रकार स्तुति करके और हाथ जोड़कर नमस्कार करके श्रीकृष्णजीने भगवानसे धर्मका स्वरूप पूछा। तब उन्होंने जगसे पार करनेवाला धर्म दो प्रकारका है, एक तपस्वियोंका और दूसरा गृहस्थोंका। जीव, अजीव आश्रव आदि सात तत्त्व जैनधर्ममें कहे गये हैं। इनमें पुण्य और पापको मिलानेसे नव पदार्थ हो जाते हैं। लोकमें ये नव पदार्थ भी प्रसिद्ध और माननीय हैं। जीव पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल ये छह द्रव्य होते हैं। इनमेंसे काल द्रव्यको छोड़कर पांचको अस्तिकाय कहते हैं। आत्मा न्यारा है, कर्म न्यारे हैं और शरीर न्यारा है। परन्तु संसारमें आत्मा कर्मकी फांसीमें फँस रहा है, इसलिये तत्व और अतत्वको सच्चे और झूठेको नहीं जान सकता है। जैसेकि बादलोंके आ जानेसे सूर्य और चन्द्रमा। लेश्या छह प्रकारकी हैं, जिनमेंसे पहली पीत पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ हैं, तथा भव्य जीवोंके होती हैं और शेष कृष्ण नीला और

कापोती ये तीन अशुभ हैं तथा अभव्य जीवोंके होती हैं। वे सब लेश्या जीवोंके विशेष २ प्रकारके भावोंसे होती हैं। ध्यान चार प्रकारके हैं मार्गणा चौदह प्रकारकी हैं धर्म दश प्रकारका है और तप अन्तरंग तथा बहिरंगके योगसे बारह प्रकारका है।२८-३७।

इस प्रकार भगवानकी वाणी सुनकरके श्रीकृष्णजीने त्रेसठशलाका पुरुषोंका चरित्र पूछा, तब उन्होंने पांचों कल्याण, गुरु, पुर, नाम, जिन स्वर्गों से चय करके आये उनके नाम, जन्मके नगर, माता, पिता, नक्षत्र, शरीर की ऊँचाई, वर्ण, (रंग) वंश, राज्यकाल, तप, ज्ञान और निर्वाणके स्थान, और जितने राजाओंके साथ दीक्षा ली; उनकी संख्या, आदि छयालीस २ बातें प्रत्येक तीर्थंकरकी कहीं। फिर छह खंड पृथ्वीके स्वामी बारह चक्रवर्तियोंके, नव नारायणोंके, नव प्रतिनारायणोंके, और नव बलभद्रोंके नगर, वंश, माता, पिता, जिन जिन तीर्थंकरोंके तीर्थमें उत्पन्न हुए उनके नाम, उत्पत्ति, बुद्धि और मरण आदि सब विषयोंका प्रतिपादन किया जिसे सुनकर सारी सभा वैराग्यसे भूषित हो गई। अर्थात् सब लोगोंके चित्तपर वैराग्य छा गया।३८-४४।

समवसरण सभासे श्रीकृष्णजीके भाई गजकुमार भी बैठे हुए थे। उन्हें ऐसा वैराग्य हुआ कि, वे तत्काल ही उठे और भगवानसे दीक्षा लेकर पर्वतके शिखरपर चले गये, और वहां अपने हाथसे अपने केश उखाड़कर ध्यान धारण करके विराजमान हो गये। एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण गजकुमारका श्वसुर था। वह दीक्षा लेनेकी खबर पाकर गजकुमार मुनिके समीप गया और उन्हें नानाप्रकारके वचनोंसे समझाने लगा कि, इस मुनिदीक्षाको छोड़कर घर चलो। परन्तु जब मुनिराजपर उसके वचनों का कुछ भी असर नहीं हुआ तब वह बहुत ही कुपित हुआ अग्निमयी दग्धिकाको (?) उस पापीने उनके सिर पर रखदी। परन्तु इतने पर भी अर्थात् शरीरके जलने लगने पर भी वे योगिराज अपने ध्यानसे जरा भी च्युत नहीं हुए। आखिर शरीरके बहुत जल जानेसे जब कण्ठगत प्राण हो

गए तब उन्हें उन अपूर्व ध्यानके योगसे केवलज्ञान उत्पन्न होगया और उसीसमय अर्थात् केवलज्ञान होते ही उनका शरीर छूट गया—मोक्ष प्राप्त हो गया। यह जानते ही भगवानके समवसरण में जो देव बैठे हुए थे, वे सब उठ खड़े हुए और गजकुमारकी ओर चले।४५-५१। श्रीकृष्णजीने पूछा हे भगवन्! यहां से यह देवगण जय जय शब्द करते हुए क्यों उठ रहे हैं? भगवान बोले श्रीगजकुमार मुनिको शुक्ल-ध्यानके योगसे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, तथा उपसर्गके जीतनेसे तत्काल ही उनका मोक्ष भी हो गया है। इसलिये वे सब देव और मनुष्य वहां जा रहे हैं।५१-५४। यह सुनते ही सब लोगोंने श्री गजकुमारको बड़े अचरजमें यहां वहां देखा, और इतनी जल्दी यह सब कैसे होगया, इसका कारण पूछा। तब जिनेन्द्रदेवने भी उपसर्ग आदिका वृत्तान्त कह सुनाया। गजकुमारका इसप्रकार निर्वाण देखकर तथा भगवानकी वाणी सुनकर अनेक लोगोंको वैराग्य हो गया। इसलिये उन्होंने जिनदीक्षा ले ली। जो दीक्षा नहीं ले सके, उनमेंसे बहुतोंने अणुव्रत ग्रहण कर लिये, बहुतोंने सप्तशील धारण किये और बहुतोंने गृहस्थोंके छह कर्म पालन करनेका नियम लिया।५५-५७। निदान भगवानकी वाणीसे सब ही देव मनुष्य सन्तुष्ट और मिथ्यात्वके नष्ट करनेवाले सम्यक्त्वको प्राप्त हो गये अर्थात् सब ही समकिती हो गये।५८।

श्रीकृष्णजीने भी जानलिया कि यह संसार असार है। क्योंकि जितने त्रेसठशलाका पुरुष आज तक हुए हैं, उन सबको नष्ट हुए सुने हैं। कानरूपी अंजुलियोंसे जिनेन्द्रदेवके वचनरूपी अमृतका पान करके सब लोग हर्षित हुए। तदनन्तर बलभद्रजीने इसप्रकारसे अपने मनकी बात पूछी कि हे नाथ! जो पदार्थ अनादि हैं, वे तो अकृत्रिम हैं, इसलिये उनका कभी नाश नहीं होता है, परंतु जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, वे अवश्य ही नष्ट होते हैं, ऐसा मुझे पक्का विश्वास है। इसलिये बतलाइये कि द्वारिकाका नाश कब और कैसे होगा तथा श्रीकृष्णकी मृत्यु कैसे होगी? क्योंकि ऐसा तो हो ही

नहीं सकता कि द्वारावती कभी नष्ट नहीं होगी और श्रीकृष्ण सदा जीते रहेंगे ।५६-६१। नेमिभगवान ने कहा कि द्वारिका नगरी बारह वर्षके पीछे द्वीपायन मुनिके कोपसे नष्ट होगी, और उस क्रोधका कारण मद्य (शराब) होगा । तथा श्रीकृष्णजीकी मृत्यु जरत्कुमारके बाणसे होगी । वह शिकारके व्यसनमें फँसकर कोशांब वनमें जावेगा और वहां बाण चलावेगा । वही बाण नारायणकी मृत्युका कारण है ।६२-६३। यह सुनकर सब ही लोग भयसे व्याकुल हो गये । ठीक ही है, सम्पत्तिमें जिस प्रकारसे सुख होता है, उसी प्रकारसे विपत्ति में दुःख भी होता है । द्वारिकाके नष्ट होनेका तथा श्री कृष्णकी मृत्युका भविष्य सुनकर कई लोग तो डरके मारे दूसरे नगरको चले गये और कई लोग वैराग़ी होकर सर्वज्ञदेवकी शरणको प्राप्त हुए अर्थात् दीक्षित हो गये । और द्वीपायन मुनि भगवानके वचनोंको मिथ्या करनेके लिये दूने वैराग्ययुक्त परिणाम करके विदेशको चले गये । वहां द्वारिका के समीप नहीं रहे । इसी प्रकार जरत्कुमार यह सोचकर किसी निर्जन वनको चला गया कि जिनके चरणों की समस्त शूरवीरोंके मुकुटोंसे पूजा होती है, वे ही श्रीकृष्णजी जब मेरे द्वारा मारे जावेंगे, तब मैं यहां रहकर क्या करूँगा ? भाइयोंने उसे रोका, परन्तु वह नहीं रुका; द्वारिका छोड़कर चला गया ।६४-६८। इसके पश्चात् श्रीकृष्णजीने द्वारिका जलनेके डरसे नगरीमें मुनादी पिटवाई कि जितने मद्य पीने वाले हैं, वे मद्यका सर्वथा सम्बन्ध छोड़ देवें । और यह भी प्रगट किया कि यदि हमारी कोई प्यारी स्त्री, पुत्र, भाई आदि जिनदीक्षा लेना चाहें, तप करना चाहें, तो करें, हम कभी नहीं रोकेंगे ।६९-७०।

द्वारिकाको इस प्रकार भविष्यके भयसे व्याकुल देखकर सूर्यदेव रक्त होनेपर भी अपनी उदय लक्ष्मीकी निन्दा करके पराङ्मुख हो गये । नारायणके दुःखको तथा भावीको देखनेमें असमर्थ होकर वे अस्ताचल पर्वतके तटसे समुद्रमें गिर पड़े । सारांश यह कि सूर्य अस्त हो गया । उसके समुद्रमें पतन

होनेका समाचार सुनकर कमलिनी दुःखसे मलिनमुख हो गई और भौंरोंके शब्दोंके मिससे मानों रोने ही लगी। संध्या, सिन्दूर कुसुम्भ तथा टेसूके फूलोंकी शोभाको धारण करने लगी अर्थात् लाल हो गई। मानों वह द्वारिकाके जलनेकी पहलेहीसे सूचना देने लगी।७१-७४। सूर्यके परलोक हो जानेके शोकसे लाल अम्बर (वस्त्र तथा आकाश) को धारण करनेवाली संध्या रोती २ नष्ट हो गई। दिन अस्त होने पर पक्षियोंका जो कोलाहल होता है, वही उस संध्यारूपी स्त्रीका रोना था।७५। संध्याके बीत जाने पर अन्धकारके परमाणु दशों दिशाओंमें फैल गये। वे ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों आगे जो आग लगने वाली है, उसके धुएंके अंशही उड़ उड़कर फैल गये हैं।७६। अज्ञानको तथा निरुत्साहको बढ़ाता हुआ और कुमार्गमें मनको भरमाता हुआ अन्धकार मिथ्या श्रद्धान कराने वाले मोहजालके समान विश्वव्यापी हो गया।७७। फिर क्या था, क्षणभरमें तारागण दिखलाई देने लगे। अल्प बुद्धिवाले लोक प्रायः अन्धकारमें ही शोभा देते हैं, अर्थात् जहां अज्ञान होता है, अल्प बुद्धिवाले वहीं प्रतिष्ठा पाते हैं।७८। थोड़ी देरमें अन्धकारको नष्ट करते हुए और कुमुदोंको प्रफुल्लित करते हुये निशानाथ अर्थात् चन्द्रदेव उदित हुए, जिनके पति परदेश गये थे, उन स्त्रियोंके लिये वे बड़े ही भयङ्कर थे।७९। संयोगिनी स्त्रियोंने शरीरका शृंगार करना पतिके अपराधसे रूसना और दूतियोंको भेजना अथवा दूतियोंके आनेकी बाट देखना आदि कार्य प्रारंभ कर दिये। क्रम क्रमसे स्त्री पुरुषोंमें रति क्रीड़ा होने लगी। बहुतसे लोग कामभोगोंमें निमग्न हो गये। परन्तु कई विचारवान पुरुष इसप्रकार चिन्ता करके कामभोगोंसे विरक्त होगये कि जिसको साक्षात् इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने बनाई थी, वही द्वारिका नगरी यदि नष्ट होनेवाली है, तो इससंसारके उदरमें और क्या शाश्वत् स्थायी हो सकता है? कंस आदि मत्त हाथियोंके लिये जो सिंहके समान था, उसी श्रीकृष्णनारायणकी नगरीको कोई जला देगा, यह बड़ा अचरज है।८०-८३। सच है, सम्पूर्ण जीवधारियोंका जीवन और वैभव स्वप्नके

इन्द्रजालके समान और पानीमें उठनेवाले फेनके समान क्षणस्थायी मृगतृष्णाके समान भ्रमरूप है। मनुष्योंका शरीर रोगका घर है, भोग भयंकर हैं, स्त्रियां अनेक दोषोंसे भरी हुई हैं, अर्थ (धन) अनर्थोंका करनेवाला है, मित्रता सदा स्थिर नहीं रहती है और जिसका संयोग होता है, उसका वियोग होता है, ऐसा ध्यान करके लोगोंको तपोवनकी सेवा करनी चाहिये अर्थात् दीक्षा लेकर मुनि हो जाना चाहिये। संसारमें यही सार है। इसप्रकार चिन्तवन करते हुए पुरुषोंसे राग द्वेष करके ही मानों चन्द्रदेव भी रात्रिके साथ २ संसारसे विमुख होकर चले गये, जैसे कि सूर्य चला गया था। अर्थात् रात बीत गई, चन्द्रमा डूब गया।८४-८७।

प्रभातकी सूचना करनेवाले मुर्गोंके शब्दोंके साथ २ नगाड़े बजने लगे। जो कि जागे हुए लोगोंको बहुत प्यारे लगते थे। गन्धर्वों के गीत होने लगे, और बन्दी जनोंकी जयजय ध्वनि होने लगी। सब लोग इन नानाप्रकारके शब्दोंको सुनकर जाग उठे। सूर्यदेव रात्रिको नष्ट करके और अंधकारका निराकरण करके उदयाचल पर्वतके शिखरपर आगये। सिन्दूरके समान लाल वर्ण, लोग जिसकी बन्दना करते हैं, ज्योतिषी देवोंका नाथ, और सौम्यरूप वह बालसूर्य पर्वतके मस्तकपर ऐसा मालूम पड़ता था, मानों आगामी दाहके मारे भयभीत हो रहा है—कांप रहा है।८८-९१।*

इति श्रीसोमकीर्तिआचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दीभाषानुवादमें बलभद्र प्रश्न और जिनेन्द्रदेवकृत भविष्यनिरूपण नामक चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ।

अथ पंचदशः सर्गः।

एक दिन श्रीकृष्णनारायण राजसभामें दिव्य सिंहासनपर इन्द्रके समान विराजमान हो रहे थे यादवोंकी भीड़से सभा सब ओरसे भर रही थी। सामन्तों, मंत्रियों, विद्याधरों, और बलभद्रादि राजा-

* दूसरी प्रतिमें ९१ नम्बरका श्लोक नहीं है और यहां सर्गकी समाप्ति भी नहीं है। पन्द्रहवें सर्गके अन्तमें सर्ग समाप्त किया है।

ओंसे घिरे हुये वे सूर्यके समान मालूम होते थे। गंगाकी धवल तरङ्गोंके समान चमर ढुर रहे थे। सोलहों आभरण उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। हृदयमें कौस्तुभ नामका मणि देदीप्यमान हो रहा था। मस्तकपर सफेद छत्र शोभित होता था। और उनका मुख फूले हुये कमलके समान था। लोग नानाप्रकार की कला और विनोदोंसे उनका चित्त रंजायमान कर रहे थे। परन्तु उनके हृदयमें थोड़ी सी शंकाकी छाया जान पड़ती थी।१-५। इतनेमें शांतशील, गुणवान और विद्यावान प्रद्युम्नकुमार राजसभामें आया और अपने पिताको नमस्कार करके सुन्दर सिंहासन पर बैठ गया। उस समय उसका चित्त विषयवासनाओंसे विरक्त हो रहा था। थोड़ी दूर बैठकर जब किसी चलती हुई चरचाका अन्त हुआ, तब उसने कठिनाईसे भी जो नहीं छोड़ा जा सकता है, ऐसे मोहको छोड़ करके, मस्तकपर अंजुली रखके अर्थात् हाथ जोड़ कर और अभयकी याचना करके कहा, हे पिता! आपके प्रसादसे मैंने जाति रूप कुल आदि तथा सम्पूर्ण भोगकी सुखकारी वस्तुएं पाई हैं। परन्तु भोग करके जान लिया कि, कोई भी वस्तु शाश्वत सदा रहनेवाली नहीं है। हे प्रभो! संसारकी स्थिति नित्यतारहित अर्थात् क्षणभंगुर है।६-११। इसलिये अब प्रसन्न हूजिये, और मुझे आज्ञा दीजिये, जो मैं आपकी कृपासे मोक्ष सुखकी प्राप्तिके लिये जो कि सदा शाश्वत है, कोई अच्छा उपाय करूं। यह सारा संसार असार और दुःखकारक है इसलिये हे पिता! मैं संसार भ्रमणको मिटाने वाली जिन भगवानकी दीक्षा लेता हूँ।१२-१३।

प्रद्युम्नकुमारके वचन सुनकर वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि सबके सब यादव शोकमें मग्न हो गये। मूर्च्छित होकर काठके समान हो रहे। उस मूर्च्छासे ही उन सबका मरण रुक गया, यह बात हम निश्चित् समझते हैं। अर्थात् मूर्च्छा न आती, तो कोई भी न बचता। मूर्च्छाके दूर होने पर उन सबने स्नेह वश होकर कहा, हे बेटा! आज तू इतना कठोर क्यों हो गया है? क्यों अब तू पहलेका प्रद्यु-

म्नकुमार नहीं रहा है ? ऐसे स्नेहरहित और बन्धुवर्गोंको दुःखित करनेवाले कठोर वचन तेरे मुख से कैसे निकलते हैं ? हे वीर ! हे गुणोंके आधार ! संयमका यह कौनसा समय है ? तू अभी युवा है, रूपवान है, इसलिये भोगोंके भोगने योग्य है। दीक्षा लेने योग्य नहीं है।१४-१८। इसके सिवाय जिनेन्द्र भगवानने जो कहा है, उसे कौन जानता है कि, होगा या नहीं ? तू व्यर्थ ही क्यों भयभीत होता है ? तू वीरोंमें वीर है, धीरोंमें धीर है, योद्धाओंमें योद्धा है, मन्त्रियोंमें मन्त्री है, विद्वानोंमें विद्वान है, भोगियोंमें भोगी है, सब जीवोंकी दया करनेवाला है, बन्धुजनोंमें प्रीति करनेवाला है, पंडित है, चतुर है, योग्य अयोग्यका जानने वाला है, सारांश यह है कि, सब प्रकारसे श्रेष्ठ है किसी गुण में कम नहीं है, इसलिये इस समय तेरे दीक्षा लेनेके वचन युक्तियुक्त नहीं जान पड़ते हैं।१९-२२।

अपने मलीनमुख बन्धुओंको मोहके वशीभूत जानकर प्रद्युम्नकुमार बोला, हे पूज्य पुरुषों ! केवली भगवानके वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकते हैं। जो सम्यग्दर्शनसे विभूषित हैं, उन्हें इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं करना चाहिए। मैं भयभीत नहीं हुआ हूँ। सारी पृथ्वीमें मुझे किसीका भी भय नहीं है। जीवधारियोंको अपने पुराने बांधे हुए कर्मों के सिवाय और किसीका कुछ भी डर नहीं है। संसारमें न कोई सज्जन बंधु है, और न कोई दुर्जन तथा शत्रु है। न कोई किसीको कुछ (सुख दुख) दे सकता है, और न कोई किसीका कुछ ले सकता है। इस असार संसारमें जीव अनादि निधन है। अगणित भवोंमें इसके अगणित बंधु हुए हैं। फिर बतलाओ, किन किन बन्धुओंके साथ स्नेह किया जाय ? सभी बन्धु हैं ऐसा समझकर आप सब पूज्य पुरुषोंको शोक नहीं करना चाहिये। शोक बड़ा दुखदाई है। प्रद्युम्नकुमारके ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्णजीका हृदय दुःखसे भर आया ! उन्हें शोकसे गद्‌गद् देखकर विद्वान कामकुमारने कहा, हे तात ! आप क्या शोक करते हैं ? आप तो सबको उपदेश देने वाले हैं ! क्या प्रकाशवान सूर्यको भी दीपक दिखलानेकी आवश्यकता होती

है ? ।२३-३०। क्या आप नहीं जानते हैं कि यह मृत्यु आयुके क्षीण होने पर सब जीवोंका भक्षण कर जाती है। न बालकको देखती है, न कुमारको देखती है, न विद्वानको छोड़ती है, न मूर्खको छोड़ती है, न रूपवानको बचाती है, न कुरूपको बचाती है। इसीप्रकारसे सुशील, शीलरहित, गुणी, निर्गुणी, शूर, कायर, और जवान बूढ़ा आदि जिसको पाती है, ले जाती है। फिर मैं जवान हूँ, भोग भोगनेके योग्य हूँ, गुणवान हूँ, इसलिये क्या मौत मुझे बचा देगी ? ।३१-३२। यदि ऐसा है, तो बताओ भरत चक्रवर्तीका पुत्र तथा सुलोचनाका पति मेघेश्वरकुमार कहां गया, जो स्त्रियोंका अतिशय प्यारा था आदिनाथ भगवानके भरत चक्रवर्ती तथा आदित्यकीर्ति आदि प्रतापी पुत्र कहां गये ? बलवान बाहुबली भी कहां गये ? नमि आदि विद्याधर राजाओंका क्या पता है, इस प्रकार अनेक वैराग्य उत्पन्न करने वाले वचनोंसे पिताको समझाकर और शम्बुकुमारको अपने पदपर स्थापित करके प्रद्युम्नकुमार अपनी माताके महलको गये ।३३-३६।

रुक्मिणी माताके चरणकमलोंको नमस्कार करके प्रद्युम्नकुमार बोला, हे माता ! बालकपनसे लेकर अभीतक मैंने जो कुछ अनिष्ट किये हों इससमय प्रसन्न होकर उन सबको क्षमा प्रदान करो। मैं आपका बालक हूँ। और पूज्यपुरुष जितने होते हैं, वे क्षमाके करनेवाले होते हैं। बालकों पर वे सदा क्षमा करते हैं। मैं अब दिगम्बरी मुनियोंके व्रत ग्रहण करता हूँ, जो सम्पूर्ण कर्मरूपी तिनकोंको जलानेके लिये दावानलके समान हैं, शीलादि बड़े २ रत्नोंके रत्नाकर हैं, गुणोंके मन्दिर हैं और जिन्हें पूर्व पुरुषोंने वनमें जाकर ग्रहण किये हैं। हे माता ! इस विषयमें अब तुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिये अर्थात् रोकना नहीं चाहिये ।३७-४०। पुत्रके इस प्रकार दीक्षा लेनेके वचन सुनकर माता अतिशय दुःखी हुई और मूर्छित होकर धरतीमें गिर पड़ी जैसे कि जड़के कट जानेसे वल्लरी (बेल) प्रभाहीन होकर गिर पड़ती है। थोड़ी देरमें जब चेतना हुई तब रुक्मिणी बोली, हे बेटा !

इससमय क्या तुझे ऐसा करना योग्य है। अपनी माताको दुःखिनी छोड़कर जाना क्या तुझे उचित है? यदि धर्मके लिये उद्यत हुआ है, तो हे दयाधर्मके पालनेवाले! अपनी माताको क्यों दुखी करता है? ।४१-४४। माताको इसप्रकार शोकाकुलित देखकर शास्त्रोंके नाना दृष्टान्तोंको जाननेवाला प्रद्युम्नकुमार फिर बोला, हे माता! तू संसारके स्वरूपको नित्य (स्थायी) समझ रही है। और यह नहीं जानती है कि जीवधारी अकेला उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है। अकेला कर्म बांधता है और अकेला ही उसका फल भोगता है। इसलिये जो विवेक आदि गुणोंके धारण करनेवाले हैं, उन्हें किसीके साथ शोक नहीं करना चाहिये। प्राणियोंको प्रत्येक भवमें दुःखका देनेवाला मोह ही है। जब तक मोह है, तभी तक अधिकाधिक दुःख है। जन्मके पीछे मरण लगा हुआ है, यौवनके पीछे बुढ़ापा लगा हुआ है और स्नेहके पीछे दुःख लगा हुआ है। इन्द्रियोंके विषयभोग हैं, सो विषके समान दुखदाई हैं। विवेकी जीव इस मोहको छोड़कर सुकृत करनेका यत्न करते हैं! उन्हें जो कोई रोकता है, वह मूर्ख है तथा शत्रु है। इसमें सन्देह नहीं है ।४५-५०।

ऐसा समझकर सोच छोड़ दो और मुझपर प्रसन्न होकर दीक्षा लेनेकी आज्ञा दो। मैं तुम्हारी आज्ञानुसार चलनेवाला हूँ ।५१। पुत्रके वचन सुनकर रुक्मिणीका मोह दूर हो गया। विषयोंका परिणाम समझकर बोली हे पुत्र! मैं बहू और बेटेके मोहसे मोहित हो रही थी। तूने मुझे प्रतिबोधित करदी। हे गुणाधार! इस विषयमें तू मेरे गुरुके समान है। प्रद्युम्न! जिस तरह सूखे पत्तोंका समूह हवाके लगनेसे उड़ जाता है उसी प्रकारसे कुटुम्बी जनोंका संयोग है। अर्थात् कालरूपी हवाके चलनेसे यह भी जहां तहां उड़ जाते हैं, जैसे बादलोंके समूह आकाशमें दिखलाई देते हैं और थोड़ी ही देरमें हवाके प्रभावसे नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकारसे सम्पत्ति भी बातकी बातमें नहीं रहती है ।५२-५५। एक तप तथा संयम ही संसारमें ध्रुव है। विषयोंकी प्रीति अवश्य ही विनाश होनेवाली है।

सुखके साथ दुःख लगा हुआ है। और विषयभोग विषके समान परिपाकमें दुख देने वाले हैं। यदि संसारके विषयोंमें कुछ सारता होती, तो श्री आदिनाथ तीर्थंकर आदि महापुरुष उन्हें क्यों छोड़ देते और मोक्षके लिये क्यों प्रयत्न करते ? कुटुम्बीजनोंकी संगति यदि नित्य होती अर्थात् हमेशा बनी रहती, तो भरत आदि महाराज तपस्या करनेके लिये कैसे तत्पर होते।५६-५८। इसप्रकार संसारकी अनित्यता तथा असारता जानकर तुझे मोक्षका शाश्वत सुख प्राप्त करनेके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। सन्मार्गके आचरणमें रक्त हुए तथा कृत्रिम क्षणस्थायी सुखोंसे विरक्त हुए तुझको मैं नियमानुसार रोक भी नहीं सकती हूँ कि दीक्षा मत ले।५९-६०। बल्कि मैं स्वयं ही स्नेहको छोड़कर तपोवन में प्रवेश करती हूं, जो संसाररूपी समुद्रसे पार करनेके लिये जहाजके समान है। हे वत्स ! इतने समयतक मैं सुखमें लवलीन होकर घरमें रहती थी, सो केवल तेरे मोह ही से रहती थी और दूसरा कारण नहीं था।६१-६२।

माताके ऊपर कहे हुए वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमारको सन्तोष हुआ। फिर उसने अपनी स्त्रियों से कहा, हे स्त्रियों ! मेरे हितकारी वचन सुनो। यह जीव दुःखसे भरे हुए संसारमें चिरकाल तक भ्रमण करके किसी प्रकार दैवयोगसे मनुष्यजन्म पाता है। और उसमें भी उच्चकुलमें जन्म पाना तो बहुत ही कठिन है। करोड़ों भवोंमें भी नहीं मिलता है। इसके सिवाय सुकुलमें जन्म पाकर भी राज्यका तथा धन वैभवका पाना अतिशय कठिन है। सो संसारमें जितनी बातें दुर्लभ थीं, मैंने उन सबको पा ली हैं अर्थात् मनुष्यपर्याय, यदुवंश जैसे श्रेष्ठ कुलमें जन्म, बड़ी भारी राज्यविभूति, विद्या, बल आदि सब कुछ मैं पा चुका हूँ। अब मेरा जो यथार्थ कर्तव्य है, उसके करनेका यत्न करता हूँ। अर्थात् मोक्षसुखकी देनेवाली जिनभगवानकी दीक्षा लेता हूँ। सो इस विषयमें अब तुम्हें मुझको रोकना नहीं चाहिये।६३-६८। यह प्राणी स्त्रियोंके लिये ऐसा कौनसा कार्य है, जो नहीं करता है ? निरन्तर

विषयोंमें विह्वल रहकर आखिर वह मौतके मुँहमें जा पड़ता है। स्त्रियोंके लिये धनकी आवश्यकता होती है और धन पानेकी इच्छासे लोग ऐसे युद्धमें भी प्रवेश करनेसे नहीं डरते हैं, जो हाथी, घोड़ों और रथोंसे सघन होता है तथा जिसमें रक्तकी नदियाँ बहती हैं। धनके लोभसे अनेक लोग व्याघ्र सिंह आदि हिंसक जानवरोंसे भरे हुए भयंकर वनोंमें तथा विंध्याचल जैसे पर्वतोंमें प्रवेश करनेमें नहीं हिचकते हैं। और उसी धनके लिये जो कि स्त्रियोंके लिये आवश्यक होता है, लोग अत्यन्त गहरे तथा मच्छकच्छ आदि जीवधारियोंसे भरे हुए समुद्रमें भी प्रवेश करते हैं। अधिक कहनेसे क्या? सारांश यह है कि, ऐसा कोई भी दुष्कर कर्म नहीं है, जिसे मनुष्य, स्त्री और धनके लिये नहीं करता है।६९-७३। तुम्हारे सबके साथ मैंने निरन्तर अनेक प्रकारके भोग भोगे, तो भी उनसे तृप्ति नहीं हुई। ऐसी अवस्थामें जब कि विषय तृप्ति ही नहीं होती है, अधिक अधिक अभिलाषा बढ़ती है, घरमें किसलिये रहूँ, अब मैं जिनेन्द्रभगवानके तपोवनमें जाना चाहता हूँ। सो तुम सबको मुझपर क्षमाभाव धारण करना चाहिये। मेरी सबके प्रति क्षमा है।७४ ७५।

प्रद्युम्नके इस प्रकार रागरहित वचन सुनकर रति आदि रानियां दुःखके मारे व्याकुल हो गईं। संसारसे किंचित् विरक्त होकर और विनयपूर्वक हाथ जोड़कर वे बोलीं, हे नाथ! आप ही हम सबके शरण हैं। आप ही हमारे आश्रयभूत हैं, और आप ही हमारे मित्र तथा हितकारी बन्धु-वर्ग हैं। सुख दुःख जो कुछ है, हम सब आपके साथ ही भोगनेवाली हैं। जब आपके साथ हमने भोग भोगे हैं, तब आपके ही साथ दीक्षा लेकर पवित्र तप भी करेंगी जिसके प्रभावसे हे विभो! देव-लोकमें उत्पन्न होवेंगी, और आपके प्रभावसे वहांके अपूर्व सुख भोगेंगीं। हे नाथ आप प्रसन्नतासे कर्मोंका विनाश करनेवाली जिनदीक्षा ग्रहण करें। आपके साथ हम भी जिनभगवानके दिये हुए व्रत ग्रहण करती हैं। और यदि भोगोंमें लुब्ध होकर हे राजन् आप घरमें रहना चाहें, तो रहिये, हम भी

आपके साथ रहकर सुख भोगें और आपके प्रसादसे नेमिनाथभगवानकी वन्दना करें। परन्तु हे प्रभो! यह संसार असार है। इसका स्वरूप समझकर इसे छोड़ दीजिये। हम सब जिसका जय नहीं हो सकता है, ऐसे विभूतिमें मत्सर हुए रागको छोड़ करके, काम शत्रुको नष्ट करके, स्वरूपमें चित्तको लगा करके और श्रीमति राजीमती के निकट शुद्ध एक वस्त्रको धारण करके आर्यिकाओंका उत्कृष्ट तप करेंगी।७६-८६।

इस प्रकार शांतिताके साथ वैराग्यके वचन सुनकर प्रद्युम्नकुमार बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने अपनी स्त्रियोंसे छुटकारा पाकर मानों उसी समय समझ लिया कि, हम संसाररूपी पिंजरेसे निकल आये। जिन बहुतसे राजपुत्रोंको प्रद्युम्नने स्वयं अपने साथ रखकर बालकपनसे बड़े किये थे, उनके साथ हाथी पर आरूढ़ होकर वे घरसे निकल पड़े। नगरके लोगोंने उन्हें बड़े प्रेमसे देखा। नानाप्रकार के वाक्योंसे वे सब उनकी प्रशंसा करने लगे। कोई बोला कि, सर्व शत्रुओंका मर्दन करने वाला श्री कृष्णनारायण सरीखा जिसका पिता है, तीन लोककी सुन्दरी स्त्रियोंके रूपको जीतनेवाली जगत्प्रसिद्ध रुक्मिणी महाराणी जिसकी माता है, सौराष्ट्र देशका इन्द्रके समान जिसका राज्य है, देव दुर्लभ और उपमारहित जिसका रूप है, रूप तथा लावण्यसे भरी हुई सुलक्षणा तथा कला विज्ञानकी जाननेवाली जिसकी अनेक स्त्रियां हैं वह प्रद्युम्नकुमार इस प्रकार सम्पूर्ण सुखोंके उपस्थित होने हुए भी तपस्या करनेको उद्यत हुआ है, सो अब इससे अधिक क्या चाहता है?।८७ ६२। यह सुनकर कोई चतुर पुरुष बोला, सुनो, यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका पारगामी प्रद्युम्नकुमार कृत्रिम सुखोंको छोड़कर लोकातीत, सारभूत, और जन्म जरा मरणरहित, मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छासे तप करनेको उद्यत हुआ है। इसका हृदय वैराग्यसे शोभायमान होरहा है। अविनाशी सुखके पानेकी वांछा कर रहा है। इसप्रकार परस्पर वार्तालाप करते हुये लोग प्रद्युम्नकुमारसे बोले "हे गुणसागर! जयवंत होओ! चिरकाल तक जियो!

बढ़ो ! और संसारकी अनित्यताका निरन्तर स्मरण करते हुए अपनी आत्माका कल्याण करो" लोगों के इसप्रकार आशीर्वादरूपवचन सुनते हुए प्रद्युम्नकुमार गिरनार पर्वत पर पहुँच गये ।९३-९८।

वहां पर उन्होंने मानस्तंभोंसे युक्त भगवानका समवसरण देखा । उसके आँगनके पास पहुँचते ही उन्होंने हाथी परसे उतरकर राजवैभवकी छत्र चँवर आदि विभूतियाँ छोड़ दीं । पूर्वमें पाये हुए सोलह लाभोंको तथा सब विद्याओंको स्त्रियोंके समान त्याग दीं । विद्याओंको छोड़ते समय उसने क्षमा मांग ली । इसके पश्चात् प्रद्युम्नने अपने सब इष्टजनोंसे बारम्बार क्षमा कराके समवसरणमें प्रवेश किया, जो आते हुए सुर और असुरोंसे संकीर्ण हो रहा था । वहां भगवानको नमस्कार करके हाथ जोड़े हुए कहा, "हे नाथ ! आप भव्य पुरुषोंको संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाले हो, वरदानके देने वाले हो और भक्तजनोंके कष्टको दूर करनेवाले हो । हे जिनेन्द्र ! मुझे कृपा करके जन्म मरणको नाश करनेवाली दीक्षा दो ।" यह कहकर प्रद्युम्नकुमारने जो कुछ आभूषण पहन रक्खे थे. वे भी सब उतार दिये, पांच मुट्ठियोंसे अपने सिरके केश उखाड़कर फेंक दिये । और समस्त सावद्य योगके उत्पन्न करने वाले परिग्रहको छोड़कर बहुतसे राजाओंके साथ दिगम्बरी दीक्षा ले ली । मोक्षके प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला वह गुणवान कुमार संसारसे अतिशय विरक्त हो गया ।९९-१०८। उसी समय भानुकुमार ने भी वैराग्यके रंगमें रंगकर माता, पिता तथा बंधुओंसे आज्ञा लेकर और अपनी समस्त राज्यविभूति को छोड़कर अनेक राजपुत्रोंके सहित निर्मल जिनदीक्षा ले ली । भानुकुमारके दीक्षा लेनेसे श्रीकृष्ण जी आदि सबही दुःखी हुए ।९-११।

इसके अनन्तर सत्यभामा, रुक्मिणी, जांबुवती आदि रानियोंने भी भगवानकी सभामें जाकर श्रीमति राजीमती आर्यिका समीप दीक्षा ले ली । उन सब स्त्रियोंके हृदयसे रागभाव धुल गये थे । श्वेत साड़ी धारण करके वे घोर तपस्याके लिये तत्पर होगईं ।१२ १५। प्रद्युम्नकुमार चारित्र धारण

करके उत्कृष्ट तप करने लगा। स्वजन और परिजन उसकी वन्दना करने लगे। जगतका हित करने के लिये वह सोम अर्थात् चन्द्रमाके समान सौम्य गुणका धारक हुआ।११५।

इति श्रीसोमकीर्ति आचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें प्रद्युम्नकुमार भानुकुमार और आठ पट्टरानियोंकी दीक्षाका वर्णनवाला पन्द्रहवां सर्ग समाप्त हुआ।

अथ षोडशः सर्गः।

प्रद्युम्नमुनिको वैराग्यसे विभूषित, तपरूप लक्ष्मीसे शोभित और घोर तपस्या करते हुए देखकर श्रीकृष्ण बलदेव आदि मोहके वश दुःखी होकर द्वारिका को लौट आये और अपने कामकाजमें लग गये।१-२। इधर कामदेव मुनि मुनियोंसे भी जो कठिनाईसे किये जाते थे, ऐसे तप करने लगे। सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र संयुक्त होकर देव गुरु शास्त्रकी त्रिधा भक्ति करते हुए उन्होंने अनेक लब्धियां प्राप्त कर लीं। उनके पारणे एक दिनके अन्तरसे दो दिनके तीन चार पांच आठ पन्द्रह दिन और महिने २ के अन्तरसे होते थे। अर्थात् वे एकसे लेकर महिने २ तकके उपवास करते थे। वे राग-द्वेषसे रहित थे, परन्तु गुणरूपी सम्पत्तिसे रहित नहीं थे। काम क्रोधादि कषायोंको उन्होंने नष्ट कर दिया था; विषयोंसे वे सर्वथा निष्पृह थे। जिनागममें जो मुनियोंके आहारके लिये ३२ ग्रास कहे हैं, उन्हें घटाते बढ़ाते हुए नाना भेदरूप ऊनोदर तप करते थे। अर्थात् कभी एक ग्रास लेते थे, कभी दो ग्रास लेते थे, इस तरहसे तीन चार आदि ३२ ग्रास पर्यन्त आहार करते थे। इसके सिवाय जैनशास्त्रों में जो सिंहविक्रीड़ित, हारबंध, वज्रबंध, धर्मचक्र, बाल ? आदि नानाप्रकारके कायक्लेश तप कहे हैं, उनको भी वे पवित्र मुनि करते थे। गुड़, घी, तेल, दही, शक्कर, नमक आदि रस उन्होंने छोड़ दिये थे। सम्पूर्ण दोषोंसे रहित और पापारम्भवर्जित शुद्ध आहार, विरक्तचित्तसे केवल शरीर की रक्षा करनेके अभिप्राय से करते थे। प्रद्युम्नकुमारने जैसा तप किया, उसका वर्णन नहीं किया

जा सकता है ।२-१२।

जहां पर मृगादि जीवधारी नहीं होते थे, ऐसे उत्तम और प्रासुक स्थानमें प्रद्युम्नकुमार मुनि विविक्तशय्यासन नामक तप करते थे । वर्षाकालमें जब घोर वर्षा होती थी, वृत्तके नीचे दुस्साध्य स्थान में तीन प्रकारका योग धारण करके निश्चल हो जाते थे । जब शीतकाल आता था, कठिन जाड़ा पड़ता था, तब रातको नदीके किनारे वे धीर वीर ध्यानमें स्थिर हो जाते थे । इसीप्रकारसे जब ग्रीष्म का समय आता था, दुस्सह गर्मी पड़ती थी, तब पर्वतके शिखर पर जाकर जलती हुई शिला पर बैठ कर तप करते थे और कठिन ताप सहन करते थे ।१४-१७।

प्रमाद सहित मन वचन कायसे तथा उनके भेदाभेदोंसे अर्थात् मन वचनसे मन कायसे काय-वचन आदिसे जो पाप तथा अतीचार होते थे, उनके रोकनेके लिये उन प्रमादरहित मुनीश्वरने बाह्य कायक्लेशादि योगसे और अन्तरंग मनोनिग्रह आदिसे घोर तपश्चरण किया । अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय तथा साधुओंकी आलसरहित होकर भक्ति की । सम्यक्त्वसे शोभित और विनयसे विभूषित होकर ऋषि मुनियोंका भक्तिपूर्वक दश प्रकारका वैयावृत्य किया । जिनेन्द्र भगवानके मुखसे निकला हुआ, पद अक्षरादि संयुक्त और बड़े विस्तार वाला द्वादशांग श्रुतज्ञान दया संयम और क्षमाके धारण करनेवाले उन प्रद्युम्नमुनिने गुरुभक्तिमें तत्पर रहकर युक्तिपूर्वक पढ़ा ।१८-२३।

बाह्य और अन्तरंगरूप सब परिग्रहको छोड़कर शरीरका किसी भी प्रकारका संस्कार उन्होंने नहीं किया । शरीरमें उनकी ऐसी निरादर बुद्धि हो गई कि, उसकी ओर उनका किंचित् भी लक्ष्य नहीं रहा । आर्त रौद्रादि ध्यानोंको उन्होंने सर्वथा छोड़ दिया और धर्मध्यान शुक्लध्यानको वे आदर-पूर्वक करने लगे । प्रतिक्रमण वन्दना आदि छह प्रकारके आवश्यकोंको उन्होंने नियमपूर्वक किया । रातको वे निरन्तर मौनपूर्वक कायोत्सर्ग धारण करके रहे । लोगोंके भयङ्कर आक्षेपोंसे, ताड़नाओंसे,

आदररहित वचनोंसे, और अपमानसे उन क्षमाधारी विवेकी मुनिश्वरका अन्तःकरण जरा भी चलित नहीं हुआ—मेरुके समान अचल रहा ।२४-२८। चलनेमें, लेटनेमें, बैठनेमें, भोजनमें, देखनेमें, विचारने तथा पठन पाठनमें वे शांतहृदय वाले तथा उत्तम चेष्टाके धारण करनेवाले योगी उत्कृष्टमार्दवको धारण करते हुए शोभित हुए । अर्थात् उनके सम्पूर्ण बर्ताओंमें कोमलता निरभिमानता दिखलाई देती थी ।२९-३०। वे उत्कृष्ट आर्जव गुणके धारण करनेवाले मुनि मन वचन और कायसे पृथक्पनेका चिंतवन करते थे । अर्थात् आत्माको मन वचन कायसे पृथक ध्यान करते थे । धीर पुरुषोंके अगुए, पराक्रमी और वड़े २ योगी जिनकी बन्दना करते थे, ऐसे वे योगी निरन्तर विचार करते थे । कि आत्मा न्यारा है शरीर न्यारा है । और उत्तम शौच, उत्तम संयम, तप, त्याग, सत्य, शरीरमें भी निर्लोभिता (आकिंचन), और ब्रह्मचर्य इन जिनेन्द्र भगवानके कहे हुए धर्मोंको जो कि मोक्षमार्गका आदेश करने वाले, संसारसमुद्रके सोखने वाले, सच्चे और सम्पूर्ण गुणोंवाले हैं, धारण करते थे ।३१-३५।

जिसप्रकार राज्यावस्थामें सम्पूर्ण रिपुओंको जीत लिया था, उसीप्रकारसे उन्होंने क्षुधा तृषादि ऐसी कठिन परिषहोंको जीतीं, जिन्होंने कि अन्य लोगोंको जीत लिया था, जो विषय थीं, क्षुद्र लोगोंको ठगने वाली थीं- और पापी तथा छली लोगोंकी प्यारी थीं ।३६-३७।

जो कामकुमार पहले वृन्त रहित फूलोंकी कोमल मशहरीदार शय्यापर तकिया लगाकर शयन करते थे, वे ही प्रद्युम्नमुनि अब साधुवृत्तिसे तिनके और कंकड़ चुभानेवाली खाली जमीनका सेवन करते हैं । पहले सफेद छत्रादिकोंसे जिन्हें धूप नहीं लगने पाती थी, तथा उष्णताके निवारण करनेके लिये जो चन्दनका लेप करते थे, वे ही अब ध्यानी तथा योगी होकर पर्वतके मस्तक पर खड़े होकर संसारका क्षय करनेके लिये सूर्यकी तीव्र किरणों का आताप सहन करते थे । जो पहिले कामिनियों के कोमल हाथोंके बनाये हुए, छह रसयुक्त, अत्यन्त स्वादिष्ट उत्तमोत्तम व्यंजनोंका भोजन करते थे,

वे ही अब उपवाससे अपने शरीरको क्षीण करके कोदोंका (कोद्रवका) भी आहार लेते हैं। पहले जिनकी अनेक राजा सेवा करते थे, और जिन्होंने सम्पूर्ण राजलक्ष्मीको छोड़कर तपोवनका आश्रय लिया था, वे ही मानी ध्यानी अब मुनियोंके नाथ होकर पृथ्वीपर विहार करते हैं। देवोंके राजा भी उनकी बन्दना करते हैं। और जिन्होंने विद्याधर तथा भूमिगोचरी राजाओंकी अनेक कन्याओंके स.थ विवाह करके उनके साथ चिरकाल तक भोग भोगे थे, और उद्वेगसे उसका त्याग करके दीक्षा ली थी, उन्होंने कान्ति, कीर्ति, क्षमा, बुद्धि और दयारूप स्त्रियोंका त्याग नहीं किया! आचार्य कहते हैं कि, इसमें हमको अचरज मालूम पड़ता है।३८-४७। जो रसिक कामकुमार सम्पूर्ण राजाओंके शृङ्गाररूप अचरजकारी सोलहों आभरण धारण करते थे, वे ही अब द्वादशांगरूपी शृङ्गारसे विभूषित ऐसे वीतराग हो गये हैं, कि उनकी कामचेष्टाके अस्तित्वका लोग अनुमान भी नहीं कर सकते हैं—नहीं जान सकते हैं। जिन्होंने अपने पहले दिन सुन्दर स्त्रियोंके गीत नृत्योंमें तथा ततसे लेकर सुषिर पर्यन्त नानाप्रकारके बाजोंमें मोहित होकर बिताये थे, वे ही योगीश्वर अब धर्मध्यानके रसमें मग्न होकर ऐसे गहनवनोंमें समय व्यतीत करते हैं, जहां श्याल सिंह आदि जानवरोंके शब्दोंसे भय मालूम होता है। जो पहिले हाथियों, घोड़ों, चन्द्ररथ समान रथों और सेवकोंसे सेवित होकर अपनी लीलासे भ्रमण करते थे वे ही अब गुप्ति परायण योगीश्वर होकर आत्मध्यानमें अतिशय लवलीन हुए पवित्र पृथ्वीपर विहार करते हैं। जो चतुरा पंडिता स्त्रियोंके साथ गाथा दोहा आदि मनोहर छन्दोंमें सरल स्नेहयुक्त सत्यासत्य भाषण करते थे, वे ही अब सब जीवोंपर दया करनेवाले योगी होकर शास्त्रानुसार हितकारी परिमित उपदेश देते हैं।४८-५५। जो पहिले सोने तथा रत्नादिके पात्रोंमें स्त्री पुत्रादिकोंके सहित षट्‌रस भोजन बड़े विनोदके साथ करते थे, वे ही अब सब प्रकारके दोषोंसे रहित, त्रिशुद्धिसहित, जिनभगवानकी कही हुई विधिके अनुसार, केवल शरीर पिण्डकी रक्षाके लिये आहार लेते हैं। जो पहले

सर्वगुणसम्पन्न, मनके हरनेवाले, प्राणप्यारे चंचल, और भोले पुत्रों के साथ स्नेहपूर्वक रमण करते थे, वे ही अब एकाकी, निष्पृह, तथा शान्त होकर परम वैराग्यको धारण करते हुए निर्जनवनमें निवास करते हैं जहां एक चित्त ही सहायक है। जो कामकुमार मदोन्मत्त तथा अगणित सेनायुक्त शत्रुओंका गर्व गलित करते थे, वे ही अब दयावान और जितेन्द्रिय होकर छह कायके जीवोंकी रक्षा करनेमें तत्पर रहते हैं और संसारको अपने समान देखते हैं। राजमार्गके आश्रयसे जो पहले प्राणियोंके घात करनेवाले भयकारी सत्यतारहित (सावद्य वचनको भी असत्य माना है) वचन बोलते थे, वे ही अब चार प्रकारके सत्यसे पवित्र हुए, मनोहर, हितकारी और जिनेन्द्रदेवके मुखसे उत्पन्न हुए सद्वचन बोलते हैं। पहले राज्य करते समय पापके भयसे रहित तथा उन्मत्त होकर जो बलपूर्वक दूसरोंकी द्रव्य तथा कन्या आदि छीन लेते थे, वे ही अब दूसरेके धनको तिनकेके समान समझते हैं। उसे मन वचन कायसे कभी ग्रहण नहीं करते हैं। गृहस्थावस्थामें जिन्होंने स्त्रियादिकोंके साथमें पंचेन्द्रियोंको सुखके देनेवाले नानाप्रकारके मनोहर भोग भोगे थे, वे ही अब रागरहित होकर उन भोगसुखोंका मन से भी कभी स्मरण नहीं करते हैं। उनके चिन्तवनको भी शीलका नाश करनेवाला समझते हैं। पूर्वसे जो प्रभुताके रसमें छके हुए धन. धान्य, रत्न, हाथी, घोड़ा, तथा सुवर्णादिसे तृप्त नहीं होते थे, वे ही अब सब झगड़ोंसे मुक्त होकर और समस्त परिग्रह छोड़कर, अन्तरात्माके रसमें रंगे हुये रहते हैं। अपने शरीरमें भी उन्हें मोह नहीं है।५६-६९।

तीन प्रकार की गुप्ति और पांच प्रकारकी समितियोंको पालते हुए वे धीर योगीश्वर गंभीर समुद्रके समान शोभित होते हैं। यशके बड़े भारी गृहस्वरूप उन कामकुमार मुनिने दुस्सह तप किया और चारित्रका पालन किया। जो धीरवीर तथा बुद्धिमान हैं, तपोवनका सेवन उन्हींके लिये युक्त है कायर तथा कुबुद्धियोंके लिये नहीं।७० ७२। श्रीप्रद्युम्नकुमार योगीन्द्र जो कि शुद्धबुद्धि और

पापरहित थे, ग्यारहवें दिन* गिरनार पर्वतके एक ध्यानयोग्य वनमें पहुँचे। वहांपर उन्होंने अपने सम्यग्दर्शनकी सामर्थ्यसे दर्शनके नाश करनेवाले दर्शन मोहनीय कर्मका घात किया। फिर उसी रमणीकवनके एक आम वृक्षके नीचे जन्तु रहित निर्मल शिलापर वे पृथ्वीके समान क्षमावान मुनि पर्यंकासन योगसे विराजमान हुए और चित्तको निरोध करके ध्यान करने लगे। नरकके कारणभूत रौद्र ध्यानको और तिर्यंच गतिके कारणभूत आर्तध्यानको छोड़ करके वे मुनिराज धर्मध्यानके बलसे मनको स्थिर करके और नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि जमा करके आत्माके विचारमें लवलीन हुए। फिर क्रमक्रमसे जैसे २ कर्मशुद्धि होती गई, तैसे २ प्रमत्तादि गुणस्थानोंसे निकलकर ऊपर चढ़े। तथा चित्तका निरोध करके वे महामुनि उनके ऊपर श्रेणी आरोहण करनेके लिये उद्यत हुए। आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानमें आकर और क्रमसे उसको भी उल्लघन करके नवमें अनिवृत्तिकरणमें स्थिर हुए। उसके पहले आधे भागमें उन्होंने सोलह कर्मप्रकृतियोंका क्षय किया * वे प्रकृतियां ये हैं:—१ निद्रानिद्रा, २ प्रचलाप्रचला, ३ स्त्यानगृद्धि, ४ नरकगति, ५ नरकगत्यानुपूर्वी, ६ तिर्यंचगति, ७ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, ८ उद्योत, ९ आतप, १० एकेन्द्री, ११ साधारण, १२ सूक्ष्म, १३ स्थावर, १४ द्वीन्द्रिय, १५ त्रेन्द्रिय, और १६ चतुरिन्द्रिय। दूसरे भागमें प्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ और अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध मान माया लोभ इन आठ प्रकृतियोंका घात किया। तीसरे भागमें नपुंसक वेद प्रकृतिका, चौथे में स्त्रीवेद प्रकृतिका, पांचवेंमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तथा पुरुषवेद

---

* ऊपर कहा है कि, प्रद्युम्न मुनिने गर्मीमें, वर्षामें, शीतमें, कठिन २ परिषहें सहीं और यहां ग्यारहवें ही दिन केवलज्ञान होना कहा है। सो हमारी समझमें ऊपर का कथन सामान्य मुनियों की अपेक्षा है कि, मुनि शीत, वर्षाकी ऐसी ऐसी परिषह सहते हैं। प्रद्युम्नने तो केवल ११ दिन ही तपस्या की है।

* इन श्लोकोंमें प्रकृतियोंका क्रम ठीक २ नहीं दिया था। इसलिये हमने ग्रन्थान्तरोंसे स्पष्ट करके लिखा है।

का और छठे सातवें आठवें भागमें क्रमसे संज्वलन क्रोध मान मायाका नाश किया। इसके पश्चात् सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें संज्वलन लोभ प्रकृतिका घात किया, और बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थानमें सम्पूर्ण घातिया कर्मोंका नाश किया। इसमें ज्ञानावरणीकी ५, दर्शनावरणीकी ४, अन्तरायकी ५, निद्रा और प्रचला इसप्रकार सोलह प्रकृतियोंका विच्छेद होता है।७२-८७। इसके अनन्तर, आदि अन्तरहित, अज्ञानहीन, और सर्वाङ्गसुन्दर तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेश किया–तथा जिसका कभी नाश नहीं हो सकता है, ऐसे लोकालोकको प्रकाश करनेवाले सुन्दर केवलज्ञानको प्राप्त किया-इंद्रियअगोचर सुखका कारण और आत्माका सच्चा हित जिसमें है, ऐसा यह केवलज्ञान पुरुषोंको नहीं होता है। ।८८-९०। केवलज्ञान सूर्यका उदय होते ही एक छत्र, दो चँवर, और एक मनोहारी सिंहासन, ऐसी तीन दिव्य वस्तुएं देवोंकी बनाई हुई प्राप्त हुई। और इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरने बड़ी भक्तिसे ज्ञानकल्याणके लिए एक गंधकुटीकी रचना की।९१-९२।

प्रद्युम्नकुमारका केवल कल्याण जानकर असुरकुमार, नागकुमार आदि भवनवासी. किन्नर आदि व्यंतर देव, इन्द्रादि स्वर्गवासी देव, और सूर्य आदि ज्योतिषी देव, आनन्द, भक्ति और धर्म प्रीतिसे भरे हुए गिरनार पर्वतपर आये। इसीप्रकारसे अनेक विद्याधर और भूमिगोचरी राजा अपनी अपनी स्त्रियोंसहित तथा श्रीकृष्ण, आदि यदुवशी राजा सुन्दर लीला तथा सुन्दर वेषके धारण करने वाले शम्बुकुमार आदि राजपुत्रों सहित आये। सबने आनन्दके साथ केवली भगवानको प्रणाम किया और जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, और सुन्दर फलादि द्रव्योंसे गीत, नृत्य, वीणा, बांसुरी, मृदंग आदिके साथ २ भक्तिपूर्वक पूजा की। इनके पश्चात् बहुतसे यादव भक्तिके प्रेरे हुए सवारियोंमें आरूढ़ हो होकर आये, पंचांग नमस्कार करके बैठ गये और धर्म श्रवण करने लगे। फिर जिनेन्द्रकथित धर्मका श्रवण करके और यथा योग्य नियम लेकर यादवगण अपने अपने घरोंको लौट

गये ।६३-१००। तदनन्तर योगिराज श्रीप्रद्युम्नकुमार जो कि अनेक देवोंसे अथवा विद्वानोंसे घिरे हुए थे, श्रीनेमिनाथ भगवानके साथ विहार करनेके लिये चले और पल्लव देशमें जाकर पहुँचे । उनके साथ रुक्मिणी अर्जिका भी अपनी पुत्रवधू और राजीमती सहित उक्त देशमें पहुँची । शीलवती रुक्मिणी और उसकी बहू एकादक श्रुतज्ञानकी धारण करनेवाली होगई थीं । नेमिनाथ भगवान बड़े भारी संघके साथ विहार करने लगे । यहां पर एक दूसरी कथाका सम्बन्ध है:—।१-३।

द्वीपायन मुनि जो कि अन्य देशको चले गये थे जितनी अवधि बतलाई थी, उतनी बीती हुई जानकर द्वारिकाको देखनेकी इच्छासे और यदुवंशियोंसे यह कहनेके लिये कि, अब तुम्हें डर नहीं रहा, लौट आये । उन्होंने भूलसे समझ लिया कि, बारह वर्ष बीत चुके हैं । परन्तु यथार्थमें उस समय बारह वर्ष पूरे होनेमें कुछ दिन बाकी थे ।४-६।

ग्रीष्मऋतुका समय था । द्वीपायन मुनि यादवोंको अपना तप दिखानेके लिये द्वारिका नगरी के बाहर एक शिलापर विराजमान हो रहे थे । दैवयोगसे उस दिन यादवोंके शम्बुकुमार, भानुकुमार आदि पुत्र गिरनार पर्वतपर क्रीड़ा करनेके लिये गये थे । वहां ग्रीष्मके तापमें तपनेसे उन्हें प्यासने ऐसा सताया कि वे जलकी खोजमें चारों ओर भ्रमण करने लगे । जिस समय नेमिनाथ भगवानने द्वारिका के नष्ट होनेकी बात कही थी, उस समय लोगोंने राजाकी आज्ञासे जो शराबके बर्तन फेंक दिये थे, वे पर्वतकी एक खोहमें पड़े थे वर्षा ऋतुमें जब पानी बरसता था, तब वे जलसे भर जाते थे । और उनमें वृक्षोंके नानाप्रकारके फूल हवाके झकोरोंसे झड़कर पड़ा करते थे और सड़ते रहते थे । इससे वह जल समय पाकर शराबके समान उन्मत्त करने वाला हो गया था ! प्याससे व्याकुल हुए राजपुत्रों ने कुछ भी न सोचकर वह जल पी लिया । जिससे थोड़ी देरमें वे सबके सब मतवाले हो गये । उनके नेत्र नशे के मारे लाल लाल हो गये । नानाप्रकारके गीत गाते हुए, झूठा बकवाद करते हुए, परस्पर

लड़ते झगड़ते हुए, जमीनपर लोटते हुए, बाल बिखराये हुए और एक दूसरेके कानमें लगकर झूठी बड़बड़ करते हुए वे सबके सब द्वारिकाकी ओर चले। जिस समय द्वारिकाके द्वारपर पहुँचे, उस समय उनकी दृष्टि वहां पर विराजमान हुए क्षीण शरीर मुनिराजपर पड़ी सो दैवयोगसे उन सबने उन्हें शीघ्र ही पहचान लिया। श्रीनेमिनाथ भगवानके वचन स्मरण करके कि इस मुनिके द्वारा द्वारिका भस्म होगी, वे क्रोधसे उन्मत्त हो गये।७-१६। और लाल आंखे करके बोले, नेमिनाथने द्वारिकाका जलानेवाला जिसे बतलाया था, वह यही है इसलिये इस दुराचारीको द्वारिकाका कुछ अनिष्ट करनेके पहिले ही मार डालना चाहिये। ऐसा कहकर उन दुष्टोंने पत्थर मारना शुरु किया, सो तब तक मारा, जब तक द्वीपायन मुनि जमीनपर नहीं गिरे। परन्तु इतना कष्ट सहनेपर भी मुनिने जरा भी क्रोध नहीं किया। अपने परिणामोंको सम्हालकर शान्त हो रहे। राजकुमार इतनेपर भी नहीं माने उन्होंने मुनिके मस्तकपर मातंगसे (चाण्डालसे) पेशाब करवाई।१७-२०। उस नीच कृत्यसे मुनिराजको बड़ा ही क्रोध आया। पत्थरोंकी चोटसे वे पृथ्वीपर गिर पड़े थे। और प्राण कंठगत हो रहे थे। उन्हें ऐसी अवस्थामें छोड़कर राजकुमार नगरीको चले गये।२१।

इस अनर्थकी खबर श्रीकृष्ण तथा बलभद्रके पास पहुँची। सुनते ही वे शीघ्र ही वहां दौड़े हुए आये, जहां द्वीपायन मुनि पड़े हुए थे। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार करके वे बोले, हे भगवन्! हम लोगोंसे जो कुछ हीनकर्म हो गया है उसके लिये क्षमा करो! क्षमा करो। आप क्षमाके धारण करनेवाले योगीन्द्र हैं, इसलिये हे प्रभो! मूर्ख बालकोंने जो कुछ दुष्कर्म किया है, उसके लिये क्षमा करो।२२-२४। यह सुनकर द्वीपायन मुनिने दो अंगुलियोंके इशारेसे बतलाया कि सारी द्वारिकामें तुम दोनोंको अर्थात् श्रीकृष्ण और बलभद्रको छोड़कर कोई नहीं बचेगा, सब भस्म हो जावेंगे। मुनिके नेत्र क्रोधके कारण लाल हो रहे थे। उससे उनके चित्तकी दुष्टताको समझकर बलभद्र और

नारायण भयसे व्याकुल होते हुए नगरीमें गये और सब लोगोंसे बोले, जो जहां कहीं जाकर अपने जीवनकी रत्ता कर सकें, वह वहां चला जावै। यहां कोई रहेगा, तो उसका अवश्य ही विनाश होगा ।२५-२७।

शम्बुकुमार सुभानुकुमार तथा प्रद्युम्नका पुत्र अनुरुद्धकुमार ये तीनों नारायण बलभद्रके वचनोंसे प्रतिबोधित हो गये। सो उसी समय नेमिनाथ भगवानके चरण कमलों को शरीरसे तथा वचनसे नमस्कार करके गिरनार पर्वतपर चले गये और वहां अपने हाथोंसे मस्तकके केश उखाड़कर तथा लोकदुर्लभ वस्त्राभूषण उतार करके उन्होंने वैराग्यपूर्वक अतिशय उज्ज्वल चारित्र धारण कर लिया ।२८-३०। इसके पश्चात् द्वीपायनमुनिके अशुभ तैजस शरीरके निकलनेसे द्वारिकाके जलनेका तथा जरत्कुमारके वाणसे श्रीकृष्णजीके मरने आदिका जो वृत्तान्त हुआ है, सो सब श्री 'हरिवंशपुराण" में विस्तारसे कहा है। हमने यहांपर उसे असुन्दर तथा दुःखकर समझके नहीं लिखा है। वहां श्रीशम्बुकुमार आदि तप करनेमें तत्पर हुए। आर्तध्यान तथा रौद्रध्यानको छोड़कर वे धर्मध्यान तथा शुक्लध्यानमें लवलीन थे और नानाप्रकारके तप करते थे कि, इतनेहीमें श्रीनेमिनाथ भगवान विहार करके गिरनार पर्वतपर आगये। सो उन तीनोंने उनके हाथसे फिर दीक्षा ग्रहण की। और छह प्रकारका अन्तरंग तथा बारह प्रकारका बाह्य तप ग्रहण किया ।३१-३४।

वे गुणोंके घर, शीलोंकी लीलासे प्रकाशमान, और इच्छारहित मुनि दुस्सह तप करने लगे। जहाँ सूय अस्त होजाता था, वहांपर प्रासुक भूमि देखकर विराजमान हो जाते थे अर्थात् रात्रिको कहीं गमन नहीं करते थे। और जैनमुनियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंका पालन करते थे। हेमन्त ऋतुमें अर्थात् जाड़ेके दिनोंमें बाहर खुली जगहमें अथवा वायु और शीतके स्थानमें स्थिर रहकर वे वैरागी मुनि रात व्यतीत करते थे, ग्रीष्मऋतुमें जब लोग पसीनेसे व्याकुल होते हैं पर्वतके मस्तकपर चढ़कर

योग धारण करके सुखसे समय विताते थे, और वर्षाकालमें वृक्षके नीचे स्थिर होकर धर्मरसका आस्वादन करते हुए कष्ट नहीं मानते थे। इसके सिवाय वे धीर वीर गुणी, तथा योगी मुनि मुक्तावली, रत्नावली, द्विकावली, सिंहविक्रीड़न, सर्वतोभद्र, आदि नानाप्रकारके तप करते थे।३५-४१। उन मुनियोंने निदान चौदहवें वर्षमें पर्यंकासन योगसे घातिया कर्मोंका क्षय किया। और क्षपक श्रेणीपर आरूढ होकर तथा कर्मोंके बड़े भारी समूहको नष्ट करके लोक अलोकका प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया।४२-४३। नेमिनाथ भगवानने इन तीनों केवलियोंके साथ पृथ्वीतलमें बहुत समयतक विहार किया। और भव्य जीवोंको प्रतिबोध करके जिनधर्मका प्रकाश करके लोगोंके हृदयमें पैठे हुए मोहान्धकारको नष्ट करके, और स्वर्ग मोक्षके देनेवाले धर्मका उपदेश करके सुर असुरोंसे पूजनीक गिरनार पर्वतको अपने चरणोंसे फिर पवित्र किया। सुर, असुर, विद्याधर, भूमिगोचरी आदि पद पदपर उनकी वन्दना करते थे वहां पर अर्थात् गिरनार पर्वतपर आकर वे सिद्धशिलापर विराजमान हुए और पर्यंकासन योगसे चार अघातिया कर्मों और उनकी प्रकृतियोंको नष्ट करके जन्ममृत्यु जरा रहित सिद्ध स्वरूपको प्राप्त हुए। उनके साथ शंबुकुमार, भानुकुमार और अनुरुद्धकुमार भी मोक्षको प्राप्त हो गये।४४-४८।

गिरनार पर्वतपर तीन शिखर हैं। उनमेंसे पहले शिखरको अनुरुद्धकुमारने दूसरेको, शम्बुकुमारने और तीसरेको प्रद्युम्नकुमारने पवित्र किया। अर्थात् उक्त शिखरोंपरसे उनका निर्वाण हुआ। इसप्रकारसे गिरनार पर्वतके तीनों शिखर शोभित हुए। उक्त मुनियोंके मोक्ष होनेके दिनसे ही गिरनार पर्वत सिद्धक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ और सुर असुरोंके द्वारा पूजा जाने लगा।४९-५१।

श्री नेमिनाथ, प्रद्युम्नकुमार आदि मुनि जहां जहांसे मुक्त हुए थे, वहां पर इन्द्र आदि देवोंने आकर उनके बचे हुए शरीरको (नखकेश आदिको) पवित्र चन्दनके संयोगसे दग्ध किया। इसके पश्चात् मोक्ष कल्याणको आये हुए वे सब देव पर्वतके तीनों शिखरोंपर हर्ष भक्ति और श्रद्धापूर्वक

भगवान की पूजा करके तथा गीत नृत्यादिक करके बड़ी भारी विभूतिके साथ अपने अपने स्थानको चले गये।५२-५५।

अन्तमंगल।

जो केवलज्ञानसे शोभायमान हैं, जिन्हें देवगण नमस्कार करते हैं, जो निर्मल सिद्धिको प्राप्त हुए हैं, जो क्षुधा, तृषा, राग, रोष, आदि दोषोंसे रहित हैं, भाव मनका अभाव हो जाने से जिनका द्रव्यमन निश्चल है, और जो जन्म, जरा, मरण, वियोग, त्रास आदिसे रहित हैं, वे अरहन्त भगवान निरन्तर मङ्गल करें और मेरे पापोंका नाश करें।५६। जहां आशाकी फांसी नहीं है, घर द्वार नहीं है, जन्म मृत्यु नहीं है, स्त्री, बन्धु, स्वजन, परिजन नहीं हैं, सुख नहीं है, दुख नहीं है, रूप वर्ण, छोटापन बड़ापन, और स्थूलता सूक्ष्मता नहीं है, उस मोक्षस्थानका आश्रय लेनेवाले अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हुए मुनिगण मुझे सुख प्रदान करें।५७। जिन्होंने दशवां अवतार लेकर तीर्थंकर पद पाया, जो संसार समुद्रसे तारने वाले हैं, जो यदुवंशियोंमें गुणरूपी रत्नोंके हार हुए हैं और जो कृष्णवर्ण होकर भी मोह अन्धकारका नाश करते हैं, वे श्रीनेमिनाथ भगवान शांति करें।५८। जन्म होते ही जिन्हें शत्रु हर ले गया, और एक विषम स्थानमें शिलाके नीचे दबा दिया गया, फिर कालसंवर विद्याधरने अपने घर लेजाकर जिन्हें पाला, तथा जवान होने पर अनेक विद्या तथा लाभ प्राप्त करके जो पुण्यके प्रभावसे अपने कुटुम्बसे मिले, और अन्तमें जिन्होंने मोक्षकी प्राप्ति की, वे श्री प्रद्युम्नकुमार हमको विपुल सौख्य देवें।५९। श्रीकृष्णनारायणके पुत्र और प्रद्युम्नकुमारके अनुयायी श्रीशम्बुकुमार भी जो कि केवलज्ञान प्राप्त करके गिरनार पर्वतके शिखरसे मोक्षको सिधारे, मेरे पापोंको नष्ट करें।६०। प्रद्युम्नकुमारके रूपवान पुत्र अनुरुद्धकुमार जिनके गुणोंकी उत्कृष्ट कीर्ति देवोंने भी संसारमें विख्यात की, और जिन्होंने गिरनार पर्वतके शिखर को अपने मोक्षगमन से प्रसिद्ध किया, मुझे

सुख प्रदान करैं ।६१।

शास्त्रका माहात्म्य ।

इस गुणोंके समुद्र और आनन्दकारी प्रद्युम्नचरित्र नामके ग्रन्थको जो बुद्धिमान भव्य जीव आदरके साथ सुनते हैं, वे मनुष्यपर्याय तथा देवपर्याय के धन, सौभाग्य, राज्य आदि सुखोंको पाकर के और फिर मुनियों में श्रेष्ठ होकरके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, तथा अन्त में पवित्र सिद्धलोकको सिधारते हैं ।६२।

ग्रन्थकर्त्ता की प्रार्थना ।

न मैं निर्मल व्याकरण शास्त्रको जानता हूँ, न काव्य जानता हूँ, न तर्क आदि जानता हूँ, और न अलंकारादि गुणोंसे अलंकृत छन्दोंको भी जानता हूँ। मैंने यह पवित्र चरित्र बनाया है, सो किसी प्रकार की कीर्ति आदिकी वांछासे अथवा मानके वशसे नहीं बनाया है, किन्तु पापोंके नाश करनेके लिये बनाया है ।६३। जो विशुद्ध बुद्धिवाले हैं, शास्त्रोंके पार पहुँचे हुए हैं, परोपकार करनेमें कुशल हैं, पापसे रहित हैं, और भव्य हैं, उन्हें मुझ मन्दबुद्धिके बनाये हुए, गुणसमुद्र कामदेवके इस निर्मल चरित्रको संशोधन करके पृथ्वीपर विस्तृत करना चाहिये अर्थात् इसका प्रचार करना चाहिये।

ग्रन्थकर्त्ताका परिचय ।

काष्ठासंघके नन्दीतट नामके पवित्र गच्छमें गुणोंके समुद्र श्रीरामसेन नामके आचार्य हुए। फिर उनके पट्टको शोभित करनेवाले और पापोंके नाश करने वाले रत्नकीर्ति आचार्य हुए। इनके शिष्य लक्ष्मणसेन जो कि शीलकी खानि और सर्वगुणसम्पन्न हुए थे, और उनके पट्टको धारण करने वाले धीरवीर तथा गुणी भीमसेनसूरि हुए। इन्हीं भीमसेन गुरुके चरणोंके प्रसादसे सोमकीर्तिसूरिने यह रमणीय चरित्र अपनी भक्ति के वश से बनाया है। भव्य जीवों को इसे संशोधन करके पढ़ना

चाहिये ।६५-६७।*

पौष सुदी त्रयोदशी बुधवार संवत् १५३१ को इस शास्त्रकी रचना पूरी हुई ।६८।

जब तक पृथ्वी है, सुमेरु पर्वत है, जबतक सूर्यका मण्डल है, जब तक ग्रहादि तारे हैं, और जब तक सज्जनोंकी चेष्टा है, तब तक शान्तिनाथके चैत्यालयमें भक्तिपूर्वक बनाया हुआ यह सुखकारी तथा निर्मल शास्त्र स्थिर रहै ।६९। जबतक सुमेरु पर्वत, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, और तारागण हैं, तबतक यह पापका नाश करनेवाला चरित्र जयवन्त रहै ।७०। चार हजार साढे आठ सौ श्लोक जिसमें हैं, ऐसा यह प्रद्युम्नचरित्र श्री सर्वज्ञदेवके प्रसादसे निरन्तर जयवन्त रहै ।७१।

इति श्रीसोमकीर्ति आचार्यकृत प्रद्युम्नचरित्र संस्कृतग्रन्थके नवीन हिन्दी भाषानुवादमें श्री नेमिनाथ, प्रद्युम्न शांब, तथा अनुरुद्ध, आदिके निर्वाणका सोलहवां सर्ग समाप्त हुआ।

[समाप्तोऽयं ग्रन्थः]

* दूसरी प्रतिमें ६५-६६ और ६८ नम्बरके श्लोक नहीं हैं।